

लिंग-पुराण

(प्रथम (त्रितीय खंड)

सरल भाषानुवाद सहित



सम्पादक—

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन,
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार ।



प्रकाशक—

संस्कृति-संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) वरेली ।

(उत्तर प्रदेश)

प्रकाशक :

संस्कृति-संस्थान

स्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली (उ० प्र०)

★

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा प्राचार्य

★

सर्वाधिकार सुरक्षित

★

प्रथम संस्करण

१९६९

★

मुद्रक :

हर्ष गुप्त

राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा

★

मूल्य : सात रुपये

भूमिका

सब पुराणों में “लिंग पुराण” एक विशेष महत्त्व की रचना है। वैसे तो जनसाधारण में “शिव पुराण” का प्रचार अधिक है, क्योंकि यह प्रायः कथात्मक है और श्रोतागण उसे अपेक्षाकृत सीधे हृदयङ्गम कर लेते हैं। पर “लिंग पुराण” में शैव-मिथ्यातों का जैसा स्पष्ट विवेचन पाया जाता है वैसा अन्यत्र कम मिलता है। शिव के अभ्यक्त ब्रह्म-रूप को प्रतना कर उनसे ही समस्त विश्व के उद्भव का वर्णन इसमें बोधगम्य शैली में किया गया है। यही वर्णन अन्य समस्त पुराणों में भी थोड़े बहुत अन्तर से मिलता है पर कई पुराणकारों ने उसकी प्रतना विस्तृत और जटिल बना दिया है कि समझने में बठिनाई का अनुभव होने लगता है। ‘लिंग पुराण’ में उसे सहज रूप में स्पष्टता के साथ व्यक्त किया गया है।

पुराण-वर्तों ने प्रथम अध्याय में ही जो प्रस्तावना की है उसमें शिव को ‘शब्द ब्रह्म’ शरीर वाला कहा है। भारतीय वेदों, उपनिषदों तथा दर्शनों में भी सृष्टि का आरम्भ शब्द ब्रह्म से ही किया गया है। उस ब्रह्म का न कोई आकार है और न रूप है। इसलिये यदि कोई उसे स्थूल रूप में देखने और समझने की चेष्टा करता है तो सफल नहीं हो सकता। पर साथ ही यह भी निश्चय है कि उनके ‘शब्द ब्रह्म’ वाले स्वरूप को थोड़े से उच्चकोटि के विद्वानों के अनिरिक्त अन्य कोई समझ भी नहीं सकता। सामान्य बुद्धि के लोगो के लिए उसे किसी न किसी स्थूल प्रतीक के रूप में प्रकट करना ही पड़ेगा। इसीलिए शिव की मूर्ति “शब्द ब्रह्म के अनुवाता” कह कर साग में यह भी कहा गया है—

वर्णविमर्शक लक्षण बहुधा स्थितम् ॥

अर्थात् वे शिव भगवान् 'अव्यक्त' भी हैं और "अनेकों रूपों में प्रकट" भी हैं । ससार के अन्य सभी धर्मों ने भगवान् को केवल एक ज्योति अथवा दिव्य-शक्ति के रूप में माना है, और कुछ उसे आकाश में स्थित सर्व शक्तिमान् पुरुष के रूप में वर्णित करते हैं, पर भारतीय मनीषियों ने प्रत्येक स्थान पर भगवान् के तीन रूपों का वर्णन किया है व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त । 'लिंग पुराण' में इसी भाव को शिव की तीन मूर्तियों में बतलाया है—अलिङ्गी, लिङ्गी और त्रिलिङ्गी—

अलिङ्गं चैव लिङ्गं च त्रिलिङ्गानि मूर्तयः ॥

अर्थात् "वे भगवान् अलिङ्ग (चिन्ह रहित) हैं, लिङ्ग (चिन्ह अथवा रूप युक्त) भी हैं और इस प्रकार वे त्रिलिङ्गी (अव्यक्त और व्यक्त) दोनों हैं । ये तीनों ही भाव मूर्तियाँ भगवान् शिव की हैं ।"

यद्यपि भगवत्-शक्ति की यह कल्पना बहुत सूक्ष्म और परिध्वन साध्य है, पर आज यही आधुनिक विज्ञान की खोजों के सामने यथार्थ सिद्ध हो रही है । ईसाई धर्म के ईश्वर का स्वरूप तो, जिसे मानवाकार बतलाया गया था और कहा गया था कि आज से छः सात हजार वर्ष पहले उसने "आदम और हवा" को बनाकर सृष्टि-रचना का श्रीगणेश किया, अब योरोप अमरीका के देशों में 'बच्चों की कहानियों' की तरह माना जाता है । पर पुराणों में सृष्टि के क्रम-विकास का हिसाब, विज्ञान की तरह भरखो-भरखो वर्षों का ही लगाया गया है । लिंग पुराण के "कालमान और ब्रह्माण्ड" निरूपण अध्याय में युगों, मन्वन्तरों और कल्पों का हिसाब बतलाते हुए कल्प का परिमाण इस प्रकार कहा है—

कोटीना द्वं सहस्रे तु अष्टौ कोटिं क्षतानि च ।

द्विपष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः ॥

कल्पार्धं संख्या दिव्या वीकल्प मेघ तु कल्पयेत् ।

कल्पानां वै सहस्रं तु वर्षमेक मजस्य तु ॥

“दिव्य कल्पार्थ का परिमाण दो हजार आठ सौ बासठ करोड़, सोत लाख वर्ष होना है । कल्प इससे दुगुना होता है और ब्रह्मा के एक चप में ऐसे एक हजार कल्प होते हैं ।”

ये सख्याएँ निस्सन्देह मानव-मस्तिष्क को लड़खड़ा देने वाली हैं । कहाँ तो योरोप अमरीका के विद्वान् भी चार-पाँच सौ वर्ष पहले पृथ्वी को पाँच छ हजार वर्ष पुरानी मानते थे, और आज भी इसे अधिक से अधिक दो अरब पुरानी जान सके हैं, और कहाँ हमारे पुराणकार ईसा के जन्म के समय ही “पृथ्वी के इतिहास” की गणना खरबों वर्षों में कर रहे थे । पर इसमें अविश्वास की कोई बात नहीं । प्रत्येक ज्ञानी व्यक्ति इस बात को समझता और स्वीकार करता है कि देश तथा काल अनन्त है । यह पृथ्वी, इसी के समान अन्य लाखों पृथ्वियाँ और सूर्य भी समय-समय पर बनते-बिगड़ते रहने हैं । सृष्टि और प्रलय का क्रम निरन्तर चलता रहता है । अगर हम अपने दिमाग में ‘अनन्त’ की कल्पना कर सकते हो तो उसकी तुलना में अरब और खरब की सख्याएँ भी बिल्कुल छोटी हैं ।

इसीलिए पुराणों में काष्ठा तथा पल से लेकर कल्प तक का हिसाब बननाकर मनुष्यों की बुद्धि में यह तथ्य बैठाने की चेष्टा की गई है कि भगवान की इस रचना का कभी अन्त नहीं होता । अरब, खरब और उससे भी अधिक पद्म और सङ्ख तक की सख्या व्यतीत हो जाने पर भी वह कायम रहती है । हाँ, उसका रू सदैव बदलता रहता है । अगर समस्त विश्व की दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रत्येक क्षण इसमें बड़े-बड़े परिवर्तन होते रहते हैं । वैज्ञानिकों का दो अरब वर्ष का हिसाब तो तब से चलता है जब कि पृथ्वी सूर्य से पृथक् होकर एक जलते हुए पिण्ड के रूप में आई । पर पुराणों का हिमाव उस समय से चलना है जब सूर्य भी न था और मूल प्रवृत्ति में से महत् तत्त्व का आविर्भाव होने लगा था ।

यह सच है कि पुराणकारों ने कई तरह से हितायों को पिना जुता दिया है और अर्चतन्त्र और स्थावर पदार्थों का वर्णन भी वर्तमान प्राण-धारी जीवों के समान ही किया है। कारण यह कि घनस्थित तथा अल्प विकसित बुद्धि वाला जन-समुदाय भी इसी थोड़ा बहुत समझ सकें। अन्यथा यदि हम उस वर्णन में ध्यान लाये गये अलङ्कारिक शब्दों के वास्तविक अर्थों पर विचार करें तो मासूम पड़ जाता है कि यह वर्णन उस समय का है जब मनुष्य क्या पेड़ और गोधे भी उत्पन्न नहीं हुये थे। 'लिंग पुराण' में इन सृष्टि-विज्ञान पर बहुत अच्छी तरह प्रकाश डाला गया है, जिससे विदित हो जाता है कि समार में हमको जो विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है, मनुष्यों में धर्म, जाति, सम्प्रदाय, समुदाय, वर्ग, गोत्र आदि का जितना भी भेद प्रतीत होता है, वह सब हमारा ही कल्पित है। अन्यथा अगर 'मूल दृष्टि' से विचार किया जाय तो मनुष्य मात्र ही नहीं प्राणी मात्र उसी प्रकार एक हैं जिस प्रकार एक मुट्ठी भर रेत के समस्त कणों में कोई अन्तर नहीं दिखलाई देता। अथवा एक घड़ा जल में से प्रत्येक बूँद तत्व की निगाह से एक सी ही होती है।

खेद की बात है कि अपने को अपने 'धर्मात्मा' और सच्चे 'सनातनी' समझने वाले व्यक्ति पुराणों में केवल कथाओं और उपाख्यानो पर ही ध्यान देते हैं, पर उनमें वर्णित सृष्टि-विज्ञान, तत्त्व-विभाग, प्राणियों का विकास, मानवीय शक्तियों की क्रमशः वृद्धि आदि को समझने की चेष्टा कभी नहीं करते। यदि वे ऐसा करते तो विरोधियों द्वारा "मिथ्या कल्पना" बताये जाने वाले इन पुराणों से ही वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था, जिससे इस जगत् और मानव-जीवन का यथार्थ स्वरूप सहज में ज्ञात हो जाता। धर्म और अध्यात्म का वास्तविक सार यही है कि मनुष्य सकीर्ण दृष्टि को त्याग कर प्राणीमात्र से आत्मीय भाव अनुभव करे। भारतीय मनीषियों ने इसी तथ्य को समझाने के

लिये "प्रात्मवत् सर्व भूतेषु य पश्यति स पण्डित" की उक्ति को उद्धोषित किया है।

पञ्चतत्त्वों का महान् सिद्धान्त—

इस जगत में जितने बड़े में बड़े और छोटे से छोटे पदार्थ देखने में आते हैं वे सब पञ्च-भूतों के खेल हैं। वेद तुल्य समझे जाने वाले संस्कृत ग्रन्थों से लेकर तुलसी रामायण तक में 'धृति, जल, पावक, गगन, समीर'—कह कर इन पाँच तत्वों को ही मानव जीवन का आधार बताया गया है। इसका विवेचन करते हुए 'विंग पुराण' में कहा है—

"महच्छार से शब्द तन्मात्र और उससे अग्नय आकाश हुआ। आकाश से स्पर्श तन्मात्र और उससे वायु हुआ। वायु से रूप तन्मात्र और उससे अग्नि तत्व हुआ। अग्नि से रस तन्मात्र और उससे जल हुआ। जल से गन्ध तन्मात्र और उससे धरा हुई।"

यह पाँच तत्व का सिद्धान्त भारतीय मनोविदों की हजारों वर्ष पूर्व शात या और उन्हीने इसका विस्तार पूर्वक विवेचन किया था। पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपने ढङ्ग से खोज करके तत्वों की संख्या १० के ऊपर पहुँचा दी। इस पर अनेकों विदेशी लेखक भारतीय शास्त्रों के पाँच तत्व वाले सिद्धान्त की हँसी उड़ाने लगे। पर उक्त विज्ञान तो हर रोज बढ़ता जाता है। इसलिये पिछले चाबीस पचास वर्षों में जैसे-जैसे अणु सिद्धान्त का ज्ञान बढ़ता गया, वैसा ही ६० तत्व वाले सिद्धान्त का योगदान प्रकट होता गया। एतद् भारतीय लेखक ने पाँच तत्वों के सिद्धान्त की पुष्टि करते हुये लिखा है—

"भारतीय शास्त्रों में केवल पाँच तत्वों का ही वर्णन है और उनमें से एक तत्त्व जल है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों के आधार पर कहा कि जल तो कोई मौलिक तत्व नहीं है। यह तो दो

प्रकार की वायु रूपी गैसी प्रपत्ति 'हाइड्रोजन' और 'ऑक्सीजन' के मिलने से बनता है। इसलिये जल एक मिश्रित पदार्थ है और इसको 'तत्त्व' कहना भूल है। जल तत्त्व के असली तात्पर्य को तो उन्होंने समझा नहीं और चूँकि साधारण जल दो भिन्न-भिन्न तत्त्वों से बना है, इसलिये वे इस बात को लेकर ही उड़ गये कि प्राचीन लोग वितने बेवकूफ थे कि उन्होंने जल को तत्त्व घोषित कर दिया। इस मनोवृत्ति के कारण उनको अपने अन्वेषण और प्राकृतिक ज्ञान पर गर्व भी होने लगा कि प्राचीन प्रणाली में तो तब केवल पाँच ही तत्त्वों को जानते थे, पर हमने तो ८०-९० तत्त्वों का पता लगा लिया। पर हम धतायेंगे कि इस मनोभाव में कितनी भारी भूल भरी है। हम यह भी सिद्ध करेंगे कि पाँच ही तत्त्वों द्वारा प्राचीन ऋषिगण प्राकृतिक रहस्यों में कितनी गहराई तक पहुँच गये थे और ८०-९० तत्त्वों को जानते हुये भी आज के वैज्ञानिक किस प्रकार प्राकृतिक ज्ञान-सागर के एक किनारे पर ही सतह पर हिलोरे खा रहे हैं।"

“वास्तव में तत्त्व पाँच ही हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इनमें से प्रत्येक तत्त्व का एक विशेष गुण होता है जिसे 'तन्मात्रा' कहते हैं। ऋषियों के सिद्धान्तानुसार पहले पाँच सूक्ष्म तन्मात्राओं की सृष्टि हुई, जिन्हें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध कहते हैं। फिर इन तन्मात्राओं के अनुकूल पाँच स्थूल तत्त्वों की सृष्टि हुई। इसलिये साधारणतः इन तन्मात्राओं अथवा 'महाभूतों' का तत्त्वों के गुणों के रूप में वर्णन किया जाता है, पर इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय सृष्टि विज्ञान के अनुसार पहले सूक्ष्म तन्मात्राओं का आविर्भाव होकर बाद में स्थूल तत्त्वों की रचना हुई। सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति हुई उसके बाद आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इससे समझा जा सकता है कि एक समय ऐसा था जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का अस्तित्व न था केवल आकाश ही आकाश था। इसी प्रकार पृथ्वी तत्त्व

की सृष्टि के पहले सब कुछ जलमय ही होगा, हाँ उसके ऊपर वाले तत्त्व अर्थात् अग्नि, वायु और आकाश भी वर्तमान होंगे, पर पृथ्वी-तत्त्व न होगा ।”

इस प्रकार हमारे शास्त्र वैज्ञानिकों से आगे बढ़ कर कहते हैं कि पाँच तत्वों से अभिप्राय दृष्टिगोचर विभिन्न प्रकार के पदार्थों से नहीं है, बरन् उनकी मूल अवस्था से है । पृथ्वी-तत्त्व से मतलब रङ्ग-बिरङ्गी मिट्टी से नहीं बल्कि पदार्थों की ठोस अवस्था से है । वैसे ही अपस् पथवा जल तत्त्व से अभिप्राय पानी से नहीं, बल्कि पदार्थों की तरल अवस्था से है । यही बात अग्नि और वायु के सम्बन्ध में समझनी चाहिये । आकाश के सम्बन्ध में तो, जो सबसे अधिक सूक्ष्म तत्व है, अभी वैज्ञानिक विशेष पता भी नहीं लगा सके हैं ।

पर वैज्ञानिकों ने दूसरी शब्दा यह उठाई कि जिस प्रकार प्राचीन समय में पञ्च भूतों और उनके गुणों का वर्णन किया गया है, उससे तरल और वायवीय पदार्थों में किसी प्रकार की गन्ध नहीं होनी चाहिये थी । पर हम तेजाव, मिट्टी का तेल आदि तरल पदार्थों में तथा ‘क्लोरीन’ ‘एमोनिया’ आदि गैसों में तीव्र गन्ध पाते हैं, इसका क्या कारण है ? सामान्य दृष्टि से यह शब्दा उचित जान पड़ती है, पर जब हम इस विषय में ‘लिंग पुराण’ के विवरण पर ध्यान देते हैं तो सहज में उसका निराकरण हो जाता है—

“स्पर्श मात्र आकाश को आवृत करता है और रस मात्र को क्रियात्मक वायु वहन करता है । अग्नि-तत्त्व ने रस मात्र को आवृत किया है । तथा सर्व रसात्मक जल गन्धमात्र को आवृत किये हुए है । इस प्रकार यह भूमि पाँचों तत्वों के गुण अर्थात् गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द गुण वाली होती है । जल चार गुण वाला होता है, अग्नि तत्व में तीन गुण होते हैं, वायु में दो और आकाश केवल एक अर्थात् शब्द गुण वाला होता है ।”

पञ्च तत्वों का भण्डार उतना ही नहीं है जितना हमको दिखाई पड़ता है । उनकी अधिकता का वर्णन करते हुए पुराणकार कहते हैं—
 प्रत्येक् विश्व या ब्रह्माण्ड के चारों ओर उससे दश गुना जल होता है जिससे वह आवृत रहता है । जल से दश गुना तेज होता है जिस ने जल को आवृत कर रखा है । तेज से दश गुनी वायु और वायु से दश गुना आकाश है, जिन्होंने इस भण्ड को इसी क्रम से बाहिर से आवृत कर रखा है । ऐने-ऐसे भण्ड करोड़ों-करोड़ों भव्य है । उन ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक में पृथक् ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र भी होते हैं ।”

आधुनिक वैज्ञानिकों ने जब से भीमकाय दूरबीनों, जिनमें से किसी-किसी का वजन १० हजार मन भी है, बनाकर अंतरिक्ष का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया है, तब से वे भी यही कह रहे हैं कि आकाश में सौर-लोकों और ब्रह्माण्डों की कोई गिनती नहीं है । जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीने बनती जाती हैं, उतने ही अधिक नये-नये सूर्य दिखाई पड़ते जाते हैं । इनमें से कितने ही तो इतनी दूर हैं कि जो प्रकाश एक मिनिट में लगभग एक करोड़ मील की गति से चलता है वह उन बिण्डों तक पचास लाख वर्षों में नहीं पहुँच पाता । उनका यह कथन आकाश के अनन्त स्वरूप का कुछ अनुमान करा सकता है ।

शैव-सिद्धान्त की महत्ता—

जो लोग साम्प्रदायिक मतभेद के कारण एक दूसरे पर दोषा-रोपण किया करते हैं, उस मनोवृत्ति को त्यागकर अगर हम “लिंग पुराण” में वर्णित शैव-सिद्धान्त पर विचार करने हैं, तो हम कह सकते हैं उसके नियम और उपदेश सामान्य मनुष्यों के लिये कल्याणकारी ही हैं । उसमें धर्म के जिस स्वरूप को प्रतिपादित किया गया है, उसमें कोई जटिलता नहीं है वरन् वह प्रत्येक मनुष्य का सहज कर्तव्य ही है । उसमें यह प्रश्न उठाकर कि भगवान् शिव किस प्रकार क पृथ्वी पर प्रसन्न हुआ करते हैं सत्पुरुषों के लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

‘जो अपने आपको समय में रखने वाले, धर्म का ध्यान रखने वाले, परम दया वाले, तपस्वी, सन्यासी, विरक्त, आत्मा के वश में रखने वाले ज्ञानी पुरुष होते हैं, उन्हीं पर भगवान् महेश्वर प्रसन्न होते हैं । जो दानी, सत्य भाषण करने वाले निस्पृह और श्रुति तथा स्मृति के ज्ञाता होते हैं और श्रुति तथा स्मार्त धर्मों में कोई विरोध उपस्थित नहीं करते, उन पर प्रभु शिव प्रसन्न रहा करते । ‘सत्’ शब्द ब्रह्म का वाचक है, जो महा पुरुष उसके अन्त तक पहुँच जाते हैं वे ही ‘मन्’ कहे जाते हैं । दश इन्द्रियो द्वारा साध्य विषयो में और आठ प्रकार के पहले बताये हुए ऐश्वर्यों में वे तोग कभी भी हर्ष और क्रोध नहीं किया करते हैं । इसी से वे ‘जितात्मा’ होते हैं । श्रुति और स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित धर्म का पूर्ण ज्ञान होने पर पुरुष धर्मज्ञ माना जाता है । विद्या की साधना करने वाला साधु होता है और गुरु का हित करने के कारण ब्रह्मचारी कहा जाता है । क्रियाओं के साधन करने से गृहस्थ भी ‘साधु’ बन जाता है । अरण्य में तप की साधना के कारण वैखानस (संन्यासी) भी ‘साधु’ कहा गया है । इसी प्रकार योग का साधन करने वाला यति ‘साधु’ कहा गया है । इस प्रकार अपने-अपने आश्रमों का साधन करने से ही सब ‘साधु’ कहे गये हैं, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति ये चार आश्रम होते हैं । ये आश्रमों के वाचक शब्द क्रियाश्रम होते हैं, जिन्हें उनके धर्म और अधर्म का भी ज्ञान हो जाता है । ‘कुशल’ अर्थात् ब्रह्मचारी धर्म ही धर्म और अकुशल (अकल्याणकारी) कर्म को ही अधर्म समझना चाहिए ।”

“लिङ्ग पुराण’ ने धर्म और अधर्म की जो व्याख्या की है वह बहुत स्पष्ट और बोधगम्य है । धर्म का निर्णय केवल किन्हीं साम्प्रदायिक विधि-विधानों या धर्म ग्रन्थों के आधार पर ही नहीं किया जा सकता । इस प्रकार के बहुत से विधान या धार्मिक नियम देश-काल के बदल जाने से अनुपयोगी अथवा हानिकारक भी हो जाते हैं । उदाहरण के लिए बाल-विवाह और पर्दा की प्रथा मुसलमानों के शासन काल में

मातनाइयो से बहू-बेटियों की रक्षा के लिए प्रचलित करनी, पड़ी थी। यद्यपि वह हानिकारक ही थी तो भी समय की गति को देखकर उसे 'धर्म' मान लिया गया। पर अब जब वह शासन समाप्त हो गया और उस तरह स्त्रियों को छीन लेना बन्द हो गया तो उसे प्रचलित रखना अनावश्यक ही नहीं अनुचित भी है, क्योंकि उससे समाज की प्रत्यक्ष रूप से हानि हो रही है। इसलिए 'धर्म' वास्तव में उसी को कहा जा सकता है जो कल्याणकारी हो। अत्याणकारी अथवा हानिकारक रीति-रिवाजों को 'धर्म' के नाम से पुकारना भूल है।

इसी प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में जो यह कहा गया है कि मनुष्य प्रत्येक अवस्था में 'साधु' बन सकता है, वह भी एक बड़ा महत्वपूर्ण उपदेश है। हमारे यहाँ के बहुत से लोग जिसकी रुचि सत्कर्मों की ओर नहीं है, प्रायः यह बहाना बनाया करते हैं कि हम तो विद्यार्थी हैं, लड़के हैं, अथवा हम तो गृहस्थ हैं बाल-बच्चों का निर्वाह बड़ी कठिनाई से कर पाते हैं, अतएव हम लोग परोपकार, परमार्थ के कार्यों के लिये समय और साधन वहाँ से पा सकते हैं? पर 'पुराणकार' का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी आश्रम में रह कर साधना करता हुआ, अपना कर्तव्य सचाई से पालन करता हुआ 'साधु' की पदवी का अधिकारी बन जाता है। जिसकी सत्कर्मों की लगन होगी, जिसके हृदय में परोपकार की, सेवा धर्म की भावना होगी उसे ऐसे कार्यों के लिए समय और साधन अवश्य मिल जायेंगे। जिसने इस तथ्य को समझ लिया है कि बिना परोपकार की भावना के मनुष्य कदापि 'धार्मिक' कहलाने का अधिकारी ही ही नहीं सकता वह अवश्य उसके लिये साधन भी ढूँढ़ लेगा।

सच्चे ब्राह्मण की श्रेष्ठता—

राजा क्षुप और दधीच ऋषि के विवाद के रूप में जो क्या वही गई है उससे सिद्ध होता है कि सच्चे ब्राह्मण का लक्षण सेवा-धर्म और परोपकार होता है और घाग फूस की कुटी में रहने वाला लोक-सेवी

ब्राह्मण बड़े-बड़े राजाओं और वैभवशालियों की अपेक्षा अधिक पूजनीय है। राजा क्षुप का ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है और वह बड़ा धीर तथा वैभवशाली था। ज्येष्ठ ऋषि के पुत्र दधीच के साथ उसकी बहुत अधिक मित्रता थी। एक बार किसी प्रसंगवश उनमें यह विवाद छिड़ गया कि क्षत्रिय और ब्राह्मण में से कौन अधिक श्रेष्ठ है। क्षुप के ऋषिानुसार राजा में आठो लोकपालों का अंश होता है, इसलिये उसे इन्द्र, अग्नि, यम निरृति, वरुण, सोम और कुवेर के सहस्र ही मानना चाहिये। विष्णु का अंश होने से ब्राह्मण को भी उनका सदैव सम्मान करना चाहिए। उधर दधीच सच्चे ब्राह्मण की अपेक्षा किसी को बड़ा मानने को तैयार न था।

इन दोनों का विवाद इतना बढ़ गया है उसने एक धीरे सगाम का रूप धारण कर लिया। क्षुप को भगवान् विष्णु की सहायता प्राप्ति थी और दधीच ने शिव से वरमाग होने का वरदान प्राप्त कर लिया था। इसलिये इस सगाम में विष्णु के सहित सभी देवताओं को पराभूत होना पड़ा। अन्त में राजा क्षुप ने अपनी न्यूनता स्वीकार करके दधीच की स्तुति की और ब्राह्मण को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया, तब शान्ति स्थापित हो सकी। उसके पश्चात् दधीच ने कहा—

देवंश्च पूज्या राजेन्द्र नृ पैश्च विविधैर्गणैः ।

ब्राह्मणा एव राजेन्द्र बलिनः प्रभविष्णुवः ॥

इत्युक्त्वा स्वोटज विप्रः प्रविवेश महाद्युतिः ।

दधीचमभिवर्त्य जगाम स्व नृपः क्षयम् ॥

अर्थात् “देवों के द्वारा, नृपों के द्वारा तथा अन्य सब व्यक्तियों के द्वारा ब्राह्मण सम्मान के योग्य और अधिक शक्तिशाली होता है। इतना कहकर वे महा तेजस्वी मुनि अपने कुटिया में प्रवेश कर गये और राजा उनकी वन्दना करके अपने नगर को चला गया।”

इस प्रकार पुराणकार ने निम्न नीचे ब्राह्मणकी भेषता प्रति-
पादित की है । पर साथ ही संतत रूप में यह भी बता दिया है कि धृष्ट
के पक्षपाती समस्त देवताओं के महित विष्णु तक को भी हटाने वाला
यह दधीच ब्राह्मण गरीब लोगों की तरह एक बहुत साधारण कुटी में
रहता था और राजा द्वारा पूजे जाने के परवान् भी वह उसी में रहा ।
उसमें जो कुछ तेज था, खन था, वह इसी त्याग और तपस्या का था ।
जिसकी धन की इच्छा ही नहीं, और जिसने त्यागमय जीवन को ही
आदर्श मानकर अपना रत्ना है वह बड़े पदवीधारी और वैभवशाली
व्यक्तियों से क्यों दब सकना है ? क्योंकि जिसने धनवान् और पट्टी-प्रहरी
जमीन, जायदाद वाले व्यक्ति होने के अन्वेष ही अपने स्वार्थ के लिए
प्रयत्नशील होंगे, जब कि सच्चा ब्रह्मण जिसने संसार के भोगों को स्वेच्छा-
पूर्वक त्याग रखा है और अपना जीवन परोपकार के लिए अर्पण कर
रखा है, परमार्थ का अधिक होगा । यदि स्वार्थी को परमार्थी से अधिक
श्रेष्ठ मान लिया जाय तो यह सत्य और श्याय का विपर्यय-पतन ही
माना जायगा । दधीच सिने अधिक परोपकारी थे यह इसमें जाना जा
सकता है कि देवताओं से इतना विरोध हो जाने पर भी जब
देवराज इन्द्र को वृषासुर को मारने के लिए बल बनाने
की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने अपनी हड्डियाँ भी उनको दे दीं ।
दधीच का यह अस्ति-दान भारतीय धार्मिक साहित्य की एक अमर
कथा है ।

चारों युगों का सच्चा स्वरूप —

पुराणों में जबहु-जगहु सतयुग, त्रेता आदि के विषय में जो उपा-
ख्यान कहे गये हैं, उनसे ऐसा प्रकट होता है कि उन युगों में सब प्रकार
की कलाओं तथा ज्ञान की बहुत अधिक वृद्धि हो गई थी और लोग
तरह-तरह की सुख प्रद और सोमाजनक वस्तुओं का व्यवहार करते थे ।
पर 'लिङ्ग पुराण' में दिए गये 'चारों युगों का लोक धर्म' अध्याय में

उन युगों की परिस्थिति का जो वर्णन मिलता है उससे विदित होता है कि उस युग के मनुष्य अथवा इतर प्राणी, जो भी उस समय रहे हो, वे कृत्रिम पदार्थों और खान-पान से सर्वथा परे थे। वे प्रकृति की गोद में पलते थे और जीवन के अन्तिम क्षण तक, वह जैसे भी रहे उसी तरह रहते थे। उस अध्याय का सारांश इस प्रकार है—

“सप्तयुग के प्राणी परम तृप्त थे और उनमें ऊँच-नीच का तनिक भी अन्तर नहीं था। उन सबकी आयु समान होती थी और रूप भी एक-सा ही था। उनको ठण्ड गर्मी से बच नहीं होता था। वे प्राणी पर्वत और समुद्र में निवास करते थे, किसी का कोई घर या आश्रय स्थल नहीं होता था। उनमें किसी प्रकार का शोक नहीं था और सर्व गुणों की प्रधानता होती थी। वे अधिकतर एकान्त में रहने वाले थे। वे निष्काम कर्मशील थे। उनकी स्वर्ग और नरक के कारण, स्वरूप वगैरह में प्रवृत्ति नहीं थी। उस समय वर्णाश्रम की कोई व्यवस्था नहीं थी और न कोई ‘वर्णशुद्ध’ होता था।”

यदि इस वर्णन की भली-भाँति विवेचना की जाय तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उस समय के प्राणी वर्तमान मनुष्यों से अधिकांश में भिन्न थे। जो बिना घर के रह सकें, जिनके कोई परिवार या बाल-बच्चे न हों, जो सर्दी गर्मी से प्रभावित न होते हों, जो पर्वतों के नीचे या समुद्र के किनारे ही दिन-रात और प्रत्येक मौसम में गुजर कर लेते हों उनको यदि मनुष्येतर प्राणी या आदिम-मातृव कहा जाय तो इसमें कोई अनोचित्य नहीं समझा सकता। वास्तव में जिस समय प्राणी की आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित थीं और सख्या कम होने से प्राकृतिक-आहार के लिए किसी तरह का सघर्ष नहीं करना पड़ता था, उसे यदि यदि “वल्गु युगों का युग” कहा जाय तो वह ठीक ही है।

जैसा कि यह स्थिति कुछ बदनी और जनसंख्या बढ़ जाने से निर्वाह के साधनों की प्राप्ति करने के लिए प्रयत्न और कुछ सघर्ष भी

होने लगा । उस परिस्थिति का वर्णन करते हुए पुराणकार ने लिखा है—

“त्रेता नामक युग में काल-प्रभाव से आहार के लिए रस का मित्रता बन्द हो जाता है । पर उस समय एक नई सिद्धि (साधन) उत्पन्न हो जाती है । उस समय जल मेघ का रूप धारण कर बरसने लगता है । उसके प्रभाव से पृथ्वी में ऐसे वृक्ष उत्पन्न हो गये, जिनसे प्राणियों के लिए निवास और आहार दोनों की व्यवस्था हो गई है । पर तब प्राणियों में घापा-घापी का माघ उत्पन्न होने लगा और कुछ समय पश्चात् वे वृक्ष नष्ट हो गये । फिर जब योग राग-द्वेष त्यागकर उन वृक्षों का ध्यान करने लगे तो वे प्रादुर्भूत हो गये । उन वृक्षों से ही उस समय की प्रजा को आहार, वस्त्र, आभूषण सब कुछ मिल जाता था । उनके प्रत्येक ‘पुटक’ में गंध, बल, रस-युक्त मधु उत्पन्न होता था, उसका उपभोग करके वे सब लोग बड़े सुखी और दीर्घायु होते थे ।

“इस प्रकार जब बार-बार वे कल्प-वृक्ष उतराई हुए और फिर नष्ट हो गये, तो लोग अपने रहने के लिये अन्य प्रकार के साधन तलाश करने लगे । तब शारीरिक स्वास्थ्य में अन्तर पड़ जाने से वे गर्मी, वर्षा और जाड़े का कष्ट भी अनुभव करने लगे । अतः वे बल्कल, चर्म आदि से अपनी देह को ढकने लगे और गुफाओं में रहने लगे । इसके पहले वे बिना आश्रय-स्थल वाले स्वेच्छाचारी थे और चाहे जहाँ रहा करते थे । पर फिर वे ययायोम्य प्रेम-पूर्वक इन गुफाओं के घरो में रहने लगे । इस प्रकार उन्होंने वर्षा, धूप आदि से बचने की व्यवस्था कर ली, पर आहार के सम्बन्ध में बड़ी चिन्ता उपस्थित हो गई, क्योंकि मधु उत्पन्न करने वाले सब वृक्ष नष्ट हो गये थे ।”

“फिर त्रेता युग में एक नई सिद्धि उत्पन्न हुई । वर्षा के जल से ही नदी, नालों का प्रादुर्भाव होने लगा और उनका भूमि से सम्पर्क होने से बिना जोते-बोये चौदह प्रकार की वनस्पतियों तथा फूलों से युक्त

भाट्टियों आदि उत्पन्न हुई। तब लोग इन्हीं वनस्पतियों को खाकर निर्याह करने लगे। जब वे राग और लोभ के कारण इन वनस्पतियों को भी मनमाने छद्म से ग्रहण करने लग गये तब वे भी नष्ट हो गईं। इसके पश्चात् हवा चला कर तथा पृथ्वी में से जल निकाल कर खाद्य-पदार्थ उत्पन्न कर सबने का ज्ञान लोगों को हुआ, और उसी से वे जीवन धारण करने लगे। इस तरह लोगों के पास जब अधिक सामग्री संग्रह होने लगी तो अनेक लोग बलपूर्वक दूसरों के पदार्थों, स्त्री, पुत्र आदि का अपहरण करने लग गये। जब विष्णु ने यह दृष्टा देखी तो लोक-रक्षार्थ क्षत्रिय वर्ण का प्रादुर्भाव किया। ग्रहाजी ने ही उस समय समाज की व्यवस्था के लिए वर्णों और आश्रमों की प्रतिष्ठा की। त्रेता में ही यज्ञों का क्रम चला। उस समय पशु-यज्ञ नहीं किया जाता था, तब ऋषिगण अहिंसक यज्ञ की ही प्रशंसा किया करते थे। द्वापर में लोगों में विचार भिन्नता बहुत बढ़ गई, पर भाषा की चूटियों से उनको भाव प्रकाशन में बड़ी कठिनाई होती थी। द्वापर में ही लोगों में तरह-तरह के रोग, नौकरी और व्यापार सम्बन्धी झगड़े, अभियोग आदि की वृद्धि होने लगी, वर्ण-संकरता उत्पन्न हुई और जो वेद वेदांग में एक था उसको चार भागों में बाँटा गया।”

पाठक देख सकते हैं कि ‘लिंग पुराण’ में मानव-जाति और समाज के विकास का कौसा वृद्धि-संगत वर्णन किया गया है, जो लोग प्राचीन ग्रन्थकारों पर सदा ‘गप-शप’ लिखने का ही आरोप लगाया करते हैं, उनमें स्वयं ही सौज करने की प्रवृत्ति और निष्पक्ष भाव से वास्तविकता तथा कवि कल्पना को पृथक् कर सबने की योग्यता का अभाव होता है। जब वर्तमान काल का कोई कवि रामचन्द्रजी के व्याह और बरात का वर्णन करेगा तो वह उसमें दैसी ही सजावट और शोभा का वर्णन करेगा जैसी आजकल बड़े राजाओं की बरात में दिखाई पड़ती है। पर ‘लिंग पुराण’ के वर्णन से प्रकट होता है कि उस समय लोग सेनी करने ही लगे थे और वस्त्रों तथा वर्तनों आदि का अस्तित्व

भी न था । पर कवियों ने उनका वर्णन वर्तमान काल के मनुष्य ही किया है जिससे पाठक स्वाभाविक रूप से उनको पढ़ सकें और उनमें अनुसरणीय शिक्षाएं ग्रहण कर सकें । पर विद्वानों की जानकारी के लिये वे बीच-बीच में यह संकेत भी कर देते हैं कि ये कथाएँ सत्य और कल्पना का मिश्रण हैं । वर्तमान समय में ऐसी कथाओं के सर्वश्रेष्ठ रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने जगत् प्रसिद्ध “रामचरित मानस” के आरम्भ में ही स्पष्ट लिख दिया है—

ताना भाँति राम अवतारा ।

रामायण सत कोटि अपारा ॥

कनक भेदि हरि चरित सुहाए ।

भाँति अनेक मुनीसिंह गाए ॥

प्रति अवतार तथा प्रभु केरी ।

सुन मुनि वरनी कविन्ह धनेरो ॥

प्रत्येक युग और कल्प में जब जैसी परिस्थिति होती है भगवान् का उसी रूप में अविर्भाव होना है । मनीषी लोग इनका वर्णन संक्षेप में बतला देते हैं और कविगण उसमें कल्पना और अलंकृत भाषा का संयोग करके लोकरजिणी कथा प्रस्तुत कर देते हैं । यदि वे ऐसा न करें तो सामान्य पाठक उसे न तो शक्ति पूर्वक पढ़ सकेंगे और न उससे कोई उपयोगी शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे । पर लिङ्ग पुराणान्तर्गत ‘विभिन्न युगों में लोक धर्म’ विषयक वर्णन से हम जान सकते हैं कि सभ्यता, संस्कृति, समाज, सङ्गठन और रीति-रिवाजों का उद्भव और प्रचलन काल की परिस्थितियों के अनुसार क्रम से ही हुआ है, उसमें चमत्कार जैसी कोई बात नहीं हुई ।

सूर्य का स्वरूप और महत्त्व—

प्राचीन काल में जब दूरबीन के सहज कोई यन्त्र मनुष्यों के पास न था और यात्रा सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण पृथ्वी के आकार

और विस्तार की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकी थी, उस समय भूगोल और खगोल के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाता था वह अनुमान के आधार पर ही होता है, जिसमें बहुत सी भूलें रह जाती थीं। योरोप के विद्वान् पाँच, सात सौ वर्ष पहिले मित्र देश (ईजिप्ट) के पास समुद्र का अन्न मानते थे और जिब्राल्टर (स्पेन) को 'पृथ्वी का अन्तिम छोर' कहते थे। जब कोलम्बस ने अटलांटिक महासागर को पार करके अन्ध महाद्वीप की खोज का प्रस्ताव किया तो स्पेन के विश्व-विद्यालय के प्राचार्यों तथा वहाँ के राजा ने कहा कि 'अगर पृथ्वी गोला है और इसके दून्नी तरफ भी भूमि है तो क्या वहाँ अनुप्य उलटे लटक कर चलते होंगे ? क्या वहाँ पेड़ों की जड़ ऊपर की तरफ और डालियाँ तथा पत्तें नीचे की तरफ होंगे ?' पृथ्वी और ग्रहों की गति के सम्बन्ध में भी वहाँ ऐसे ही भ्रम फैले हुए थे। जब खगोल शास्त्री गैलीलियो ने कहा कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और सब ग्रह सूर्य के आकर्षण से आकाश में गति दीन रहते हैं, तो उसे 'नास्तिक' कह कर जेल-खाने में बन्द कर दिया, क्योंकि ये बातें उनकी धर्म पुस्तकों में लिखी हुई बातों से भिन्न प्रकार की थीं। हमारे यहाँ भी इन सब बातों में अनुमान से ही काम लिया गया था, इसलिए बहुत से विषयों में भूल भी हो गई। उदाहरणार्थ पुराणों में कही यह भी लिखा है कि चन्द्रमा सूर्य से ऊपर है, पर 'लिङ्ग पुराण' में स्पष्ट कहा गया है कि चन्द्रमा की उत्पत्ति सूर्य से ही है।

चन्द्र ग्रहक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेया सूर्य संभवाः ।

अर्थात् "चन्द्रमा, नक्षत्र और ग्रह सब सूर्य से ही उत्पन्न हुए हैं।"

इसके पश्चात् सूर्य के महान् को दर्शाने हुये कहा है — 'यह सूर्य ही तीनों लोकों का स्वामी, मूलाधार और परम देवता है। इसी से सब कुछ उत्पन्न होता है और इसी में विलीन हो जाना है। लोकों के भाव

और अभाव (अस्तित्व और नष्ट होना) पहले सूर्य से ही निबले थे। सूर्य से ही क्षण, मूहूर्त, दिवस, निशा, पक्ष, मास, सम्वत्सर, ऋतु और युग उत्पन्न होते हैं और इसी में लय हुआ करते हैं। इस प्रकार सूर्य को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार से काल की सख्या ही नहीं होती है। काल के बिना कोई नियम भी नहीं हो सकता। ऋतुओं का विभाग, पुष्प, फल, मूल इसके बिना कैसे होंगे ? सूर्य देव के बिना अनाज वा उत्पत्ति, घास और जड़ी-बूटियाँ भी कैसे होंगी ? इसके बिना पृथ्वी पर और दिव्य लोक में प्राणियों के समस्त व्यवहारों का निरोध हो जायगा। जगत में रुद्र रूप वाले, प्रतापी भगवान् भास्कर के बिना किसी की निष्पत्ति होना सम्भव नहीं।”

“यह घर और अवर से समुक्त त्रैलोक्य सूर्य से ही तपता है। यह ही तेजो का समूह है, जो सावंलोकिक है। यही इस जगत को ऊपर, नीचे और बगल से तपता है। जिस प्रकार प्रभा करने वाला दीपक घर के मध्य में रखा हुआ चारों तरफ अन्धकार को नाश करता है, उसी प्रकार यह सहस्र किरणों वाला, ग्रहों का राजा और जगत का पति सूर्य भी अपनी किरणों द्वारा सम्पूर्ण जगत को सभी ओर से प्रालोकित किया करता है।”

प्राधुनिक वैज्ञानिकों ने भी सूर्य को ही जगत का कारण बतलाया है। उसके बिना इस पृथ्वी पर किसी भी प्राणी का अस्तित्व रहना सम्भव नहीं। इतना ही नहीं वैज्ञानिक यह भी बतलाते हैं कि पृथ्वी पर जितनी भली-बुरी घटनाएँ सदैव होती रहती हैं, उनमें भी सूर्य का प्रभाव बहुत कुछ काम करता है। युद्ध, शान्ति, जातीय विग्रह, उद्योगों की वृद्धि, कृषि-जन्य पदार्थों की उत्तमता आदि सबका आधार सूर्य से विकरण होने वाली विभिन्न किरणों पर सिद्ध किया गया है। ‘ऐतरेय पुराण’ में भी प्रत्येक मास के सूर्य वा पृथक नाम दिया गया है, और उसकी किरणों के विशेष गुण और प्रभाव बतलाये गये हैं।

साम्प्रदायिक सद्भावना—

“लिंग पुराण” में कई स्थानों पर नग्न-साधुओं की चर्चा और उनकी प्रशंसा पाई जाती है। एक अध्याय में जल को छान कर पीने का प्रत्यन्त महत्त्व वर्णन किया गया है। “शिव और ऋषियों के सम्वाद” में कहा गया है—

न निन्देद्यतिन तस्माद्दिग्वास समनुत्तमम् ।
वालोन्मतविचेष्ट तु मत्पर ब्रह्मवादिनम् ॥

अर्थात् ‘इस लिये जो साधु दिशाओं के ही बल पहिने वाले (दिगम्बर अथवा नग्न) हैं, सर्वोत्तम हैं, उनकी निन्दा न करनी चाहिए। क्योंकि वे बालक और उन्मत्त की भाँति चेष्टा रहित होकर मुझ में परायण और ब्रह्मवादी होते हैं।’

फिर आगे चलकर और भी कहा है—

नग्ना एव हि जायते देवता मुनयस्तथा ।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जयत्यवाससः ॥
इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुक्कलेनापि सचृतः ।
तैरेव सचृतं गुप्तो न वस्त्र कारणम् स्मृतम् ॥

अर्थात्—‘देवता, मुनिगण तथा मनुष्य आरम्भ में सभी नग्न ही उत्पन्न हुआ करते हैं। पर वास्तव में नग्न वह है, जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, चाहे वह बल धारण किये हुये ही क्यों न हो। इन्द्रियों को जीत लेने वाला ही ‘गुप्त’ माना जायगा। इसमें बल पहिने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता।’

अन्य पुराणों में भी नग्न साधुओं का वर्णन किया गया है, यद्यपि उसमें उनकी निन्दा का भाव ही पाया है। ‘विष्णु पुराण’ (३—१८) में बताया गया है कि जब देवगण दैत्यों से हार गये तो

विष्णु भगवान ने अपनी देह से 'माया-मोह' को उत्पन्न करके उसे दैत्यो को धर्म-भ्रष्ट करने के लिए भेजा । उसका वर्णन करते हुए कहा गया है—

ततो दिगम्बरो मुण्डो वह्निपिच्छधरो द्विज ।
 मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥
 अहंतैतं महाधर्मं मायामोहेनते यतः ।
 प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममर्हतास्तेन तेऽभवन् ॥

अर्थात्—“तब उस दिगम्बर, मुण्डित शिर वाले, भूमि को स्वच्छ करने की 'पिच्छ' लिए हुये 'माया मोह' ने उन असुरों से अत्यन्त भीठे वचनों में कहा—यह अर्हन्त का धर्म 'महाधर्म' है, इसी का आवरण करो । तब वे दैत्य उस धर्म के अनुयायी बन 'अर्हन्त' कहे जाने लगे ।”

अन्य पुराणों में भी 'श्वेत' (जैन) मुनियों के विषय में इसी से मिलती-जुलती कथाएँ लिखी हैं और प्रकारान्तर से उनकी निन्दा की है । पर 'लिंग पुराण' में किसी विशेष सम्प्रदाय का नाम न लेकर नग्न साधुओं और जल को छान कर पीने का जिस ढङ्ग से समर्थन किया गया है, उससे उसका सद्भाव ही प्रकट होता है :—

चक्षुपूतं चरेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
 सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनः पूतं समाचरेत् ॥

अर्थात्—“मार्ग में आँखों से भली भाँति देख कर ही चलना चाहिये, जल को सदा वस्त्र से छान कर पीना चाहिए, सचाई के साथ पवित्र वचन बोलने चाहिये, शुद्ध मन से विचार कर आचरण करना चाहिये ।”

पह तो नीति का एक उत्तम उपदेश हो गया । पर इसके भागे दिये गये श्लोक से प्रकट होता है कि पुराणकार का विशेष जोर छने हुए जल का व्यवहार करने पर ही है—

मत्स्य गृहस्य यत्पाप पण्मासऽभ्यन्तर भवेत् ।

एकाह तत्सम ज्ञेयमपूत यज्जलभवेत् ॥

अर्थात् — “मत्स्यो के पकड़ने वाले को जितना पाप छ मास में होता है, उतना पाप एक दिन वस्त्र से पवित्र नहीं किये हुए जल के पीने से होता है ।”

जल को छान कर व्यवहार में लाने पर सबसे अधिक बल जैन-मत में ही दिया गया है और नग्न रह कर आत्मध्यान में लीन रहने वाले साधुओं का महत्त्व भी उन्हीं में सर्वाधिक है । इसलिए, भालोचको का यह अनुमान न्यूनाधिक परिमाण में ठीक हो सकता है कि ‘निग पुराण’ में ऐसे विचरों का समावेश शैशो से सद्भाव रखने वाले किन्हीं जैन-साधु के सम्पर्क से हुआ हो । यदि यह कारण न भी हो तो भी अन्य सम्प्रदाय के प्रति आदर की भावना रखना पुराणकार की सदाशयता और उच्चता को ही प्रमाणित करता है । सच्चे धार्मिक व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय या मत के क्यों न हों वे दूसरे धर्म या सम्प्रदाय पर आक्षेप करना कभी पसन्द नहीं करते । दूसरे धर्मों के प्रति आदर और सहिष्णुता की भावना रखना श्रेष्ठता और उच्चता का लक्षण है । भगवान् विष्णु और वैष्णवों के प्रति भी ‘निग पुराण’ में सदाशयता का काफी परिचय दिया गया है और कहीं भी उनके प्रति किसी प्रकार का भेदभाव सूचक शब्द प्रयोग में नहीं लाया गया है, जैसा कि अन्य पुराणों में कहीं कहीं देखने में आता है ।

ज्ञान की प्रधानता—

सासारिक कष्टों की निवृत्ति का मुख्य मार्ग “निग पुराण” में उपायों को बतनाया गया है । यहाँ अधिकांश प्राणी विविध प्रकार की

कामनाओं के पीछे दौड़ते हुये कष्ट पाया करते हैं। यह एक ऐसा कारण भगवान ने उत्पन्न कर दिया है कि जिसके फन्दे से मनुष्य कभी 'दुःख' नहीं पाते। जैसा 'गीता' में कहा गया है कि विषयो की कामना करने से आसक्ति पैदा होती है, उसकी पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है, फिर क्रोध से अविवेक और अन्त में नाश होता है। इसी प्रकार 'लिंग पुराण' के कर्ता ने कामनाओं के कारण ही मानव-जीवन को दुःखी बतलाया है। उसके फल स्वरूप "क्रोध, हर्ष, लोभ, मोह, दम्भ, धर्म और अधर्म उत्पन्न हुआ करते हैं। इन सबका समग्र इस मानव-मन और देह में हुआ करता है और यही सब लोगों के बनेशों का कारण होता है।"

बुद्धिमान व्यक्ति को इस 'अविद्या' को त्याग कर 'विद्या' का अवलम्बन करना चाहिये। योगी पुरुष ऐसा ही करते हैं और इस प्रकार क्रोधादि तथा धर्माधर्म से दुःखकारा पा जाते हैं। ऐसा पुरुष तीनों दुःखों से मुक्त होकर परम गति का अधिकारी बना करता है। इस प्रकार के ज्ञान के बिना ध्याता का ध्यान नहीं हो सकता। "यही लिङ्ग पुराण' के कर्ता ने स्पष्ट 'गीता' के ही कथन को उद्धृत कर दिया है। 'गीता' में कहा है—

यथैधासि समिद्धोऽग्निं भस्मासात्कुरुतेऽर्जुन ।

ज्ञानाग्निं सर्वं कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । (गीता ४-३७, ३८)

अर्थात् जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि सब प्रकार के कर्मों को भस्म कर डालती है। इस ससार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला और कुछ भी नहीं है।" इसी बात को शब्दों के किञ्चित् परिवर्तन के साथ 'लिंग पुराण' के "ध्यानयज्ञ माहात्म्य वर्णन" अध्याय में भी कहा गया है—

ज्ञानाग्निर्दहते क्षिप्रं शुष्केन्धनामिवानलः ।

ज्ञानात्परतरं नास्ति सर्वपापं दिनाशनम् ॥

अर्थात्—“सब पापों को ज्ञान रूपी अग्नि सूखे ईंधन की तरह धीघ्र ही जला डालती है। ज्ञान से बढ़कर सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाला और कुछ भी नहीं है।” इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए भागे कहा गया है—

“ज्ञान के अभ्यास से मनुष्यों की बुद्धि निर्मल हो जाया करती है। इसलिए सदा ज्ञान में निष्ठा रखते हुए और तत्परायण होकर उसका अभ्यास करना चाहिए। जो ‘योगी’ ज्ञान से तृप्त हो जाता है और भासक्ति का त्याग कर देता है, उसको फिर कुछ भी ‘कर्तव्य’ नहीं रह जाता। यदि कुछ कर्तव्य शेष रह जाता है तो समझ लो कि वह तत्त्व वेत्ता नहीं है। जिसे ऐसा ज्ञान हो जाता है वही ब्रह्मवेत्ता होकर जीवन्मुक्त बन जाता है। जो अभी वर्णाश्रम धर्म में सलग्न है उसे सासारिक बन्धन तथा क्रोध को त्यागकर इस ज्ञान को प्राप्त करना चाहिये, तभी वह मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। मोक्ष का हेतु ज्ञान ही होता है और ऐसा व्यक्ति अपनी आत्मा में ही स्थित रहता है।”

इस प्रकार का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है इसके लिये ‘लिङ्ग पुराण’ में योग-भानों का उपदेश दिया गया है कि “जैसा ज्ञान होता है वैसा ही ध्यान भी होना है, इसलिए ध्यान का अभ्यास करें। ध्यान ‘निर्विषय’ होता है, पर आरम्भ में ‘सर्वविषय’ ध्यान ही करना पड़ता है। जब ध्यान परिपक्व हो जाता है, तब ध्यान करने वाले को और किसी का ध्यान ही नहीं रहना। ध्यान की स्थिति में योगी न कुछ देखता है, न सूँघता है और न कुछ सुनता ही है। वह तो स्वयं अपनी आत्मा में ही सीन रहता है।” गीता’ में भी ध्यान-योग का ऐसा ही माहात्म्य बताया गया है—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तान्मा निराशीरपरिग्रहः ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
तस्मै ततो नियम्यैतादात्म्येन यश नयेत् ॥

प्रशान्तमनसं ह्येन योगिन सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजस ब्रह्मभूतमवलम्बम् ॥

(गीता ६—१०, २६, २७)

अर्थात्—“योगी एकान्त में अकेला रह कर चित्त और आत्मा का संयम करे, किसी भी वासना को न रखकर, परिग्रह छोड़ कर निरन्तर अभ्यास में लगा रहे । जब मन चञ्चल होकर जहाँ-जहाँ जावे, वहाँ-वहाँ से उसे रोक कर आत्म-ध्यान में सथावे । इस प्रकार ध्यान-चित्त, रज (सासारिकता) से रहित, निष्पाप और ब्रह्मभूत योगी उत्तम सुख को प्राप्त होता है ।”

इस प्रकार ‘लिंग पुराण’ में ‘गीता’ के ही धार्म्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन पाया जाता है जिसे भारत ही नहीं विदेशों के भी हजारों विद्वानों ने आत्मज्ञान का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बनाया है । यदि कोई अन्तर है तो यही कि गीता में अन्तिम निष्कर्ष यह निकाला गया है कि कौंसा भी ब्रह्मज्ञानी और जीव-मुक्त हो जाने पर भी मनुष्य को सांसारिक कर्तव्यों का त्याग नहीं करना चाहिये । वरन् ‘बौद्ध-शिक्षण’ की दृष्टि से उनको निष्काम भाव से करते रहना ही हितकारी है । ‘लिंग पुराण’ में इसके बजाय ‘ब्रह्मज्ञानी’ के लिये समार त्यागी होकर सब प्रकार के कृत्यों से पृथक् हो जाना ही मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग बताया गया है । पर इसमें कोई नवीनता नहीं है । हिन्दू धर्म-शास्त्रों में सर्वत्र ‘प्रवृत्ति’ और ‘निवृत्ति’ दोनों मार्गों का प्रतिपादन पाया जाता है, और ये दोनों ही प्रादेशिक हैं । ‘प्रवृत्ति’ मार्ग को स्वीकार किये बिना व्यक्ति और समाज का अस्तित्व स्थिर नहीं रह सकता, और ‘निवृत्ति’ मार्ग के बिना ज्ञान साधारण को त्याग और परमार्थ का कोई उपयुक्त प्रादेश नहीं मिल सकता । ‘गीताकार’ ने ‘प्रवृत्ति’ और ‘निवृत्ति’ का समन्वय करके ‘निष्काम कर्म’ का एतन्मया और उच्च मार्ग अद्वय निकाला है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि जोड़ से विशेष व्यक्तियों को छोड़ कर उतारा जाना करता और भी बठित है । ‘प्रवृत्ति’ और ‘निवृत्ति’ वालों

की सचाई की पहिचान तो फिर भी सम्भव है, पर 'निष्काम काम' की वास्तविकता की जान सकना 'योगियो' के लिए भी गहन' (कठिन) है।

पाँच प्रकार के योग-मार्ग—

श्रम्यक-साधना, योग मार्ग द्वारा कैसे की जाय ? यह प्रश्न उठने पर उसके पाँच तरह के विधान बनलाये गये हैं—(१) मन्त्र योग, (२) स्पर्श-योग, (३) भाव-योग, (४) अभ्यास-योग, (५) महायोग।

“जिसमे ध्यान से युक्त मन्त्र-जप किया जाता है वह 'मन्त्रयोग' है। जिसमे रेखा आदि क्रियाओं द्वारा विशेष रूप से सुषुम्ना नाडी की शुद्धि की जाती है, योगाम्बास द्वारा वायु को जप किया जाता है तथा 'वज्री' आदि साधनों से धूल को स्थिर रखने की क्रिया की जाती है, जो धारणा आदि अङ्गों से युक्त है और जो कुम्भक में निमग्नता करने वाला है वह 'स्पर्श योग' है। जब साधक योगिक क्रियाओं के साधन को त्याग कर केवल भगवान् शिव का आश्रय ग्रहण कर लेता है और मन में उठने वाले समस्त बाह्य और अन्तरङ्ग भावों का संहार करके चित्त को पूर्ण रूप से शुद्ध कर लेता है, वह 'भाव योग' कहा जाता है। 'अभ्यास-योग' में हम सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् को सर्वथा शून्य, निराभास, भेदाभेद से रहित चिन्तन किया जाता है। इसके द्वारा सत्ता के विभिन्न पदार्थ दृष्टि से विनीत हो जाते हैं और साधक निर्वाण का पवित्र बन जाता है।

ये योग-मार्ग प्राचीनकाल से प्रचलित हैं और इनके द्वारा साधक अपनी मानसिक तथा दारौरिक शक्तियों की इच्छानुसार वृद्धि कर सकत हैं। मन्त्र-योग में विशेष रूप से ध्याना द्वारा चित्त वृत्तियों को सब तरह से शीघ्र कर एक ही केन्द्र पर लगाया होता है। जिस प्रकार घातशील शीशे द्वारा सूर्य की किरणों को एक स्थान पर केन्द्रित कर देने से काँच, काष्ठ आदि में घाग मग जाती है उसी प्रकार चित्त वृत्तियों के शीघ्र भी लक्ष्य पर लक्ष्य कर देने से शीघ्र ही उनकी पूर्ति हो जाती है।

‘स्पर्श-योग’ का आशय अष्टाङ्ग योग से ही है जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन इसी पुराण में अन्यत्र किया गया है। इसमें इतनी विशेषता है कि प्रत्येक साधन में भगवान् शिव का ध्यान भी करते रहा जाय। इससे योग सिद्धि अपेक्षाकृत शीघ्र होगी, क्योंकि शिव जी योग विद्या के सर्व प्रथम प्रवर्तक और आदि गुरु माने जाते हैं। ध्यासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योग के सभी अङ्ग मनुष्य के शरीर और मन पर अद्भुत प्रभाव डालने वाले हैं। इनके द्वारा साधक अपने समस्त अङ्गों और इन्द्रियों को जितना चाहे सक्रिय बना सकता है। इस प्रकार जो शक्ति प्राप्त होती है उसका उपयोग अगर सासारिक लाभों के लिए किया जाय तो अपना और दूसरों का भी बहुत कुछ उपकार किया जा सकता है और यदि उसे केवल परमार्थ मार्ग पर प्रयुक्त किया जाय तो उससे मुक्ति का प्राप्त करना सर्वथा सम्भव होता है।

‘भाव-योग’ का उद्देश्य योग सम्बन्धी शारीरिक अभ्यासों को छोड़ कर केवल मन के द्वारा भगवान् शिव में अपनी वित्त वृत्तियों को वेन्द्रित करना और सासारिक विषयों के विचारों को दिन प्रतिदिन कम करते जाना है। जिस प्रकार ‘हठयोग’ को क्रिया-प्रधान और राजयोग को विचार-प्रधान कहा जा सकता है, वैसे ही अन्तर स्पर्श-योग और भाव-योग में भी समझ सकते हैं। भाव-योग में ध्यासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदि का अभ्यास न करके केवल साकार शिव भगवान् का आश्रय ग्रहण करने से वित्त शुद्ध हो जाता है और ब्राह्मण-त्मिक दृष्टि से साधक बड़ी उच्च पदवी को प्राप्त कर लेता है। इसकी तुलना भक्तियोग से भी की जा सकती है जिसमें किसी भी क्रिया की तरफ साधक का ध्यान नहीं जाता, बल्कि अपने इष्टदेव की भावना करते-करते ही वह उससे तादात्म्य प्राप्त करके उसी के समान ‘शक्ति-पुङ्गव’ बन जाता है।

‘प्रभाव-योग’ को हम ज्ञान-योग भी कह सकते हैं। यह परम-हृत् को और भवभूतों का मार्ग है। संसार को सब प्रकार से शून्य समझना

और उसके सब पदार्थों को मिथ्या मानना तभी मायंक हो सकता है जब मनुष्य धर्म-शास्त्रों में परमहंसों तथा अवधूतों के लिये बताये गये, सर्वथा त्यागमय मार्ग पर चले और अपने शरीर को मृत-शव की तरह मानकर उसके रहने अथवा नष्ट होने की जरा भी चिन्ता न करे। क्योंकि यदि मुख से तो संसार को 'प्रपञ्च, माया, मिथ्या' कहा जाय पर अपने निर्वाह अथवा शारीरिक सुख के लिए उद्योग किया जाय, भिक्षा माँगी जाय तो वह कोरा ढोंग रह जाता है। इसलिए अभाव-योग केवल उनके ही लिए उपयुक्त है जो संसार के मिथ्या होने के सिद्धान्त को हार्दिक रूप से मान चुके हों और उसके अनुसार आचरण करने की सामर्थ्य भी रखते हों।

'महा-योग' इन सभी योग मार्गों का समन्वित कल्याणकारी रूप है। इसमें क्रिया, ज्ञान, चित्तशुद्धि, भक्ति आदि सभी आध्यात्मिक तत्त्व उचित अनुपात में सम्मिलित रहते हैं, क्योंकि केवल एक मार्ग को ग्रहण करके विकास के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाना हर एक के लिये सम्भव नहीं है। वह लाखों में किसी एक साधक के लिये ही यथार्थ माना जा सकता है, जो अपने को उसमें पूरी तरह तल्लीन कर सके। अन्यथा जो व्यक्ति एक-एक योग-भङ्ग की सीढ़ी पर कदम रखता हुआ अग्रसर होगा, वह सामान्य शक्ति और बुद्धिवाला होने पर भी सर्वोच्च स्थान पर पहुँच जायगा। यह मार्ग वैसा ही है जैसे कोई भी सामान्य बुद्धि का बालक भी यदि प्रायमरी स्कूल से आरम्भ करके नियमित रूप से प्रत्येक दर्जे की पढ़ाई पूरी करता जाय तो एक दिन एम.ए. की अन्तिम डिग्री भी बिना विरोध कठिनाई के प्राप्त कर लेता है, जबकि उससे कहीं अधिक तीव्र बुद्धि वाले, पर अनियमित छात्र बीच में ही रुक जाते हैं। इस प्रकार महायोग के साधक को अपना लक्ष्य भगवान् शिव का सायुज्य प्राप्त करना रग भर आध्यात्मिक प्रगति की विभिन्न यक्षाओं को प्रत्याग द्वारा उत्तीर्ण करना चाहिए। ऐसा करने से वे अन्तिम लक्ष्य को अवश्य प्राप्त कर सकेंगे।

'योग' का अर्थ आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन बताया गया है। जीवात्मा यद्यपि परमात्मा का ही अंश है, पर वह अल्प शक्ति वाला है, जब कि परमात्मा सर्वशक्तिमान है। यदि योग-मार्ग के अभ्यासों द्वारा जीवात्मा की शक्ति को बढ़ाया जाय और उसे अपने स्वरूप का ज्ञान कराया जाय, तो वह क्रमशः अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करता हुआ ईश्वरीय-स्तर के निकट पहुँच जाता है। ऐसे ही श्रेष्ठ साधकों को 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है। फिर वे संसार में रहते हुए, उसके सब कार्यों को करते हुए भी वास्तव में उसमें लीन नहीं होते। इसका कारण उन पर सासारिक सुख-दुःख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, जीवन-मरण का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता और अपने अन्तरङ्ग में वे सदा पूर्ण सन्तुष्ट, आनन्दित और अभय रहते हैं। यही महायोग का सार है।

×

×

×

पौराणिक दृष्टि से 'लिंग पुराण' कई पुराणों से अधिक शिक्षा-प्रद और सदुपदेश पूर्ण है, चाहे क्या भाग के अधिक न होने से साधारण जनता का उनका परिचय अपेक्षाकृत कम हो। उसका क्या-भाग अधि-पाश में शिव पुराण और वायु पुराण से मिलता-जुलता है, इसलिए हमने इस सुनभ-संस्करण में उसकी कम करके यथा-शक्ति दैव-गिद्धांतों को संक्षिप्त करने की चेष्टा की है। इससे पाठकों की भगवान् शिव के निराकार और साकार दोनों रूपों का परिचय प्राप्त होगा और वे उनकी उपासना तथा भक्ति में अग्रसर होकर आत्म-रक्षा के भागी होंगे।

विषय—सूची

भूमिका	३-३०
विषय-सूची	३१-३२
१—लिङ्गोद्भव प्रतिज्ञा	३३
२—ब्रह्माण्ड रूप लिंग का सृष्टि-स्थिति-लय कथन	३५
३—कालमान और ब्रह्माण्ड निरूपण	४२
४—ब्रह्मा द्वारा ऋषि, देव आदि की सृष्टि	५२
५—वह्नि, पितृ, रुद्र सृष्टि	६०
६—अष्टाङ्ग-योग द्वारा शिवाराधना	६६
७—योग-मार्ग के विघ्न	८८
८—शिव भक्ति-भाव कथन	९९
९—तत्पुरुष गायत्री उद्भव	१०९
१०—अधोरोत्पत्ति वर्णन	११२
११—ईशानोद्भव और पञ्च ब्रह्मात्मक स्तोत्र	११५
१२—श्रीविष्णु, के नाभि-कमल से ब्रह्मोत्पत्ति	१२२
१३—रुद्रोत्पत्ति वर्णन	१३८
१४—गायत्री-महिमा	१४३
१५—योगावतार वर्णन	१५१
१६—शिवोक्त स्नान विधि	१५६
१७—सध्या, नित्य कर्म, पञ्च यज्ञ विधान	१६२
१८—लिङ्गार्चन विधि	१६८
१९—शिवार्चन तत्त्व संख्या	१७८
२०—सुदर्शन व्याख्यान, क्रम-संन्यास लक्षण	१८४
२१—शिवाराधन से श्वेत मुनि को मुक्ति विजय	१९८
२२—मुनियों द्वारा शिवाराधन	२०४
२३—शिव-ऋषिगण सम्वाद	२१५
२४—भस्म एवं स्नान विधि	२१९
२५—दधीच द्वारा धूप का पराभव	२२५

२६—दधीच और विष्णु का संग्राम	२३०
२७—ब्रह्माजी को शिव का वरदान	२४४
२८—विष्णु द्वारा शिव महात्म्य कथन	२५०
२९—चारो युगो मे लोक-धर्म	२५३
३०—चारो युगो का परिमाण वर्णन	२६५
३१—नन्दिकेश्वर की उत्पत्ति	२८२
३२—नन्दिकेश्वर अभिषेक वर्णन	२८९
३३—शिव वा विराट रूप कथन	२९८
३४—सप्तद्वीप निरूपण	३०२
३५—भारतवर्ष वर्णन	३०९
३६—ज्योतिष चक्र और सूर्य गति कथन	३१३
३७—द्वादश मासो मे सूर्य गति वर्णन	३२५
३८—सोम के रथ का निरूपण	३३८
३९—ज्योतिष-चक्र का ग्रहचार कथन	३४१
४०—सूर्याभिषेक कथन	३४७
४१—सूर्यरश्मि स्वरूप कथन	३५०
४२—गृह प्रकृति वर्णन	३५८
४३—ग्रह सरया वर्णन	३६२
४४—ध्रुव-आरयान	३७३
४५—दक्ष द्वारा देवादि सृष्टि वर्णन	३८०
४६—रवि तथा ययाति वंश वर्णन	३९५
४७—ययाति चरित्र वर्णन	४०८
४८—ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश वर्णन	४१३
४९—यदु वंश मे कृष्ण भगवान् का आविर्भान और चरित्र	४२१
५०—भगवान् शिव से समस्त सृष्टि का विस्तार	४३६
५१—देवताओ द्वारा विविध प्रकार लिङ्ग का वर्णन	४६३
५२—शिव वा अद्वैत स्वरूप और ध्यान द्वारा प्राप्ति	४६७



लिंग पुराण



॥ लिङ्गोद्भव प्रतिज्ञा ॥

नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने ।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यंतकारिणे ॥१॥
नारदोऽभ्यर्च्य शैलेशो शकरं संगमेश्वरे ।
हिरण्यगर्भे स्वर्त्तनि ह्यविमुक्ते महात्मने ॥२॥
रौद्रे गोप्रक्षके चैव श्रेष्ठे पाशुपते तथा ।
विष्णेश्वरे च केदारे तथा गोमायुकेश्वरे ॥३॥
हिरण्यगर्भे चंद्रेणे ईशान्ये च त्रिविष्टपे ।
शुक्रेश्वरे यथान्यायं नैमिषं प्रययौ मुनिः ॥४॥
नैमिषेयास्तदा दृष्ट्वा नारदं तदृष्टमानसाः ।
समभ्यर्च्योत्तमं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ॥५॥
सोऽपि तदृष्टो मुनिवरैर्दत्ता भेजे तदासनम् ।
संपूज्यमानो मुनिभिः सुखासीनो वरासने ॥६॥
चक्रे कथां विचित्रार्थी लिंगमाहात्म्यमाश्रिताम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु सूतः पौराणिकः स्वयम् ॥७॥
जगाम नैमिषं धीमान् प्रणमार्थं तपस्विनाम् ।
तस्मै सात च पूजा च यथावच्चक्रिरे तदा ॥८॥

इस विश्व का गृजन, स्थिति घोर सहार के करने वाले, प्रधान पुरुष एव ईश भगवान् रुद्र, हरि और परमात्मा ब्रह्मा के लिए नमस्कार है ॥१॥ नारद मुनि ने शैलेश में, सङ्गमेश्वर में, स्वर्त्तनि हिरण्य गर्भ में,

अविमुक्त महालय मे, रौद्र मे, गौ प्रेक्षक मे, श्रेष्ठ पाशुपत मे, विष्णुेश्वर मे, केदार मे, गोमापुकेश्वर मे, चन्द्रेश हिरण्य गर्भ मे, ईशान्य मे, त्रिविष्टप में और शुक्रेश्वर मे इन समस्त स्थलों मे पथाविधि भगवान् शङ्कर की अभ्यर्चना की थी और फिर इसके अनन्तर नैमिष क्षेत्र को चले गये थे । नार का अर्थ अज्ञान है । उसके खण्डन करने वाले नारद शब्द का अर्थ है इससे जानियो को भी लिङ्ग के अर्चन की आवश्यकता है । ॥२॥३॥४॥ नैमिष क्षेत्र मे निवास करने वापी मे जिस समय नारद मुनि का दर्शन किया था । उस समय उनके मन को बहुत हर्ष हुआ था । उन्होने नारद की भली-भाँति अर्चना की और फिर यथोचित आसन दिया था ॥५॥ नारद मुनि ने परम प्रसन्न होकर मुनियो के द्वारा दिए हुए आसन पर अपनी सस्यति की थी । मुनिगण के द्वारा सम्पूज्यमान होकर, उस आसन पर नारदण सुखपूर्वक विराजमान हो गये थे ॥६॥ लिङ्गाचर्चन के माहात्म्य को अथ वाली विचित्र अर्थ से युक्त कथा कर रहे थे कि इसी बीच मे उस समय पौराणिक और धीमान् सूत स्वयं तपस्वियो को प्रणाम करने के लिए चले गये थे । उस समय सबने उनका सुस्वागत और अर्चन यथावत् किया था ॥७॥८॥

भवभक्तो भवांदर्चव वयं वै नारदस्तथा ।
 अस्याग्रतो मुनेः पुण्यं पुराणं वक्तुमर्हसि ॥९॥
 सफलं साधितं सर्वं भवता विदितं भवेत् ।
 एवमुक्तः सत्पृष्टात्मा सूतः पौराणिकोत्तमः ॥१०॥
 अभिवाद्याग्रतो धीमाघ्नारदं ब्रह्मणः सुतम् ।
 नैमिषेयाश्च पुण्यात्मा पुराणं व्याजहार सः ॥११॥
 नमस्कृत्य महादेव ब्रह्माणं च जनादंनम् ।
 मुनीश्वर तथा व्यासं वक्तुं लिगं स्मराम्यहम् ॥१२॥
 शब्दग्रह्यतनुं साक्षाच्छब्दग्रह्यप्रकाशकम् ।
 वर्णवियमव्यक्तलक्षणं बहुधा म्यितम् ॥१३॥

सबने सूतजी से प्रार्थना की थी कि आप स्वयं श्री भगवान् शङ्कर के पूर्ण भक्त हैं, यह नारद मुनि भी शिव में अटल भक्ति रखते हैं तथा हम लोग सभी शिवाराधन के उपास हैं । आप कृपा करके इन महामुनि नारदजी के समक्ष में लिङ्ग पुराण का प्रवचन करने के योग्य होते हैं । यह पुराण परम पुण्यमय है ॥६॥ आपने सभी कुछ फल सहित साधन किया है और आपको सभी ज्ञात है । इस प्रकार से कहे जाने पर पौराणिकों ने सर्व क्षिरोमणि सूत अत्यन्त प्रसन्न हुए थे ॥१०॥ परम धीमान् सूतजी ने सबसे प्रथम ब्रह्माजी के पुत्र नारद मुनि का अभिवादन किया था और इसके अनन्तर परम पुण्य भात्मा वाले सूत ने निमिष क्षेत्र के निवासि मुनिगणों को प्रणाम किया और इसके पश्चात् उद्धाने पुराण का प्रवचन आरम्भ किया था ॥११॥ श्री सूतजी ने कहा—पद प्रथम मैं महादेव को प्रणाम करता हूँ और फिर ब्रह्माजी तथा भगवान् जनादन को प्रणाम करता हूँ । इसके अनन्तर मुनि-द्वार व्यास जी को प्रणाम करके इस लिङ्ग पुराण की कथा कहने के लिए प्रवृत्त होता हूँ ॥१२॥ महादेव ही हम महापुराण के देवता हैं अतः प्रथम प्रणाम उनको किया । अब शिव के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं कि शिव शब्द रूपा ब्रह्म के तनु वाले हैं और उसने स्वयं ही साक्षात् प्रकाश करने वाले हैं । वर्ण ही जिस तनु के अवयव हैं और अनेक रूप से स्थित होते हुए भी अच्युत रूप वाले हैं ॥१३॥



॥ ब्रह्माण्डरूप लिंग का सृष्टिस्थित्यलय कथन ॥

आलिंगो लिंगमूल तु अव्ययत लिंगमूच्यते ।

अलिंग शिव इत्युक्तो लिंग दीवमिति स्मृतम् ॥१॥

प्रधान प्रवृत्तिर्नृति यदाहुलिंगमुत्तमम् ।

गघवर्णरमहीन शब्दस्पर्शादिवर्जितम् ॥२॥

अगुणं ध्रुवमक्षय्यमलिङ्गं शिवलक्षणम् ।
 गन्धवर्णरसैर्गुणैकं शब्दस्पर्शादिलक्षणम् ॥३॥
 जगद्योनिं महाभूतं स्थूलं सूक्ष्मं द्विजोत्तमाः ।
 विग्रहो जगता लिङ्गमलिङ्गादभवत्स्वयम् ॥४॥
 सप्तधाचाष्टधा चैव तथैकादशधा पुनः ।
 लिङ्गान्यलिङ्गस्य तथा मायया विततानि तु ॥५॥
 तेभ्यः प्रधानदेवानां त्रयमासीच्छिवात्मकम् ।
 एकस्मान्निष्कृत्स्नमिदं त्रैलोक्यं परिरक्षितम् ॥६॥
 एकेनैव रूढं विश्वं व्याप्तं त्वेवं शिवेन तु ।
 अलिङ्गं चैव लिङ्गं च लिङ्गालिङ्गानि मूर्तयः ॥७॥

अथ ब्रह्माण्ड रूप लिङ्ग का सृष्टि, स्थिति, लय का कथन किया जाता है । सूतजी ने कहा—यह अलिङ्ग प्रर्थात् बिन्दु रहित है, निर्गुण है और लिङ्ग के मूल का कारण अव्यक्त प्रर्थात् प्रकृति लिङ्ग कहा जाती है । अलिङ्ग शिव इस नाम से कहे गये हैं और शैव लिङ्ग कहा जाना है ॥१॥ प्रधान और प्रकृति उत्तम लिङ्ग कहा गया है जो गन्ध, वर्ण रस से हीन और शब्द एवं स्पर्श आदि से वञ्चित है ॥२॥ शिव के लक्षण वाला अलिङ्ग, अगुण ध्रुव और अक्षय्य है या गन्ध वर्ण और रस से युक्त एवं शब्द तथा स्पर्श के स्वरूप वाला है ॥३॥ हे द्विजो मे श्रेष्ठगण । जगत् की योनि, महाभूत, स्थूल और सूक्ष्म, समस्त जगत् के लिङ्ग विग्रह अलिङ्ग से ही स्वयं हुआ था ॥४॥ सात प्रकार से, आठ प्रकार से और एकादश प्रकार से अर्थात् छब्बीस तत्त्वों के रूप मे रहने वाले लिङ्ग उस अलिङ्ग की माया से वितत हुए थे ॥५॥ उनसे प्रधान देवों का शिवात्मक त्रय हुआ था । उन तीनों मे एक से यह विश्व उत्पन्न हुआ था, एक से यह परिरक्षित हुआ और एक से इस विश्व का सहार हुआ था । इस प्रकार से यह शिव से व्याप्त है । इसकी अलिङ्ग, लिङ्ग और लिङ्गानिङ्ग मूर्तियाँ हैं ॥६॥७॥

यथावत्कारिताश्चैव तस्माद्ब्रह्म स्वयं जगत् ।
 अलिङ्गी भगवान् बीजी स एव परमेश्वरः ॥८॥
 बीजं योनिश्च निर्बीजं निर्बीजो बीजमुच्यते ।
 बीजयोनिप्रधानानामात्माख्या वर्तते त्विह ॥९॥
 परमात्मा मुनिर्ब्रह्मा नित्यबुद्धस्वभावतः ।
 विशुद्धोयं तथा रुद्रः पुराणो शिव उच्यते ॥१०॥
 शिवेन दृष्टा प्रकृतिः शैवी समभवद्विजाः ।
 सार्गादो सा गुणैर्युक्ता पुराव्यवता स्वभावतः ॥११॥
 अव्यवतादिविशेषात्तं विश्वं तस्याः समुच्चिद्वत्म् ।
 विश्वधात्री त्वजाख्या च शैवी सा प्रकृतिः स्मृता ॥१२॥
 तामजा लोहिता शुक्लां कृष्णामेका बहुप्रजाम् ।
 जनित्रीमनुशेते स्म जुपमाणः स्वरूपिणीम् ॥१३॥
 तामेवाजामजोज्यस्तु भुक्तभोगां जहाति च ।
 अजा जनित्री जगता साजेन समधिष्ठिता ॥१४॥

ये मूर्तिर्मां यथावत् कह बी गई हैं । इससे ब्रह्म ही स्वयं जगत् स्वरूप वाला है । वह ही परमेश्वर अलिङ्गी और बीजी होता है । बीज ब्रह्मा है, योनि विष्णु है और जिससे बीज निकला है वह निर्बीज रुद्र निर्बीज प्रर्थात् कारण मूल्य जगत् का बीज अर्थात् कारण कहा जाता है । बीज, योनि और प्रधानों की प्रर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रों की आत्माख्या विश्व, प्राज्ञ तैजस सज्ञा यही पर है ॥८॥९॥ यह रुद्र परमात्मा, मुनि, ब्रह्मा और नित्य बुद्ध स्वभाव से विशुद्ध तथा पुराणों में शिव कहा जाता है ॥१०॥ हे द्विजो ! शिव के द्वारा देखी गई यह प्रकृति पहिले सर्ग के आदि में स्वभाव से ही गुणों से युक्त प्रर्थात् व्यक्त शैवी हुई थी ॥११॥ अव्यक्त से आदि लेकर महत्त्व से आरम्भ करने विशेषान्त तक यह विश्व उसका समुच्चिद्वत् है । यह शैवी प्रकृति विश्वधात्री और प्रजास्या कही गई है ॥१२॥ उस अज्ञा को जो लोहित, शुक्ल और कृष्ण है प्रर्थात् रज, तत्व और तमो गुणात्मिका है तथा गुरु ही है और बहुत

सी अनेक प्रकार की प्रजाओं की स्वरूप वाली जनयित्री है अर्थात् जनन करने के स्वभाव वाली है उसी को परम प्रीति से सेवन करता हुआ यह अजन्मा बद्धजीव अनुसरण किया करता है ॥१३॥ यह रागी जीव के विषय में कहा है अब विरागी के विषय में कहते हैं कि अन्य भज विरक्त उसी भजा का रसास्वादन करके फिर उसको त्याग देता है । यह परमेश्वर के द्वारा अधिष्ठिता होती हुई अनन्त ब्रह्माण्डों के जनन करने वाली हुई थी ॥१४॥

प्रादुर्बभूव स महान् पुरुषाधिष्ठितस्य च ।
 अज्ञाज्ञया प्रधानस्य सर्गकाले गुणैस्त्रिभिः ॥१५॥
 सिसृक्षया चोद्यमानः प्रविश्याव्यक्तमव्ययम् ।
 व्यक्तसृष्टिं विकुक्षते चात्म नाधिष्ठितो महान् ॥१६॥
 महत्तस्तु तथा वृत्तिः संकल्पाध्यवसायिका ।
 महत्त्रिगुणस्तस्मादहंकारो रजोधिकः ॥१७॥
 तेनैव चावृतः सम्यग्हकारस्तमोधिकः ।
 महतो भूततन्मात्रं सर्गकृद्वै बभूव च ॥१८॥
 अहंकाराच्छब्दमात्रं तस्मादाकाशमव्ययम् ।
 सशब्दमावृणोत्पश्चादाकाशं शब्दकारणम् ॥१९॥
 तन्मात्राद्भूतसर्गश्च द्विजास्त्वेवं प्रकीर्तितः ।
 स्पर्शमात्रं तथाकाशात्तस्माद्वायुर्महान्मुने ॥२०॥
 तस्माच्च रूपमात्रं तु ततोऽग्निश्च रसस्ततः ।
 रसादापः शुभास्ताम्यो गन्धमात्रं धरा ततः ॥२१॥

ईश्वर की इच्छा तथा आज्ञा से सर्ग काल में तीनो गुणों से त पुरुष अर्थात् परमेश्वर के द्वारा अधिष्ठित प्रधान से महत्तत्त्व प्रादुर्भूत हुआ था ॥१५॥ सृजन करने की इच्छा में प्रेरित होकर अव्यय व्यक्त में प्रवेश करके आत्मा से अधिष्ठित महत्तत्त्व व्यक्त सृष्टि को शेष रूप से करता है ॥१६॥ फिर महत्तत्त्व से संकल्पाध्यवसायिका त्ति सात्त्विक अहंकार तथा महत् से त्रिगुण रजोधिक अहंकार का

प्रादुर्भाव हुआ था ॥१७॥ और फिर उस रजोगुण से ही भली-भाँति आवृत तमोऽधिक ग्रहद्वार हुआ था । फिर उस महत्त्व जन्य ग्रहद्वार से सर्ग करने वाला भूत तन्मात्र शब्द रूप हुआ था ॥१८॥ ग्रहद्वार से शब्द तन्मात्र और उससे अव्यय आकाश हुआ था । इस शब्द एवं शब्द का कारण स्वरूप आकाश को पीछे आवृत कर लिया था ॥१९॥ हे द्विजगण ! इस प्रकार से तन्मात्रों से भूतो का सर्ग हुआ था जिसका कि प्रकीर्तन किया गया है । आकाश से स्पर्श मात्र अर्थात् स्पर्श और उससे हे भूने ! महान् वायु हुआ था ॥२०॥ उससे रूप मात्र हुआ और फिर उससे अग्नि, उससे रस और रस से जल और जल से गन्धमात्र धरा हुई थी ॥२१॥

आवृणोद्धि तथाकाशं स्पर्शमात्रं द्विजोत्तमाः ।
 आवृणोद्रूपमात्रं तु वायुर्वाति क्रियात्मकः ॥२२॥
 आवृणोद्रसमात्रं वै देवः साक्षाद्विभावसुः ।
 आवृण्वाना गन्धमात्रमापः सर्वरसात्मिकाः ॥२३॥
 श्मा सा पञ्चगुणा तस्मादेकोना रससम्भवाः ।
 त्रिगुणो भगवान्वह्निद्विगुणः स्पर्शं संभवः ॥२४॥
 अवकाशस्ततो देव एकमात्रस्तु निष्फलः ।
 तन्मात्राद्भूतसर्गश्च विज्ञेयश्च परस्परम् ॥२५॥
 त्रैकारिकः सात्त्विको वै युगपत्संप्रवर्तते ।
 सर्गस्तथाप्यहंकरादेवमत्र प्रकीर्तितः ॥२६॥
 पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्यस्य पञ्च कर्मेन्द्रियाणि तु ।
 शब्दादीनामवाप्त्यर्थं मनश्चैवोभयात्मकम् ॥२७॥

हे द्विजोत्तमो ! स्पर्श मात्र आकाश को आवृत करता है और रूपमात्र को क्रियात्मक वायु बहन करता है ॥२२॥ साक्षात् देव विभावसु ने रसमात्र को आवृत किया है । तथा सर्व रसात्मक जल गन्धमात्र आवृत किए हुए हैं ॥२३॥ यह भूमि पाचो गुणों वाली होती है, जल

चार गुण वाले हैं, भगवान् ब्रह्म में तीन गुण हैं, वायु में दो गुण रहा करते हैं तथा अक्काश देव निष्कल एक मात्र ही होते हैं । इस प्रकार से तन्मात्राओं और भूतों का परस्पर में सर्ग समझ लेना चाहिए । ॥२४॥२५॥ वैकारिक राजस और तामस तथा सात्विक सर्ग एक साथ ही प्रवृत्त होता है तो भी ग्रहद्वार से यहाँ लिङ्ग पुराण में कहा गया है ॥२६॥ इसके पाँच बुद्धीन्द्रिय हैं अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रियाँ हैं और पाँच कर्म करने वाली इन्द्रियाँ हैं । शब्दादि की प्राप्ति करने के लिये मन उन्मेषेन्द्रिय होता है ॥२७॥

महदादिविशेषांता ह्य'डमुत्पादयति च ।
 जलवृद्धद्वन्मस्मादवतीर्णः पितामहः ॥२८॥
 स एव भगवान् रुद्रो विष्णुर्विश्वगतः प्रभुः ।
 तस्मिन्न'डे त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ॥२९॥
 अ'ड दशगुणेनैव वारिणा प्रावृतं बहिः ।
 आपो दशगुणेनैव तद्वाह्ये तेजसा वृताः ॥३०॥
 तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् ।
 वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः ॥३१॥
 आकाशेनावृतो वायुरहंकारेण शब्दजः ।
 महता शब्दहेतुर्वै प्रधानेनावृतः स्वयम् ॥३२॥
 सप्ताडावरणान्याहुस्तस्यात्मा कमलासनः ।
 कोटिकोटियुतान्यत्र चाडानि कथितानि तु ॥३३॥
 सप्ततत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवा ।
 सृष्टाः प्रधानेन तदा लब्ध्वा शमोस्तु सनिचिम् ॥३४॥

महत् तत्त्व से लेकर विशेषान्त पर्यन्त ब्रह्माण्ड का उत्पादन करते हैं । उस ब्रह्माण्ड में एक जल के बुलबुले के समान पितामह अवतीर्ण हुये थे ॥२८॥ वह ही भगवान् रुद्र हैं तथा विश्व में व्याप्त रहने वाले भगवान् विष्णु हैं । उसी अण्ड में उसके अन्दर के समस्त लोक और यह जगत्

तथा विश्व रहता है ॥२६॥ इस ब्रह्माण्ड से दश गुना जल होता है जिनके द्वारा यह बाहिर से प्रावृत्त है । और जल से दश गुना तेज है जिसने उसको बाह्य भाग में प्रावृत्त कर रखा है ॥२७॥ तेज से दश गुनी वायु और वायु से दश गुना आकाश है जिन्होंने इस अण्ड को इसी क्रम से बाहिर से आवृत्त कर रखा था ॥२८॥ आकाश से वायु आवृत्त है और अहकार से आकाश आवृत्त है तथा महत्त्व से प्रधानतया अण्ड हेतु इत्थं आवृत्त होता है ॥२९॥ इस प्रकार से उस अण्ड की आत्मा भगवान् कमलासन ब्रह्मा सात आदरण्यो से युक्त कहे गये हैं । तात्पर्य यह है कि अण्ड के सात आवरण होने हैं । ऐसे अण्ड एक, दो नहीं करोड़ो-करोड़ो अयुक्त कहे गये हैं ॥३०॥ उन-उन प्रत्येक ब्रह्माण्डों में चार मुख वाले ब्रह्मा, हरि और भव भी होते हैं । उस समय भगवान् शम्भु की सन्निधि प्राप्त करके ये सब प्रधान के द्वारा ही सृष्ट हुए हैं ॥३१॥

लयश्चैव तथान्योन्यमाद्यतमिति कीर्तितम् ।
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य स्थितेः कर्ता महेश्वरः ॥३२॥
सर्गे च रजमा युक्तः सत्त्वस्थः प्रतिपालने ।
प्रतिसर्गे तमोद्रिक्तः स एव त्रिविधः क्रमात् ॥३३॥
आदिकर्ता च भूतानां संहर्ता परिपालकः ।
तस्मान्महेश्वरो देवो ब्रह्मणोधिपतिः शिवः ॥३४॥
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वात्मनो यतः ।
एतदंडे तथा लोका इमे कर्ता पितामहः ॥३५॥
प्राकृतः कथितस्त्वेव पुरुषाधिष्ठितो मया ।
सर्गश्चावुद्धिपूर्वस्तु द्विजाः प्राथमिकः शुभः ॥३६॥

और उनका परस्पर में आद्यन्न नय होता है, यह भी कहा गया है । सर्ग, प्रतिसर्ग और स्थिति का महेश्वर कर्ता है ॥३२॥ यह ही क्रम से तीन प्रकार के स्वर्ण्य वाले हैं । सर्ग करने के समय में वह रजो-गुण से युक्त होते हैं, प्रतिपालन करने की स्थिति में सत्त्वगुण में गिरा है और प्रतिसर्ग की दशा में तमोगुण के उद्रेक याने होते हैं ॥३३॥

यह भूनों के आदि कर्त्ता, सहर्त्ता और परिपालक हैं । इसी कारण से महेश्वर देव शिव ब्रह्मा के भी अधिपति होते हैं ॥३७॥ सदाशिव भव विष्णु और ब्रह्मा हैं क्योंकि सर्वात्मक होते हैं । इस अणु में पितामह कर्त्ता जिस तरह से रहते हैं वैसे ही ये लोक भी रहा करते हैं ॥३८॥ मैंने यह पुरुषाधिष्ठित प्राकृत कहा है । हे द्विजगण ! अनुद्विपूर्व प्राथमिक सर्ग शुभ होता है ॥३९॥



॥ कालमान और ब्रह्माण्ड निरूपण ॥

अथ प्राथमिकस्येह य कालस्तदह स्मृतम् ।
 सर्गस्य तादृशी रात्रि प्राकृतस्य समासत ॥१॥
 दिवा सृष्टि विक्रुते रजन्या प्रलय विभु ।
 औपचारिकमस्यैतदहोरात्र न विद्यते ॥२॥
 दिवा विकृतय सर्वे विकारा विश्वदेवता ।
 प्रजाना पतय सर्वे तिष्ठत्यन्ये महर्षय ॥३॥
 रात्रौ सर्वे प्रलीयते निशाते सभवति च ।
 अहस्तु तस्य वैकल्पो रात्रिस्तादृग्विधा स्मृता ॥४॥
 चतुर्गुणसहस्राते मनवस्तु चतुर्दश ।
 चत्वारि तु सहस्राणि वत्सराणा कृत द्विजा ॥५॥
 तावच्छती च वै सध्या सध्याशश्च कृतस्य तु ।
 त्रिंशती द्विशती सध्या तथा चैकशती क्रमात् ॥६॥
 अशक पट्शत तस्मात्कृतसध्याशक विना ।
 त्रिद्व्येकसाहस्रमिती विना सध्याशके न तु ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—यहाँ प्राथमिक सर्ग का जो काल होता है वह अह कहा गया है । प्राकृत सर्ग की वंशी ही तक्षक से रात्रि कहा करती है ॥१॥ विभु दिव में तो सृजन कार्य किया करते हैं और जब

दिन समाप्त होकर रात्रि आती है उस समय प्रलय करते हैं । यह इसका औपचारिक कार्यक्रम है और बहोरात्र नहीं है ॥२॥ दिवा में समस्त विकृतियाँ, विकार, विश्वदेवता, प्रजापतिगण और अन्य सब महर्षि गण स्थित रहते हैं । रात्रि के समय जब प्राता है तो सभी प्रलीन हो जाते हैं तथा पुनः निशा के अन्त होने पर उत्पन्न हो जाया करते हैं । उसका यह वैकल्प होता है तथा रात्रि भी उसी प्रकार की कही गई है । ॥३॥४॥ यहा का दिन का काल चारो (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) युगों के एक सहस्र हो जाने पर होता है और उस काल में चौदह मनु हुआ करते हैं । चार सहस्र वरसों का कृत्त है ॥५॥ उतनी शती ही वृत्त की सन्ध्या और सन्ध्याश है । कम से त्रिंशती, द्विंशती और एक शती सन्ध्या हुआ करती है ॥६॥ कृत सन्ध्याशक के बिना उससे षट् शत भ्रष्टक होता है । तीन, दो और एक साहस्र की मिति में सन्ध्याशक के बिना होते हैं ॥७॥

त्रेताद्वापरतिथ्याणां कृतस्य कथयामि व ।

निमेषपंचदशका काष्ठा स्वस्थस्य सुव्रताः ॥८॥

मर्यस्य चाक्षणोस्तस्याश्च ततस्त्रिंशतिका कला ।

कलात्रिंशतिको विप्रा मृहृतं इति कल्पितः ॥९॥

मृहृतपंचदशिका रजनी तादृश त्वहः ।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुन ॥१०॥

कृष्णपक्षस्त्यहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शवंरी ।

त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु संस्मृतः ॥११॥

शतानि श्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ।

पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१२॥

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छत भवेत् ।

पितृणां श्रीणि वर्षाणि सस्यातानीह तानि वै ॥१३॥

दश वै द्व्यधिका मासाः पितृमंथ्येह संस्मृता ।

लोकिवेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥१४॥

पच में प्राय सोगों के सामने त्रेता, द्वापर और त्रिप्यो के पुन के

विषय में वर्णन करता है। हे सुव्रत बालो ! स्वस्थ पुरुष के पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा होती है ॥८॥ मनुष्य के नेत्रों के जो पलक खुलते-मुँदते हैं वह निमेष हैं और त्रिंशतिक निमेषों की एक कला होती है। हे विप्रगण ! त्रिंशतिक कलाओं का एक मुहूर्त कहा जाता है ॥९॥ पन्द्रह मुहूर्तों की रजनी होती है और उतना दिन होता है। तात्पर्य दो घड़ी का एक मूहूर्त होता है और तीस-तीस घड़ी के दिन-रात हुआ करते हैं। पितृगणों के रात-दिन और मास तथा उनका प्रविभाग पुनः होता है ॥१०॥ पितृगण का कृष्ण पक्ष दिन कहा जाता है और मास का शुक्ल पक्ष उनके स्वप्न के लिये रात्रि होती है। मनुष्यों के तीस मास का समय पितृगण का एक मास होता है ॥११॥ तीन सौ साठ मासों का यह पितृगण का सम्बत्सर मानुष के द्वारा विभावित किया जाता है ॥१२॥ मानुषमान के द्वारा ही जो एक सौ वर्ष होते हैं वे पितृगणों के यहाँ तीन ही वर्ष गिने जाते हैं ॥१३॥ लौकिक मान के द्वारा जैसा मानुष ब्रह्म [वर्ष] कहा गया है वैसे ही पितृगणों के यहाँ पर भी बारह मास मख्यात होते हैं ॥१४॥

एतद्दिव्यमहोरात्रमिति लैगेऽत्र पठ्यते ।
 दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥१५॥
 अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ।
 एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसख्याते विशेषतः ॥१६॥
 त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
 मानुषं तु शत विप्रा दिव्यमासांख्यस्तु ते ॥१७॥
 दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधि स्मृतः ।
 श्रीणी वर्षशतान्येव पष्टिवर्षाणि यानि तु ॥१८॥
 दिव्यः सवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।
 श्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः ॥१९॥
 त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तपित्सरः ।
 नव यानि महद्ग्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२०॥

अन्यानि नवतीश्चैव ध्रौवः सवत्सरस्तु स ।
 पट्त्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२१॥
 वर्षाणां तच्छतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।
 त्रीण्येव नियुतान्याहुः वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२२॥
 पट्त्रिंशच्चैव सहस्राणि सरयातानि तु सस्यया ।
 दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः सरयाविदो जनाः ॥२३॥

यहाँ लिङ्ग महा पुराण में ये दिव्य ग्रहोरात्र पढ़े जाते हैं । इसी प्रकार दिव्य रात्रि, दिन और वर्ष आदि भी होते हैं । उनका प्रविभाग पुन किया जाता है ॥१५॥ पितृगण का दिन उत्तरायण काल होता है अर्थात् जब सूर्य उत्तरायण होते हैं उसी समय को वैश्य दिन कहा जाता है । तथा जब सूर्य जितने समय तक दक्षिणायन रहा करते हैं उतना समय पितृगण की रात्रि बहती जाती है । विशेष रूप से ये ही दिव्य रात्रि और दिन प्रसङ्गान होते हैं ॥१६॥ तब तीस वर्ष हो जाते हैं तब दिव्य का समय पूरा होता है, ऐसा ही कहा गया है । मनुष्यों के जब सौ वर्ष पूरे होते हैं तब दिव्य तीन मास पूर्ण हुआ करते हैं ॥१७॥ और उसी प्रकार से दस ग्रह होते हैं । यह दिव्य विधि बही गई है । तीन लाख साठ मानुष वर्ष हुआ करते हैं । और अथ सवती का ध्रौव सवत्सर होता है । सरया के नेता विद्वाना द्वारा सस्या के द्वारा इस तरह दिव्य सहस्र वर्ष सस्या किये जाते हैं ॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥

दिव्येनैव प्रमाणं युगसंख्याप्रवृत्तनम् ।
 पूर्वं वृत्तयुगं नाम तत्सन्नेता विधीयते ॥२४॥
 द्वारपञ्च त्रिंशच्चैव युगान्येतानि सुरता ।
 अथ सवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणन ॥२५॥
 वृत्तस्याद्यस्य विप्रोद्वा दिव्यमानेन कीर्तितम् ।
 सहस्राणां शतान्यामश्नुदंनं च सस्यया ॥२६॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम् ।
 तथा दशसहस्राणां वर्षाणां शतसंख्यया ॥२७॥
 अशीतिश्च महान्याणि कालखेतायुगस्य च ।
 सप्तैव नियुतान्याद्वयं वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२८॥

इम तरह दिव्य प्रमाण के द्वारा ही गुणों की सख्या प्रकल्पित होती है । सबसे प्रथम कृत युग होता है और मरुयुग के पश्चात् त्रेता युग होता है ॥२४॥ हे मुपतगण ! फिर त्रेता के पीछे द्वापर युग और इसके अनन्तर कलियुग होता है । इस रीति से मानुष प्रमाण के द्वारा सम्बत्सर देखे गये हैं ॥२५॥ अब स्फुट बोध प्राप्त करने के लिये इस कृत युग आदि के वर्षों की संख्या जो कि दिव्य मान से बही गई है पुनः उस संख्या को बताया जाता है । कृत युग की संख्या एक लाख चौबीस सहस्र होती है ॥२६॥ त्रेतायुग के सबत्सरो की संख्या दस लाख प्रसी सहस्र होती है ॥२७॥२८॥

विंशतिश्च सहस्राणि कालस्तु द्वापरस्य च ।
 तथा शतसहस्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया ॥२९॥
 पक्षिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु ।
 एव चतुर्युगः कालश्चेते संध्यांशकात्स्मृतः ॥३०॥
 नियुतान्येव पट्त्रिंशन्निरशानि तु तानि वै ।
 चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया ॥३१॥
 विंशतिश्च सहस्राणि संध्याशश्च चतुर्युगः ।
 एव चतुर्युगाख्याना साधिका ह्येकसप्ततिः ॥३२॥
 कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरतरमुच्यते ।
 मन्वन्तरस्य संख्या च वर्षाग्रेण प्रकीर्तिता ॥३३॥
 त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण द्विजोत्तमाः ।
 सप्तपष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु ॥३४॥

विंशतिश्च सहस्राणि कालोयमधिक विना ।
मन्वन्तरस्य सख्यापा लैगेस्मिन्कीर्तिता द्विजा ॥३५॥

द्वापर युग के वर्षों की सख्या सात लाख बीस सहस्र होती है और कलियुग के वर्षों की सख्या तीन लाख साठ हजार है । इस प्रकार से इन चारो युगो की सख्या सन्ध्याशक के बिना कही गई है ॥२६॥ ॥३०॥ ये निरश छत्तीस लाख होते हैं । चारो युगो का सन्ध्याश तैता-लीस लाख बीस सहस्र होता है और इस प्रकार से चारो युगो की साधिका सरया इकहत्तर होती है ॥३१॥३२॥ भव कृत भेता आदि से युक्तो का मन्वन्तर कहा जाता है । मन्वन्तर की सख्या वर्षाग्र के द्वारा कही गई है ॥३३॥ हे द्विजोत्तमगण । मानुष वर्षों के हिसाब से तीस करोड सड़-सठ लाख बीस सहस्र अधिक के बिना काल होता है । यह मन्वन्तर की सख्या इस लिङ्ग महापुराण मे कही गई है ॥३४॥३५॥

चतुर्युगस्य च तथा वर्षसख्याप्रकीर्तिता ।
चतुर्युगसहस्र वै कल्पश्चैको द्विजोत्तमा ॥३६॥
निशाते सृजते लोकान् नश्यते निशि जतव ।
तत्र वैमानिकानां तु अष्टाविंशतिकोटय ॥३७॥
मन्वन्तरेषु वै सख्या सातरेषु यथातथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यो द्विनवतिस्तथा ॥३८॥
कल्पेतीज्जे तु वै विप्रा सहस्राणां तु सप्तति ।
पुनस्तथाष्टसाहस्र सर्वत्रैव समासत ॥३९॥
कल्पावसानिकास्त्यक्त्वा प्रलये समुपस्थिते ।
महर्लोकात् प्रयात्येते जनलोक जनास्तत ॥४०॥
कोटीनां द्वे सहस्रे तु अष्टौ कोटिशतानि तु ।
द्विपष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्तति ॥४१॥
कल्पाधंसरया दिव्या वै कल्पमेव तु कल्पयेत् ।
कल्पानां वै सहस्र तु वर्षमेकमजस्य तु ॥४२॥

अब तक बुनाहि चारो युगो की सख्या बनाई गई है । हे द्विजो-
त्तमो ! जब इन चारो युगो की चौकड़ी का एक सहस्र समाप्त हो जाता
है तब एक कल्प हुआ करता है ॥३६॥ निशा के अन्त मे लोको का
सृजन करने हैं और वे सब जन्तुगण निशा मे नष्ट हो जाया करते है ।
वैमानिको के अट्ठाईस करोड होते हैं ॥३७॥ सान्तर मन्वन्तरो मे जो
सख्या होनी है वह तीन सौ बानवे करोड होती है ॥३८॥ कल्प के
अतीत हो जाने पर सर्वत्र ही अठहत्तर सहस्र संक्षेप से बही गई है
॥३९॥ जो ऐसे हैं कि कल्प के अवसान मे भी लय नहीं होता है उनको
छोड कर जिम समय प्रलय का काज उपस्थित होता है उस समय ये
जन्तु महर्लोक से जनलोक को चले जाया करते हैं ॥४०॥ दिव्य कल्पार्थ
की सख्या आठ सौ दो सहस्र बासठ करोड सात लाख होती है । इसी
प्रकार से कल्प की सख्या प्रकल्पित करनी चाहिए । इस तरह से एक
सहस्र कल्प का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ॥४१॥४२॥

वर्षाणामष्टसाहस्रं ब्राह्मं वै ब्रह्माणो युगम् ।
सवनं युगसाहस्रं सर्वं देवोद्भवस्य तु ॥४३॥
सवनानां सहस्रं तु त्रिविधं त्रिगुणं तथा ।
ब्रह्माणस्तु तथा प्रोक्तः कालः कालात्मनः प्रभोः ॥४४॥
भवोद्भवस्तपश्चैव भव्यो रभः क्रतु पुनः ।
ऋतुर्वह्निर्हं यवाहः सावित्रः शुद्ध एव च ॥४५॥
उशिकः कुशिकश्चैव गाधारो मुनि सत्तमाः ।
श्रुपभश्च तथा पङ्जो मज्जालीयश्च मध्यमः ॥४६॥
घैराजो वै निपादश्च मुरयो वै मेघवाहनः ।
पञ्चमश्चित्रकश्चैव आकूतिर्जनि एव च ॥४७॥
मनः सुदर्शो वृंहश्च तथा वै श्वेतलोहितः ।
रक्तश्च पीतवासाश्च असितः सर्वरूपकः ॥४८॥
एवं कल्पास्तु सख्याता ब्रह्माणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कोटिकोटिसहस्राणि कल्पानां मुनिसत्तमाः ॥४९॥

अट्ठारह सहस्र ब्राह्म वर्षों का ब्रह्मा का युग होता है और सबके उद्भव के स्थान स्वरूप भगवान् विष्णु का एक ब्रह्म युग का साहस्र अर्थात् ब्रह्मा के एक हजार युग एक सवन अर्थात् दिन होता है ॥४३॥ विष्णु सवनो का त्रिविध त्रिगुण अर्थात् नौ सहस्र कालात्मा प्रभु रुद्र का काल अर्थात् दिन कहा गया है ॥४४॥ अब कल्पों के नाम बतलाये जाते हैं कि किन-किन नामों वाले कल्प होते हैं—भवोद्भव, तप, भव्य, रम्भ क्रतु, ऋतु, वह्नि, हव्य वाह, सावित्र, शुद्ध ये कल्पों के नाम हैं ॥४५॥ और उत्तिक, कुत्तिक, गान्धार, ऋषभ, पङ्कज, मज्जालीय, मध्यम ये भी कल्पों के ही नाम हैं ॥४६॥ वैराज, निपाद, मुल्य, मेघ वाहन, पञ्चम, चित्रक, भाकूति, ज्ञान ये सब कल्पों के नाम होते हैं ॥४७॥ मन, सुदर्श, वृह, श्वेतलोहित, रक्त, पीतवासा, प्रसित और सर्व रूपक हे मुनि सत्तमगण । ये सब तेजीस कल्पों के नाम हैं । करोड़ो-करोड़ो सहस्र कल्प होते हैं उनमें ये अभ्यक्त जन्मा ब्रह्मा के कल्प ही सख्यात किये गये हैं ॥४८॥४९॥

गतानि सायच्छेषाणि अहर्निश्यानि वै पुनः ।

पराते वै विकाराणि विकार याति विश्वतः ॥५०॥

विकारस्य शिवस्याज्ञावशेनैव तु संहतिः ।

संहते तु विकारे च प्रधाने चात्मनि स्थिते ॥५१॥

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषाबुभौ ।

गुणानां चैव वंपम्ये विप्राः सृष्टिरिति स्मृता ॥५२॥

साम्ये लयो गुणानां तु तयोर्हंतुर्महेश्वरः ।

लीलया देवदेवेन सर्गास्त्वीदृग्विधाः कृता ॥५३॥

असख्याताश्च सक्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात् ।

असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसरयताः पितामहाः ॥५४॥

हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः ।

प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु ॥५५॥

गुणात्मिका च तद्वृत्तिस्तस्य देवस्य वै त्रिधा ।
 अप्राकृतस्य तस्यादिर्मध्यातं नास्ति चात्मनः ॥५६॥
 पितामहस्याय परः परार्धद्वयसमितः ।
 दिवा सृष्टं तु यत्सर्वं निशि नश्यति चास्य तत् ॥५७॥

महाप्रलय के समय में ग्रहनिश में होने वाले दोष विकार युक्त विश्व विकार अर्थात् प्रलय को प्राप्त होते हैं ॥५०॥ उस विचार स्वरूप प्रलय की भी संहति भगवान् शिवकी आज्ञा के वश से ही होती है जब कि प्रधान आत्मा में स्थित होता है और विकार सहित होता है ॥५१॥ प्रधान और पुरुष दोनों ही साधर्म्य से स्थित रहा करते हैं । हे विप्रगण ! जिस समय गुणों का वैपश्य होता है उसी समय सृष्टि होती है, ऐसा कहा जाता है ॥५२॥ गुणों की साम्य दशा होने पर ही लय हुआ करता है । लय और सृजन इन दोनों का हेतु महेश्वर ही होते हैं । देवों के भी देव के द्वारा लीला से ही इस प्रकार के सगं किये गये हैं ॥५३॥ वे सगं प्रधान से अन्वधिहित सक्षेप से प्रसंध्यात होते जिनको कल्प कहा जाना है वे भी असंख्यात हैं और पितामह भी अगणित हुआ करते हैं ॥५४॥ इसी प्रकार हरि अर्थात् विष्णु भी पालन करने वाले असंख्य ही होते हैं केवल भगवान् महेश्वर ही एक होते हैं । ये सब लीला से प्रधानादि के द्वारा प्रवृत्त होते हैं और प्राकृत स्वरूप वाले हैं ॥५५॥ उस देव की तीन प्रकार से गुणात्मिका वृत्ति हुआ करती है अर्थात् एक ही देव भिन्न गुण-कर्म के कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के तीनों रूप होते हैं । जो अप्राकृत आत्मा है उसका वभी भी भादि, मध्य और अन्त नहीं होता है ॥५६॥ पितामह ब्रह्मा का परार्धद्वय समित पर हुआ करता है । इसके द्वारा दिन में जो कुछ सृजन किया जाता है वह इसकी समस्त सृष्टि निशा के समय में नष्ट हो जाया करती है ॥५७॥

भूभुवः स्वर्महस्तत्र नश्यते चोर्ध्वतो न च ।

रात्री चैकार्णवे ब्रह्मा नष्टे स्थावरजगमे ॥५८॥

सुव्रापाभसि यस्तस्मान्नारायण इति स्मृतः ।
 शर्वर्यते प्रबुद्धो वै दृष्ट्वा सून्य चराचरम् ॥५६॥
 स्रष्टुं तदा मतिं चक्रे ब्रह्मा ब्रह्मविदा वरः ।
 उदकैराप्लुता क्षमा ता समादाय सनातनः ॥५७॥
 पूर्ववत्स्थापयामास वाराह रूपमास्थितः ।
 नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः ॥५८॥
 कृत्वा धरा प्रयत्नेन निम्नोन्नतिविर्वजिताम् ।
 धराया सोचिनोत्मर्वाङ् गिरीन् दग्धान् पुराग्निना ॥५९॥
 भूराद्याश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् ।
 स्रष्टुं च भगवाञ्चक्रे तदा स्रष्टा पुनर्मतिम् ॥६०॥

भूलोक, भुव, स्व, और महलोक ऊर्ध्व से नष्ट नहीं होते हैं ।
 रात्रि का समय होने पर जब कि समस्त स्थावर और जङ्गम नष्ट हो
 जाते हैं तब एकाएक वे वह ब्रह्मा सागर के जलो में क्षयन कर जाता
 है । इसीलिए उसका "नारायण" यह नाम रूढ़ा गया है । जब वह
 रात्रि समाप्त हो जाती है तो उसके अग्न में वही क्षीरसागर में क्षयन
 करने वाले नारायण प्रबुद्ध हो जाया करते हैं और इस चराचर सबको
 सून्य देखते हैं ॥५६॥ ५७॥ उस समय में ब्रह्म के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ
 ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना करने का विचार किया था । सनातन प्रभु ने
 जलो में डुबी हुई इस भूमि को जल से निकालकर ऊपर कर दिया
 था ॥५७॥ प्रभु ने वाराह के स्वरूप में स्थित होकर अर्थात् वाराह
 अवतार धारण करके इस भूमि को पूर्व की मति ही स्थापित कर
 दिया था और जिसने भी नदी, नद तथा समुद्र आदि थे उन
 सब को भी पहली ही स्थिति में कर दिया था ॥५८॥
 फिर पृथ्वी को यथास्थान स्थित करके उसे ऊँचाई-निचाई
 से रहित समान किया था तथा पहिले अग्नि से जले हुए पर्वतों
 को सबको एकत्रिण करके स्थिर किया था ॥५९॥ भूलोक से आदि जो

चार लोक हैं उन चारों को पूर्व की ही भाँति कल्पित किया था । इसके अनन्तर स्तजन करने वाले भगवान् ने पुनः सृष्टि करने की अपनी बुद्धि की थी ॥६३॥



॥ ब्रह्म द्वारा ऋषिं, देव आदि की सृष्टि ॥

यदा स्रष्टुं मतिं चक्रे मोहश्चासीन्महात्मनः ।
 द्विजाश्च बुद्धिपूर्वं तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१॥
 तमो मोहो महामो हस्तामित्रश्चांधसंशितः ।
 अविद्या पञ्चधा ह्येषा प्रादुर्भूता स्वयंभुवः ॥२॥
 अविद्यया मुनेर्ग्रस्तः सर्गो मुख्य इति स्मृतः ।
 असाधक इति स्मृत्वा सर्गो मुख्यः प्रजापतिः ॥३॥
 अम्यमन्यत सोऽन्यं वै नगा मुख्योद्भवाः स्मृताः ।
 त्रिधा कंठो मुनेस्तस्य घ्यायतो वै ह्यवर्तत ॥४॥
 प्रथमं तस्य वै जज्ञे तिर्यक्स्रोतो महात्मनः ।
 ऊर्ध्वस्रोतः परस्तस्य सात्त्विकः स इति स्मृतः ॥५॥
 अर्वाक्स्रोतोऽनुग्रहश्च तथा भूतादिकः पुनः ।
 ब्रह्मणो महतस्त्वाद्यो द्वितीयो भौतिकस्तथा ॥६॥
 सर्गस्तृतीयश्चन्द्रियस्तुरीयो मुख्य उच्यते ।
 तिर्यग्योन्यः पञ्चमस्तु पक्षो दैविक उच्यते ॥७॥

सूत जी ने कहा—अविद्या के बिना देहों का सृजन करने पर भी जीवों का कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व सम्भव नहीं होना है इसलिए पहिले विद्या के प्रादुर्भाव मूल को कहते हैं कि अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने ब्रह्मा को जिस समय सृजन करने का विचार किया था बुद्धि पूर्वक मोह हुआ था ॥१॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध सज्ञा यानी ये पाँच प्रकार की अविद्या हैं सो स्वयम्भू को उस समय में उत्पन्न हुई

थी ॥२॥ ब्रह्मा मुख्य प्रथम सर्ग अविद्या से ग्रस्त था । इसलिए वह अमुख्य कहा गया है । प्रजापति ने मुख्य सर्ग साधक नहीं है, ऐसा स्मरण करके अन्य ही भान लिया था । मुख्य सर्ग में नम और वृक्ष प्रथमोद्भव होते हैं । ध्यान करते हुए ब्रह्मा का कण्ठ सत्त्व, रज, स्तमोरूप तीन प्रकार का हो गया था ॥३॥४॥ महान् आत्मा वाले ब्रह्मा से पहिले तिर्यक् गति वाले पशु आदि ने जन्म ग्रहण किया था । इसके पश्चात् उर्ध्व स्रोत देशादि उत्पन्न हुए जो कि सात्त्विक सर्ग कहा जाता है ॥५॥ फिर ईश्वर के अनुग्रह से अन्य विषयसादि शक्ति विशेष मनुष्य रूप सर्ग हुआ और इसके अनन्तर सर्वाक् स्रोत भूतादिक उत्पन्न हुए थे । ब्रह्मा से महत्तत्त्व सबसे पहिला सर्ग है फिर दूसरा भूत-तन्मात्राग्रे का सर्ग है ॥६॥ इसके पश्चात् श्रवणादि ५ ऐन्द्रिय तृतीय सर्ग सोता है । चतुर्थ मुख्य सर्ग कहा जाता है । तिर्यग् योनी वालों का पञ्चम सर्ग होता है और दैविक सर्ग छटा कहा जाता है ॥७॥

सहस्रो मानुषो विप्रा अष्टमोऽनुग्रहं स्मृतः ।

नवमश्चैव कौमारः प्राकृताः वैकुण्ठास्त्वमे ॥८॥

पुरस्तादसृजद्देव सनद सनक तथा ।

सनातन मुनिश्रेष्ठा नैष्कर्म्येण गता परम् ॥९॥

मरीचिभृग्वगिरसः पुलस्त्य पुलह क्रतुम् ।

दक्षमनि वसिष्ठ च सोऽसृजद्योगविद्यया ॥१०॥

नवैते ब्रह्मण पुनः ब्रह्मज्ञा ब्रह्मणोत्तमा ।

ब्रह्मवादिन एवते ब्रह्मण सदृशा स्मृता ॥११॥

सङ्कल्पश्चैव धर्मश्च ह्यधर्मो धर्मसन्निधिः ।

द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१२॥

ऋभुं सनत्कुमार च ससर्जादौ सनातन ।

तावूर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ ॥१३॥

कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ ।

वक्ष्ये भार्याकुल तेषां मुनीनामग्रजन्मनाम् ॥१४॥

हे विप्रगण ! सप्तम मानुष सर्गं दृष्ट्वा या श्रीर अष्टम अनुग्रह
नामक सर्गं या । नवम कीमार सर्गं या । ये सब प्राकृत तथा वैदृत
पर्गं थे ॥८॥ देव ब्रह्मा ने सर्व प्रथम मुनि श्रेष्ठ सनक, सनन्द और
सनातन का सृजन किया था जो कि निष्कर्म भाव में रत होकर परम
शक्ति को प्राप्त हो गये थे ॥९॥ इसके उपरान्त ब्रह्मा ने मरीचि, भृगु,
मद्भिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ को योग विद्या
के द्वारा सृष्ट किया था ॥१०॥ ये नौ ब्रह्मा के पुत्र, ब्रह्मा के ज्ञाता,
उत्तम ब्राह्मण, ब्रह्मवादी थे जो कि सब ये ब्रह्मा के ही समान कहे गये
हैं ॥११॥ संकल, धर्म सन्निधि अथर्वं ये कुल चारह अव्यक्त जन्मा
ब्रह्मा जी की ही प्रजा अर्थात् सन्तति हैं ॥१२॥ सनातन ने आदि में
ऋभु और सनत्कुमार की सृष्टि की थी । ये दोनों उच्चैरेता, अग्रज,
दिव्य और ब्रह्म वादी थे ॥१३॥ ये दोनों कुमार सर्वज्ञ और सर्व भावी
ब्रह्मा के ही तुल्य थे । अब उन अग्रजन्मा मुनिगो के भार्या कुल का
वर्णन किया जायगा ॥१४॥

समासतो मुनिश्रेष्ठाः प्रजासभूतिमेव च ।
शतरूपा तु वै राज्ञी विराजमसृजत्प्रभुः ॥१५॥
स्वायम्भुवात्तु वै राज्ञी शतरूपा त्वयोनिजा ।
लेभे पुत्रद्वयं पुण्या तथा कन्याद्वयं च सा ॥१६॥
उत्तानपादो ह्यवरो धीमाञ्ज्येष्ठः प्रिय व्रतं ।
ज्येष्ठा वरिष्ठा त्याकृतिः प्रसूतिश्चानुजा स्मृता ॥१७॥
उपयेमे तदाकृति रुचिर्नाम प्रजापतिः ।
प्रसूतिं भगवान्दक्षो लोकधात्री च योगिनीम् ॥१८॥
दक्षिणासहित यज्ञमाकृतिः सुपुत्रे तथा ।
दक्षिणा जनयामास दिव्या द्वादश पुत्रिकाः ॥१९॥
प्रसूतिः सुपुत्रे दक्षाच्चतुर्विंशतिकन्यकाः ।
श्रद्धां लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं तुष्टिं मेधा क्रिया तथा ॥२०॥

बुद्धि लज्जा वपुःशान्ति सिद्धि कीर्ति महातपाः ।

ख्याति शान्ति च सभूति स्मृति प्रीति क्षमा तथा ॥२१॥

सन्नति चानसूया च ऊर्जा स्वाहा सुरारणिम् ।

स्वधा चैव महाभागा प्रददौ च यथाक्रमम् ॥२२॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! समास में यह कहते हैं कि प्रजा की सभूति अर्थात् सन्तति को जन्म देने वाली राजा शतरूपा और वैराज अर्थात् स्वायम्भुव मनु को प्रभु ब्रह्मा ने सृष्ट किया था ॥१५॥ स्वायम्भुव मनु से अयोनि से जन्म ग्रहण करने वाली शतरूपा राज्ञी ने, जो कि परम पुण्यमयी थी, दो पुत्र और दो कन्याएँ प्राप्त की थी ॥१६॥ परम बुद्धिमान् प्रिय व्रत ज्येष्ठ पुत्र था और उत्तानपाद नाम धारी कनिष्ठ पुत्र था । दो कन्याओं में आवृति ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ थी तथा प्रसूति छोटी कन्या थी ॥१७॥ रुचि नाम वाले प्रजापति ने आवृति की साथ विवाह किया था । लोका की धानी और योगिनी प्रसूति के साथ वक्ष भगवान् ने विवाह किया था ॥१८॥ आवृति ने दक्षिणा के सहित यज्ञ को प्रसूत किया था । फिर उस दक्षिणा ने परम दिव्य धारह पुत्रियों को जन्म दिया था ॥१९॥ प्रसूति ने दक्ष प्रजापति अपने पति ॥ चौबीस कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था । श्रद्धा, सद्गती, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, प्रिया, बुद्धि लज्जा, वपुः, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति- महातपा, ख्याति, शान्ति, सभूति, स्मृति प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, सुरारणि और महाभागा स्वधा ये उन चौबीसों के शुभ नाम थे । इन सबको यथाक्रम सुयोग्य वरों को दान कर दे दिया था ॥२०॥२१॥२२॥

श्रद्धाद्यादन्वैव कीर्त्येतास्त्रयोदश सुदारिवा ।

धर्म प्रजापति जग्मु पति परमदुर्लभा ॥२३॥

उपयेमे भृगुर्धोमान् स्याति ता भागवदारणिम् ।

सभूति च मरीचिन्तु स्मृति चैवागिग मुनि ॥२४॥

प्रीतिं पुलस्तयः पुण्यात्मा क्षमां तां पुलहो मुनिः ।
 ऋतुदच सन्नतिं धीमानत्रिस्तां चानसूयकाम् ॥२५॥
 ऊर्जा वसिष्ठो भगवान्वरिष्ठो वारिजेक्षणाम् ।
 विभावसुस्तथा स्वाहा स्वधां वै पितरस्तथा ॥२६॥
 पुत्रीकृता सती या सा मानसी शिवसंभवा ।
 दक्षेण जगतां धात्री रुद्रमेवास्थिता पतिम् ॥२७॥
 अधंनारीश्वरं दृष्ट्वा सर्गादौ कनकांडजः ।
 विभजस्येति चाहादौ यदा जाता तदाभवत् ॥२८॥
 तस्याश्चैवांशजाः सर्वाः स्त्रियस्त्रिभुवने तथा ।
 एकादशविधा रुद्रास्तस्य चांशोद्भवास्तथा ॥२९॥

श्रद्धा से भादि लेकर कीर्ति पर्यन्त परम दुर्लभ जो अच्छी
 पुत्रियाँ थी उन्होने प्रजापति धर्म को अपना पति प्राप्त किया था ॥२३॥
 धीमान् भृगु ने ख्याति के साथ विवाह किया था । मरीचि ने भार्गवारणि
 और सम्भूति को अपनी पत्नियाँ बनाया था । अङ्गिरा मुनि ने स्मृति
 का पाणिग्रहण किया था ॥२४॥ पुण्यात्मा पुलस्त्य ने प्रीति के साथ
 और प्रलह मुनि ने क्षमा के साथ विवाह किया था । ऋतु नामक महा-
 मुनि ने सन्नति को पत्नी बनाया था और परम मनीषी अत्रि मुनि ने
 अनुसूया का पाणिग्रहण किया था ॥२५॥ भगवान् वसिष्ठ ने ऊर्जा के
 साथ विवाह किया था । वह ऊर्जा पद्मा दल के समान सुन्दर नेत्रों
 वाली थी जिसका परम वरिष्ठ वरिष्ठ ने अपनी पत्नी बनाया । विभावसु
 अग्निदेव ने स्वाहा के साथ और पितृगण ने स्वधा के साथ विवाह
 किया था ॥२६॥ सती जो शिव सम्भवा मानसी पुत्री कृता थी उस
 जगती की धात्री जगदम्बा का दक्ष ही को पति बनाया
 था ॥२७॥ सर्ग के आदि में कनकाण्डज ने अर्ध नारीश्वर को देखकर,
 आदि में विभाग करो—यह कहा था । जिस समय हुई थी तभी हुआ
 था ॥२८॥ उसी के अंश से जन्म ग्रहण करने वाली त्रिभुवन में समस्त

स्त्रियाँ हैं । उसके अंश से उद्भव प्राप्त करने वाले ग्यारह प्रकार के रुद्र हैं ॥२६॥

स्त्रीलिंगमखिलं सा वै पुल्लिंगं नीललोहितः ।
तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा दक्षमालोक्य मुव्रताम् ॥३०॥
भजस्व घात्री जगतां ममापि च तवापि च ।
पुत्राम्नो नरकात्राति इति पुत्रेस्त्वहोक्तिः ॥३१॥
प्रशस्ता तव कातेयं स्यात् पुत्री विश्वमातृका ।
तस्मात् पुत्री सती नाम्ना तवैषा च भविष्यति ॥३२॥
एवमुक्तस्तदा दक्षो नियोगाद्ब्रह्मणो मुनिः ।
लब्ध्वा पुत्रीं ददौ साक्षात् सती रुद्राय सादरम् ॥३३॥
धर्मस्य पत्न्यः श्रद्धाद्याः कीर्तिता वै त्रयोदश ।
तामु धर्मप्रजां वक्ष्ये यथाक्रममनुत्तमम् ॥३४॥
कामो दर्पोऽथ नियमः सतोषो लोभ एव च ।
श्रुतस्तु दंडः समयो बोधश्चैव महाद्युतिः ॥३५॥
अप्रमादश्च विनयो व्यवगायो द्विजोत्तमाः ।
धेमं सुग्नं यशश्चैव धर्मपुत्राश्च तामु यै ॥३६॥

यह तमस्म स्त्रीनिष्ठ हैं और नील लोहित पुल्लिङ्ग हैं । ब्रह्मा ने उग दक्ष को देगकर तथा मुव्रता का व्यवहार करने कहा था कि इस जगती की घात्री को सेवा करो । यह तुम्हारी भी है और मेरी भी है । पुत्रामनः नरक से जो प्राण परमा है वह पुत्र होना है, ऐसी यहा पर उक्ति है ॥३०॥३१॥ यह परम मुन्दरी एव प्रशस्त तथा दिव्य की जगती घात्री पुत्री है । इसी कारण मे मनी के नाम से यह तुम्हारा पुत्री होगी ॥३२॥ इस प्रकार मैं बड़े मये दश में उग समय ब्रह्मा को व घातेन से पुत्री को प्राप्त किया था और साक्षात् मनी को सादर पूर्ण भगवान् रुद्र को दे दिया था ॥३३॥ धर्म की श्रद्धा घादि नेरत गणियों को जिनका बलीय दिया गया है । उन नेरत गणियों में धर्म से

सन्तति समुत्पन्न हुई थी उस परम उत्तम सन्तति समुदाय का यथाक्रम वर्णन करूंगा ॥३४॥ धर्म के पुत्रों के नाम बताते हैं, काम, दर्प, नियम, सन्तोष, लोभ, धृत, दण्ड, समय, महाबुद्धि बोध, अप्रमाद, विनय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यज्ञ ये सर्व उन तेरह पत्नियों में धर्म के पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३५॥३६॥

धर्मस्य वै क्रियाया तु दंडः समय एव च ।
 अप्रमादस्तथा बोधो बुद्धेर्धर्मस्य तौ सुतौ ॥३७॥
 तस्मात्पंचदशैवेते तासु धर्मात्मजास्त्विह ।
 भृगुपत्नी च सुपुत्रे ह्यतिविष्णोः प्रिया श्रियम् ॥३८॥
 धातारं च विधातारं मेरोर्जामातरौ सुतौ ।
 प्रभूतिर्नाम या पत्नी मरीचेः सुपुत्रे सुतौ ॥३९॥
 पूर्णमासं तु मारीच तत् कन्याचतुष्टयम् ।
 तुष्टिर्ज्येष्ठा च वै दृष्टिः कृपिश्चापचितिस्तथा ॥४०॥
 क्षमा च सुपुत्रे पुत्रान् पुत्री च पुलहाच्छुभाम् ।
 कर्दम च वरीयासं सहिष्णु मुनिसत्तमाः ॥४१॥
 तथा कनकपीता स पीवरी पृथिवीसमाम् ।
 प्रीत्यां पुलस्त्यश्च तथा जनयामास वै सुतान् ॥४२॥
 दत्तोर्ण वेदबाहु च पुत्री चान्या दृपद्वतीम् ।
 पुत्राणां पण्डितसहस्रं सन्नतिः सुपुत्रे शुभा ॥४३॥

क्रिया नाम धारिणी धर्म की पत्नी में दण्ड और समय उत्पन्न हुए थे । अप्रमाद और बोध नामक पुत्रों ने धर्म की बुद्ध पत्नी में जन्म ग्रहण किया था ॥३७॥ इस प्रकार से ये पन्द्रह ही उन पत्नियों में धर्म के पुत्र प्रसूत हुये थे । भृगु मुनि की पत्नी ह्यति ने भगवान् विष्णु की परम प्रिया श्री को जन्म दिया था ॥३८॥ प्रभूति नाम वाली पत्नी ने मरीचि से महा मुनीन्द्र से दो पुत्र प्रसून किये थे जिनका नाम धाता और विधाता था और जो मेरु के आमाना थे ॥३९॥ मरीचि की पूर्ण-

मासी पत्नी ने चार कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था जिनके नाम-
तुष्टि, दृष्टि, कृषि और अपचिति थे । इनमें तुष्टि सबसे बड़ी थी ॥४०॥
क्षमा नाम धारिणी पत्नी ने पुलह नामक ऋषि से पुत्रों को प्रसव दिया
था और एक परम शुभ कन्या को भी जन्म ग्रहण कराया था और अति
वरिष्ठ एव सहिष्णु कदम को उत्पन्न किया था ॥४१॥ दुस्त्य ऋषि ने
प्रीति नाम वाली अपनी पत्नी में पृथिवी के तुल्य पीवर वनक पीता को
जन्म दिया था तथा पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥४२॥ परम शुभा
सन्नति ने दत्तोरां और वेदबाहु नामक पुत्रों को और अन्य हृषिकेशी पुत्री
को जन्म दिया था । एव साठ महत् पुत्रों की समुत्पन्न किया
था ॥४३॥

क्रनोस्तु भार्या सर्वे ते बालखिल्या इति श्रुता ।
सिनीवाली कूह चैव रामा चानुमति तथा ॥४४॥
स्मृतिश्च सुपुत्रे पत्नी मुनेश्चागिरसस्तथा ।
लब्धानुभावमग्निं च कीर्तिमतं च सुव्रता ॥४५॥
अनेर्भार्यानि स्यान्वै सुपुत्रे षट्प्रजास्तु या ।
तास्वेका कन्यका नाम्ना श्रुति सा सूनुपचकम् ॥४६॥
सत्यनेनो मुनिर्भव्यो मूर्तिराप शनैश्चर ।
सोमश्च वै श्रुति पक्षी पचानेयास्तु सूनव ॥४७॥
ऊर्जा वसिष्ठा द्वे लेभे सुताश्च सुतवत्सला ।
ज्यायसी पुङ्गरीवाक्षान्वासिष्ठान्वरलोचना ॥४८॥
रज सुहोत्रो वाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ।
सुतपा शुक्र इत्येते मुनेर्वै सप्त सूनव ॥४९॥
यश्चाभिमानी भगवान् भवात्मा पैतामहो बहिरसु प्रजानाम् ।
स्वाहा च तस्मात्सुपुत्रे सुताना नय त्रयाणां जगतां हिताय ॥५०॥

ये साठ महत् पुत्र कुतु की भार्या ने पैदा किए थे जो सप्त बाल
खिल्य — इस नाम से प्रसिद्ध हुये थे । आग्निरस की पत्नी ने जिसका शुभ

नाम स्मृति था सिनी वाली, कुहू, राका अनुमति को उत्पन्न किया था और उस सुव्रता ने लब्धानुभाव, अग्नि तथा कीर्तिमान को भी जन्म दिया था ॥४४॥४५॥ अग्नि महा मुनि की पत्नी अनसूया ने छ. सन्त-
तियों को समुत्पन्न किया था उनमें एक श्रुति नाम धारिणी कन्या थी और पाँच पुत्र थे ॥४६॥ पुत्रों के नाम—सत्यनेन, मुनिर्भण्ड, भूतिराय, शानेक्षर और सोम थे । इनमें छट्ठी श्रुति कन्या थी । ऐसे ये पाँच आश्वेय पुत्र हुये थे ॥४७॥ ऊर्जा नाम वाली सुतो पर अत्यन्त वारसत्य रहने वाली पत्नी ने वसिष्ठ मुनि से पुत्रों की प्राप्ति की थी । श्रेष्ठ नेत्रों वाली ज्यायसी पत्नी ने वसिष्ठ पुण्डरीकाक्ष पुत्रों को जन्म दिया था । मुनि के सात पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके शुभ नाम—रज, सुहोत्र, बाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र ये थे ॥४८॥४९॥ जो परम अभिमानी, भव की आत्मा, भगवान् बह्मि थे जो कि प्रजाओं के प्राण और पितामह के पुत्र थे उनसे तीनों लोकों के हित सम्पादन के लिये स्वाहा नामधारिणी पत्नी ने तीन पुत्रों को प्रसव दिया था ॥५०॥



॥ वह्नि, पितृ, रुद्र सृष्टि ॥

पवमान. पावकश्च शुचिरग्निश्च ते स्मृता ।
निर्मर्ध्यः पवमानस्तु वैद्युतः पावकः स्मृतः ॥१॥
शुचिः सौरस्तु विज्ञेय स्वाहापुनास्त्रयस्तु ते ।
पुत्रैः पौत्रैस्त्रिवह्नैतेपा सख्या सक्षेपतः स्मृता ॥२॥
विमृज्य सप्तक चादौ चत्वारिंशन्नवैव च ।
इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु च ॥३॥
सर्वे तपस्विनस्त्वेते सर्वे व्रतभृतः स्मृताः ।
प्रजाना पतयः सर्वे सर्वे रुद्रात्मकाः स्मृता ॥४॥
अयज्वानश्च यज्वान. पितर प्रीतिमानसा ।
अग्निप्यात्ताश्च यज्वान. वेपा वह्निपदः स्मृता ॥५॥

मेना तु मानसी तेषा जनयामास वै स्वधा ।

अग्निष्वात्तात्मजा मेना मानसी लोऋविश्रुता ॥६॥

असूत मेना मैनाक क्रौच तस्यानुजामुमाम् ।

गगा हैमवती जज्ञे भवागाश्लेषपावनीम् ॥७॥

इस छठे अध्याय में वह्नि से समुत्पन्न सृष्टि, पितृगण से उत्पन्न होने वाली सृष्टि और भगवान् रुद्र से समुत्पन्न होने वाली परम अद्भुत सृष्टि का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—वे पद्मान, पावक, शुचि और अग्नि नाम से कहे जाते हैं। वे तीन प्रकार के हैं—एक तो निर्मध्य हैं जो अरणी आदि के सघर्ष से समुत्पन्न होते हैं, दूसरे विष्णु से सम्बन्ध रखने वाले हैं और तृतीय सौर परम शुचि हैं जो सूर्य से सम्बन्ध रखने वाले हैं। ये तीन ही स्वाहा के पुत्र थे। यही पर पुत्र और पौत्रों के द्वारा इनकी सख्या सज्ञेप में बताई गई है। आदि में सप्तक या त्याग करके उनकास वह्नि बही गई है जो कि अश्वरो में प्रणीत होती है ॥१॥२॥३॥ ये सभी महान् तपस्वी थे तथा समस्त व्रत भूत कहे गये हैं। ये सब प्रजाओं के पति और भगवान् रुद्र की आत्मा कहे गये हैं ॥४॥ अयज्वान, यज्वान, पितर, प्रीति मानस, अग्निष्ठान्त और यज्वान शेष सब वह्निपद कहे गये हैं ॥५॥ उनमें स्वधा ने मेना को मानसी समुत्पन्न किया था। इसलिये अग्निष्वात्तात्मजा मेना लोक में मानसी के नाम से ही प्रसिद्ध है ॥६॥ मेना ने मैनाक और क्रौच को, उसकी अनुजा उमा को और भगवान् भव के अग के श्लेश को पाकर परम पावन हो जाने वाली हैमवती गगा को समुत्पन्न किया था ॥७॥

धरणी जनयामास मानसी यज्ञयाजिनीम् ।

स्वधा सा मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना ॥८॥

पितरोऽमृतपा प्रोक्तास्तेपा चैवेह विस्तर ।

ऋषीणा च कुल सर्वं शृणुध्व तत्सुविस्तरम् ॥९॥

वदामि पृथगध्यायसंस्थित वस्तुदूर्ध्वत ।

दाक्षायणी सती याता पार्श्वं रुद्रस्त पार्वती ॥१०॥

पश्चाद्दक्षं विनिर्द्यैपां पतिं लेभे भवं तथा ।
 तां ध्यात्वा व्यसृजद्रुद्राननेकान्नीललोहितः ॥११॥
 आत्मनस्तु समान्सर्वान्सर्वलोकनमस्कृतान् ।
 याचितो मुनिशार्दूलो ब्रह्मणा प्रहसन् क्षणात् ॥१२॥
 तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत् ।
 तान्दृष्ट्वा विविधाश्चुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान् ॥१३॥
 जरामरणनिर्मुक्तान् प्राह रुद्रान्पितामहः ।
 नमोऽस्तु वो महादेवास्त्रिनेत्रा नील लोहिताः ॥१४॥

उस मेहराज की पत्नी स्वधा ने जिसका मुख पद्म के समान
 सुन्दर था यज्ञ याजिनी मानसी धरणी को जन्म दिया था ॥१॥ पितर
 अमृतप कहे गये हैं । उनका यहाँ पर विस्तार दिया जाता है । यह
 समस्त ऋषियों का ही कुल है । आप लोग उसका सविस्तृत वर्णन ध्वनि
 करो ॥१॥ मैं ऊपर से ही आप सबके समक्ष में पृथक् अध्याय में सन्स्थित
 इसका वर्णन करता हूँ । सती दाक्षायणी जिमका शुभ नाम पार्वती है
 भगवान् रुद्र के पास खनी गई थी ॥१०॥ फिर इसी सती ने अपने
 पिता दक्ष का यज्ञ विध्वस्त करके अपना देह त्याग दिया था और पुनः
 भगवान् भव को ही अपना पति बनाया था । उसका ध्यान करके भग-
 वान् नील लोहित ने अनेक रुद्रों का विसर्जन किया था ॥११॥ हे मुनि
 शार्दूलो ! ये रुद्र भगवान् भव की आत्मा के ही तुल्य थे और सबके सब
 समस्त लोको के नमस्कृत अर्थात् परम वन्द्यमान हुए थे । ब्रह्मा के द्वारा
 प्रहसन करते हुये क्षण भर के लिये याचना की गई थी ॥१२॥ उन्होंने
 इन चौदह लोको को सबको पूर्णतय सञ्छादिन कर दिया था । उन
 विविध नाति के नील लोहित रुद्रों को ब्रह्मा ने देखा था ॥१३॥ जो रुद्र
 जरा और मरण से बिल्कुल निर्मुक्त थे, ब्रह्मा ने उनका दर्शन कर
 उनसे प्रार्थना की थी कि हे महादेवो ! आप तो नील लोहित और तीन
 नेत्रों के धारण करने वाले हैं । मैं आप सबको प्रणाम करता
 हूँ ॥१४॥

सर्वज्ञाः सर्वंगा दीर्घा ह्रस्वा वामनकाः शुभाः ।
 हिरण्यकेशा दृष्टिघ्ना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः ॥१५॥
 निर्द्वन्द्वा बीतरागाश्च विश्वात्मानो भवात्मजाः ।
 एवं स्तुत्वा तदा रुद्राभुद्रं चाह भवं शिवम् ।
 प्रदक्षिणीकृत्य तदा भगवान्कनकाण्डजः ॥१६॥
 नमोऽस्तु ते महादेव प्रजा नाहंसि शंकर ।
 मृत्युहीना विभो स्रष्टुं मृत्युयुक्ताः सृज प्रभो ॥१७॥
 ततस्तमाह भगवान्न हि मे तादृशी स्थितिः ।
 स त्वं यथाकामं मृत्युयुक्ताः प्रजाः प्रभो ॥१८॥
 लब्ध्वा ससर्जं सकलं शंकराच्च तुराननः ।
 जरामरणसंयुक्तं जगदेतच्चरा चरम् ॥१९॥
 शंकरोऽपि तदा रुद्रं निवृत्तात्मा ह्यधिष्ठितः ।
 स्थाणुत्वं तस्य वै विप्राः शंकरस्य महात्मनः ॥२०॥
 निष्कलस्यात्मनः शंभोः स्वेच्छाधृतशरीरिणः ।
 शं रुद्रः सर्वभूतानां करोति घृणया यतः ॥२१॥

ब्रह्माजी ने उन रुद्रों से प्रार्थना की थी कि आप तो सर्वज्ञ हैं और आपका सर्वत्र गमन होता है। आप दीर्घ, ह्रस्व और बीना के स्वरूप वाले परम शुभ हैं। आप हिरण्यकेश, दृष्टि का हनन करने वाले, नित्य, बुद्ध और निर्मल हैं ॥१५॥ आप निर्द्वन्द्वबीतराग, विश्व की आत्मा स्वरूप और भगवान् भव के आत्मज हैं। इस प्रकार स बहुत भाँति का उन रुद्रों का ब्रह्मा जी ने स्तवन किया था और फिर भव-एव शिव स्वरूप रुद्र से ब्रह्मा ने कहा—मनसे प्रथम कनकाण्डन ब्रह्मा ने भगवान् शिव की प्रदक्षिणी की थी फिर प्रार्थना की ॥१६॥ हे महादेव ! आपको मेरा प्रणाम है। हे शङ्कर ! आप प्रजा का सृजन करने के योग्य नहीं हैं। हे विभो ! आपने तो इन समस्त रुद्रों का ऐसा सृजन कर दिया है जिनकी अभी भी मृत्यु होगी ही नहीं। हे प्रभो ! मेरी यह विनती है कि आप सृजन करने की अनृण्यता करें तो जिनकी

मृत्यु भी होती हो ऐसी का मृजन करें ॥१७॥ ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को श्रवण कर भगवान् भय ने उनसे कहा था कि मेरी उम्र प्रचार की स्थिति नहीं है । शङ्कर ने कहा—हे प्रभो ! ऐसी मृत्यु से मुक्त रहने वाली प्रजा का मयेच्छया प्राप्त ही मृजन करें ॥१८॥ भगवान्, पुरातन ब्रह्मा ने शङ्कर की इस आज्ञा को प्राप्त कर सबसे मृजन किया था जो कि यह चराचर जगत् जरा भी मरण से मुक्त है ॥१९॥ भगवान्, शङ्कर भी उम्र समय छोड़ से निवृत्त आत्मा बाने होकर अभिहित हो गये थे । वे विप्रो ! उन महान् आत्मा बाने भगवान्, शङ्कर को स्था-
गुप्त हो गया था ॥२०॥ भगवान्, शम्भु की आत्मा निष्कम और पदनी ही इच्छा से धरीर धारण करने वाली है । क्योंकि वह द्रव्य को अनुत्पत्ता करके समस्त प्राणियों का कल्याण किया करते हैं अपना सर्वदा भन्ता ही चाहने बाने हैं ॥२१॥

शंकरश्चाप्रमर्शेन तदात्मा योग विधया ।
 धैर्यात्मस्य विरक्तस्य विमृत्तिर्यच्छमुच्यते ॥२२॥
 अर्गास्तु विषयत्यागः संसारभयतः क्रमान् ।
 धैर्यात्मजायते पुंभो विरागो दर्शनातरे ॥२३॥
 विमृशो विगुणतयागो विज्ञानस्याविचारतः ।
 तस्य चात्म्यं च स्निधानं प्रसादाप्यभेदिनः ॥२४॥
 धर्मो ज्ञानं च धैर्यात्मभैरव्यं संहरादितः ।
 स तस्य संहरः साक्षात्पिनाती निमलोदितः ॥२५॥
 ये संवत्स्रश्रिताः सर्वे मुच्यन्ते ते न संशयः ।
 न गच्छन्त्येव नरकं पापिहा अपि दारणम् ॥२६॥
 आग्निनाः शकरं मग्माद्वापुषि च शास्वतम् ।
 मायान्नादनेव धोक्ता पशुपतिर्गतिम् च ॥२७॥

विरक्त की विमुक्ति ही जिसका शम् कहा जाता है ॥२२॥ अणु अर्थात् स्वप्न का विषय त्याग सत्तार के भय से, क्रम से, वैराग्य से पुरुष को दर्शनान्तर मे विराग होता है ॥२३॥ समार निवर्त्तक विशिष्ट ज्ञान अर्थात् आत्मानात्मविवेक के स्वरूप वाले ज्ञान का अविचार से त्याग विगुण त्याग होता है अर्थात् उसमे ज्ञान रूप गुण नहीं होता है अत-
एव विमुरूप है । उस प्रकार के विचार का और इस त्याग का सम्बन्ध अर्थात् मेहनत भगवान् परमेष्ठी शिव के ही परम प्रसाद से हुमा करता है ॥२४॥ यहाँ पर धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य जीवो के अन्दर भगवान् शङ्कर से ही अर्थात् शङ्कर की परम कृपा से ही होते हैं । वह ही साक्षात् शङ्कर है अर्थात् निरतिशय सुख के करने वाले निराकार परमात्मा ही शङ्कर इस शुभ नाम से कहे जाते हैं । वह पिनाक नामक धनुष धारण करने वाले और नील लोहित है ॥२५॥ जो जीव भगवान् शङ्कर के आश्रय मे स्थित हो जाते है अर्थात् शरणागति 'मे जाकर प्राप्त हो जाते है वे निश्चय ही मुक्त हो जाया करते है, इसमे कुछ भी संशय नहीं है । भगवान् शङ्कर के भक्त हो जाने पर चाहे वे कितने ही महा-पापी क्यों न हो उनकी दाखल नरक की कभी भी प्राप्ति नहीं होती है, यह भगवान् शङ्कर की शरणागति की महिमा है ॥२६॥ शङ्कर के समाश्रय ग्रहण करने वाले प्राणी निश्चय ही शाश्वत पद की प्राप्ति किया करते है । ऋषियो ने कहा—अट्टाईश नरक मायान्त अर्थात् पत-
मे अविद्या वाले और घोराल अर्थात् जिनके घादि मे घोर अहङ्कार भरा हुमा है ऐसे ही होते है ॥२७॥

कोटयो नरकाणां तु पच्यन्ते तासु पापिनः ।

अनाश्रिताः शिव रुद्र शकरं नीललोहितम् ॥२८॥

आश्रय सर्वभूतानामन्ययं जगता पतिम् ।

पुरुष परमात्मानं पुरुहूतं पुरुषुतम् ॥२९॥

तमसा कालरुद्राख्य रजसा कनकांडजम् ।

सत्त्वेन सर्वंग विष्णुं निगुणं त्वे महेश्वरम् ॥३०॥

केन गच्छन्ति नरकं नराः केन महामते ।

कर्मणाकर्मणा वापि श्रोतुं कौतूहलं हि नः ॥३१॥

इन षट्ठाईश नरकों के करोड़ों भेद-प्रभेद होते हैं जिनमें पाप-कर्म करने वाले प्राणी अहर्निश घोरतिघोर यातनायें भोग करते हैं किन्तु ये वे ही प्राणी होते हैं जिन्होंने परम शिव, नील लोहित, रुद्र और भगवान् शङ्कर का आश्रय ग्रहण नहीं किया है ॥२८॥ भगवान्, शङ्कर समस्त भूतों के आश्रय हैं, अन्वय है और समस्त जगतों के पति हैं । भगवान् शिव परमात्मा पुरुष, पुरुषोत्तम और पुरुषोत्तम हैं ॥२९॥ तमोगुण की विशेषता से यह कालरुद्र नाम वाले प्रलयङ्कर स्वरूप वाले होते हैं । रजोगुण से कनकाण्डज प्रजा का सृजन करने ब्रह्मा के स्वरूप में स्थित होते हैं और जब सत्यगुण से युक्त होते हैं तो वही सर्वत्र गमन करने वाले विष्णु के रूप में रहा करते हैं । ये तीनों गुणों की प्रधानता से इनका स्वरूप होता है किन्तु जब कोई भी गुण का प्रभाव नहीं रहता है तो निर्गुण होने पर इनका महेश्वर स्वरूप होता है । ऋषियो ने कहा— हे महात्मा मति वाले ! प्राणी किस कर्म के करने से नरक में जाया करते हैं, इसके श्रवण करने का हम लोगो के हृदय में बड़ा कौतूहल हो रहा है । सो आप कृपा करके यह हमें बताइये । हमारे ऊपर आपका बड़ा ही अनुग्रह होगा ॥३०॥३१॥



॥ अष्टाङ्गयोग द्वारा शिवाराधना ॥

संक्षेपतः प्रवक्ष्यामि योगस्थानानि सांप्रतम् ।

कल्पितानि शिवेनैव हिताय जगतां द्विजाः ॥१॥

गलादधो वितस्त्या यन्नाभेरुपरि चोत्तमम् ।

योगस्थानमधो नाभेरावर्तं मध्यमं भ्रुवोः ॥२॥

सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते ।
 एकाग्रता भवेच्चैव सर्वदा तत्प्रसादतः ॥३॥
 प्रसादस्य स्वरूप यत्स्वसवेद्यं द्विजोत्तमाः ।
 ध्वस्तुं न शक्य ब्रह्माद्यैः क्रमशो जायते नृणाम् ॥४॥
 योगशब्देन निर्वाण माहेशं पदमुच्यते ।
 तस्य हेतुर्ह्यपेक्षानं ज्ञानं तस्य प्रसादतः ॥५॥
 ज्ञानेन निर्दहेत्पाप निरुध्य विषयान् सदा ।
 निरुद्धेन्द्रियवृत्तेस्तु योगसिद्धिर्भविष्यति ॥६॥
 योगो निरोधो वृत्तेषु चित्तस्य द्विजसत्तमाः ।
 साधनान्यष्टधा चास्य कथितानीह सिद्धये ॥७॥

सूतजी ने कहा—प्रथम मैं हे द्विजगण ! चित्त की वृत्ति के निरोध स्वरूप योग का संक्षेप में वर्णन करता हूँ । योग के अष्टाङ्ग साधन होते हैं जिनका यम-नियमादि नाम हैं । उन सबका क्रम बतलाया जायगा । इन योग के स्थानों की कल्पना भगवान्, शिव ने ही जगत् के हित के सम्पादन के लिए की है ॥१॥ गले से नीचे के भाग में एक बिन्दुस्ति परिमाण वाला और नाभि के ऊपर वह हृत्पुण्डरीक अत्युत्तम योग का स्थान है जिसकी मूलधार कहने हैं । भ्रूकुटियों के मध्य में होने वाला माकृष्ण त्रिकूट सत्ता वाला स्थान होता है ॥२॥ समस्त प्रथो से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान की निष्पत्ति ही आत्मा का योग कहा जाता है । इसीलिए योगत्रय धर्म रूप एक अतिशक्ति सन्निकर्ष शान में स्वीकार किया जाता है वह योगत्रय मुक्त और युञ्जान के भेद से दो प्रकार का होता है । जो मुक्त होता है उसे तो सर्वदा सभी कुण्ड का भान होता रहता है और युञ्जान योगी त्रिम समय भी ध्यान करता है उभी समय उसे भान हुआ करता है । उसके प्रसाद से सर्वदा एकाग्रता प्रसन्न मन का एक ही स्थान या उपादेय लक्ष्य पर स्थिर हो जानी है ॥३॥ उसके प्रसाद का जो स्वरूप होता है वह तो हे द्विजगण ! ऐसा है जो धर्म ही साधने द्वारा जानने के योग्य होता है । उसके प्रसादि

भी वर्णित नहीं कर सकते हैं । तात्पर्य यह है कि वह अनिवर्चनीय सुख होता है जिसे कोई भी किसी प्रकार से कभी कह ही नहीं सकता है । मनुष्यों को वह सुख क्रम से अभ्यास करने पर कुछ समय में हुपा करता है ॥४॥ योग शब्द के द्वारा निर्वाणस्य तुरीय महेश के पद को कहा जाता है । उसका हेतु ऋषि भगवान् रत्न का ही ज्ञान होता है और वह ज्ञान भी भगवान् सङ्कर की ही कृपा से हुपा करता है । उनकी कृपा का कारण भी उनकी कृपा ही है । जिस ज्ञान से इस भगाध संसार रूपी सागर से तारण हो जाता है ॥५॥ चित्त वृत्ति के निरोध का तात्पर्य यह है कि वहिर्मुख जो वृत्तियाँ होती हैं उनकी परिणति के विच्छेद होने से उन वृत्तियों का अन्तर्मुखता से परिणाम होकर स्व-कारण में लय हो जाता है । इसी को योग कहा जाता है । इससे जो ज्ञान होता है वह पापों को निदग्ध करके विग्यों का सदा निरोध कर देता है । जिसकी इन्द्रिय वृत्ति का निरोध हो जाता है उसको ही योग की सिद्धि हो जायगी ॥६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वृत्तों में चित्त के निरोध को ही योग कहते हैं और उसकी सिद्धि के लिए आठ साधन बहे गये हैं ॥७॥

यमस्तु प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो नियमस्तथा ।

तृतीयमासनं प्रोक्तं प्राणायामस्ततः परम् ॥८॥

प्रत्याहारः पञ्चमो वै धारण च ततः परा ।

ध्यान सप्तममित्युक्तं समाधिस्त्वष्टमः स्मृतः ॥९॥

तपस्युपरमश्चैव यम इत्यभिधीयते ।

अहिंसा प्रथमो हेतुर्यमस्य यमिना वराः ॥१०॥

सत्यमस्तेयमपरं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।

नियमस्यापि वै मूलं यम एव न संशयः ॥११॥

आत्मवत्सर्वभूतानां हितायैव प्रवर्तनम् ।

अहिंसैवा समाख्याता या चात्मज्ञानासिद्धिदा ॥१२॥

दृष्ट श्रुत चानुमित स्वानुभूत यथार्थम् ।
 वचन सत्यमित्युक्त परपीडाविवर्जितम् ॥१३॥
 नाश्लील कीर्तयेदेव ब्राह्मणानामिति श्रुति ।
 परदोषान् परिज्ञाय न वदेदिति चापरम् ॥१४॥

उन आठ साधनों के विषय में कहते हैं कि यम प्रथम साधन कहा गया है। दूसरा साधन नियम होता है। तृतीय उस योग का साधन आसन बताया गया है और इसके अनंतर चतुर्थ साधन का नाम प्राणायाम होता है ॥८॥ प्रत्याहार पाँचवा साधन है और इसके अनंतर छठवाँ साधन धारणा नाम से प्रसिद्ध है। ध्यान सप्तम योग का साधन होता है और अष्टम साधन समाधि है जो कि परमोपादेय मुख्य है ॥९॥ तप म उपरम का होना ही यम इस नाम से कहा जाता है। यम करने वालों के यम का हेतु सब प्रथम अहिंसा होती है ॥१०॥ इसके प्रति रिक्त सत्य, प्रस्तेय अन्नवर्ज्य और अपरिग्रह भी हेतु होते हैं। नियम का मूल भी यम ही होता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥११॥ अपने ही समान सुख-दुःखादि की सब प्रकार की दृष्टि से समस्त प्राणियों को समझकर उनका जित सम्पादन करना ही अहिंसा कही गई है जो कि आत्म ज्ञान की सिद्धि प्रदान करने वाली होती है ॥१२॥ जो कुछ देखा है सुना है, अनुमान द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है तथा अपना अनुभव प्राप्त किया है उसका यथाथ कथन कर देना ही सत्य कहा गया है किन्तु वह पराई पीडा से रहित ही होना चाहिए। इसलिए अप्रिय सत्य के कथन न करने को धर्म माना गया है क्योंकि उस अप्रिय स भी मानस पीडा उत्पन्न होती है ॥१३॥ अश्लील अर्थात् सज्जाजनक बात को कभी नहीं कहना चाहिये, ऐसी ब्राह्मणों की श्रुति है। पराये दोषों को जान कर भी दूसरों को उह नहीं कहना चाहिए ॥१४॥

अनीदान परस्वानामापद्यपि विचारत ।
 मनसा वमणा वाचा तदस्तेय समागत ॥१५॥

मैथुनस्याप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्यकर्मणा ।
 ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्त यतीना ब्रह्मचारिणाम् ॥१६॥
 इह वैखानसाना च विदाराणा विशेषत ।
 सदाराणा गृहस्थाना तथैव च वदामि व ॥१७॥
 स्वदारे विधिवत्कृत्वा निवृत्तिश्चान्यत सदा ।
 मनसा कर्मणा वाचा ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ॥१८॥
 मेध्या स्वनारो सम्भोग कृत्वा स्नान समाचरेत् ।
 एव गृहस्थो युक्तात्मा ब्रह्मचारी न सशय ॥१९॥
 अहिंसाप्येवमेवंपा द्विजगुर्वग्निपूजने ।
 विधिना यादृशी हिंसा सात्व हिंसा इति स्मृता ॥२०॥
 स्त्रिय सदा परित्याज्या सग नैव च कारयेत् ।
 कुणपेषु यथा चित्त तथा कुर्याद्विचक्षण ॥२१॥

आपत्ति के समय में भी विचार पूर्वक पराये धनो का ग्रहण नहीं करना और वह भी मन, वाणी और कर्म के द्वारा नहीं लेना अत्येव कहा जाता है । संक्षेप से यही अस्त्येय का लक्षण होता है ॥१५॥ मन, वाणी और कर्म के द्वारा ब्रह्मचारी और यतिमा की मैथुन की अप्रवृत्ति ही का ब्रह्मचर्य कहा गया है ॥१६॥ यही नियम वैखानसो के लिए और विशेष करके स्त्री रहितों के लिये होता है । जो स्त्री से युक्त गृहस्थ होता है उनके नियम भी ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का यही नियम होता है जिसको मैं तुमको बता रहा हूँ ॥१७॥ गृहस्था को अपनी ही पत्नी के साथ शास्त्रोक्त विधि का व्यवहार करना चाहिए और मन, वाणी तथा कर्म के द्वारा सदा अश्रय से या अन्य काल में निवृत्ति रखनी चाहिये । इस प्रकार व्यवहार का भा ब्रह्मचर्य ही कहा जाता है ॥१८॥ परम पवित्र अपनी स्त्री के साथ सम्भोग करके स्नान करना चाहिये । इस प्रकार से युक्त आत्मा वाला गृहस्थ ब्रह्मचारी ही होता है, इसमें कुछ भी मंदाय नहीं है ॥१९॥ इसी प्रकार से यह द्विज, गो और अग्नि के पूजन में अहिंसा होती है । विधि से जैसी हिंसा होती है उसका

अभाव ही ग्रहिसा कही गई है ॥२०॥ स्त्रियो का सदा परित्याग कर देना चाहिए और उनका सङ्ग कभी भी न करे । कुणपो मेजंसा वित्त होता है वंसा ही विचक्षण पुरुष को रखना चाहिये ॥२१॥

विष्णु त्रोट्सर्गकालेषु वहिभूमौ यथा मतिः ।

तथा कार्या रतौ चापि स्वदारे चान्यतः कुतः ॥२२॥

अङ्गारसदृशी नारी धृतकुंभसमः पुमान् ।

तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत् ॥२३॥

भोगेन तृप्तिर्नैवास्ति विषयाणां विचारतः ।

तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनसा कर्मणा गिरा ॥२४॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा वृष्णवत्सर्वं भूय एवाभिवर्धते ॥२५॥

तस्मात्प्रागः मदा कार्यंस्त्वमृतत्वाय योगिना ।

अविरक्तो यतो मर्त्यो नानायोनिषु वर्तते ॥२६॥

वहिभूमि मे मल और मूत्र के त्याग करने के समय मे जैसी मति होती है वैसी अपनी स्त्री के साथ रति मे भी अपनी भावना रखनी चाहिये । अन्य बात तो कोई प्रश्न ही नही उठता है ॥२२॥ नारी सर्वदा जलते हुये अङ्गारे के समान होती है और पुरुष धृत से पूर्ण कुम्भ के तुल्य होता है । इसलिये नारियो मे संसर्ग दूर से ही परिषर्जित कर देना चाहिये ॥२३॥ विषयो के भोग करने से उसका समास्वादन करके मन ऊन जायगा, ऐसा सोचना गलत है क्योंकि विषयो के साथ इन्द्रियों का सस्पर्श करते रहने से विरक्ति कभी नही हुषा करती है क्योंकि विषयो से तृप्ति होती ही नही अतः विचार से ही विषयो का त्याग करना चाहिये । इसलिये मन, वाणी और कर्म के द्वारा विराग करना चाहिये ॥२४॥ काम की वासना कामो के उपभोग करने से कभी दात नही हुषा करती है प्रत्युन उपभोग करते रहने से वह और अधिक बढ़ जायती है जिन तरह से अग्नि हवि के द्योतते रहने से विशेष प्रज्वलित

हो जाया करती है ॥२५॥ इसलिये योगी को अमृतत्व की प्राप्ति के लिये विषयोपभोग का त्याग ही सर्वदा कर देना चाहिये । जो मनुष्य विरक्त न होकर विषयो में ही सदा लित रहता है वही नानाबोनियो में जन्म लेकर प्रावागमन की असह्य पीडा को सहा करता है ॥२६॥

त्यागेनैवामृतत्व हि श्रुतिस्मृतिविदा वराः ।
 कर्मणा प्रजया नास्ति द्रव्येण द्विजसत्तमाः ॥२७॥
 तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनोवाक्यकर्मणा ।
 श्रुतौ श्रुतां निवृत्तिस्तु ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ॥२८॥
 यमाः संक्षेपतः प्रोक्ता नियमाश्च वदामि वः ।
 शौचमिज्या तपो दान स्वाध्यायोपस्थानिग्रहः ॥२९॥
 व्रतोपवासमौनं च स्नानं च नियमा दश ।
 नियमः स्यादनीहा च शौचं तुष्टिस्तपस्तथा ॥३०॥
 जपः शिवप्रणीधानं पद्मकाशं तथासनम् ।
 बाह्यमाम्यंतरं प्रोक्तं शौचमाम्यंतरं वरम् ॥३१॥
 बाह्यशौचेन युक्तः संस्तया चाम्यंतरं चरेत् ।
 आग्नेयं चारुणं ब्राह्मं कर्तव्यं शिवपूजकैः ॥३२॥

श्रुति और स्मृतियों के वेत्ता श्री ४ विद्वद्वरा का यही कथन है कि विषयो के उपभोगों के त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है । हे द्विजो मे श्रेष्ठो ! अग्नि होत्र आदि सहस्र सम्बन्धराग्त सत्रों से, पितृ-गण के ऋण के मोचन के लिये पुत्रादि की उत्पत्ति से और अत्यधिक धनादि के दान देने से अमृतत्व की प्राप्ति नहीं होती है यदि विषयो-पभोगों में बराबर रति बनी रहती है ॥७२॥ इसलिये मन, वाग्य और कर्म के द्वारा विराग करना चाहिए । श्रुतान्त जिम गमय हो उगी गमय सदा निवृत्ति रति में बरनी चाहिये । स्मरण, कीर्तन, केति प्रेक्षण, गुह्यभाषण, मन्त्रन, अध्यवसाय और क्रिया निवृत्ति यह आठ प्रकार का मोक्ष होना है । इसके विपरीत हो पाठ तरह का अत्यय होता है । इन तरह की रति करने पर भी ब्रह्मचर्य ही बड़ा जाना है ।

॥२८॥ मैंने यमो का वर्णन तो संक्षेप से कर दिया है और अब नियमों के विषय में वर्णन तुम्हारे सामने करता हूँ । शौच, इज्या, तप, दान, स्वाध्याय, उपस्थ (प्रस्रावेन्द्रिय) का नियंत्रण, व्रत, उपवास, मोन और स्नान ये दश नियम होते हैं । अनीहा, शौच, तुष्टि, तप, जप, शिव प्रणोधान तथा पद्म दण्ड स्वास्तिक आदि आसन भी नियम हैं किन्तु ये नियम बाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार के होते हैं । आभ्यान्तर शौच अति श्रेष्ठ होता है ॥२९॥३०॥३१॥ बाह्य शौच से युक्त होकर फिर आभ्यन्तर शौच करना चाहिये । शिव पूजको के द्वारा आग्नेय (भस्म-स्नान) वारुण (उदकस्नान) और ग्राह्य अर्थात् मन्त्र स्नान करना चाहिए ॥३२॥

स्नानं विधानतः सम्यक् पश्चादाभ्यं तरं चरेत् ।

आदेहांतं मृदालिप्य तीर्थतोयेषु सर्वदा ॥३३॥

अवगाह्यापि मलिनो ह्यंतःशौचविवर्जितः ।

शैबला भयका मत्स्याः सत्त्वा मत्स्योपजीविनः ॥३४॥

सदावगाह्यः सलिले विशुद्धाः किं द्विजोत्तमाः ।

तस्मादाभ्यन्तरं शौचं सदा कार्यं विधानतः ॥३५॥

आत्मज्ञानाभिसि स्नात्वा मृदालिप्य भावतः ।

सुवैराग्यमृदा शुद्धं शौचमेवं प्रकीर्तितम् ॥३६॥

शुद्धस्य सिद्धयो दृष्टाः नैवाशुद्धस्य सिद्धयः ।

न्यायेनागतया वृत्त्या सतुष्टो यस्तु सुव्रतः ॥३७॥

सतोपस्तस्य सततमतीतार्थस्य चास्मृतिः ।

चाद्रायणादिनिपुणस्त पांसि मुशुभानि च ॥३८॥

इसके अनन्तर पीछे से विधि-विधान से भस्मी भस्मि आभ्यन्तर स्नान करना चाहिये । सर्वदा तीर्थों के जल से पूरे देह में मृत्तिका का लेपन करके स्नान करे ॥३३॥ ग्रहनिदा जल में ही स्थित रहने के कारण अवगाहन बराबर करके भी अन्तःशौच में रहित भस्मि न रहने वाले शैबल, भयक, मत्स्य और मत्स्योप जीवी प्राणी होने हैं ॥३४॥

हे द्विजोत्तमो ! क्या जल में सदा अवगाहन करके ही विशुद्ध हो जाया करते हैं ? अर्थात् केवल अवगाहन मात्र से शुद्धि नहीं होती है। इस-
लिये विधि-विधान से सदा आत्मन्तर शोध अवश्य ही करना चाहिये ।
॥३५॥ आत्म ज्ञान रूपी जल में भावना से ही एक बार आलेपन करके
स्नान करे और सुन्दर वराम्य रूपी मृत्तिका से लेपन करना चाहिए ।
इस प्रकार से भी शुद्धि होती है और यह भी शोध कहा गया है ॥३६॥
जो शुद्ध होता है उसी को सिद्धियाँ होनी है और जो अशुद्ध रहता है
उसको सिद्धियाँ कभी नहीं देखी गई है । न्याय से समाप्त वृत्ति से जो
सुप्रसन्न सन्तुष्ट होता है उसको सिद्धियाँ हुमा करती हैं ॥३७॥ उस पुरुष
को निरन्तर सन्तोष होता है और अतीव अर्थात् अविद्यमान भय की
अस्मृति हुमा करती है । चान्द्रावण आदि में निपुण होना ही सुशुभ
तप होते हैं ॥३८॥

स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवस्य त्रिधा स्मृतः ।
वाचिकश्चाधमो मुख्य तपांशुश्चोत्तमोत्तमः ॥३९॥
मानसो विस्तरेणैव कल्पे पचाक्षरे स्मृतः ।
तथा शिवप्रणीधानं मनोवाक्यायकर्मणा ॥४०॥
शिवज्ञानं गुरोर्भक्तिरचला सुप्रतिष्ठिता ।
निग्रहो ह्यपट्टत्याशु प्रसक्तानीन्द्रियाणि च ॥४१॥
विषयेषु समासेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ।
चित्तस्य धारणा प्रोक्ता स्थानबधः समासतः ॥४२॥
तस्याः स्वास्थ्येन ध्यानं च समाधिश्च विचारतः ।
तत्रैकचित्तता ध्यानं प्रत्ययांतरवर्जितम् ॥४३॥
चिद्भासमयमात्रस्य देहशून्य मिव स्थितम् ।
समाधिः सर्वहेतुश्च प्राणायाम इति स्मृतः ॥४४॥
प्राणः स्वदेहजो वायुर्यमस्तस्य निरोधनम् ।
त्रिधा द्विजैर्यमः प्रोक्तो मदो मध्योत्तमस्तथा ॥४५॥

प्रणव के जप को ही स्वाध्याय कहा गया है । वह जप तीन प्रकार का होता है । वाचिक, मुख्य और उपाशु ये तीन प्रकार हैं । वाचिक जप तो अघम श्रेणी का होता है और उपाशुजप उत्तमोत्तम होता है ॥३६॥ पञ्चाक्षर कल्प मे विस्तार से ही मानस कहा गया है तथा मन, वाणी और कर्म के द्वारा शिव का ज्ञान तथा शिव का प्रणोधान और गुरु की अचल भक्ति सुप्रतिष्ठित होती है । विषयो में प्रसक्त इन्द्रियो को उनसे शीघ्र ही हटाकर रखना ही निग्रह कहा जाता है । ॥४०॥४१॥ इसी निग्रह अर्थात् नियम न संशय मे प्रत्याहार कहा गया है । चित्त का नियमन संशय मे ही धारणा कही गई है ॥४२॥ उस धारणा का स्वास्थ्य से ध्यान और विचार से समाधि होती है । प्रत्ययान्तर से वर्जित एक चित्तता के हो जाने को ही ध्यान कहते हैं ॥४३॥ अर्थमात्र का चित् अर्थात् चैतन्य ही जिसमे भास मान होता है वह चिद्भास है और स्थूल-लिङ्ग तथा सूक्ष्म देह जिसमे तीन हो जाया करते हैं वह देह दून्य है । इस प्रकार की तुरीय अवस्थिति का नाम ही समाधि है और सर्व हेतु प्राणायाम होता है ॥४४॥ अपने देह से उत्पन्न होने वाला जो प्राण वायु है उसका निरोधन करना ही यम कहा जाता है । द्विजों ने उस यम को मन्द, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार का कहा है ॥४५॥

प्राणायामनिरोधस्तु प्राणायामः प्रकीर्तितः ।

प्राणायामस्य मान तु मानाद्वादशकं स्मृतम् ॥४६॥

नीचो द्वादशमात्रस्तु उद्धातो द्वादशः स्मृतः ।

मध्यमस्तु द्विषुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रकः ॥४७॥

मुख्यस्तु यस्त्रिषुद्धातः पट्त्रिंशन्मात्र उच्यते ।

प्रस्वेदकपनोत्थानजनकश्च यथाक्रमम् ॥४८॥

आनंदोद्भवयोगार्थं निद्राधूर्णिस्तथैव च ।

रोमाचध्वनिसविद्धस्वागमो टनकपनम् ॥४९॥

भ्रमणं स्वेदजन्या सा संविन्मूच्छा भवेद्यदा ।

तदोत्तमोत्तमः प्रोक्तः प्राणायामः सुशोभनः ॥५०॥

प्राण और अपान दोनों प्रकार की वायुओं का निरोध प्राणायाम कहा गया है । उस प्राणायाम का मान द्वादश मात्रात्मक होना है, ऐसा कहा गया है ॥४६॥ बीच संज्ञा वाला प्राणायाम द्वादश मात्रात्मक है क्योंकि उद्दान द्वादश कहा गया है । जो मध्यम प्राणायाम होना है वह दो उद्दान वाला है और उगमे चौबीस मात्राओं होती हैं ॥४७॥ जो मुख्य नामक प्राणायाम है उसमें तीन उद्दान होने हैं और छत्तीस मात्राओं होनी हैं । वह यथाक्रम से नौव मध्यम और मुख्य नाम वाले भेदों में स्वेद, कम्पन और उत्थान के उत्थान करने वाले होते हैं ॥४८॥ यह आनन्द के उद्भव और योग की प्राप्ति के लिए निद्रा व व धूर्णित वाला होना है । इससे अद्यात्म बुम्भक बन या गया है । रोमाञ्च, ध्वनि घर्षण भ्रमणों के गुञ्जार की ध्वनि से तविष्ट (ग्रास) घपने घङ्गा की मोटन और कम्पन इनमें हुमा करता है । इनमें भ्रमरी संज्ञा वाला बुम्भक सूचित किया गया है ॥४९॥ इनमें जिस समय प्राणायाम के भ्रम से स्वेद और उगमे उत्थान होने वाली मयाधि संज्ञा वाली मूच्छा होनी है तो उसे उत्तमोत्तम अत्यन्त श्रेष्ठ प्राणायाम कहा गया है । इस से आवर्णी नामक बुम्भक बनाया गया है ॥५०॥

समर्भोऽग्नं द्रव्युक्तः गजपो विजयः क्रमात् ।

इमो वा गरभो यापि दुग्धर्पोऽथ केमरी ॥५१॥

गृहीतो दम्भमानन्तु यथास्वम्पन्तु जायते ।

तथा ममीरग्नोऽप्यस्यो दुग्धर्पश्च योगिनाम् ॥५२॥

न्यायतः सेव्यमानन्तु ग एवं म्यम्भनां यत्रेन् ।

मधेय मृगगाड् नागः धरनो यात्रि दुमंदः ॥५३॥

पातान्मयंसाधोनादम्भने परमादगात् ।

तथा पत्रिचक्षुः सान्ध्यं ममयं पाथिगच्छति ॥५४॥

योगादभ्यसते यस्तु व्यसनं नैव जायते ।

एवमभ्यस्यमानस्तु मुनेः प्राणो विनिर्दहेत् ॥५५॥

मनोवाक्कायजान् दोषान् कर्तुर्देहं च रक्षति ।

संयुक्तस्य तथा सम्यक्प्राणायामेन धीमतः ॥५६॥

दोषात्तस्माच्च नश्यन्ति निश्वासस्तेन जीर्यते ।

प्राणायामेन सिध्यन्ति दिव्याः शात्यादयः क्रमात् ॥५७॥

हठ योग में आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम बताये गये हैं—
सूर्य भेदन, उज्ज्वि, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, आभरी, मूर्च्छा और
प्लावनी ये उनके नाम होने हैं । पूरक रेचक सहित सगर्भ, अगर्भ अर्थात्
केवल सजप, विजप, इभ अथवा शरभ, दुराधर्ष, केशरी, गृहीत और
दम्यमान स्वस्थ के अनुसार हुआ करता है । उसी प्रकार से वायु अस्वस्थ
होता है तो योगियों को भी यह दुराधर्ष हो जाया करता है ॥५१॥५२॥
न्याय से जब यह सेव्यमान किया जाता है तो वह स्वस्थता को प्राप्त होता
है । जिस प्रकार से दुर्मद मृगराज, नाग अथवा शरभ को रोति पूर्वक
ही अपने बक्ष में किया जाना है उसी तरह से प्राणायाम के अभ्यास में
विधि पूर्वक ही वायु को स्वस्थ दशा में लाया जाता है ॥५३॥ कुछ
काल पर्यन्त परमादर के साथ योग का अभ्यास करने से इसका दमन
किया जाता है और फिर भली भाँति ज्ञान हो जाने से यह प्राण वायु
स्वस्थता और समता को प्राप्त हो जाया करता है ॥५४॥ योग से
अर्थात् योगाभ्यास की प्रक्रिया से जो अभ्यास करता है तो कुछ भी
व्यसन नहीं उत्पन्न होता है । इस प्रकार से अभ्यास करने वाले मुनि का
प्राण, मन, वाणी और शरीर के समुत्पन्न दोषों को विशेष रूप से
निर्दग्ध कर दिया करता है । तथा कर्त्ता के देह की रक्षा किया करता
है जबकि कोई बुद्धिमान् प्राणायाम से भली भाँति संयुक्त हुआ करता
है ॥५५॥५६॥ इससे जितने भी दोष होते हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं
और निश्वास जीर्यमाण हो जाया करते हैं । प्राणायाम की क्रिया पूर्ण-

तथा सिद्ध हो जानी है तो इसके द्वारा क्रम से दिव्य शान्ति प्रादि सबकी क्रम से सिद्धि हो जाया करती हैं ॥५७॥

शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च तथा क्रमात् ।
 आदौ चतुष्टयस्येह प्रोक्ता शान्तिरिह द्विजाः ॥५८॥
 सहजागतुकानां च पापानां शान्तिरुच्यते ।
 प्रशान्तिः संयमः सम्यग्ब्रह्मसामिति संस्मृता ॥५९॥
 प्रकाशो दीप्तिरित्युक्तः सर्वतः सर्वदा द्विजाः ।
 सर्वेन्द्रियप्रमादस्तु बुद्धेर्वै मरुतामपि ॥६०॥
 प्रसाद इति संप्रोक्तः स्नाते त्विह चतुष्टये ।
 प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥६१॥
 नागः कूर्मस्तु कृकलो देवदत्तो धनंजयः ।
 एतेषां यः प्रसादस्तु मरुतामिति संस्मृतः ॥६२॥
 प्रयाणं कुरुते तस्माद्वायुः प्राण इति स्मृतः ।
 अपानयत्यपानस्तु आहारादीन् क्रमेण च ॥६३॥
 व्यानो व्यानामयत्यगं व्याध्यादीनां प्रकोपकः ।
 उद्वेजयति मर्माणि उदानोऽयं प्रकीर्तितः ॥६४॥

हे द्विजगण ! प्रादि मे शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद क्रम से इन चारो की शान्ति के नाम से कहा गया है ॥५८॥ सहज और प्रागन्तुक पापों के प्रशमन को शान्ति कहा जाता है । ब्रह्मों का प्रकर्ष रूप से जो संयम होना है उसको प्रशान्ति कहा गया है ॥५९॥ सर्वदा सभी और मे प्रकाश का हो जाने को ही दीप्ति कहा गया है । समस्त इन्द्रियो का, बुद्धि का और मरुतो का भी जो प्रसाद होता है उसी को प्रसाद कहा गया है ॥६०॥ मरुतो के प्रसाद से यह तात्पर्य होता है कि दश प्रकार के वायुओं का प्रसाद होना चाहिए । इस चतुष्टय मे जो प्रसाद शब्द का प्रयोग है वह स्वान्न से सम्बद्ध है और मरुतो का प्रसाद वायुओं से सम्बद्ध होना है । प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये दश मरुत हैं इनका प्रसाद भी

होता है ॥६१॥६२॥ जो वायु शरीर का त्याग करके प्रयाण कर जाता है इसी से उसका नाम प्राण होता है । जो क्रम से ग्रहारादि को ग्रहणीत किया करता है इसीनिये इसका नाम ग्रहण वायु होता है । अङ्ग को व्यानामपित करके व्याधि आदि का प्रकोपक होने से इसका नाम व्यान वायु होता है और मर्मों के उद्बोजन करने के कारण यह उदान नाम से कहा गया है ॥६३॥६४॥

सम नयति गानाणि समान पच वायव ।
उद्गारे नाग आख्यात कूर्म उन्मीलने तु स ॥६५॥
कृवल क्षुतकायैव देवदत्तो विजृम्भणो ।
धनजयो महाघोष सवंग स मृतेऽपि हि ॥६६॥
इति यो दशवायूनां प्राणायामेन सिध्यति ।
प्रसादोऽस्य तुरीया तु सज्ञा विप्राश्चतुष्टये ॥६७॥
विश्वरस्तु महान् प्रज्ञा मनो ब्रह्माचिति स्मृति ।
ख्याति सवित्तत पश्चादीश्वरो मतिरव च ॥६८॥
बुद्धेरेता द्विजा सज्ञा महत परिशीतिता ।
अस्या बुद्धे प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्धयति ॥६९॥
विश्वरो विश्वरीभावो द्विद्वाना मुनिसत्तमा ।
अग्रज सर्व तत्त्वाना महान्य परिमाणत ॥७०॥
यत्प्रमाणगुहा प्रज्ञा मनस्तु मनुते यत ।
वृहत्वादवृहत्वाच्च ब्रह्मा ब्रह्मविदावरा ॥७१॥

जो वायु गात्रों को सम रूप से नयन किया करता है वह समान नाम से प्रसिद्ध है । उद्गार (उरार) में नाम और उन्मीलन के काम को करने वाला वायु कूर्म मगर होता है ॥६५॥ क्षुतक लिए शृषण नामक वायु हाता है और विजृम्भण के करने में देवदत्त नामक वायु की श्रिता रूपा करती है । धनञ्जय वायु महाघोष तथा मयगामो हाता है । यह प्राणों के निवृत्त जाने पर विद्यमान रहता है और ग्रहण भक्षण करने पर निवृत्त करता है ॥६६॥ हे विप्रगण ! इस प्रकार ये

प्राणायाम के द्वारा जो प्रसाद सिद्ध होता है चतुष्टय में इसकी तुरीया सज्ञा होती है ॥६७॥ महान् विस्वर अर्थात् विरुद्ध द्वन्द्वोप ताप से शून्य होता और उस महत्तत्त्व रूपा बुद्धि के प्रज्ञा, मन, ब्रह्मापचिति, स्मृति, स्याति और सबित् तथा पीछे ईश्वर एव मति ये नाम हैं जो क्रि परि-कीर्तित हुए हैं । इस बुद्धि का प्रसाद प्राणायाम से सिद्ध होता है ॥६८॥ ॥६९॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! द्वन्द्वो का विस्वरी भाव ही विस्वर होना है । यह समस्त भूतों का अग्रज है अर्थात् सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाला है और परिमाण से महान् है । ७०॥ जिसके प्रमाण को गृहा प्रज्ञा होती है जिससे मन अब बुद्ध होता है । बृहत् और बृहण होने से ब्रह्म के वेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा है ॥७१॥

सर्वकर्माणि भोगार्थं यद्विनोति चितिः स्मृता ।
 स्मरते यत्स्मृतिः सर्वं संविद्धं विदते यतः ॥७२॥
 ख्यायते यत्त्विति स्यातिज्ञाना दिभिरनेकशः ।
 सर्वतत्त्वाधिपः सर्वं विजानाति यदीश्वरः ॥७३॥
 मनुते मन्यते यस्मान्मतिर्मेतमतावराः ।
 अर्थ बोधयते यच्च बुद्धयते बुद्धिरुच्यते ॥७४॥
 अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्धयति ।
 दोषान्विनिर्दहेत्सर्वान् प्राणायामादसौ यमी ॥७५॥
 पातकं धारणाभिस्तु प्रत्याहारेण निर्दहेत् ।
 विषयान्विषयवद्ध्यात्वा ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥७६॥
 समाधिना यतिश्रेष्ठाः प्रज्ञावृद्धिं विवर्धयेत् ।
 स्यान् लब्ध्वेव कुर्वीत योगाष्टांगानि वै क्रमात् ॥७७॥
 लब्ध्वासनानि विधिवद्योगसिद्धयर्थमात्मवित् ।
 आदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते ॥७८॥

जो योग करने के लिये समस्त कर्मों का चयन किया करती है । इसीलिये इसका नाम चिति कहा गया है । जो सब स्मरण किया जाता है अतएव उसका स्मृति नाम है और जिससे सबका लाभ होता है

उसे सम्बिद् कहते हैं ॥७२॥ जो ख्यात होती है । इसीलिये उसे ख्याति कहा जाता है क्योंकि अनेक ज्ञानादि से ख्यात होती है । समस्त तत्त्वों का स्वामी सबको जानता है अतः ईश्वर है ॥७३॥ अवबोधन करती है और मन्यमान होती है । इसी से मतिमानों में श्रेष्ठ मति होती है । जो अर्थ का बोधन करती है और बुद्ध्यमान होनी है । इसलिये बुद्धि कही जाती है ॥७४॥ इस बुद्धि का प्रमाद प्राणायाम के द्वारा सिद्ध होता है । यह यम का प्रतिपालक पुरुष प्राणायाम से समस्त दोषों को विशेष रूप से निर्दोष कर देता है ॥७५॥ धारणाओं के द्वारा पातक नष्ट होना है और प्रवाहार से विषयों को तथा अनीश्वर गुणों को विष की भाँति दृशन करके ध्यान के द्वारा विनष्ट कर देना है ॥७६॥ यनियों में परम श्रेष्ठ पुरुष समाधि के द्वारा प्रज्ञा की वृद्धि को विशेष रूप से वर्धन किया करते हैं । योगों के आठों अङ्गों को क्रम से स्थान को प्राप्त कर के ही करना चाहिए । ॥७७॥ आत्मवेत्ता पुरुष को प्राप्त प्राप्त करके योग की सिद्धि के लिए विधि पूर्वक अभ्यास करना चाहिए । आदेश और अनाल में किये हुए अभ्यास में योग के वास्तविक दर्शन नहीं होते हैं ॥७८॥

अग्न्यग्न्यामे जले वापि शुष्करूपेण च ये तथा ।
जनुव्याप्ते दमशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥७९॥
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसचये ।
अगुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिममग्निषे ॥८०॥
नाचरेद्देहवाधाया दीर्घमनस्यादिसभवे ।
गुगुप्ते तु गुभे रम्ये गुहाया पर्वतस्य तु ॥८१॥
भयक्षेत्रे गुगुप्ते वा भवाराधने वनेषु वा ।
गृहे तु गुगुभे देशे विजने जतुयजिते ॥८२॥
अत्यतनिर्मले गम्यक् मुप्रतिप्ले विचित्रिने ।
दण्डगोश्वरमंशो यत्प्रागगुगुपिने ॥८३॥

नानापुष्पसमाकीर्णं वितानोपरि शोभिते ।
 फलपल्लवमूलाढ्ये कुशपुष्पसमन्विते ॥८४॥
 समासनस्थो योगागान्यभ्यसेद्धृषितः स्वयम् ।
 प्रणिपत्य गुरु पश्चाद्भुव देवी विनाय कम् ॥८५॥

अब यह बताया जाता है कि योग के अङ्गों का अभ्यास किन स्थानों पर करना चाहिए और कहाँ पर नहीं करना चाहिए, जिन स्थानों स्थलों में नहीं करना चाहिये वे ये हैं—अग्नि के समीप में, जल में, शुष्क पत्तों के ढेर में, जन्तुओं से व्याप्त स्थान में, श्मशान, जीर्णगोष्ठ और चतुष्पथ अर्थात् चौराहे में, ध्वनि से परिपूर्ण स्थान में, भय से युक्त स्थान में, चैत्य और बल्मोक के सञ्चय वाले स्थान में, प्रशुभ स्थान में, दुष्ट लोगों से घिरे हुए तथा मशक आदि से समन्वित स्थान में कभी योग के यमादि अङ्गों का अभ्यास नहीं करना चाहिये । अभ्यासी के देह में किसी भी प्रकार की बाधा हो तब भी उस दशा में तथा किसी कारण से बीमनस्य हो तो उस हालत में भी अभ्यास नहीं करे । ॥७९॥८०॥ अभ्यास करने के उपयुक्त स्थल ये हैं—सुगुप्त, शुभ, रम्य, स्थान, पर्वत की गुहा, सुगुप्त भव क्षेत्र, भवाराध, वन, गुह, सुशुभ देश, एकान्त जहाँ कोई भी मनुष्य न हो, जीव जन्तुओं से रहित स्थान, अत्यन्त निर्मल स्थान, भली भाँति लिपा पुता तथा विचित्रित स्थान जो कि दर्पण के उदर के समान हो, कृष्ण गूगल से धूपित स्थल, विभिन्न भाँति के पुष्पों से समाकीर्ण स्थल जिसमें ऊपर वितान की शोभा हो, फन, पल्लव तथा मूल से युक्त स्थान, कुश पुष्पों से युक्त स्थल में भली भाँति से आसन पर स्थित होकर स्वयं परम प्रसन्न होते हुए, योग के अङ्गों का अभ्यास करना चाहिए । अभ्यास करने के आरम्भ में पहिले गुरु चरणों को प्रणाम करे और इसके अनन्तर शिव, देवी जगदम्बा तथा विघ्न-विनाशक गणेश को प्रणाम करना चाहिए ॥८१॥८२॥८३॥८४॥८५॥

योगीश्वरान् सशिष्याश्च योगयुञ्जीत योगवित् ।
 आसनं स्वस्तिव वध्वा पद्ममर्षासनं तु वा ॥८६॥

समजानुस्तथा धीमानेकजानुरथापिवा ।
 सम दृढासनो भूत्वा सत्त्वस्य चरणानुभौ ॥८७॥
 सवृतास्योपवद्धाक्ष उरो विष्टम्भ चाग्रतः ।
 पार्णिण्या वृषणौ रक्षस्तथा प्रजनन पुन ॥८८॥
 किंचिदुन्नामितशिरा दतदंतान्न सस्पृशेत् ।
 सप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्व दिशश्चानवलो कथन् ॥८९॥
 तम प्रच्छाद्य रजसा रज सत्त्वेन छादयेत् ।
 ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा शिवस्य न समभ्यसेत् ॥९०॥
 ॐकारवाच्यं परमं शुद्धं दीपशिखाकृतिम् ।
 ध्यायेद्वै पुंडरीकस्य कर्णिकाया समाहितं ॥९१॥
 नाभेरधस्ताद्वा विद्वान् ध्यात्वा कमलमुत्तमम् ।
 त्र्यंगुले चाष्टकोणं वा पञ्चकोणमपि वा ॥९२॥

योग के घेत्ता को शिष्यो के सहित योगीश्वरो को प्रणाम करके
 फिर योग में युक्त होना चाहिए । योगाभ्यास में स्वस्तिन नाम वाला
 अथवा पद्मासन या अर्धासन बांधकर बैठना चाहिए ॥८६॥ धीमान्-
 पुरुष को समजानु होकर अथवा एक जानु होकर आसन पर सम एवं
 दृढ़ स्थित होना चाहिए और दोनों चरणों को सहित कर लेवे ॥८७॥
 मुख बंद बिये हुए उप बद्ध नेत्रों वाला रहे तथा अपने उर स्थल को
 आगे की ओर विष्टम्भित कर लेवे । दोनों पार्णियों से अपने वृषणों की
 तथा जननेंद्रियों की रक्षा करते हुए स्थित होना चाहिए ॥८८॥ अभ्यासी
 पुरुष को अपना शिर कुछ उन्नमित रखना चाहिए और दाँतों से दाँतों का
 स्पर्शन करे । किसी भी प्रकार न देखते हुए अपनी नासिका के अग्र भाग पर
 ही दृष्टि रखे ॥८९॥ तमोगुण की रजोगुण से और रजोगुण
 की सत्त्व गुण से छादित कर देना चाहिए । इस तरह जिस
 समय शुद्ध सत्त्वगुण में स्थिति हो जावे तो भगवान् शिव के ध्यान
 का अभ्यास करे ॥९०॥ योग के अभ्यासी को ॐकार से वाच्य-परम
 शुद्ध स्वरूप शीप की शिखा की प्राकृति वाले शिव का समाहित होकर

कमल की कणिका में ध्यान करना चाहिए ॥६१॥ अथवा विद्वान्
अभ्यासी पुरुष को अपनी नाभि के नीचे उत्तम कमल का ध्यान
करना चाहिए । वह तीन अंगुल में अष्टकोण अथवा पञ्चकोण का
ध्यान करे ॥६२॥

त्रिकोण च तथाग्नेय सौम्यं सौरं स्वशक्तिभिः ।
सौरं सौम्यं तथाग्नेयमथ वानुक मेण तु ॥६३॥
आग्नेयं च ततः सौरं सौम्यमेव विधानतः ।
अग्नेरधः प्रकल्प्यैवं धर्मादीनां चतुष्टयम् ॥६४॥
गुणत्रयं क्रमेणैव मण्डलोपरि भावयेत् ।
सत्त्वस्थं चित्तयेद्द्रुमं स्वशक्त्या परिमण्डितम् ॥६५॥
नाभौ वायु गले वापि भूमध्ये वा यथाविधि ।
ललाट फलिकाया वा मूर्ध्नि ध्यानं समाचरेत् ॥६६॥
द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे क्रमेण तु ।
दशारे वा षडङ्गे वा चतुरङ्गे स्मरेच्छिवम् ॥६७॥
कनकाभे तथागारसन्निभे सुसितेऽपि वा ।
द्वादशादित्यसनाशे चद्रविवसमेऽपि वा ॥६८॥
विद्युत्कोटिनिभे स्थाने चित्तयेत्परमेश्वरम् ।
अग्निवर्णस्थे वा विद्युद्बलयाभे समाहितः ॥६९॥
वज्रकोटिप्रभे स्थाने पद्मरागनिभेऽपि वा ।
नीललोहितविवे वा योगी ध्यानं समम्य सेत् ॥१००॥

यह त्रिकोण अपनी शक्तियों से युक्त आग्नेय, सौम्य तथा सौर
हो अथवा सौर, सौम्य और आग्नेय हो । इस अनुक्रम से रखकर फिर
आग्नेय-सौर और सौम्य वा विधान से रखे । अग्नि के निचले भाग में
इस प्रकार से धर्म, ज्ञान, वरुण और ऐश्वर्य को प्रकल्पित करें ॥६३॥॥६४॥
क्रम से ही तीनों गुणों की मण्डन के ऊपर के भाग में भावित करना
चाहिए । सत्त्व में स्थित अपनी शक्ति से परिमण्डित भगवान् रुद्र वा
विमान करना चाहिए ॥६५॥ नाभि में, गले में, भ्रूओं के मध्य भाग में,

तलाट की फनिका में अथवा मूर्द्धा में यथाविधि ध्यान करना चाहिए । ॥६६॥ द्विदल में, पौडसार में तथा क्रम से द्वादशार में, दशार में, पडस्न में अथवा चतुरस्र में शिव का स्मरण करना चाहिए ॥६७॥ सुवर्ण के समान आभा वाले, जलते हुए अङ्गार के तुल्य, मुसित, द्वादश आदित्यों के समान, चन्द्र के बिम्ब के सदृश अथवा विद्युत् कोटि के समान स्थान में परमेश्वर का विन्तन करना चाहिए । ध्वनि के वर्ण वाले, विद्युत् के वलय की आभा से युक्त, वज्र कोटि की प्रभा से समुत्, पद्मराग मणि के सदृश अथवा नीललोहित बिम्ब में समाहित होकर योगी को ध्यान या अभ्यास करना चाहिए ॥६८॥६९॥१००॥

महेश्वरं त्वदि ध्यायेन्नाभिपद्मे सदाशिवम् ।
चंद्रवृद्धं ललाटे तु भ्रूमध्ये शंकरं स्वयम् ॥१०१॥
दिव्ये च शाश्वतस्थाने शिवध्यानं समम्पसेत् ।
निर्मलं निष्कलं ब्रह्म सुशान्तं ज्ञानरूपिणम् ॥१०२॥
अनक्षयमनिर्देश्यमणोरत्नतरं शुभम् ।
निरालंबमनवयं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥१०३॥
कौतल्यं चैव निर्वाणं निश्चयेयसमनूपमम् ।
अमृतं चाक्षरं ब्रह्म ह्यपुनर्भव मदुतम् ॥१०४॥
महानद परानद योगानन्दमनामयम् ।
ह्योपादेयरहितं सद्धमात्सूदमतरं शिवम् ॥१०५॥
स्वयवेद्यमवेद्यं तच्चिद्रूपं ज्ञानमयं परम् ।
अतीन्द्रियमनाभाम परं तत्त्वं परान्तरम् ॥१०६॥
मर्वोपाधिविनिर्मुक्तं ध्यानगम्यं विचारतः ।
अद्वयं तमसदन्वेयं परम्नालक्षितं परम् ॥१०७॥

द्वितीय में महेश्वर का ध्यान करे—नाभि के नीचे पद्म में भगवान् महादेव का ध्यान करे—नवाट परितः में पद्म गृह तिल का ध्यान करे और ध्रुवों के मध्य भाग त्रिपुटी में स्वयं भगवान् महेश्वर का ध्यान करना चाहिए ॥१०१॥ दिव्य भूर्पा के ध्यान में ओ

किं शाश्वत है शिव के ध्यान करने का अभ्यास करे जिनका स्वरूप निमल, निष्कल, ब्रह्ममय, सुशान्त और ज्ञान के रूप वाला है ॥१०२॥ वह लक्षण रहित, अनिर्देश्य, अणु से भी अल्पतर, शुभ, निरालम्ब, अतर्क्य और विनाश तथा उत्पत्ति से वञ्चित है ॥१०३॥ उनका रूप कैवल्य, निर्वाण, निःश्रेयस, अनूपम, अमृत, अक्षर, ब्रह्म, अप्रुतर्भव और अदभुत है ॥१०४॥ शिव का स्वरूप शिव (मङ्गलमय), महानन्द, परानन्द, योगानन्द, अनामय, हेय तथा उपादेयता से रहित, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर होता है ॥१०५॥ शिव स्वयं पवित्र, प्रवेष्ट, पर, ज्ञानमय, इन्द्रियो की पहुँच से परे, अनाभास, परात्पर, परतत्त्व है ॥१०६॥ भगवान् शिव समस्त उपाधियों से विशेष रूप से निर्मुक्त, विचार अर्थात् भावना से ही ध्यान गम्य, अद्वय और तमोगुण से परे सस्थित एव पर है ॥१०७॥

मनस्येवं महादेवं तद्वत्पदने चापि चिंतयेत् ।
 नामौ सदाशिव चापि सर्वदेवात्मकं विभुम् ॥१०८॥
 देहमध्ये शिवं देवं शुद्धज्ञानमयं विभुम् ।
 कन्यसेनैव मार्गेण चोद्धातेनापि शङ्करम् ॥१०९॥
 क्रमशः कन्यसेनैव मध्यमेनापि सुव्रतः ।
 उत्तमेनापि वी विद्वान् कुम्भकेन समभ्यसेत् ॥११०॥
 द्वात्रिंशद्रेचयेद्धीमान् तद्विदि नामौ समाहितः ।
 रेचक पूरकं त्यक्त्वा कुम्भकं च द्विजोत्तमाः ॥१११॥
 साक्षात्समरसेनैव देहमध्ये स्मरेच्छिवम् ।
 एकीभाव समेत्यैव तत्र यद्रससंभवम् ॥११२॥
 आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् साक्षात्समरसे स्थितः ।
 धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणम् ॥११३॥
 ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधि रभिधीयते ।
 अथवा जानिनां निप्राः संपर्कादिव जायते ॥११४॥

प्रयत्नाद्वा तयोस्तुल्य चिराद्वा ह्याचिराद्विज्वाः ।

योगांतरायास्त स्याथ जायंते युञ्जतः पुनः ॥११५॥

नश्यत्यभ्यासतस्तेऽपि प्रणिधानेन वै गुरोः ॥११६॥

इस प्रकार के उक्त स्वरूप वाले महादेव का मन में ही अथवा हृदय के पद्म में चिन्तन करना चाहिए । नाभि के नीचे के भाग में सर्व देशों के स्वरूप वाले विभु सदा शिव का ध्यान करे ॥१०८॥ देह के मध्य में शुद्ध ज्ञान मय, विभु, देव शिवका चिन्तन करे । सुषुम्ना नाड़ी रूप मार्ग के द्वारा और द्वादश मात्रक कुम्भक के द्वारा शङ्कर का ध्यान करे ॥१०९॥ इस प्रकार से चिन्तन का अभ्यास करना चाहिए । प्रारम्भ में कन्यस (सुषुम्ना नाड़ी रूप मार्ग) से ही अभ्यास करे फिर सुषुम्न पुरुष को मध्यम चौबीस मात्रा वाले कुम्भक के द्वारा और इसके अनन्तर उत्तम कुम्भक से जो छत्तीस मात्रा वाला होता है ध्यान करने का अभ्यास करना चाहिए ॥११०॥ धीमान् पुरुष को वत्तीस रेचन करना चाहिए । हे द्विजोत्तम गण ! रेचक और पूरक का त्याग करके केवल कुम्भक के द्वारा ही अभ्यास करे ॥१११॥ देह के मध्य में समरस के द्वारा ही साक्षात् शिव का स्मरण करना चाहिए । इस प्रकार से एकीभाव को प्राप्त होकर वहां पर रस का सम्भव हो जाता है ॥११२॥ समरस में स्थित होने वाला विद्वान् साक्षात् ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त होता है । जिसमें द्वादश प्राणायाम होते हैं वह धारणा होती है अर्थात् धारणा के नाम से कही जाती है और द्वादश धारणा वाला ध्यान कहा जाता है । बारह ध्यान जब तक होते हैं तब वह समाधि कही जाती है । हे विप्रगण ! अथवा जानियो के सम्पर्क होने से ही समाधि हो जाया करती है ॥११३॥११४॥ प्रयत्न अर्थात् अभ्यास करने से उन दोनों का तुल्य ही फल होता है । जिसने पूर्व जन्म में भी कुछ अभ्यास किया है उसको अल्प काल में ही समाधि हो जाया करती है और जो नवीन अभ्यास करने वाला व्यक्ति है उसको चिर काल में सिद्धि होती है क्योंकि उस योगाभ्यास करने वाले को योग में घटनेक

प्रन्तराय (विघ्न) होते हैं ॥११५॥ वे विघ्न भी गुरु के सन्निधान होने से और सतत अभ्यास करते रहने से नष्ट हो जाया करते हैं ॥११६॥



॥ योग मार्ग के विघ्न ॥

आलस्यं प्रथमं पश्चाद्व्याधिपीडा प्रजायते ।
 प्रमादः संशयस्थाने चित्तस्येहानवस्थितिः ॥१॥
 अश्रद्धादर्शनं भ्रांतिदुःखं च त्रिविधं ततः ।
 दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योगता ॥२॥
 दशधाभिप्रजायते मुनेर्मोहातरायकाः ।
 आलस्यं चाप्रवृत्तिश्च गुरुत्वात्वायचित्तयोः ॥३॥
 व्याधयो घातुर्वैषम्यात् कर्मजा दोषजास्तथा ।
 प्रमादस्तु समाधेस्तु साधनाना मभावनम् ॥४॥
 इदं येत्युभय पृक्तं विज्ञानं स्थानसंशयः ।
 अनवस्थितचित्तत्वमप्रतिष्ठा हि योगिनः ॥५॥
 लब्धायामपि भूमौ च चित्तस्य भवबंधनात् ।
 अश्रद्धाभावरहिता वृत्तिर्वै माधनेषु च ॥६॥
 माध्वे नित्तस्य हि गुरो ज्ञानाचारशिवादिषु ।
 विपर्ययज्ञान मिनि भ्रांतिदर्शनमुच्यते ॥७॥

है । प्रमाद, सशय के स्थान में चित्त की अवस्थिति न होना, श्रद्धा का अभाव, भ्रान्ति, तीन प्रकार के दुःख जिनके नाम आध्यात्मिक, आधि-भौतिक और आधिदैविक है । आध्यात्मिक दुःख शारीरिक और मान-सिक दो प्रकार का होता है, अथ प्राणियों के द्वारा किया हुआ दुःख आधिभौतिक होता है और शीतोष्णादि से होने वाला दुःख आधिदैविक कहा जाता है । दुर्मनस्कता और सेवन के अयोग्य विषयों में योग का रहना ये दश प्रकार के विघ्न हुआ करते हैं जो मुनियों के योगाभ्यास में बाधक होते हैं । आलस्य तो किसी भी कर्म में अव्यवृत्त होने का नाम है ॥१॥२॥३॥ शरीर में मांस मज्जादि जो सात धातुयें होती हैं उनकी विषमता के होने से व्याधियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं जो दोषज और कर्मज दो प्रकार की होती हैं । समाधि के साधनों के अभाव का नाम प्रमाद है ॥४॥ ऐसा है या ऐसा है—इस प्रकार का उभय रस्सी विज्ञान को स्थान सशय कहते हैं । चित्त अवस्थित न होना योग की अप्रतिष्ठा होती है ॥५॥ समुचिन्त भूमि के प्राप्त होने पर भी सासारिक विषय व धनों के कारण से साधनों में चित्त की वृत्ति का श्रद्धा के भाव से रहित होना ही अश्रद्धा दशन होता है ॥६॥ चित्त के साध्य होने पर गुरु, ज्ञान, आचार और शिव आदि में विपरीत ज्ञान का समुत्पन्न होना ही भ्रान्ति दशन के नाम से कहा जाता है ॥७॥

अनात्मन्यात्मविज्ञानमज्ञानात्तस्य सनिधौ ।
 दुःखमाध्यात्मिकं प्रोक्तं तथा चैवाधिर्भौतिकम् ॥८॥
 आधिदैविकमित्युक्तं त्रिविधं सहजं पुनः ।
 इच्छाविघातात्सक्षोभश्चेतसस्तदुदात्तम् ॥९॥
 दीर्मनस्य निरोद्धव्यं वैराग्येण परेण तु ।
 तमसा रजसा चैव सस्पृष्टं दुर्मनः स्मृतम् ॥१०॥
 तदा मनसि सजातं दीर्मनस्यमिति स्मृतम् ।
 हठात्स्वीकरणं कृत्वा योग्यायोग्यं विवेकतः ॥११॥

विषयेषु विचित्रेषु अतोविषयलोसता ।
 अतराया इति स्याता योगस्येते हि योगिनाम् ॥१२॥
 अत्यतोत्साह युक्तस्य नश्यति न च सशय ।
 प्रनष्टेष्वतरायेषु द्विजा पश्चाद्वि योगिन ॥१३॥
 उपसर्गा प्रवर्तते सर्वे तेषसिद्धिसूचका ।
 प्रतिभा प्रथमा सिद्धिर्द्वितीया श्रवणा स्मृता ॥१४॥

अनाराम म आत्म विज्ञान और अज्ञान से उसकी सन्निधि म प्राप्त होता आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक तथा सहज तीन प्रकार का दुःख बताया गया है । यह इच्छा क विधान होने से होने वाला चित्त का सलोम कहा गया है ॥१२॥ दोमनस्य दोष को परम वैराग्य के द्वारा निरुद्ध करना चाहिए । यह तभी होता है जब मन तमोगुण और रजोगुण से सस्पृष्ट हुआ करता है ॥१०॥ उस समय म जो एक प्रकार की विकृति मन मे होती है उसे ही दोमनस्य कहा जाता है । योग्य अथवा अयोग्य ■ विवेक से हठ गुर्वक किसी को भी स्वीकार कर लिया जाता है ॥११॥ विषय बहूत ही अद्भुत प्रकार के आकर्षण रखने वाले होते हैं उनम जोषो की स्वाभाविक चञ्चलता हुआ हो करती है कि उन का समास्वादन प्राप्त करे—योगियो के ये ही योगाभ्यास मे अन्नराय हुआ करते हैं ॥१२॥ जो योगाभ्यासी अत्यन्त उत्साह वाक्ता होता है उसके ये सभी विघ्न नष्ट हो जाया करते हैं—इसमे तनिक भी सशय नहीं है । हे द्विजगण ! जब सभी विघ्नो का नाश हो जाता है तो फिर श्रमति अभ्यास से पूरा योगी हो जाया करता है ॥१३॥ ओ उपसर्ग होते हैं वे समाधि मे अतिरिक्त के सूचक उपद्रव हुआ करते हैं और व्युत्थान मे सिद्धि रूप होते हैं । उनमे प्रतीभा प्रथम सिद्धि है और द्वितीया सिद्धि श्रवणा यानी गई है ॥१४॥

वार्ता तृतीया विप्रद्रास्तुरीया चेह दर्शना ।
 आस्वादा पञ्चमी प्रोक्ता वेदना पश्चिमा स्मृता ॥१५॥

स्वल्पपट्सिद्धिसत्यागात्सिद्धिदा सिद्धयो मुने ।
 प्रतिभा प्रतिभावृत्ति प्रतिभाव इति स्थिति ॥१६॥
 बुद्धिविवेचना वेद्य बुद्धयते बुद्धिरुच्यते ।
 सूक्ष्मे व्यवहिनेतीते विप्रकृष्टे त्वनागते ॥१७॥
 सर्वत्र सर्वदा ज्ञान प्रतिभानुक्रमेण तु ।
 श्रवणात्मवंशदानामप्रयत्नेन योगिन ॥१८॥
 ह्रस्वदीर्घप्सुतादीना गृह्याना श्रवणादपि ।
 स्पर्शस्याधिगमो यस्तु वेदना तूपपादिता ॥१९॥
 दर्शनादिव्यरूपाणा दर्शन चाप्रयन्तत ।
 सविद्विष्यरमे तस्मिन्नाम्बादो ह्यप्रयत्नत ॥२०॥
 वार्ता च दिव्यगधाना तन्मात्रा बुद्धिसविदा ।
 विन्दते योगिनस्तस्मादाग्रह्यभुवन द्विजा ॥२१॥

हे विप्रेन्द्र गण । वार्ता तृतीया, दर्शना चतुर्थी, आम्बादा और वेदना छठी हाती है ॥१५॥ ये पूर्वोक्त स्वल्प छं सिद्धियों के रसाग स भोग से व्यावृत्त मानशील मुनि को अग्निमादि सिद्धियाँ हाती हैं । अथ प्रतिभादि सिद्धियों का विवरण करते हैं । प्रतिभा, प्रतिभावृत्ति और प्रतिभाव इनकी स्थिति होती है ॥१६॥ विवेचना को बुद्धि कहते हैं । इसका द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का योग्य का ज्ञान प्राप्त बिना जाता है अतएव इस बुद्धि कहते हैं । सूक्ष्म में व्यवधान में मुनि में, अनीत में, विप्र कृष्ण में और अज्ञान में प्रतिभा का आवृत्त स सर्वत्र सर्वदा ज्ञान हाता है । योगियों को ज्ञान ही प्रयत्न का समस्त दायरा का अर्थ है ही ज्ञान ही जाता है ॥१७॥१८॥ ह्रस्व-दीर्घ और प्सुता आदि गुणों का श्रवण से ही ज्ञान हो जाता है । जो स्पर्श का अधिगम हाता है वह वेदना उप पाठिन की गई है ॥१९॥ दिव्य रूपों का बिना किसी प्रयास के ही अगम दान होता है वह दान का कहो जातो है । सविद्विष्यरमे में प्रयत्न के बिना आम्बादन होने में आम्बादा नहीं जाती है ॥२०॥ बुद्धि सविदा दिव्य गणों की स माया को वार्ता कहते हैं ।

हे द्विजगण ! इसी कारण से योगी लोग ब्रह्म भुवन पर्यन्त का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥

जगत्यस्मिन् हि देहस्थं चतुःषष्टिगुणं समम् ।
 औपसर्गिकमेतेषु गुणेषु गुणितं द्विजाः ॥२२॥
 संत्याज्यं सर्वथा सर्वमौपसर्गिकमात्मनः ।
 पैशाचे पार्थिवं चाप्यं राक्षसानां पुरे द्विजाः ॥२३॥
 याक्षे तु तैजसं प्रोक्तं गाधर्वं श्वसनात्मकम् ।
 ऐन्द्रे व्योमात्मकं सर्वं सौम्ये चैव तु मानसम् ॥२४॥
 प्राजापत्ये त्वहकारं ब्राह्मे बोधमनुत्तमम् ।
 आद्ये चाधौ द्वितीये च तथा षोडशरूपकम् ॥२५॥
 चतुर्विंशत्तृतीये तु द्वात्रिंशच्च चतुर्थके ।
 चत्वारिंशत् पञ्चमे तु भूतमात्रात्मकं स्मृतम् ॥२६॥
 गन्धो रसस्तथा रूपं शब्दः स्पर्शस्तथैव च ।
 प्रत्येकमष्टधा सिद्धं पञ्चमेतच्छतक्रतोः ॥२७॥
 तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पञ्चाशत्तथैव च ।
 चतुः षष्टिगुणं ब्राह्मं लभते द्विजसत्तमाः ॥२८॥

हे द्विजो ! इस जगत् में चौंसठ देह में रहने वाले औपसर्गिक मायिक सब भावे कहे जाने वाले गुणों में ग्रथित है ॥२२॥ सच्चिदानन्द रूप आत्मा के सब औपसर्गिक दुःख के प्रयोजक है अतएव सब प्रकार में त्याग कर देने के योग्य है। पिशाचों के लोक में पार्थिव, राक्षसों के पुर में उदकमय, गक्षों के पुर में तैजस और गन्धर्वों के पुर वायुस्वरूप बहे गये हैं। ऐन्द्रपुर में व्योमात्मक, सौम्य में सब मानस हैं ॥२३॥२४॥ प्राजापत्य में ब्रह्मकारूप और ब्राह्म में उत्तम ज्ञान रूप है। आद्य अर्थात् पार्थिव में आठ गुण हैं और द्वितीय में सोलह रूप पाये होते हैं ॥२५॥ तृतीय में, चौथी में, पाँच, चतुर्थ में, छठी में, एवं, पञ्चम में, षष्ठी में है जो कि भूत मात्रात्मक बहे गये हैं ॥२६॥ गन्ध, रस, रूप शब्द और स्पर्श प्रत्येक इनमें आठ-आठ प्रकार के हैं और शतव्रतों के पञ्चम में भी आ-

प्रकार हैं । इस प्रकार से अडतालीस तथा छप्पन है । ये चौसठ गुण ब्रह्म के ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥२७॥२८॥

औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत् ।
लोकेष्वालोक्य योगेन योगवित्परमं सुखम् ॥२९॥
स्थूलता ह्रस्वता बाल्यं वार्धक्यं यौवनं तथा ।
नानाजातिस्वरूपं च चतुर्भिर्देहधारणम् ॥३०॥
पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंयुतः ।
एतदष्टगुणं प्रोक्तमैश्वर्यं पार्थिव महत् ॥३१॥
जले निवसनं यद्वद्भूम्यामिव विनिर्गमः ।
इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः ॥३२॥
यत्रेच्छति जगत्यास्मिस्तत्रास्य जलदर्शनम् ।
यद्यद्वस्तु समादाय भोक्तुमिच्छति कामतः ॥३३॥
तत्तद्रसान्वितं तस्य त्रयाणां देहधारणम् ।
भांडं विनाथ हस्तेन जलपिंडस्य धारणम् ॥३४॥
अन्नणत्वं शरीरस्य पार्थिवेन समन्वितम् ।
एतत् पौंडशकं प्रोक्तमाप्पमैश्वर्यमुत्तमम् ॥३५॥

जो ब्रह्म पर्यन्त भुवनो मे लोको मे योग के द्वारा औपसर्गिक का विचार करके परित्याग कर देता है वह योग का वेत्ता निरवधिक परम सुख को प्राप्त किया करता है ॥२९॥ अब पार्थिवादि आठ ऐश्वर्यों को बताते हैं—स्थूलता, ह्रस्वता, बाल्य, वार्धक्य, यौवन और चारों के द्वारा अनेक जाति स्वरूप वाला देह का धारण करना जो पार्थिवांश के विना नित्य सुरभि और गन्ध से संयुत है । इन आठ गुणों से युक्त यह महत् पार्थिव ऐश्वर्य होता है ॥३०॥३१॥ जिस प्रकार से जल में निवास है वैसे ही भूमि की तरह विनिर्गम होता है । यदि चाहे तो समुद्र का भी पान करने में समर्थ होता है और आनुर नहीं होता है ॥३२॥ इस जगत् में जहाँ पर भी चाहता है वहाँ पर ही इसको जल का दर्शन होता है । कामना से जो-जो भी वस्तु वह चाहता है उन्हें लाकर खाने की

इच्छा करता है ॥३३॥ उसको वे सत्र उसी-उसी रस से युक्त होती हैं और तीनों का देह धारण होता है । बिना पात्र के हाथ के द्वारा ही जल के पिण्ड को धारण कर लेता है ॥३४॥ शरीर में व्रण नहीं होते हैं जो कि पार्थिव से समन्वित हैं । यह सोलह प्रकार का उदक भय ऐश्वर्य कहा गया है जो कि अत्युत्तम है ॥३५॥

देहादग्निविनिर्माणं तत्तापमयवर्जितम् ।

लोकं दग्धमपीहान्यददग्धं स्वविधानतः ॥३६॥

जलमध्ये हुतवह चाधाय परिरक्षणम् ।

अग्निनिग्रहणं हस्ते स्मृतिमात्रेण चागमः ॥३७॥

भस्मीभूतविनिर्माणं यथापूर्वं सकामतः ।

द्वाम्या रूपविनिष्पत्तिर्विना तस्त्रिभिर्वात्मनः ॥३८॥

चतुर्विंशत्तमकं ह्येतत्तजसं मुनिपुङ्गवा ।

मनोगतित्वं भूतानामतर्निवसनं तथा ॥३९॥

पर्वतादिमहाभारस्कधेनोद्वहनं पुनः ।

लघुत्वं च गुरुत्वं च पाणिभ्यां वायुधारणम् ॥४०॥

अगुल्यग्रनिघातेन भूमे सर्वत्र कपनम् ।

एवेन देहनिष्पत्तिर्वर्तित्वा स्मृतं बुधैः ॥४१॥

अध्यायाविहीननिष्पत्तिरिन्द्रियाणां च दर्शनम् ।

आशाशगमनं नित्यमिन्द्रियार्थं समन्वितम् ॥४२॥

देह से अग्निका विशेष रूप से निर्माण करना जिसमें उसके ताप का भय भी नहीं होता है और दग्धलोक को योश के ऐश्वर्य के प्रभाव से दाह मूल्य कर देता है ॥३६॥ जन के मध्य में अग्नि का स्थापन करके उसका परिरक्षण करना, हाथ में अग्नि का निग्रहण और स्मरण मात्र से उत्पन्न आगम हो जाता, भस्मी भूत का विशेष निर्माण जैसा कि कामना के पूर्व में था । दो से अर्पान् वायु और आशाश से देह की निष्पत्ति बिना उन तीनों के करता ये ओगीत प्रकार का

संज्ञस ऐश्वर्यं होता है । मन के अनुसार गति प्राप्त करना तथा भूतो का अन्त निवसन करना, पर्वत आदि के महान् भार को कन्धे के द्वारा उद्धहन करना, लघुत्व, गुरुता और हाथों से वायु को धारण कर लेना, अद्भुत के अग्रभाग के निधान से समस्त भूमि में कम्पन उत्पन्न कर देना और एक के द्वारा शरीर की निष्पत्ति कर देना ये सब बुद्धों के द्वारा वातेश्वर्यं कहे गये हैं ॥३७॥३८॥३९॥४०॥४१॥ छाया विहीन की निष्पत्ति और इन्द्रियो का दर्शन, इन्द्रियों के अर्थों से समन्वित निश्च आकाश का गमन ऐन्द्र ऐश्वर्यं है ॥४२॥

दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम् ।
 तन्मात्रालिङ्गग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम् ॥४३॥
 ऐन्द्रमैश्वर्यमित्युक्तमेतैरुक्तः पुरातनः ।
 यथाकामोपलब्धिश्च यथाकाम विनिर्गमः ॥४४॥
 सर्वत्राभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम् ।
 कामानुरूपनिर्माणं वशित्व प्रियदर्शनम् ॥४५॥
 संसारदर्शनं चैव मानसं गुणलक्षणम् ।
 छेदनं ताडनं वधं संसारपरिवर्तनम् ॥४६॥
 सर्वभूतप्रसादश्च मृत्युकालजयस्तथा ।
 प्राजापत्यमिदं प्रोक्तमाह ङ्कारिकमुत्तमम् ॥४७॥
 अकारणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रह एव च ।
 प्रलयश्चाधिकारश्च लोकवृत्तप्रवर्तनम् ॥४८॥
 असादृश्यमिदं व्यक्तं निर्माणं च पृथक्पृथक् ।
 संसारस्य च कर्तृत्वं ब्राह्मेतदनुत्तमम् ॥४९॥

दूर में शब्द का ग्रहण, समस्त शब्दों का अवगाहन, तन्मात्रालिङ्ग का ग्रहण और समस्त प्राणियों का निदर्शन यह ऐन्द्र ऐश्वर्यं कहा गया है और इनके द्वारा अर्थात् इन पाँच प्रकारों से पुरातन कहा गया है । यथा काम उपलब्धि करना और जैसी इच्छा हो वैसा ही विनिर्गम ।

परना सर्वत्र अभिभव, सर्व गुह्यो वा निदर्शन, इच्छानुसार रूप वा निर्माण वशित्व, प्रियदर्शन और समार वा दर्शन ये सब मानस गुण के लक्षण है । छेदन, ताडन, बन्ध, गन्धार वा परिवर्त्तन समस्त भूतो वा प्रसाद, भृत्यु के काल पर जय प्राप्त करना और प्राजापत्य यह उत्तम ब्राह्मणिक कहा गया है ॥४३॥४४॥४५॥४६॥४७॥ अफारण जगत् की सृष्टि तथा अनुग्रह, प्रलय, अधिनार, सोक वृत्त का प्रवर्त्तन, पृथक्-पृथक् निर्माण और वह भी सादृश्य से रहित और इस समस्त ससार का कर्त्ता होना यह सब उत्तम ब्राह्मण गुण है ॥४८॥४९॥

एतावत्तत्त्वमित्युक्त प्राधान्यं वैष्णव पदम् ।
 ब्रह्मणा तद्गुण शक्य वेत्तुमन्येन शक्यते ॥५०॥
 विद्यते तत्पर शैव विष्णुना नावगम्यते ।
 असंख्येयगुण शुद्ध को जानीयाच्छिवात्मकम् ॥५१॥
 व्युत्थाने सिद्धयश्चैता ह्युपसर्गाश्च कीर्तिता ।
 निरोद्धव्या प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु ॥५२॥
 नाशातिशयता ज्ञात्वा विषयेषु भयेषु च ।
 अश्रद्धया त्यजेत्सर्वं विरक्त इति कीर्तित ॥५३॥
 वैतृष्ण्य पुरुषे ख्यात गुणवैतृष्ण्यमुच्यते ।
 वैराग्येणाव सत्याज्या सिद्धयश्चोपसर्गिका ॥५४॥
 औपसर्गिक माब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत् ।
 निरुद्धार्थं त्यजेत्सर्वं प्रसीदति महेश्वर ॥५५॥
 प्रसन्ने विमला मुक्तिर्वैराग्येण परेण वै ।
 अथवानुग्रहाय च लीलार्थं वा तदा मुनि ॥५६॥

इतना ब्राह्मण्य का तत्त्व कहा गया है । यह मुख्य कारण है । इसलिए प्राधान्य वैष्णव पद होता है । उसके गुण को ब्रह्मा के द्वारा ही जाना जा सकता है अन्य किसी के द्वारा नहीं ॥५०॥ उससे भी पर शैव तत्त्व होता है जिसको विष्णु भी नहीं जानते हैं । शिवात्मक ऐश्वर्य असंख्येय गुण वाला और शुद्ध होता है उसे कौन जान सकता

है ? अर्थात् कोई भी नहीं जान पाता है ॥५१॥ ये जो सब चौंसठ सिद्धियाँ कही गई हैं वे सब व्यवहार काल में ही सिद्धियाँ होती हैं अर्थात् सिद्धि के नाम से पुकारी जाती हैं किन्तु समाधि के समय में ये सब विघ्न स्वरूप होती हैं—ऐसा कहा गया है । इनका निरोध परमोत्कृष्ट वैराग्य के द्वारा ही प्रयत्न पूर्वक उस दशा में करना चाहिए ॥५२॥ विषयो में और भयों में नाश की अतिशयता को समझकर विरक्त पुण्य को अभ्रष्टा के द्वारा इन सबका त्याग कर चाहिए ॥५३॥ पुण्य में तृष्णा का अभाव होना प्रसिद्ध है और वह वितृष्णा का भाव गुणों का ही कहा जाता है । इन औपसर्गिक अर्थात् विघ्न कारक सिद्धियों का त्याग ही उत्कृष्ट वैराग्य के द्वारा कर देना चाहिए ॥५४॥ ब्रह्मभुवन पर्यन्त औपसर्गिक सबका त्याग कर देने और निरोध करके ही सबका त्याग कर देना चाहिए तभी भगवान् महेश्वर प्रसन्न होते हैं ॥५५॥ इन सिद्धियों में भगवान् महेश्वर के अनुग्रह एवं लीला के प्राप्तार्थ अजासक्ति मुनि की होनी चाहिए । परमोत्कृष्टा वैराग्य के द्वारा महेश्वर के प्रसन्न हो जाने पर ही विमल मुक्ति की प्राप्ति हुआ करती है ॥५६॥

अनिरुद्धं विचेष्टेद्यः सोप्येवं हि सुखी भवेत् ।

क्वचिद्भूमिं परित्यज्य ह्याकाशे क्रीडते श्रिया ॥५७॥

उद्दिगरेच्च क्वचिद्वेदान् सूक्ष्मानर्थान् समासतः ।

क्वचिच्छ्रुते तदर्थेन श्लोकबन्धं करोति सः ॥५८॥

क्वचिद्दंडकबन्धं तु कुर्याद्विबन्धं सहस्रशः ।

भृगपक्षिसमूहस्य स्तज्ज्ञानं च विदति ॥५९॥

ब्रह्माद्यं स्थावरान्तं च हस्तामलकबद्धवेत् ।

बहुनाथ किमुक्तेन विज्ञानानि सहस्रशः ॥६०॥

उत्पद्यते मुनिश्चेष्टा मुनेस्तस्य महात्मनः ।

अम्पासेनैव विज्ञानं विशुद्धं च स्थिरं भवेत् ॥६१॥

तेजोऽल्पाणि सर्वाणि सर्वं पश्यति योगवित् ।

देवदिवान्यनेकानि विमानानि सहस्रशः ॥६२॥

पश्यति ब्रह्मविष्ण्वीन्द्रयमाग्निवरुणादि कान् ।

ग्रहनक्षत्रताराश्च भुवनानि सहस्रशः ॥६३॥

जो इन भौपसंगिक सिद्धियों का निरोधन करके उन्हें प्राप्त कर लेने की चेष्टा किया करता है वह भी इस प्रकार का सुख प्राप्त करके सुखी हो जाता है कि किसी भूमि का त्याग करके आकाश में श्री के साथ क्रीडा किया किया करता है ॥५७॥ वह कहीं पर वेदों का उद्दिगरण करता है तथा परम सूक्ष्म अर्थों को संक्षेप में बता दिया करता है और किसी समय शास्त्र में उसके अर्थ के द्वारा श्रोको का बन्ध कर दिया करता है ॥५८॥ किसी समय में दण्डक छन्दों में सहस्रों प्रकार के विज्ञानों को कह देता है । वह पशु और पक्षियों की आवाज का ज्ञान प्राप्त कर लेता है । उसे ब्रह्म से आदि लेकर स्यावर पर्यन्त सभी वस्तुओं का ज्ञान हस्ता मलक रहता है । अधिक कहाँ तक कहा जाने उसे सभी प्रकार के सहस्रो ज्ञान रहा करते हैं ॥५९॥ ॥६०॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! उस महान् आत्मा वाले मुनि को अनेक प्रकार के विशेष ज्ञान प्राप्त होते हैं और अभ्यास के द्वारा ही विशुद्ध विज्ञान स्थिर हुआ करता है ॥६१॥ सब तेजो रूप होते हैं, योग का वेत्ता पुरुष उस सबको देखता है । जो कि अनेको देवों के विम्ब और सहस्रो ही विमान होते हैं ॥६२॥ वह योगी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण आदि सब को तथा ग्रह, नक्षत्र और समस्त तारागण को एवं सहस्रो भुवनों को भी देखता है ॥६३॥

पातालतलसंस्थाश्च समाधिस्थः स पश्यति ।

आत्मविद्याप्रदीपेन स्वस्थेनाचलनेन तु ॥६४॥

प्रासादामृतपूर्णं सत्त्वपात्रस्थितेन तु ।

तमो निहत्य पुरुषः पश्यति ह्यात्मनीश्वरम् ॥६५॥

तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च ।

वैराग्यमपवगंश्च नात्र कार्या विचारणा ॥६६॥

न शक्यो विस्तरौ वक्तुं वर्पाणामयुतैरपि ।

योगे पाशुपते निष्ठा स्यात्तव्यं च मुनीश्वराः ॥६७॥

समाधि मे स्थित होने वाला योगी परम स्वस्थ एवं अविचल आत्मा-विद्या के प्रदीप के द्वारा समस्त पाताल तल में संस्थित लोकों को भी देख लेता है ॥६४॥ प्रसाद रूप अमृत से पूर्ण जो सत्य स्वरूप पात्र हैं उसमें स्थित पुरुष अज्ञान स्वरूप नभ का ध्वंस करके आत्मा में भगवान् शिव का साक्षात्कार प्राप्त किया करता है ॥६५॥ भगवान् महेश्वर के प्रसाद से उस योगी को धर्म, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य और अपवर्ग सभी प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए ॥६६॥ यहाँ इसका वर्णन मैंने संक्षेप से किया है । यदि इसका विस्तार पूर्वक कथन किया जावे तो दश सहस्र वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है । हे मुनी श्वरगण ! सबका सार यही है कि पाशुपत योग में अपनी निष्ठा करके स्थिति अवश्य ही करनी चाहिए ॥६७॥



॥ शिव भक्ति भाव कथन ॥

सतां जितात्मनां साक्षाद्विजातीनां द्विजोत्तमाः ।

धर्मज्ञानां च साधूनामाचार्याणां शिवात्मनाम् ॥१॥

दयावतां द्विजश्रेष्ठास्तथा चैव तपस्विनाम् ।

संन्यासिनां विरक्तानां ज्ञानिनां वशगात्मनाम् ॥२॥

दानिना चैव दान्तानां त्रयाणां सत्यवादिनाम् ।

अलुब्धानां सयोगानां श्रुति स्मृतिविदां द्विजाः ॥३॥

श्रीतस्मार्ताविरुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः ।

सदिति श्रद्धाः शब्दस्तदन्ते ये संप्रत्युत ॥४॥

सायुज्यं ग्रहाणो यांति तेन संतः प्रचक्षते ।

दशात्मके ये विषये साधने चाष्टलक्षणो ॥५॥

न क्रुध्यन्ति न तृप्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ।
 सामान्येषु च द्रव्येषु तथा वैशेषिकेषु च ॥६॥
 ब्रह्माक्षत्रविशेषे यस्माद्युक्तास्तस्माद्विजातयः ।
 वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः ॥७॥

सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! जो सत्यपुरुष है और अपने
 भाषकी समय में रखने वाले हैं तथा साक्षात् द्विजाति हैं, धर्म के ज्ञान
 रखने वाले, साधु, आचार्य और शिव की आत्मा होते हैं उन पर
 भगवात् शिव प्रसन्न हुमा करते हैं ॥१॥ जो परम दया वाले हैं, तपस्वी
 हैं, सन्यासी, विरक्त और आत्मा को बश में रखने वाले ज्ञानी पुरुष
 होते हैं उन्हीं पर भगवान् महेश्वर प्रसन्न होने हैं ॥२॥ जो दानी, प्रति-
 दान, सत्य भाषण करने वाले, सयोगो के सुबधक नहीं हैं और श्रुति
 तथा स्मृतियों के ज्ञाता पुरुष होते हैं और श्रीन तथा समार्ण धामो में
 कोई भी विरोध नहीं करते हैं उन पर प्रभु शिव अपनी प्रसन्नता किया
 करते हैं । सत्, यह ब्रह्म का वाचक शब्द है उसके अन्त में ये लोग प्राप्त
 हो जाते हैं ॥३॥४॥ वे ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त कर लेते हैं इसी से
 सन्त कहे जाते हैं । दश इन्द्रियों के द्वारा साध्य विषयो में और आठ
 प्रकार के पहिले बताये हुए ऐश्वर्यों में वे लोग कभी भी हर्ष और क्रोध
 नहीं किया करते हैं । इसीलिए ये लोग जितात्मा कहे जाते हैं । सामान्य
 द्रव्यों में तथा विशेष द्रव्यों में भी उनका अपनी आत्मा को जीत लेने
 वाले पुरुषों का कोई आकर्षण या विकर्षण नहीं हुमा करता है ॥५॥६॥
 जो ग्राहण, सन्निग और वैश्य के धर्मों में युक्त हैं अतएव वे द्विजाति
 कहे जाते हैं । वर्णों और आश्रमों में जो युक्त होता है उसकी ही स्वर्ग
 आदि सुख करने वाले होते हैं ॥७॥

श्रौतस्मात्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धमर्ज उच्यते ।
 विद्यायाः साधनात्साधुब्रह्मचारी गुरोर्हितः ॥८॥
 त्रियाणा साधनाच्चैव गृहस्थः साधुश्च्यते ।
 साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ॥९॥

यतमानो यतिः साधुः स्मृता यागस्य साधनात् ।
 एवमाश्रमधर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः ॥१०॥
 गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
 धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ॥११॥
 कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ।
 धारणार्थं महान् ह्येष धर्मशब्दः प्रकीर्तितः ॥१२॥
 अधारणे महत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ।
 अत्रैष्टप्रपको धर्म आचार्यैरुपादिश्यते ॥१३॥
 अधर्मश्चानिष्टफलो ह्याचार्यैरुपादिश्यते ।
 वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवत्तो ह्यदामिकाः ॥१४॥
 सम्यग्विनीता ऋजयस्तानाचार्यान्प्रचक्षते ।
 स्वयमाचरते यस्मादाचारे स्थाप यत्यपि ॥१५॥

श्रुति द्वारा प्रतिपादित श्रीर स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित धर्म के पूर्ण ज्ञान होने से पुरुष धर्मज्ञ कहा जाता है । विद्या की साधना से साधु होता है और गुह का हित करने के कारण ब्रह्मचारी कहा जाता है ॥१०॥ क्रियामो के साधन करने से गृहस्थ भी साधु कहा जाता है । श्रवण में तप की भावना करने के कारण वैशानस (सन्यासी) साधु कहा गया है ॥११॥ योग के साधन करने से यत्न करने वाला यति साधु कहा गया है । इस प्रकार से अपने-अपने आश्रमों के धर्मों का साधन करने ही के कारण सब साधु कहे गये हैं ॥१०॥ गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति ये चार आश्रम होते हैं । ये आश्रमों के बरचक शब्द क्रियात्मक होते हैं और इनके द्वारा यहाँ पर धर्म एवं अधर्म कह दिया गया है ॥११॥ कुशल धर्मान् बल्याण कारक और अकुशल धर्म ही धर्म और अधर्म कहे गये हैं । लौकिक और पारलौकिक कल्याण सम्पादन करने के लिये जिसे धर्मान् जिस भावना को धारण किया जाता है वही धारण के धर्म में वह महान् धर्म शब्द कहा गया है ॥१२॥ जिसका कोई महत्त्व नहीं होता है और प्रकल्प कर होने से जिसे धारण नहीं

किया जाता है उसे ही अघर्म कहा जाता है । यहाँ पर जो अभीष्ट को प्राप्त कराने वाला होता है उसी को आचार्यों ने घर्म कह कर उपदिष्ट किया है ॥१३॥ जो अनिष्ट फल को प्रदान किया करता है उसे ही आचार्यों के द्वारा अघर्म कहा जाता है । जो वृद्ध, अलोनृप, आत्मवान् भोर दम्भ से रहित होते हैं तथा भली-भाँति विनयशील हैं एवं प्रति सरल होते हैं वे आचार्य कहे जाते हैं । ये स्वयं भी वैसा ही धर्मानुबल आचरण किया करते हैं और अन्य समस्त लोगों को भी घर्म के साधनों में स्थापित किया करते हैं ॥१४॥१५॥

आचिनोति च शास्त्रार्थनाचार्यस्तेन चोच्यते ।
 विज्ञेयं श्रवणाच्छ्रोतं स्मरणात्स्मार्तमुच्यते ॥१६॥
 इज्या वेदात्मकं श्रोतं स्मार्तं वर्णाश्रमात्मकम् ।
 दृष्टानुरूपमर्थं यः पृष्टो नैवापि गूहति ॥१७॥
 यथादृष्टप्रवादस्तु सत्यं संगेऽत्र पठ्यते ।
 ब्रह्मचर्यं तथा मौनं निराहारत्वमेव च ॥१८॥
 अहिंसा सर्वतः शान्तिस्तप इत्यभिधीयते ।
 आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च ॥१९॥
 वर्तते त्वसकृद्भक्तिं कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ।
 यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं क्रमात् ॥२०॥
 तत्तद्गुणवते देयं दातुस्तद्दानलक्षणम् ।
 दानं त्रिविधमित्येतत्कुनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् ॥२१॥

जो शास्त्रों के अर्थों का सब ओर से चयन करता है वह आचार्य कहा जाता है । श्रवण करने से श्रोत और स्मरण से स्मार्त कहा जाया करता है ॥१६॥ इज्या वेदात्मक श्रोत होता है और वर्णाश्रम के स्वरूप वाला स्मार्त होता है । जो पूछा गया अनु रूप योग्य अर्थ को देख कर भी नहीं छिपाता है ॥१७॥ यथादृष्ट प्रवाद जो सत्य है वही इस लिङ्ग पुराण में पढ़ा जाता है । ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन-न व्रत वा धारण और निराहार रहना ये तीनों कार्य तप कहे जाते

हैं ॥१८॥ इनके अतिरिक्त अहिमा ज्ञान का पालन और सभी प्रकार से शान्ति धारण करना भी तब इस नाम से कहे जाया करते हैं । अपनी आत्मा के समान की समस्त प्राणियों में उनके हित अहित के लिए चरताव करता है और असकृत् वृत्ति वाला होता है यह समस्त दया फही गई है । जो-जो अत्यन्त अभीष्ट द्रव्य क्रम से न्याय के द्वारा दया है, वही-वही किसी गुण मण गरिष्ठ व्यक्ति को जो कि उसका समुचित पात्र हो देना चाहिए—यही दाता के दान का लक्षण होता है । इस प्रकार से दान कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ के नाम वाला तीन प्रकार का होता है ॥१९॥२०॥२१॥

कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः संविभागस्तु मध्यमः ।

श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ॥२२॥

शिष्टाचाराविरुद्धश्च स धर्मः साधुरुच्यते ।

मायाकर्मफलत्यागी शिवात्मा परि कीर्तितः ॥२३॥

निवृत्तः सर्वसंगेभ्यो युक्तो योगी प्रकीर्तितः ।

असक्तो भयतो यस्तु विषयेषु विचार्य च ॥२४॥

अलुब्धः संयमी प्रोक्तः प्राथितोपि समंततः ।

आत्मार्यं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै ॥२५॥

न मिथ्या संप्रवर्तते क्षमस्यैव तु लक्षणम् ।

अनुद्विग्नो ह्यनिष्टेषु तथेष्टाभिनन्दति ॥२६॥

प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिविरक्तता ।

संन्यासः कर्मणा न्यासः कृतानामकृतैः सह ॥२७॥

गुणलाकुशलानां तु प्रहाणं न्यास उच्यते ।

अन्यक्ताद्यविशेषात् विकारेऽस्मिन्प्रचेतने ॥२८॥

कारुण्य के कारण समस्त प्राणियों के लिये समान रूप में विभाग कर देना मध्यम होता है । श्रुति और स्मृतियों के द्वारा जो विहित धर्म होता है वह वर्णों प्रायवों के स्वस्व वाला होता है ॥२२॥ जो धर्म शिष्टों के आचार से परिच्छिन्न होता है वही साधु धर्म कहा जाता

है । इससे अन्य कनिष्ठ होता है । मायामय बर्णों के फल को त्यागने वाला शिव की आत्मा कहा गया है ॥२३॥ समस्त सङ्गो से निवृत्त होने वाला युक्त योगी कहा गया है । जो जन्म-मृत्यु के भय से सबकी अनित्यता का विमर्श करके विषयो में आसक्ति नहीं करता है वह अलुब्ध सपत्नी पुष्प बनाया गया है । सभी ओर से प्रार्थना किया हुआ भी अपने लिये परार्थ जिमही इन्द्रियाँ मिथ्या प्रवृत्त नहीं होती हैं उसके लक्ष्म का यही सङ्गण होता है । अनिष्ट फलों के सामने घाने पर भी उद्विगता से रहित रहता है तथा सभीष्ट फलों का जो बभी हर्षातिरेक पूर्वक अभिनन्दन नहीं करता है और प्रीति, ताप तथा विपादों से जिसकी विशेषरूप से निवृत्ति रहा करती है उसे ही विरक्तता कहा जाता है । कुन कर्मों का अकृत कर्मों के माग जो न्यास सर्वान् त्याग होता है वह सन्पास कहा जाता है ॥२४॥२५॥२६॥२७॥ कुत्स और अकुत्सनों के प्रहाण को ही न्यास कहा जाया करता है ॥२८॥

चेतनाचेतनान्यत्वं विज्ञानं ज्ञानमुच्यते ।

एव तु ज्ञानयुक्तस्य श्रद्धायुक्तस्य सङ्कुर ॥२९॥

प्रसीदति न सदेहो धर्मश्राय द्विजोत्तमा ।

किं तु गुह्यतमं वक्ष्ये सर्वत्र परमेश्वरे ॥३०॥

भवे भक्तिर्न सदेहस्तथा युक्तो विमुच्यते ।

अयोग्यस्यापि भगवान् भक्तस्य परमेश्वर ॥३१॥

प्रसीदति न सदेहो निगृह्य विविधं तम ।

ज्ञानमध्यापनं होमो ध्यानं यज्ञस्तपश्च श्रुतम् ॥३२॥

दानमध्ययनं सर्वं भवभक्त्यै न संशयः ।

चाद्रायणसहस्रैश्च प्राजापन्यशतैस्तथा ॥३३॥

मासोपवासं श्रान्त्यैर्वा भक्तिमुनिवरोत्तमा ।

अभक्ततां भगवत्यस्मिंल्लोके गिरिगुहाशये ॥३४॥

पतति चात्मभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते ।

भक्तानां दर्शनादेव नृणां स्वर्गादयो द्विजा ॥३५॥

अव्यक्त से आदि लेकर विशेषान्त तक इस अचेतन विकार मे चेतन और अचेतन के अन्यत्व का जो विशेष ज्ञान होता है उसको ज्ञान कहा जाता है । इस प्रकार के ज्ञान से जो युक्त होना है और श्रद्धा से पूर्ण होता है उसी पर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुमा करते है—इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है । हे द्विजगण ! यही धर्म है । अब मैं अतिशय गोपनीय विषय कहता हूँ कि समस्त प्राणियो मे भक्ति अर्थात् समस्त प्राणियो की सेवा परमेश्वर शिव मे भक्ति होती है । इस प्रकार की भक्ति से युक्त विमुक्त हो जाया करता है इसमे सन्देह नहीं है । भगवान् शिव का कोई भक्त अयोग्य भी होता है तो भी उसके अनेक प्रकार के तम का निग्रह करके परमेश्वर उस पर प्रसन्न होते है—इसमे सन्देह नहीं है ॥२६॥३०॥३१॥ ज्ञान, अध्ययन, होम ध्यान, यज्ञ, तप, श्रुत, दान, अध्ययन सब भव की भक्ति के लिये ही होने हैं—इसमे कुछ भी संशय नहीं है । सहस्रो ऋषयः ऋषयो से, सैकड़ो प्राजापत्य ऋषयो से और अन्य मासो के उपवासो से हे मुनिवरो मे श्रेष्ठ गण ! अब मे भक्ति हुमा करती है । जो इस लोक मे भगवान् के भक्त होते हैं वे आत्म भोग के लिये गिरि की गुहा के समान गम्भीर ससार मे संसरण किया करते हैं और जो भगवान् भव का भक्त होता है वह अपने हृदय निश्चयात्मक भाव के द्वारा मुक्त हो जाया करता है । भक्तो के दर्शन मात्र से ही मानवो को स्वर्गादि उत्तम स्थानो की प्राप्ति हो जाया करती है ॥३२॥३३॥३४॥ ॥३५॥

न दुर्लभा न सन्देहो भक्तानां वि पुनस्तथा ।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां तथान्येषामपि स्थिति ॥३६॥
भक्त्या एव मुनीनां च बलसौभाग्यमेव च ।
भवेन च तथा प्रोक्तं संप्रेक्ष्योमा पिनाविना ॥३७॥
देव्यं देवेन मधुर वाराणस्या पुरा द्विजा ।
अविमुक्ते समासीना रुद्रेण परमात्मना ॥३८॥

रुद्राणी रुद्रमाहेदं लब्ध्वा वाराणसीं पुरीम् ।
 केन वश्यो महादेव पूज्यो दृश्यस्त्वमीश्वरः ॥३६॥
 तपसा विद्या वापि योगेनेह वद प्रभो ।
 निशम्य वचनं तस्यास्तथा ह्यालोक्य पार्वतीम् ॥४०॥
 आह वालेंदुतिलकः पूर्णन्दुवदनां हसन् ।
 स्मृत्वाय मेनया पत्न्या गिरेर्गां कथितां पुरा ॥४१॥
 चिरकालस्थितिं प्रेक्ष्य गिरौ देव्या महात्मनः ।
 देवि लब्धा पुरी रम्या त्वया यत्प्रण्टमर्हसि ॥४२॥

भव के भक्तों के दर्शन से स्वर्गादि की प्राप्ति का कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है—इसमें कोई भी सन्देह नहीं है तो फिर भक्तों का तो कहना ही क्या है । भक्ति से ही ब्रह्मा, विष्णु और सुरेन्द्रों की तथा अन्य देवों की स्थिति हुआ करती है । मुनिगणों का बल और सौभाग्य भी भक्ति के द्वारा ही हुआ करता है । पिना की भव ने समा का सम्प्रीक्षण करके इसी प्रकार से कहा था ॥३६॥३७॥ हे द्विजगण ! पहिले देवी जगदम्बा से वाराणसी में देव ने मधुरता पूर्वक कहा था । परमात्मा रुद्र के साथ अवियुक्त पर आसीन रुद्राणी ने वाराणसी पुरी को प्राप्त करके भगवान् रुद्र से कहा था । श्री जगम्बा देवी ने कहा— हे महादेव ! आप तो ईश्वर हैं कृपा करके यह बताइये कि किस-किस साधन से आप पूज्य दृश्य और वश्य होते हैं ? ॥३८॥३९॥ हे प्रभो ! आप यह बतलाइये कि तप, विद्या अथवा योग इनमें से किससे आपकी वश्यता होती है ? सूत जी ने कहा—उसका यह वचन श्रवण करके और पार्वती को देखकर गिरिराज हिमालय की पत्नी मेनका के द्वारा पहिले कही हुई भूमि का स्मरण करके पूर्णचन्द्र के सामने मुख वाली पार्वती से हँसते हुए बालेन्दुतिलक शिव ने कहा — ॥४०॥४१॥ महान् आत्मा वाले गिरिराज की देवी गिरि मे चिर काल पर्यन्त स्थिति को देखकर हे देवि ! तुमने परम रम्य पुरी प्राप्त करली है जिसको तुम पूजने के योग्य होती हो ॥४२॥

स्थानार्थं कथितं मात्रा विस्मृ तेह विलासिनि ।

पुरा पितामहेनापि पृष्टः प्रश्नवत्तां वरे ॥४३॥

यथा त्वयाद्य वै पृष्ठो द्रष्टुं ब्रह्मात्मकं त्वहम् ।

श्वेते श्वेतेन वर्णेन दृष्ट्वा कल्पे तु मां शुभे ॥४४॥

सद्योजातं तथा रक्ते रक्तं वामं पितामहः ।

पीते तत्पुरुषं पीतमधोरे कृष्णमीश्वरम् ॥४५॥

ईशानं विश्वरूपाख्यो विश्वरूपं तदाह माम् ॥४६॥

वाम तत्पुरुषाघोर सद्योजात महेश्वर ।

दृष्टो मया त्वं गायत्र्या देवदेव महेश्वर ।

केन वश्यो महादेव ध्येयः कुत्र घृणानिधे ॥४७॥

दृश्यः पूज्यस्तथा देव्या वक्तुमर्हसि शङ्कर ।

अवोचं श्रद्धयैवेति वश्यो वारिजसंभव ॥४८॥

ध्येयो लिंगे त्वया दृष्टे विष्णुना पयसां निधौ ।

पूज्यः पञ्चास्यरूपेण पवित्रैः पञ्चभिः द्विजैः ॥४६॥

हे विलासिनि ! स्थान के लिए अर्थात् स्थान के निर्माण करने के लिए आपकी माता ने जो कहा था क्या इस समय पर यहाँ तुम उसे भूल गई हो ? हे प्रश्न करने वाली मे परम श्रेष्ठे ! पहिले पितामह के द्वारा भी पूछा गया था ॥४३॥ जिस प्रकार से ब्रह्मात्मक मुझे देखने के लिए आज तुमने मुझ से पूछा है । इवेत कल्प मे हे मुझे ! इवेत के लिए आज तुमने मुझ से पूछा है । उसी प्रकार से रक्त मे सद्योजात वरुण से युवन मुझको देखकर पितामह ने उसी प्रकार से रक्त मे सद्योजात रजत वाम, पीत मे पीत तत्पुरुष और अघोर मे कृष्ण ईश्वर को देखकर विश्वरूपाय ने विश्वरूप ईशान मुझसे उस समय मे कहा था ॥४४॥ ॥४५॥॥४६॥ पितामह ने कहा—हे वाम ! हे तत्पुरुष ! आप तो अघोर हैं—सद्योजात और महेश्वर हैं । हे देवो के देव ! हे महेश्वर ! मैंने आपको गायत्री से देखा है । आप किसने द्वारा वश्य होते हैं और कृपा

की खान । आप किस स्थान पर ध्यान करने के योग्य है ? ॥४७॥ हे शङ्कर ! देवी के द्वारा दृश्य और पूज्य होते हैं वह आप कहने के योग्य हैं । श्री भगवान् ने कहा—हे वारिज (कमल) से उत्पन्न होने वाले ! मैं केवल श्रद्धा से ही वश्य एवं दृश्य होता हूँ—ऐसा मैं बोला था ॥४८॥ पयोनिधि मे विष्णु के द्वारा दृष्ट लिङ्ग में तेरे द्वारा द्वारा ध्येय हूँ । पञ्चास्य रूप से पाँच पवित्र सद्योजातादि मन्त्रों के द्वारा द्विजों से मैं पूजा के योग्य होता हूँ ॥४९॥

भवभक्त्याद्य दृष्टोहं त्वयांडज जगद्गुरो ।
 सोपि मामाह भावार्थं दत्त तस्मै मया पुरा ॥५०॥
 भावं भावेन देवेशि दृष्टवान्मा तद्दीश्वरम् ।
 तस्मात्तु श्रद्धया वश्यो दृश्यः श्रेष्ठगिरेः सुते ॥५१॥
 पूज्यो लिंगे न संदेहः सर्वदा श्रद्धया द्विजैः ।
 श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुत तपः ॥५२॥
 श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योहं श्रद्धया सदा ॥५३॥

हे जगत् गुरु अण्डज ! आज आपने भव की भक्ति के द्वारा ही मुझे देखा है । वह भी भाव के लिए मुझसे बोला जोकि मैंने पहिले उसको दिया था ॥५०॥ हे देवेशि ! भाव से भावस्वरूप हृदीश्वर मुझको देखा था । इससे हे श्रेष्ठ गिरि की पुत्रि ! मैं श्रद्धा के द्वारा ही वश्य और दर्शन के योग्य होता हूँ ॥५१॥ द्विजों के द्वारा सर्वदा श्रद्धा के भाव से लिङ्ग में मैं पूज्य हूँ—इससे कुछ भी सन्देह नहीं है । श्रद्धा पर एव सूक्ष्म धर्म है और श्रद्धा ही ज्ञान, हुत और तप है । श्रद्धा ही स्वर्ग है और मोक्ष है । मैं सदा श्रद्धा के द्वारा ही दर्शन के योग्य होता हूँ अर्थात् श्रद्धा के भाव से ही लोग मेरा दर्शन प्राप्त कर सकते हैं अन्य किसी भी प्रकार से मैं दृश्य नहीं होता हूँ ॥५२॥५३॥



॥ तत्पुरुष गायत्री उद्भव ॥

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ।
 ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह ॥१॥
 ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
 प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रवृक् ॥२॥
 पीतगंधानुलिप्तागः पीतमाल्यावरो युवा ।
 हेमयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीपो महाभुजः ॥३॥
 त दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मा लोकमहेश्वरम् ।
 मनसा लोकघातारं प्रपेदे शरणं विभुम् ॥४॥
 ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरी वराम् ।
 गां विश्वरूपां ददृशे महेश्वरमुखाञ्च्युताम् ॥५॥
 चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुस्तनीम् ।
 चतुर्नेत्रां चतुः शृङ्गी चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ॥६॥
 द्वात्रिंशद्गुणसंयुक्तामीश्वरी सर्वतोमुखाम् ।
 स तां दृष्ट्वा महातेजा महादेवी महेश्वरीम् ॥७॥
 पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः ।
 मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ॥८॥

सूत जी ने कहा—इकतीसवाँ कल्प पीत वासा इस नाम से कहा गया है जिसमे महाभाग पीता वासा हुए थे ॥१॥ परमेष्ठी ब्रह्मा जिस समय पुत्र की कामना से ध्यान मग्न हो रहे थे उस समय पीत वस्त्र धारण करने वाले महान् तेजस्वी एक कुमार प्रादुर्भूत हुआ था ॥२॥ वह कुमार पीतगन्ध से अनुलिप्त शृङ्गी वाला था और वह युवा पीत माल्यो से तथा पीत वस्त्रो से सुशोभित था । वह महान् भुजाधो वाला पीत उष्णीष (शिरोवेष्टन-पगडी) वाला और सुवर्ण वा यज्ञोपवीत धारण किये हुए था ॥३॥ ध्यान मे संयुक्त ब्रह्मा ने लोक महेश्वर उसको देखकर लोको के घाता विभु की मन के द्वारा शरण ग्रहण की थी

॥४॥ इसके अनन्तर ध्यान में मग्न ब्रह्मा जी ने महेश्वर के मुख से च्युत, परम श्रेष्ठ, विश्वरूप वालो माहेश्वरी गी को देखा था ॥५॥ उस गी के चार पैर थे, वह चार मुखो वाली थी, चार हस्त वाली, चार स्तनो से युक्त, चार नेत्रो से सम्पन्न, चार शृङ्ग वाली, चार दाढो वाली और वह चतुर्मुखी थी ॥६॥ वह बत्तीस गुणो से समन्वित, सर्वतो-मुख और ईश्वरी थी । महान् तेज वाले उसने महादेवी महेश्वरी उसको देख कर समस्त देवो के द्वारा वन्द्यमान महादेव मति-स्मृति और बुद्धि यह गान करते हुए पुनः बोले — ॥७॥८॥

एह्येहीति महादेवि सातिष्ठप्राञ्जलिर्विभुम् ।
 विद्वन्मावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु ॥९॥
 अथ तामाह देवेशो रुद्राणी त्वं भविष्यसि ।
 ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्था भविष्यसि ॥१०॥
 तथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
 प्रददौ देवदेवेशः चतुष्पादां जगद्गुहः ॥११॥
 ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ।
 ब्रह्मा लोकागुरोः सोम्य प्रतिपेदे महेश्वरीम् ॥१२॥
 गायत्री तु ततो रीद्री ध्यात्वा ब्रह्मानुयन्त्रितः ।
 इत्येतां वेदिकी विद्यां रीद्री गायत्रिमीरिताम् ॥१३॥
 जपित्वा तु महादेवीं ब्रह्मा लोकनमस्कृताम् ।
 प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥१४॥

करके उस ब्रह्मा ने लोक गुरु से महेश्वरी को प्राप्त कर लिया था ॥१२॥
इसके उपरान्त अनुयन्त्रित, ब्रह्मा ने रौद्री गायत्री का ध्यान सरके इस
गायत्री के नाम से वरित वैदिकी रौद्री विद्या को जो समस्त लोको के
द्वारा नमस्कृत महादेवी थी ब्रह्मा ने जाप किया था और फिर ध्यान
पुनः चित्त से महादेव की शरण में प्राप्त हुए थे ॥१३॥१४॥

ततस्तस्य महादेवो दिव्ययोगं बहुश्रुतम् ।
ऐश्वर्यं ज्ञानसंपत्तिं वैराग्यं च ददौ प्रभुः ॥१५॥
ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ।
पीतमाल्यांबरधराः पीतम्रगं नुलेपनाः ॥१६॥
पीताभोजणीपशिरसः पीतास्याः पीतमूर्धजाः ।
ततो वर्षसहस्रात् उपित्वा विमलौजसः ॥१७॥
योगात्मानस्त पोद्गादाः ब्राह्मणानां हितं पितुः ।
धर्मयोगवलोपेता मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥१८॥
उपदिश्य महायोगं प्रविष्टास्ते महेश्वरम् ।
एव मेतेन विधिना ये प्रपन्ना महेश्वरम् ॥१९॥
अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेंद्रियाः ।
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विमला ग्रहावर्चसः ॥२०॥
प्रविशन्ति महादेव रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः ॥२१॥

इसके अनन्तर प्रभु महादेव ने उनको बहुश्रुत, दिव्य, योग,
ऐश्वर्य, ज्ञान, सम्पत्ति और वैराग्य प्रदान किया था ॥१५॥ इसके
अनन्तर इसके पार्श्व भाग से परम दिव्य कुमारों का प्रादुर्भाव हुआ था
जो कि पीत मालायें और पीत वस्त्र धारण करने वाले पीतमग्निलेपन
से समन्वित थे ॥१६॥ उनके चित्त पर पीत ही उष्णीष थे, पीत ही
उनके मुग थे और पीत वस्त्रों के ही उनके केश थे । इनके उपरान्त
विमल श्रोत्र वाले थे एवं सहस्र वर्ष पर्यन्त वही रह कर योगात्मा, तपस्या
के साहाय्य वाले, ब्राह्मणों के हित चाहने वाले, दीर्घ मन्त्री मुनियों के धर्म
और योग के बग में पुनः वे महायोग का उद्देश देकर महेश्वर में

प्रविष्ट हो गये थे । इस प्रकार से इस विधि के द्वारा वे महेश्वर को प्रपन्न हो गये थे ॥१७॥१८॥१९॥ इसी प्रकार से अन्य भी नियत आत्मा वाले, ध्यान से युक्त और जितेन्द्रिय हैं वे सब पापों का उत्सर्जन करके विमल वर्चस वाले होकर अपुनत्व होते हुए महादेव रुद्र के स्वरूप में प्रवेश किया करते हैं ॥२०॥२१॥



॥ अरोघोत्पत्ति वर्णन ॥

ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः ।
 पुनरन्यः प्रवृत्तास्तु कल्पो नाम्नाऽसितस्तु सः ॥१॥
 एकारांवे तदा वृत्ते द्विग्ये वर्षसहस्रके ।
 स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चित्तयामास दुःखितः ॥२॥
 तस्य चित्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः ।
 कृष्णः समभव द्विर्णो ध्यायतः परमेश्विनः ॥३॥
 अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् ।
 कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥४॥
 कृष्णांघ्ररधरोष्णीष कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ।
 कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णसगनुलेपनम् ॥५॥
 स तं दृष्ट्वा महात्मानमधोरं घोरविक्रमम् ।
 ववन्दे देवदेवेदामद्भुतं कृष्णपिगलम् ॥६॥
 प्राणायामपरः श्रीमान् तद्वदि कृत्वा महेश्वरम् ।
 मनसा ध्यानयुक्तेन प्रपन्नस्तुतमोश्वरम् ॥७॥

श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर स्वयंभू ने पीत वर्ण वाले कल्प के व्यतीत हो जाने पर फिर अन्य कल्प प्रवृत्त हुआ था जिसका नाम असित वर्ण था ॥१॥ जिस समय दिव्य एक सहस्र वर्षे तक एक ही प्रणव हो गया था तो उस समय गृष्टि की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा

ने अत्यन्त दुःखिन होकर चिन्तन किया था ॥२॥ पुत्रो की कामना रख कर चिन्तन करने वाले उस प्रभु का जो कि परमेष्ठी ध्यान कर रहे थे उनका कृष्ण वर्ण हो गया था ॥३॥ इसके अनन्तर महान् तेज वाले ने प्रादुर्भूत हुए एक कुमार को देखा था जिसका कृष्ण तो वर्ण था, वह महान् वीर्य वाला था और अपने परमाद्भुत तेज से दीप्यमान हो रहा था ॥४॥ उस कुमार के भस्तक पर कृष्ण वर्ण का उष्णीष था, कृष्ण वर्ण का ही यज्ञोपवीत धारण किए हुए था, वह कृष्ण मौलि से युक्त था और कृष्णस्तक् तथा अनुलेपन भी उसका कृष्ण ही था ॥५॥ उस महान् प्रात्मा वाले, अधोर, घोर विक्रम से युक्त को देखकर उसने देवदेवेश अद्भुत कृष्ण पिङ्गल को नमस्कार किया था ॥६॥ प्राणायाम में तत्पर होकर श्रीमान् ने हृदय में महेश्वर का ध्यान किया और ध्यान से युक्त मन के द्वारा उस ईश्वर की शरण में प्राप्त हुआ था ॥७॥

अधोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिंतयत् ।

तथा वै ध्यायमानस्य ब्रह्मणः परमेश्विनः ॥८॥

प्रददौ दर्शनं देवो ह्यधोरो घोरविक्रमः ।

अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः ॥९॥

चत्वारस्तु महात्मानः सबभूवुः कुमारकाः ।

कृष्णाः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णवस्त्रधृक् ॥१०॥

ततो वर्षसहस्रं तु योगतः परमेश्वरम् ।

उपासित्वा महायोग शिष्येभ्यः प्रददुः पुनः ॥११॥

योगेन योगसं पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् ।

अमलं निर्गुण स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ॥१२॥

एवमेतेन योगेन येषां चान्ये मनीषिणः ।

चित्तयति महादेवं गंतारो रुद्रमव्ययम् ॥१३॥

ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णवर्णं भयानकम् ।

तुष्टाव देवदेवेशं ब्रह्मा तं ब्रह्मरूपिणम् ॥१४॥

अनुगृह्य ततस्तुष्टो ब्रह्माण मवदद्धरा ।

अनेनव तु रूपेण सहारामिन सशयः ॥१५॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा ने अघोर ब्रह्म रूप का विशेष रूप से चिन्तन किया था और इस रीति से ध्यान करने वाले परमेश्वरी ब्रह्माजी को घोर विक्रम वाले अघोर देव ने दर्शन दिया था । इसके पश्चात् ब्रह्मा के पादों से कृष्ण स्तब्ध और अनुलेपन वाले तथा कृष्ण वर्ण से युक्त महान् आत्मा वाले चार कुमार उत्पन्न हुए थे वे सब कृष्ण थे, कृष्ण शिखा वाले थे, कृष्ण मुख से युक्त और कृष्ण वस्त्र धारी थे ॥१५॥ ॥१०॥ एक सहस्र वर्ष तक बड़ा रह कर योग से परमेश्वर की उपासना करके फिर शिष्यों को महायोग दे दिया था ॥११॥ योग के द्वारा योग से सम्पन्न उन्होंने मन के द्वारा शिव में प्रवेश करके ब्रह्म और निर्गुण स्थान विश्व ईश्वर में प्रविष्ट हो गये थे ॥१२॥ इस प्रकार से योग के द्वारा मन्य मनपी लोग भी महादेव का चिन्तन करते हुए मन्यय रुद्र के निकट गमन किया करते हैं ॥१३॥ इसके अनन्तर मयानक कृष्ण वर्ण वाले कल्प के जाने पर ब्रह्मा जी ने ब्रह्मरूपी उस देवों के देवकी स्तुति की थी । इसके उपरान्त वह तुष्ट होकर अनुग्रह से युक्त हो गये और ब्रह्मा से बोले कि मैं इसी स्वरूप से सबका सहार किया करता हूँ— इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥१४॥ ॥१५॥

ब्रह्माहत्यादिवान् घोरस्तथान्यापि पातकान् ।

हीनाश्चैव महाभाग तथैव विविधान्यपि ॥१६॥

उपपातकमप्येव तथा पापानि सुव्रत ।

मानसानि सुतीक्ष्णानि वाचिकानि पितामह ॥१७॥

कायिकानि सुमित्राणि तथा प्रासगिकानि च ।

बुद्धिपूर्वं वृत्तान्येव सहजागतुकानि च ॥१८॥

मातृदेहोत्थितान्येव पितृदेहे च पातकम् ।

सहारामि न सदेहः सर्वं पातकजं विभो ॥१९॥

लक्ष जप्त्वा ह्यधोरेभ्यो ब्रह्महा मुच्यते प्रभो ।

तदर्धं वाचिके वत्स तदर्धं मानसे पुनः ॥२०॥

ब्रह्म हत्या आदि महोघोर तथा अन्य महापातको का तथा हे महाभाग ! अन्य विविध प्रकार के पापों का और हीनों का मैं सहार करता हूँ ॥१६॥ हे सुप्रत ! इसी प्रकार से उपपातको को तथा हे नितामह ! मानस पाप और सुतीक्ष्ण क्षारीरिक पापवाचिक पाप, सुमित्र, प्रासङ्गिक पाप, बुद्धि पूर्वक किये हुए एव सहज और प्रागन्तुक पापों को सहित कर देता हूँ ॥१७॥१८॥ काल के देह में उत्पित पाप तथा पितृदेह में होने वाले पाप का भी मैं सहार कर डालता हूँ—इसमें सन्देह नहीं है । हे निभो ! समस्त पातको से उत्पन्न होने वाले दोष को एक लक्ष जाप करके अधोगे से ब्रह्महा भी मुक्त हो जाता है । हे वत्स ! उससे आधा जप करके वाचिक पाप से और उसका आधा भी जप करके मानस पाप से छुटकारा पा जाया करता है ॥१६॥२०॥



ईशानोद्भव और पञ्च ब्रह्मात्मक स्तोत्र

अयान्यो ब्रह्मणः कल्पो वर्तते मुनिपुंगवा ।

विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः ॥१॥

विनिवृत्तो तु सहारे पुनः सृष्टे चगचरे ।

ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥२॥

प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ।

विश्वमाल्यावरधरा विश्वयज्ञोपवीतिनी ॥३॥

विश्वोष्णीषा विश्वगन्धा विश्वमाता महोदिका ।

तथाविधं स भगवानीशान् परमेश्वरम् ॥४॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं सर्वाभरणभूषितम् ।
 अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः ॥५॥
 वन्दे देवमीशानं सर्वेश सर्वगं प्रभुम् ।
 ओमीशान नमस्तेस्तु महादेव नमोस्तु ते ॥६॥
 नमोस्तु सर्वविद्यानामीशान परमेश्वर ।
 नमोस्तु सर्वभूतानामीशान वृषवाहन ॥७॥
 ब्रह्मणोधिपते तुभ्यं ब्रह्मणो ब्रह्मरूपिणे ।
 नमो ब्रह्माधिपतये शिव मेऽस्तु सदाशिव ॥८॥
 ओकारमूर्ते देवेश सद्योजात नमोनमः ।
 प्रपद्ये त्वा प्रपन्नोऽस्मि सद्योजाताय वै नमः ॥९॥

अब ईशबोधभव पञ्च ब्रह्मात्मक स्तोत्र का वर्णन किया जाता है । सूत जी ने कहा—हे मुनि पुङ्गवो ! इसके अनन्तर भग्न्य ब्रह्मा का कल्प होता है । इसका विश्वरूप नाम प्रख्यात है और यह परम भद्रभुत कल्प है ॥१॥ सृष्ट चराचर के सहार के विनिवृत्त हो जाने पर पुत्रों की कामना रखने वाले परमेशी ब्रह्म ध्यान कर रहे थे ॥२॥ उस समय महान् नाद वाली विश्वरूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई थी । यह विश्व की माता और धरती को धारण करने वाली थी तथा विश्व के ही उपवीत को धारण किये हुए थी ॥३॥ विश्व के उष्णीष वाली, विश्वमग्धा, विश्वमाता और महान् शीघ्र वाली थी । उसने उस प्रकार के स्वरूप वाले भवानीशान परमेश्वर को जो शुद्ध स्फटिक मणि के सदृश और समस्त आभरणों से भूषित थे, युक्तात्मा पितामह ने मनके द्वारा ध्यान किया था और सबके स्वामी, सर्वत्र गमन करने वाले प्रभु देव की वन्दना की थी, हे ओमीशान ! आपको मेरा प्रणाम है । हे महादेव ! आपको मेरा नमस्कार है ॥४॥ ॥५॥६॥ हे समस्त विद्याओं को ईशान ! हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार है । हे वृष वाहन ! समस्त प्राणियों के स्वामी आपको मेरा नमस्कार है ॥७॥ हे ब्रह्म के अधिपति ! ब्रह्मणो ब्रह्म आपको मेरा नमस्कार है ।

ब्रह्म के अधिपति के लिए मेरा प्रणाम है । हे सदाशिव ! मेरा कल्याण होवे ॥८॥ हे ओङ्कार मूर्ति वाले ! हे देवेश ! हे सद्योजात, आपके लिए मेरा चारम्बार नमस्कार है । मैं आपकी चरण में आता हूँ और मैं प्रपन्न हो गया हूँ । सद्योजात आपके लिए नमस्कार है ॥९॥

अभवे च भवे तुभ्यं तथा नातिभवे नमः ।
 भवोद्भव भवेशान मां भजस्व महाद्युते ॥१०॥
 वामदेव नमस्तुभ्यं ज्येष्ठाय वरदाय च ।
 नमो रुद्राय कालाय कलनाय नमो नमः ॥११॥
 नमो विक रणायैव कालवर्णाय वर्णिने ।
 बलाय बलिनां नित्यं सदा विकरणाय ते ॥१२॥
 चलप्रमथनायैव बलिने ब्रह्मरूपिणे ।
 सर्वभूतेश्व रेशाय भूतानां दमनाय च ॥१३॥
 मनोन्मनाय देवाय नमस्तुभ्यं महाद्युते ।
 वामदेवाय वामाय नमस्तुभ्यं महात्मने ॥१४॥
 ज्येष्ठाय चैव श्रेष्ठाय रुद्राय वरदाय च ।
 कालहृत्रे नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मने ॥१५॥

अभव, भव और नातिभव में आपके लिये मेरा नमस्कार है । हे भवोद्भव ! हे भवेशान ! हे महाद्युते ! मेरा भजन करें ॥१०॥ हे वामदेव ! ज्येष्ठ और वरह आपके लिये मेरा नमस्कार है । रुद्र, बाल और कलना आपके चारम्बार नमस्कार है ॥९॥ विकरण, कालवर्ण और वर्णि, बलियों के बलस्वरूप तथा सदा विकरण रूप आपके लिए मेरा नित्य नमस्कार है ॥१२॥ बल के प्रमथन करने वाले, सभी, ब्रह्मरूप वाले, समस्त भूतों के ईश्वर और भूतों के दमन करने वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥१३॥ हे महाद्युते ! मनोन्मन देव आपके मेरा नमस्कार है । वामदेव, वाम और महात्मा आत्मा वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है

॥१४॥ ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र और वरद, काल के हनन करने वाले महात्मा
प्रापके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१५॥

इति स्तवेन देवेशं ननाम वृषभध्वजम् ।

यः पठेत् सकृदेवेह ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥१६॥

श्रावयेद्वा द्विजान् श्राद्धे स याति परमां गतिम् ।

एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमंत पितामहम् ॥१७॥

उवाच भगवानोशः प्रीतोहं ते किमिच्छसि ।

ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्विशुद्ध महेश्वरम् ॥१८॥

उवाच भगवान् रुद्र प्रीतं प्रीतेन चेतसा ।

यदिदं विश्वरूपं ते विश्वगोः श्रेयसीश्वरी ॥१९॥

एतद्वेदितुमिच्छामि यथेयं परमेश्वर ।

कंपा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी ॥२०॥

चतुःशृङ्गी चतुर्वेका चतुर्दंष्ट्रा चतुस्तनी ।

चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता ॥२१॥

इस स्तव के द्वारा देवेश वृषभध्वज को ब्रह्मा ने प्रणाम किया था । जो इस स्तव वा एक बार भी यहाँ पाठ कर लेगा वह ब्रह्मलोक को चला जायगा । अथवा श्राद्ध के भाव में जो इसका द्विजो को श्रावण कराता है वह परमगति को प्राप्त किया करता है । इस प्रकार से ध्यान में स्थित पितामह को प्रणाम करते हुए देव कर भवानीश ने कहा कि मैं तुम्हें परम प्रसन्न हूँ, बोल, तू अब क्या चाहता है ? इसके पश्चात् वाग्विशुद्ध महेश्वर को ब्रह्मा ने प्रणाम किया था ॥१६॥॥१७॥ ॥१८॥ और फिर भगवान् ब्रह्मा ने प्रसन्न चित्त से युक्त परम प्रसन्न रुद्र से कहा कि यह जो प्रापका विश्वरूप है और श्रेय करने वाली यह विदय गी है । हे परमेश्वर ! मैं इसको जानना चाहता हूँ कि जिस प्रकार से यह है । यह भगवती देवी तीन है जिसके चार पैर हैं, चार मुख हैं, चार शीर्ष हैं और जो चतुर्वेका, चतुर्दंष्ट्रा और चतुस्तनी है

सया चतुर्हस्ता, चतुर्नेत्रा है । यह विश्वरूपा कैसे बही गई है ॥१६॥
॥२०॥२१॥

किंनामगोत्रा कस्येयं किंवोर्या चापि कर्मेतः ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वृषध्वजः ॥२२॥
प्राह देववृषं ब्रह्मा ब्रह्माण चात्मसंभवम् ।
रहस्यं सर्वमंत्राणां पावनं पुष्टिवर्धनम् ॥२३॥
शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथा ।
एव यो वतंते कल्पो विश्वरूपस्त्वसी मतः ॥२४॥
ब्रह्मस्थानमिदं चापि यत्र प्राप्तं त्वया प्रभो ।
त्वत्तः परतरं देव विष्णुना तत्पदं शुभम् ॥२५॥
वैकुण्ठेन विशुद्धेन मम वामांगजेन वै ।
तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥२६॥
शत शतसहस्राणामतीता ये स्वयंभुवः ।
पुरस्तात्तव देवेश तच्छृणुष्व महामते ॥२७॥
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दत्वे व्यवस्थितः ।
माहव्यगोत्रस्तपसा मम पुत्रत्वमागतः ॥२८॥

इस देवी का क्या नाम और गोत्र है—यह किसकी है ? क्या इसका पराक्रम है और इसका कर्म क्या है ? । उस ब्रह्मा के इस वचन का ध्यान करके देवों के देव वृषध्वज देवों में श्रेष्ठ, आत्म सम्भव ब्रह्मा से सीले—यह समस्त मन्त्रों के मध्य में परम पावन एवं अत्यन्त गोपनीय रहस्य है ॥२२॥२३॥ तथापि इस परम गोपनीय का तुम ध्यान करो । आदि सर्गों में जिस प्रकार का भी यह कल्प है यह विश्वरूप कहा गया है ॥२४॥ हे प्रभो ! यह ब्रह्म स्थान है जिसको कि आपने प्राप्त किया है । आपसे भी परतर देव विष्णु हैं और उनका पुत्र स्थान इससे भी ऊपर है ॥२५॥ विशुद्ध वैकुण्ठ मेरे वामाङ्गज के द्वारा किया हुआ है । तबसे लेकर यह तेनीसवी कल्प है ॥२६॥ हे देवेश ! आपसे भी पहिले शत

सहस्रो के दत्त स्वयम्भू हो चुके हैं । हे महामते ! अब तुम उनका श्रवण करो ॥२७॥ माण्डव्य शीघ्र वाले तुम तप के द्वारा मेरे पुत्र हुए थे और आनन्द के रूप में व्यवस्थित हुए थे अतएव वह ब्रह्म रूप आनन्द जानने के योग्य है ॥२८॥

स्वयि योगं च सांख्यं च तपोविद्याविधिक्रियाः ।
 ऋतं सत्यं दया ब्रह्म अहिंसा सन्मतिः क्षमा ॥२९॥
 ध्यानं ध्येयं दमः शान्तिविद्याऽविद्या मतिर्धृतिः ।
 कान्तिर्नीतिः प्रथा मेघा लज्जा दृष्टिः सरस्वती ॥३०॥
 तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव प्रसादश्च प्रतिष्ठिताः ।
 द्वात्रिंशत्सुगुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञया ॥३१॥
 प्रकृतिविहिता ब्रह्मस्त्वत्प्रसूतिर्भगवती ।
 विष्णोर्भगवत्तश्चापि तथान्येषामपि प्रभो ॥३२॥
 सैषा भगवती देवी मत्प्रसूतिः प्रतिष्ठिता ।
 चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रतिष्ठिता ॥३३॥
 गौरी माया च विद्या च कृष्णा भगवतीति च ।
 प्रधानं प्रकृतिश्चैव यामाहुस्तत्त्वचितकाः ॥३४॥

अजामेकां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वप्रज्ञां सृजमानां सरूपाम् ।
 अजोह मां विद्धि तां विश्वरूपं गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्या ॥३५॥

उस समय में तुम मे बत्तीस गुण थे और उनके नाम ये हैं—योग, सांख्य, कृच्छ्र आदि तप और उनकी विधि तथा क्रिया, ऋत [प्रिय भाषण], सत्य, दया, ब्रह्म [वेद], अहिंसा [पर पीड़ा का त्याग], सन्मति [अव्यभिचारिणी बुद्धि], क्षमा [पराई पीड़ा का सहन करना], ध्यान, ध्येय [ईश्वर का सन्निधान], दम, शान्ति, विद्या, अविद्या, मति, धृति, कान्ति, नीति, प्रथा [स्थापति], मेघा [धारणा करने वाली बुद्धि], लज्जा [लोको के अपवाद का भय], दृष्टि, [दिव्यज्ञान], सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, [इन्द्रियो की पटुता], क्रिया [वेद विहित धर्म और प्रसाद] बत्तीस

अक्षरो की संज्ञा से यह वत्तीस गुणों वाली यह विश्वरूपा महेश्वरी आपकी प्रसूति प्रकृति मैंने हे ब्रह्मान् । तुम्हारे ही लिए उत्पन्न की है । हे प्रभो ! यह भगवान् विष्णु और अन्य इन्द्र आदि की यह मेरी प्रसूति भगवती देवी जननी है । यह जगत् की योनि अतुर्मुखी प्रकृति गौ के स्वरूप में प्रतिष्ठित है ॥२६॥३०॥३१॥३२॥३३॥ तत्त्वों के चिन्तन करने वाले जिस प्रकृति को गौरी, माया, विद्या, कृष्ण, हैमवती प्रधान और प्रकृति इन नामों से कहा करते हैं ॥३४॥ उसको अजा, एका, लोहिता, शुक्ल कृष्ण, विश्व प्रजा, सृजमाना, सरूपा, विश्वरूपा, गौ, गायत्री बुद्धि से समझो और मैं अज हूँ ऐसा मुझको भी जान लो ॥३५॥

एवमुक्त्वा महादेवः ससर्ज परमेश्वरः ।
ततश्च पार्श्वगा देव्याः सर्वरूपकुमारकाः ॥३६॥
जटो मुण्डी शिखण्डी च अर्धमुण्डश्च जज्ञिरे ।
ततस्तेन यथोक्तेन योगेन सुमहोजसः ॥३७॥
दिव्यवर्पसहस्राते उपासित्वा महेश्वरम् ।
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा योगमयं दृढम् ॥३८॥
शिष्टाश्च नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥३९॥

इस प्रकार से परमेश्वर महादेव ने कह कर सृजन किया था । और इसके अनन्तर देवी के पार्श्व में गमन करने वाले सर्वरूप कुमार जटो, मुण्डी, शिखण्डी और अर्ध मुण्ड उत्पन्न हुए थे । इसके अनन्तर यथोक्त योग के द्वारा महान् भोज घाले वे एक सहस्र दिव्य वर्ष तक वहाँ रह कर तथा महेश्वर की उपासना करके सम्पूर्ण योगमय दृढ धर्म का उपदेश करके वे शिष्ट नियत आत्मा वाले ईश्वर रुद्र में प्रविष्ट हो गये थे ॥३६॥३७॥३८॥३९॥

श्री विष्णु नाभि कमल से ब्रह्मोत्पत्ति

कथं पाद्रे पुरा कल्पे ब्रह्मा पद्मोद्भवोऽभवत् ।
 भवं च दृष्ट्वांस्तेन ब्रह्मणा पुरुषोत्तमः ॥१॥
 एतत्सर्वं विशेषेण सांप्रतं वक्तुमर्हसि ।
 आसीदेकाग्रं घोरमविभागं तमोमयम् ॥२॥
 मध्ये चैकाग्रंवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
 जीमूतांभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥३॥
 नारायणमुखोद्गीर्णसर्वात्मा पुरुषोत्तमः ।
 अष्टबाहुर्महावक्त्रा लोकानां योनिरुच्यते ॥४॥
 किमप्यचित्थं योगात्मा योगमास्थाय योगवित् ।
 फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चं सम् ॥५॥
 महाभोगपतेर्भोगं साध्वास्तीर्यं महोच्छ्रयम् ।
 तस्मिन्महति पर्यंके शेते चैकाग्रंवे प्रभुः ॥६॥
 एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 आत्मारामेण क्रीडार्थं लीलयाक्तिष्टकर्मणा ॥७॥
 शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।
 वज्रदंडं महोत्सेधं नाभ्यां सृष्टं तु पुष्करम् ॥८॥

ऋषियों ने कहा—पहिते पाद कल्प में पद्मोद्भव ब्रह्मा कैसे
 हुए थे और उस ब्रह्मा के साथ पुरुषोत्तम ने भव को किस प्रकार से
 देखा था ? ॥१॥ यह सब भव हमारे सामने वर्णन करने के योग्य होते
 हैं । सूत जी ने कहा—उस समय एक ही समुद्र था जो महान् घोर,
 बिना विभाग वाला एवम अन्धकार से परिपूर्ण था ॥२॥ उस
 एकाग्र के मध्य में शङ्ख, चक्र, गदा के धारण करने वाले, मेघ के समान
 क्रान्ति से युक्त, कमल के सदृश नेत्रों से समन्वित किरीटधारी लक्ष्मी के
 पति हरि थे ॥३॥ नारायण के मुख से उद्गीर्ण सर्वात्मा पुरुषोत्तम था

बाहुधो वाले, महान् वक्ष स्थल वाले समस्त लोको को योनि ठहे जाते हैं ॥४॥ योग के पूर्ण ज्ञाता और योग की आत्मा किसी अचिन्त्य योग में आस्थित होकर एव सहस्र फणो से युक्त उस अप्रतिम वर्चस वाला जो महा भोग पति शेष का भोग था जिसको महान् उच्छ्रय वाले भोग को भली भाँति आस्तृत कर रक्खा था उस महान् पर्यङ्क पर प्रभु उस एकाणं व मे क्षयन कर रहे थे ॥५॥६॥ इस प्रकार से वहाँ पर क्षयन करने वाले प्रभुविष्णु विष्णु ने जो कि अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले हैं और अविलम्बकर्म करने वाले हैं क्रीडा करने के लिये लीला से एक सी योजना के विस्तार से युक्त और तरुण सूर्य के समान, वज्र के दण्ड वाला महान् उत्सेध [ऊँचाई] से युक्त नाभि में कमल का सृजन किया था ॥७॥८॥

तस्यैव क्रीडमानस्य समीप देवमोदुप ।
 हेमगर्भाडजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रिय ॥६॥
 चतुर्वक्रो विशालाक्ष समागम्य यदृच्छया ।
 श्रिया युवतेन दिव्येन सुशुभेन सुगधिना ॥१०॥
 क्रीडमान च पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा शुभेक्षणम् ।
 सविस्मयमथागम्य सौम्यसपत्नया गिरा ॥११॥
 प्रोवाच को भवाञ्छेने ह्याश्रितो मध्यमभसाम् ।
 अथ तस्याच्युत श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभ वच ॥१२॥
 उदतिष्ठत पर्यकाद्विस्मयोत्फुल्ललोचन ।
 प्रत्युवाचोत्तर चैव कल्पेकल्पे प्रतिश्रय ॥१३॥
 कर्तव्य च कृत चैव क्रियते यच्च किञ्चन ।
 द्यौरतरिक्ष भूश्चैव पर पदमह भुव ॥१४॥

देवो म परम थोष्ठ क्रीडा करते हुए उस भगवान् विष्णु के समीप म हेमगर्भ अण्ड से जन्म ग्रहण करने वाला ब्रह्मा, जो रुक्म के समान

वाणें वाला, अतीन्द्रित, चार मुखों से युक्त और विशाल नेत्रों वाला था, यहृच्छा से आ गया था और उस ब्रह्मा ने वहाँ पर श्री से सम्मान, सुगन्ध वाले, परम शुभ और दिव्य पद्म से क्रीड़ा करते हुए शुभ ईक्षण वाले शेषशायी को देखा था फिर विस्मय पूर्वक वहाँ आकर परम सौम्यता से युक्त बाणी से ब्रह्मा ने कहा ॥६॥१०॥११॥ पाप कौन हैं जो यहाँ समुद्र के जलो के मध्य आश्रय ग्रहण कर शयन कर रहे हैं ? इस ब्रह्मा के प्रश्न के अनन्तर भगवान् अच्युत ने ब्रह्मा के इस शुभ वचन का श्रवण कर वे विस्मय से उत्फुल्ल (खिले हुये) लोचन वाले अच्युत अपने शेष के पर्यङ्क से उठ खड़े हुये थे और उन्होंने उसके प्रश्न का उत्तर दिया था कि कल्प-कल्प में कौन सा जगत् के निवास का स्थान रहता है ॥१२॥ ॥१३॥ दिव्यलोक, आन्तरिक्ष और भूमि इनमें जो भी कुछ कर्तव्य है और किया है तथा किया जा रहा है उसे बताया और कहा मैं भूलोक का परम पद हूँ ॥१४॥

तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत् ।
 कस्त्व खलु समायातः समीप भगवान्कुतः ॥१५॥
 क्व वा भूयश्च गतव्यं कश्च वा ते प्रतिश्रयः ।
 को भवान् त्रिश्वमूर्तिर्वै कर्तव्यं किं च ते मया ॥१६॥
 एवं ब्रुवंतं वकुंठं प्रत्युवाच पितामहः ।
 मायया मोहितः शंभोः विज्ञाय जनार्दनम् ॥१७॥
 मायया मोहितं देवमविज्ञातं महात्मनः ।
 यथा भवांस्तथैवाहमादिकर्ता प्रजापतिः ॥१८॥
 सविस्मयं वचः श्रुत्वा ग्रहाणो लोकतत्रिणः ।
 अनुज्ञातश्च ते नाथ वैकुण्ठो विश्वसम्भवः ॥१९॥
 कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्माणो मुखम् ।
 इमानष्टादश द्वीपान्समुद्रान् सपर्वतान् ॥२०॥
 प्रविश्य सुमहातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् ।
 ब्रह्माणस्तदपश्यंतं सप्तलोकान् सनातनान् ॥२१॥

ब्रह्माणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान्विष्णुर्महाभुजः ।

अहोस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा च पुनः पुनः ॥२२॥

अटित्वा विविधाँल्लोकान् विष्णुर्नानाविद्याश्रयान् ।

ततो वर्षसहस्रांते नांतं हि ददृशे यदा ॥२३॥

भगवान् विष्णु ने उस ब्रह्मा से यह इस प्रकार से कह कर फिर कहा — आप कौन हैं और कहाँ से मेरे समीप मे आये हैं ॥१५॥ अब आगे आपको कहाँ जाना है और आपके निवास का मुख्य स्थान कौन सा है । आप विश्वमूर्ति कौन हैं और मुझसे आपको क्या काम है ॥१६॥ इस तरह से बोलने वाले वैकुण्ठनाथ से पितामह ने कहा कि मैं जनार्दन का ज्ञान प्राप्त न करके भगवान् शम्भु की माया से मोहित हो गया हूँ ॥१७॥ महात्मा की माया से मोहित देव को मैंने विज्ञात नहीं किया है । जिस प्रकार के आप हैं वैसा ही मैं आदि कर्त्ता प्रजापति हूँ ॥१८॥ ब्रह्मा के जो कि लोकतन्त्र का आश्रय है, विस्मय के साथ यह वचन श्रवण करके हे नाथ ! विश्व सम्भव वैकुण्ठ अनुज्ञात हो गये थे ॥१९॥ वह महायोगी बौतुहल से ब्रह्मा के मुख में प्रविष्ट हो गया था । वहाँ पर महाभुज महा तेज वाले विष्णु ने इन अठारह द्वीपों को जो पर्वतों से और समुद्रों से युक्त थे तथा चारों वरुणों से समाकुल थे, और ब्रह्मा से स्तम्भ पर्यन्त सनातन सातों लोकों को सबको ब्रह्मा के उदर में देता था । वहाँ पर विष्णु की ये सब देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और बार-बार यही कहते हुए कि “इसके तप की कैसी अद्भुत शक्ति है” विष्णु ने अनेक प्रकार के आश्रय वाले विविध लोकों का ब्रह्मा के उदर में भ्रमण किया था किन्तु सहस्रो वर्ष तक अटन करने पर विष्णु ने उनका भ्रम नही देता था ॥२०॥२१॥२२॥२३॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पद्मर्गेन्द्रनिकेतनः ।

नारायणो जगद्धाता पितामहमथाब्रवीत् ॥२४॥

भगवानादिरंतश्च मध्य कालो दिशो नमः ।

माहमंतं प्रपश्यामि उदरस्य तवानघ ॥२५॥

एवमुक्त्वा ब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः ।
 भगवानेवमेवाह शाश्वतं हि ममोदरम् ॥२६॥
 प्रविश्य लोकान् पश्यंताननौपम्यान्सुरोत्तम ।
 ततः प्राह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिर्नद्यं च ॥२७॥
 श्रोपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः ।
 तानेव लोकान् गर्भस्या नपश्यत्सत्यविक्रमः ॥२८॥
 पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः ।
 ज्ञात्वा गतिं तस्य पितामहस्य

द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः ।

विभुर्मनः कर्तुं प्रियेषां चाशु

सुखं प्रसुप्तोऽहमिति प्रचित्य ॥२९॥

ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समीक्ष्य वै ।

सूक्ष्मकृत्वात्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविदत् ॥३०॥

जब कोई अन्त नहीं मिला तो पद्मगो के स्वामी शेष के निकलने वाले, जगत् के घाता नारायण इस ब्रह्मा के मुख से बाहिर निकल आए और इसके पश्चात् पितामह से बोले ॥२४॥ हे अनन्त ! आप तो प्रादि, मध्य और अन्त हैं तथा काल, दिशा और नभ हैं । मैं तो आपके उदर का कहीं भी अन्त नहीं देख रहा हूँ ॥२५॥ इतना कह कर हरि ने पितामह से पुनः कहा—इस प्रकार से मैं भगवान् ही हूँ और मेरा उदर भी शाश्वत है ॥२६॥ हे सुरोत्तम ! आप भी मेरे उदर में प्रवेश करके अनुपम इन लोकों को देख लें । इसके अनन्तर पितामह ने नारायण की प्राह्लादिनी वाणी तथा श्रवण करके और उनका अभिनन्दन करके वह पितामह पुनः श्रोपति के उदर में प्रविष्ट हो गये थे । वहाँ पर सत्य विक्रम वाले परमेश्वरी ने गर्भस्थ उन्हीं लोगों को देखा था ॥२७॥२८॥ ब्रह्मा ने वहाँ पर पर्यटन किया था किन्तु देव हरि के अन्त को उगने नहीं देखा था । उस पितामह की गति को जानकर विष्णु ने

समस्त द्वारों को पिहित कर दिया था । फिर विष्णु ने मैं गुण पूर्वक प्रसुप्त हो गया हूँ । ऐसा चिन्तन करके शीघ्र ही मन में इच्छा की थी ॥२९॥ इसके पश्चात् नारायण के शरीर के समस्त द्वारों को बन्द देखकर पितामह ने अपना सूक्ष्म स्वरूप बनाया और नारायण की नाभि में द्वारा प्राप्त किया था ॥३०॥

पद्मसूत्रानुसारेण चान्वपश्यत्पितामहः ।

उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ॥३१॥

विररा जारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ।

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामहः ॥३२॥

एतस्मिन्नंतरे ताम्यामेकैकस्य तु वृत्तशः ।

वर्तमाने तु सद्यो मध्ये तस्याणवस्य तु ॥३३॥

कुतोप्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः ।

शूलपाणिर्महादेवो हेमवीरावरच्छदः ॥३४॥

अगच्छधत्र सोनतो नागभोगपतिर्हरिः ।

शोघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्मामाक्रातपीडिताः ॥३५॥

उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयविदवः ।

अत्युष्णश्चातिशतिश्च वायुस्तत्र ववो पुनः ॥३६॥

सहस्रा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभ पत ।

अग्निदवश्च कीतोष्णाः कपयत्यबुज भृशम् ॥३७॥

पितामह ने पद्म के सूत्र के अनुसार उस नाभि के द्वार को देखा था और फिर चतुरानन ने उस कमल से अपने स्वरूप को प्रकट किया था ॥३१॥ जगत् की योनि, भगवान् स्वयम्भू पितामह ब्रह्मा पद्म के गर्भ के समान द्युति वाला अरविन्द में स्थित होता हुआ आजमान हुआ था ॥३२॥ उस समुद्र के मध्य में उन पद्म के पत्रों में प्रत्येक का ब्रह्मा के भार से आक्रान्त होने के कारण परस्पर में सञ्चर्य उत्पन्न हो गया था ॥३३॥ उस समय जहाँ पर जगभोग के पति अनन्त हरि थे

वहाँ कही से अपरिमेय आत्मा वाले भूतो के प्रभु, ईश्वर, श्रेष्ठ सुवर्ण के अम्बर छह वाले झूलपाणि महादेव जा पहुँचे थे । शीघ्र चलने वाले उसके पैरों से आक्रान्त हुए एवं पीड़ित स्थूल जल की बूँदें शीघ्र ही आकाश में उद्भूत हो गईं थी । वहाँ उस समय में अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीत वायु फिर बहने लगी थी ॥३४॥३५॥३६॥ इस महान् आश्चर्य को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा था कि ये जल के कण शीत और उष्ण हैं और यदि इस अम्बुज को अत्यन्त कम्पित कर रहे हैं ॥३७॥

एतन्मे संशयं ब्रूहि किं वा त्वन्यच्चिकीर्षसि ।
 एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोदगतम् ॥३८॥
 श्रुत्वाप्रतिमकर्मा हि भगवानसुरांतकृत् ।
 किं नु खल्वत्र मे नाम्ना भूतमन्यत्कृतालयम् ॥३९॥
 वदति प्रियमत्यर्थं मन्युश्चास्य मया कृतः ।
 इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥४०॥
 किमत्र भगवानद्य पुष्करे जातसंभ्रमः ।
 किं मया च कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् ॥४१॥
 भापसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः ।
 एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रानुगं ततः ॥४२॥
 प्रत्युवाचांम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।
 योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया ॥४३॥
 यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।
 तथैव दृष्टाः कात्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे ॥४४॥

ब्रह्माजी ने विष्णु भगवान् से कहा कि मुझे बहूना संशय हो रहा है । इसे आप स्पष्ट बताइये । क्या आप कुछ और करना चाहते हैं ? इस प्रकार के पितामह के मुख से उद्गत वाक्य का श्रवण करके अप्रतिम कर्म वाले तथा असुरों के अन्तकारी भगवान् ने सोचा कि मेरी

नाभि में अन्य के द्वारा आनप करने पर यह क्या हो गया है ॥३८॥३९॥
यह ब्रह्मा बोलता तो बहुत ही प्रिय है किन्तु इसका क्रोध मीने किया
है । इस प्रकार से मन में सोचकर फिर विष्णु ने यह उत्तर दिया था
॥४०॥ आज इस कमल में आपको क्यों सभ्रम उत्पन्न हो गया है ? हे
देव ! मीने आपका क्या अपराध किया है कि आप मुझसे ऐसा अनुत्तम
एवं अप्रिय वचन बोल रहे हैं । हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! आप मुझे किसलिये
ऐसा कहते हैं—इसे यथार्थ रूप से बताइये । इस प्रकार से बोलने वाले
और लोकों की यात्रा का अनुगमन करने वाले तथा अम्बुज के समान
नेत्रों वाले देवेश से वेदों के निधि ब्रह्मा ने कहा—मीं आपकी ही इच्छा
से ही पहिले आपके उदर में प्रविष्ट हुआ था ॥४१॥४२॥४३॥ जिस
प्रकार से हे प्रभो ! मेरे उदर में आपने समस्त लोक देखे थे उसी भाँति
आपके उदर में मीने पूरांतया सब लोक देखे थे ॥४४॥

ततो वर्षसहस्रात् उपावृत्तस्य मेऽनघ ।
त्वया मत्सरभावेन मां वशीकृतुमिच्छता ॥४५॥
आशु द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समंततः ।
ततो मया महाभाग संब्रित्य स्वेन तेजसा ॥४६॥
लब्धो नाभिप्रदेशेन पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ।
माभूत्ते मनसोऽल्पोपि व्याघातोऽयं कथंचन ॥४७॥
इत्येषानुगतिविष्णो कार्याणामोपसर्पिणी ।
यस्मिन्मनसोऽनघ कार्यं ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥४८॥
ततः परममेयात्मा हिरण्यकक्षिपो रिपुः ।
अनवद्या प्रियामिष्टां शिवां वाणीं पितामहात् ॥४९॥
श्रुत्वा विगतमात्सर्यं वाक्यमस्मै ददौ हरिः ।
न ह्येवमोदृशं कार्यं मयाऽप्यवसितं तव ॥५०॥
स्वां व ध्यायितुकामेन क्रोडापूर्वं यदृच्छया ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मयात्मनः ॥५१॥

१. 'हे अनन्ध ! इसके अनन्तर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भ्रमण करने वाला वहाँ आपके दरबार में रहा था । मत्सरता के भाव से मुझको धृष्ट करने की इच्छा रखने वाले आपने सभी ओर से बहुत शीघ्र समस्त द्वारा बन्ध कर दिये थे । हे महाभाग ! मैंने अपने ही तेज से भली-भाँति चिन्तन करके नाभि के प्रदेश के द्वारा पद्म सूत्र से विनिर्गम अर्थात् निकलने का मार्ग प्राप्त किया था । आपके मन में किसी भी प्रकार से थोड़ा सा भी यह व्यापार नहीं होवे ॥४५॥४६॥४७॥ यह विष्णु के बायों की अनुत्पन्न अनुगति है । इनके अनन्तर जो कुछ भी मुझे करना चाहिए उसे बनाइये कि मैं अब क्या करूँ ॥४८॥ इसके अनन्तर अनेक अस्मात्ताले हिरण्यहसिषु दैत्य के शत्रु विष्णु ने पितामह से निर्वोष, प्रिय, अभीष्ट, मङ्गलमयी यात्री का ध्वज किया था और फिर हरि ने ब्रह्मा को माताम्य से रहित वाक्य कहा था । ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो मैंने आपको करने के लिए निश्चित किया हो । ॥४९॥५०॥ आपको ज्ञान प्राप्त कराने के विषये ही मेरी इच्छा हुई थी और इसी से मुहूर्च्छा वषट्क्रीडा पूर्वक मैंने अपने समस्त द्वार शीघ्र बन्ध कर दिये थे ॥५१॥

न तेऽन्यथावगतव्यं मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ।
 सर्वैर्भर्षय कल्याण मम्मयापकृत तव ॥५२॥
 अस्मान् मयोह्यमानस्त्वं पद्मादयतर प्रभो ।
 नाहं भणत शक्तोमि सोढुं तेजोमयं मुखम् ॥५३॥
 सहोवाच वर ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो ।
 पृथो भव ममारिध्न मुद प्राप्स्यसि शोभनम् ॥५४॥
 सद्भाववचनं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो ।
 स त्वं च नो महाप्रोयो त्वमीदृशः प्रणवात्मकः ॥५५॥
 भवप्रभृति सर्वेशः स्वेतोष्णीपविभूषितः ।
 पद्मयोनिरिति ह्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि ॥५६॥

पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सप्तलोकाधिपः प्रभो ।

ततः स भगवान्देवो वरं दत्त्वा किरीटिने ॥५७॥

एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्वा गतमत्सरः ।

प्रत्या सन्नमथायातं बालार्कमं महाननम् ॥५८॥

इसके बिना अन्य किसी प्रकार से आपको यह ज्ञान नहीं हो सकता था । वैसे आप मेरे मान्य और पूज्य हैं । हे कल्याण ! इस सबको अब आप क्षमा कर दीजिए जो कुछ मैंने आपका अपकार किया है ॥५२॥ हे प्रभो ! इस समय आप मेरे द्वारा बहन किए जा रहे हो । हमलिये इस पक्ष से आप नीचे उतर जाइये । आपका स्वरूप तेज से परिपूर्ण हैं और आप गुह्य हैं । मैं आपको बहन नहीं कर सकता हूँ । ॥५३॥ उस ब्रह्मा ने कहा—हे प्रभो ! आप मुझे इस पक्ष से नीचे उतार दीजिए और स्थापित कर देंगे तथा वरदान दीजिये । विष्णु ने कहा—हे अरिष्ण ! आप मेरे पुत्र हो जाओ । इससे आपको बहुत ही शोभन आनन्द प्राप्त होगा । हे प्रभो ! आप सद्भाव से पूर्ण वचन हम से बोलिये और इस पक्ष से नीचे उतर जाइए । आप तो महान् योगी हैं । आप प्रणव रूप हैं और इसीलिए हमारे स्तवन करने के योग्य हैं ॥५४॥५५॥ आज से लेकर आप सबके ईश और श्वेत उष्णीष से विभूषित होने और 'पद्मयोनि'—इस नाम से लोको में विख्यात होने ॥५६॥ हे प्रभो ! हे ब्रह्मन् ! आप मेरे पुत्र हो जाओ और सात लोकों के स्वामी बन जाओ । इसके अनन्तर भगवान् देव पितामह ने विष्णु को वरदान दिया और कहा कि ऐसा ही होगा और फिर परम प्रसन्न होकर मारुत्य से रहित हो गए थे । इसके अनन्तर समीप में आते हुए बाल सूर्य के समान आभा से युक्त, महान् आनन (मुख) वाले अत्यन्त अद्भुत भव को देखकर पितामह नारायण से बोले ॥५७॥५८॥

भवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ।

अप्रमेयो महावक्रो दंष्ट्रो ध्वस्तशिरोरुहः ॥५९॥

दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनविश्वतः स्थितः ।
 लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो भुञ्जमेखली ॥६०॥
 मेढूँणोर्ध्वेन महता नदमानोतिभरवम् ।
 कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः ॥६१॥
 व्याप्य सर्वा दिशो द्या च इत एवाभिवर्तते ।
 तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥६२॥
 पद्मा तलनिपातेन यस्य विक्रमतोरुवे ।
 वेगेन महताकाशेप्युत्थिताश्च जलाशयाः ॥६३॥
 स्थूलद्विविश्वतोत्यर्थं सिञ्चसे पदमसंभव ।
 घ्राणेजेन च वातेन कंप्यमान त्वया सह ॥६४॥
 दोधूयते महापदम् स्वच्छद मम नाभिजम् ।
 समागती भवानीशो ह्यनादिश्चातकृतप्रभुः ॥६५॥

वराह की दृष्टाओं के रूपएँ वाला, अप्रमेय, महान्, वक्त्र से मुक्त, फैले हुए केशों वाला, दश बाहुओं से सप्रत, त्रिशूल का धिन्ध धारी, सर्वदशों, भयङ्कर, मनोहर मेखला को धारण करने वाले स्वयं साक्षात् लोकों का स्वामी, उन्नत एवं स्थूल मेढूँ से अत्यन्त भीषण नदमान होता हुआ, महान्, द्युति वाला तेज का पुञ्ज यह है विष्णो ! कोन पुरुष है ॥५६॥६७॥६१॥ समस्त दिक्षाओं को व्याप्त करके यह इसी श्रीर वर्धमान हो रहा है । उस पितामह के द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान्, विष्णु ब्रह्मा से बोले ॥६२॥ अर्णव मे चरने वाले जिसके पैरों के तलों के निपात से जनाशय महान्, वेग से घ्राणाश मे भी उठ गये हैं ॥६३॥ हे पद्म सम्भव ! अत्यन्त स्थूल जनों के द्वारा यह समस्त विश्व को अत्यन्त अधिक सिञ्चन कर रहा है । इग्वी नासिका से निकले हुये वायु से तुम्हारे सहित यह कमल एकदम वर्णित हो रहा है । मेरी नाभि मे उत्पन्न होने वाला यह स्वच्छन्द महा कमल वर्णमान हो रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि भवानी के स्वामी प्रभु मा

गये हैं जो स्वयं तो अनादि हैं और समस्त विश्व का अन्त करने वाले हैं ॥६४॥६५॥

भवानहं च स्तोत्रेण उपतिष्ठच्च गोध्वजम् ।
 ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ॥६६॥
 भवान्न नूनमात्मानं वेत्ति लोकप्रभुं विभुम् ।
 ब्रह्माणं लोककर्तारं मां न वेत्सि सनातनम् ॥६७॥
 को ह्यसौ शङ्करो नाम आवयोन्यतिरिच्यते ।
 तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा हरिरभाषत ॥६८॥
 मा भौवं धद कल्याण परिवादं महात्मनः ।
 महायोगेधनो धर्मो दुराघर्षो वरप्रदः ॥६९॥
 हेतुरस्याथ जगतः पुराण पुरुषोऽव्ययः ।
 बीजी खल्वेव बीजानां ज्योतिरेकः प्रकाशते ॥७०॥
 बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम् ।
 प्रधानमव्ययो योनिरव्ययतं प्रकृतिस्तमः ॥७१॥
 मम चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः ।
 यः कः स इति दुःखार्तेर्दृश्यते यतिभिः शिवः ॥७२॥

अब आप और मैं दोनों ही स्तोत्र के द्वारा गो ध्वज (शिव) का स्तवन करें । इसके अनन्तर क्रुद्ध ब्रह्मा ने अम्बुजाक्ष केशव से कहा— आप अपनी आत्मा को नहीं जानते हैं कि आप स्वयं लोकों के स्वामी और विभु हैं और मुझको भी नहीं पहिचानते हैं कि मैं समस्त लोकों की रचना करने वाला सनातन हूँ ॥६६॥६७॥ यह शङ्कर नाम का ना कौन है जो कि हम दोनों से भी व्यतिरिक्त हैं ? उस ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न होने वाले वाक्य का ध्वज करके भगवान् हरि ने कहा— हे कल्याण ! ऐसा कभी मत बोलो । यह महान् आत्मा वाले शिव की निन्दा है । महा योग जिसको दीप न करने वाला है, दुरा घर्ष धर्म है और वर प्रदान करने वाला है ॥६८॥६९॥ यह शिव इस जगत् का

हेतु स्वरूप है। पुराण पुरुष, अव्यय, समस्त बीजो का भी यह बीजो है। यह एक ही ज्योति है जो प्रकाशमान है। भगवान् सङ्कर स्वयं श्चो के खिलोमो से फ्रीडा किया करते हैं। प्रधान, अव्यय योनि अव्यक्त, प्रहृतिप्रम ये प्रसव के धर्म वाले मेरे नाम हैं। जो तुमने पूछा है कि यह बीज है वह शिव जन्म-मरणादि दुःख को देखकर विरक्त हो जाने वाले यतियो का द्वारा ही देखा जाया करता है ॥७०॥७१॥७२॥

एष बीजो भवान्बीजमह योनि सनातन ।

स एवमुक्तो विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमपृच्छत ॥७३॥

भवान् योनिरह योज कथं बीजो महेश्वर ।

एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं सशयं छेत्तुमहसि ॥७४॥

ज्ञात्वा च त्रिविधोत्पत्तिं ब्रह्मणो लोकतन्निष्ठम् ।

इमं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरि ॥७५॥

अस्मान्महत्तरं भूतं गुह्यमन्यन्न विचते ।

महत् परमं धाम शिवमध्यात्मिना पदम् ॥७६॥

द्विविधं चैवमात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितम् ।

निष्कलस्तत्र योव्यक्तं सकलञ्च महेश्वर ॥७७॥

यस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ।

पुरा लिंगोद्भव बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम् ॥७८॥

मम योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात् ।

हिरण्यमयमकूपारे योन्यामडमजायते ॥७९॥

शतानि दशवर्षाणामडमप्सु प्रतिष्ठितम् ।

अस्ते वर्षा सहस्रस्य वायुना तद्दिव्या वृत्तम् ॥८०॥

यह विश्वात्मा यह बीजो है आप बीज हैं और मैं सनातन योनि हूँ, इस प्रकार से कहा गया है। ब्रह्मा ने विष्णु भगवान् से पूछा था ॥७३॥ आप योनि हैं, मैं बीज हूँ और महेश्वर किस प्रकार से बीजो होते हैं? यह मेरा सूक्ष्म और अव्यक्त सशय है। उसके छेदन

करने को आप योग्य होते हैं ॥७४॥ लोक तन्त्री ब्रह्मा की विविध प्रकार की उत्पत्ति को जानकर इस परम सादृश्य से सूक्ष्म प्रश्न का उत्तर हरि ने दिया था ॥७५॥ इससे यह तत्त्व का सर्वोत्कृष्ट स्थान गुह्य भूत अन्य नहीं है । शिव अध्यात्मवादी ज्ञानियों का गम्य पद है ॥७६॥ अपनी आत्मा को निर्गुण और सगुण रूप से दो प्रकारों में विभक्त कर के व्यवस्थित है । उसमें निष्कल निर्गुण अव्यक्त भगोवर है और सकल अर्थात् सगुण महेश्वर हैं ॥७७॥ माया की विधि के ज्ञाता और अगम्य तथा गहन जिसका पहिले आदिसर्गिक लिङ्गोद्भव प्रथम बीज मम अर्थात् मेरी पोजि से समायुक्त हुआ था और वह बीज काल के पर्यय से एकद्वार योनि में हिरण्य अण्ड होकर उत्पन्न हुआ था । एक सहस्र वर्ष पर्यन्त वह अण्ड जल में ही प्रतिष्ठित रहा था । अन्त में जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तो वायु के द्वारा उसके दो भाग कर दिए गये थे ॥७८॥७९॥८०॥

कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः ।

उत्वं तस्य महोत्सेधो योसौ कनकपर्वतः ॥८१॥

ततश्च प्रतिसंन्यात्मा देवदेवो वरः प्रभुः ।

हिरण्यगर्भो भगवास्त्वभिजज्ञे चतुर्मुखः ॥८२॥

आताराक्रेन्दुनक्षत्रं सूक्ष्मं लोकमवेक्ष्य च ।

कोहमित्यपि च ध्याते कुमारस्तेऽभवन्स्तदा ॥८३॥

प्रियदर्शनास्तु यतयो यतीनां पूर्वजा स्तव ।

भूयो वर्षसहस्रानि तन एवात्मजास्तव ॥८४॥

भुवनानलसंकाशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।

श्रीमान्सनत्कुमारश्च ऋभुश्चवोर्ध्वरेतसौ ॥८५॥

सनकः सनःतनश्चैव तथैव च सनन्दनः ।

उत्पन्नाः समकालं ते बुद्धधातीन्द्रियदर्शनाः ॥८६॥

उत्पन्नाः प्रतिभात्मानो जगतां स्थितिहेतवः ।

चारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः ॥८७॥

उस अण्ड का एक ऊपर का जो भाग था उसके पाल से तो
 दो उत्पन्न हुआ और उसके नीचे की ओर का जो कपाल का भाग
 था उससे भूमि की उत्पत्ति हुई थी । उस अपर कपाल का महान्
 उत्सेध वाला गर्भावरण था वह कनक पर्वत मेरु है ॥८१॥ उस भिन्न
 हुए अण्ड से उत्पन्नमान शरीर वाले देवों के देव हिरण्यगर्भ चतुर्मुख
 शेष प्रभु धाप समुत्पन्ने हुए थे ॥८२॥ जब धापने तारा, सूर्य, चन्द्र
 और नक्षत्र वाला शून्य लोक को देखा था और भौं कोन हू, ऐसा ध्यान
 किया था तो फिर एक सहस्र वर्षों के अन्त में तुम्हारे प्रिय दर्शन वाले,
 यत्नशील और यतियों के पूर्वज कुमार अवस्था से समन्वित आपके ही
 पुत्र उत्पन्न हुये थे ॥८३॥८४॥ वे सब एक ही काल में उत्पन्न हुये थे
 और भुवन के अन्त वे समान तथा पद्म पत्र के सदृश दीर्घ
 नेत्रों वाले थे । श्री मान्, सनत्कुमार और ऋभु ये दोनों ऊर्ध्व रेता थे ।
 सनक, सनातन और सनन्दन बुद्धि से अतीन्द्रिय दर्शन वाले थे । ये सब
 ज्ञान, विशिष्ट और जगत् की स्थिति के हेतु स्वरूप तथा तीनों प्रकार के
 तापो से रहित थे ये कोई भी कर्मों का आरम्भ नहीं करेंगे ॥८५॥८६॥
 ॥८७॥

अल्पसौख्य बहुबलेश जराशोकसमन्वितम् ।
 जीवन मरण चैव समवश्च पुनः पुनः ॥८८॥
 अल्पभूत सुख स्वर्ग दुःखानि नरके तथा ।
 विदित्वा चागम सर्वमवश्य भवितव्यताम् ॥८९॥
 ऋभु सनत्कुमार च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ ।
 त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा चात्मजा. सनकादयः ॥९०॥
 वैवर्तेन तु ज्ञानेन प्रवृत्तास्ते महौजस ।
 ततस्तेषु प्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु ॥९१॥
 भविष्यसि विमूढस्त्व मायया शङ्करस्य तु ।
 एव कल्पे तु नै वृत्ते सज्ञा नश्यति तेऽनघ ॥९२॥

कल्पे शेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ।
सर्वेषां ह्येश्वरी माया जागृतिः समुदात्तता ॥६३॥
यथैश्च पर्वतो मेरुर्देवलोको ह्युदात्ततः ।
तस्य चेदं हि माहात्म्यं विद्धि देववरस्य ह ॥६४॥

जीवन, मरण और बार-बार जन्म ग्रहण करना इसमें सुख तो बहुत कम है और क्लेश अधिक है तथा जरा और शोक से सी समन्वित हैं । स्वर्ग में भी अत्यन्त अल्प सुख होता है तथा नरक से दुःख ही भरे हुए हैं । इस समस्त आगम का ज्ञान प्राप्त करके और ध्वंस्य होने वाली सम्पूर्ण भवितव्यता को जान लिया था । ऋभु और सनत्कुमार को आप के वश में स्थित देखकर सनकादि जो अन्य तीन आपके आत्मज्ञ ये वे तीनों गुणों का त्याग करके वे महान् भोज वाले अध्यात्म ज्ञान के द्वारा प्रवृत्त हो गए थे । इसके अनन्तर उन तीनों के सनकादिकों के अध्यात्म ज्ञान में प्रवृत्त हो जाने पर आप भगवान् शङ्कर की माया से विमूढ़ हो जायेंगे । हे अनघ ! इस प्रकार से एक कल्प के व्यतीत हो जाने पर आपकी सजा नष्ट होती है ॥८८॥८९॥९०॥९१॥९२॥ कल्प में भी शेष सूक्ष्म भूत और पार्थिव हैं उन सबकी जागृति ही ऐश्वरी माया कही गई है ॥६३॥ जो यह मेरु पर्वत देवों के निवास का लोक कहा गया है प्रब आप देवों में श्रेष्ठ उसके माहात्म्य का ज्ञान प्राप्त करें ॥६४॥

ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामबुजेषणम् ।
महादेवं महाभूतं भूतानां वरदं प्रभुम् ॥६५॥
प्रणवेनाथ साम्ना तु नमस्कृत्य जगद्गुरुम् ।
त्वां च मा जीव संक्रुद्धो निःश्वसान्निर्देहयम् ॥६६॥
एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठन्महाबलम् ।
अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोप्याम्यनलसप्रभम् ॥६७॥

ईश्वर के सद्भाव का ज्ञान प्राप्त करके और अभ्युज के समान नेत्र वाले भुमकी जानकर तथा समस्त प्राणियों को वर प्रदान करने

वाले महाभूत महादेव प्रभु का ज्ञान प्राप्त कर इन जगद्गुरु का प्रणव के तथा सामवेद के द्वारा नमस्कार करो अन्यथा यह संक्रुद्ध होकर आपको और भुक्तों दोनों को अपनी विस्वास की अग्नि से निर्दग्ध कर देंगे । ॥६५॥६६॥ इस प्रकार से उनके महान् बल और महान् योग को समझ कर आप उठकर खड़े हो जाइये । मैं आपको अपने घागे करके उस अग्नि के समान प्रभा वाले का स्तवन करूँगा ॥६७॥



रुद्रोत्पत्ति वर्णन

अत्यन्तावनतौ दृष्ट्वा मधुर्पिगायतेक्षणः ।
 प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवत्सत्य कीर्तनात् ॥१॥
 उमापतिविरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः ।
 पिनाकी खड्गपरशुः सुप्रीतस्तु त्रिलोचनः ॥२॥
 ततः स भगवान्देव ध्रुत्वा वागमृत तयोः ।
 जानन्नपि महादेव क्रीडापूर्वमथान्नवीत् ॥३॥
 कौ भवतो महात्मानौ परस्परहितपिणी ।
 समेतावबुजोभाक्षावस्मिन्घोरे महाप्लवे ॥४॥
 ताद्वचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ।
 भगवन् किं तु यत्तोऽद्य न विज्ञात त्वया विभो ॥५॥
 विभो रुद्र महामाय इच्छया वा कृतो त्वया ।
 तयोस्तद्वचन ध्रुत्वा अभिनद्याभिमान्य च ॥६॥
 उवाच भगवान्देवो मधुरं श्लुक्ष्णया गिरा ।
 भो भो हिरण्य गर्भं त्वा त्वा च कृष्ण ब्रवीम्यहम् ॥७॥
 प्रीतोऽहमनवा भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ।
 भवतो तद्दयस्यास्य मम तद्वचतराबुभौ ॥८॥

सूतजी ने कहा—मधु के समान पिङ्ग तथा आयत नेत्रों वाले भगवान् महेश्वर ने ब्रह्मा और विष्णु दोनों को अत्यन्त विनम्र देखा था और उनके सत्य स्तवन करने से वह महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हो गए थे । ॥१॥ उमा के स्वामी विरूपाक्ष, दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले पिनाक धनुष को धारण करने वाले, खण्ड परशु और तीन नेत्रों को धारण करने वाले अत्यन्त प्रसन्न हो गए थे ॥२॥ इसके अनन्तर भगवान् महेश्वर देव ने उन दोनों ब्रह्मा और विष्णु की अमृतमयी वाणी का श्रवण किया था और महादेव सब कुछ का ज्ञान रखते हुए भी इसके अनन्तर क्रीडा पूर्वक बोले ॥३॥ आप दोनों परस्पर में एक दूसरे के हित के चाहने वाले कौन महात्मा हैं ? इस और महाशिव में कमल के सदृश आभा से युक्त नेत्रों वाले यहाँ कैसे एकत्रित हुए हो ? ॥४॥ महान् आत्मा वाले वे दोनों आपस में एक दूसरे को देखकर बोले—हे विभो ! हे भगवन् ! क्या आज आपने यह सब नहीं जान लिया है ? हे विभो ! हे रुद्र ! हे महामाया वाले ! हम दोनों को आपने इच्छा से बनाया है । उन दोनों के इस वचन का श्रवण कर अभिनन्दन किया और इसको स्वीकार करके भगवान् महादेव मधुर एवं परम म्लक्षण वाणी से बोले— हे हिरण्यगर्भ ! तुमको और हे कृष्ण ! तुमको मैं कहता हूँ कि अक्षर से युक्त और निरन्तर होने वाली भक्ति से मैं आप दोनों पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । आप दोनों ही मेरे इस हृदय में अत्यधिक प्रिय हो गये हो ॥५॥ ॥६॥७॥८॥

युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमीप्सितम् ।

अथोवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः ॥६॥

सर्वं मम कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि ।

त्वयि मे सुप्रतिष्ठा तु भक्तिर्भवतु शकर ॥१०॥

एवमुक्तस्तु विज्ञोय सभावयत केशवम् ।

प्रददौ च महादेवो भक्तिं निजपदाबुजे ॥११॥

भवान्सर्वस्य लोकस्य कर्ता त्वमधिदैवतम् ।

तदेवं स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यंबुजेक्षण ॥१२॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् ब्रह्माणं चापि शंकरः ।

अनुगृह्याऽस्पृशद्देवो ब्रह्माणं परमेश्वरः ॥१३॥

कराम्भ्यां सुशुभाम्भ्या च प्राह तदृष्टतरः स्वयम् ।

मत्समस्त्वं न सदेहो वत्स भक्तश्च मे भवान् ॥१४॥

स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि सज्ञा भवतु सुव्रत ।

एवमुक्त्वा तु भगवास्ततोन्तर्धानमीश्वरः ॥१५॥

मैं अब आप दोनों को वरदानों में परम अभीष्ट क्या वरदान दूँ ? इस महादेव के कथन के अनन्तर महाभाग विष्णु महादेव से यह वचन बोले—हे देव ! यदि आप मेरे इस सबके किए जाने पर परम प्रसन्न हैं तो हे शङ्कर ! मैं यही चाहता हूँ कि आपके अन्दर मेरी सुप्रतिष्ठित भक्ति हो जावे । इस प्रकार से कहे गये महादेव ने विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त कर केशव को सम्भावित किया और अपने चरण कमल में भक्ति प्रदान की थी । ॥१०॥११॥ आप समस्त लोक के कर्ता हैं और आप अधिदैवत हैं । हे वत्स ! हे अम्बुजेक्षण ! मैं आपके कल्याण के लिये ही गमन करूँगा । विष्णु से इस प्रकार से कहकर फिर भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मा पर भी अनुग्रहण किया था और परमेश्वर देव ने ब्रह्मा का स्पर्श किया था । दोनों हाथों से ब्रह्मा के शरीर का स्पर्श परम हर्षित होते हुए स्वयं बोले—हे ब्रह्मन् ! आप मेरे ही समान हैं—इसमें तनिक भी सदेह नहीं है और आप मेरे परम भक्त हैं ॥१२॥१३॥१४॥ हे सुव्रत ! आपका कल्याण होवे और आपको यह भी वरदान मैं देता हूँ कि आपके हृदय में मयार्थ का ज्ञान हो जावे । अब मैं जाता हूँ । इस प्रकार से कहकर भगवान् ईश्वर इसके पश्चात् अन्तर्हित हो गये थे । ॥१५॥

गतवान् गणपो देवः सर्वदेवनमस्कृतः १।
 अवाप्य संज्ञा गोविंदात् पद्मयोनिः पितामहः ॥१६॥
 प्रजाः स्रष्टुमनाश्रके तप उग्रं पितामहः ।
 तस्यैव तप्यमानस्य न किंचित्समवर्तत ॥१७॥
 ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो ह्यजायत ।
 क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्या प्रापतन्नश्रुबिंदवः ॥१८॥
 ततस्तेभ्योऽश्रुबिंदुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ।
 महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरप्यलकृताः ॥१९॥
 प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ।
 सर्पास्तानग्रजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिदयत् ॥२०॥
 अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
 लोकवैनाशिकी जज्ञे आदा वैव प्रजा मम ॥२१॥

समस्त गणों के पति और सम्पूर्ण देवों के द्वारा वन्द्यमान देव चले गये थे । पद्म योनि पितामह ने गोविन्द से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके प्रजाओं के सृजन करने के मन वाले पितामह ने उग्र तपस्या की थी । उसके इस प्रकार से तप्यमान होने पर भी कुछ भी परिणाम नहीं आया ॥१६॥१७॥ इसके अनन्तर जब बहुत लम्बा समय तप करते हुए हो गया तो पितामह को बड़ा दुःख हुआ था और उस दुःख से क्रोध उत्पन्न हो गया था । उस समय क्रोध में आविष्ट हुये ब्रह्मा के नेत्रों से अश्रुओं की बूँदें गिरने लगी थी ॥१८॥ इसके पश्चात् उन अश्रुओं की बूँदों से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले, महाभाग, स्वस्तिकों में अलङ्कृत, महासत्त्व उत्पन्न हो गये थे और वे प्रकीर्ण केशों वाले महा विषधारी सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे । उन अप्रजा स्वरूप सर्पों को देखकर ब्रह्मा ने अपने आपकी निन्दा की थी ॥१९॥२०॥ ब्रह्मा ने कहा— अहो ! मेरे इस तप को धिक्कार है जिसका यह ऐसा फल हुआ है । आदि में ही लोको के विनाश करने वाली यह ऐसी मेरी प्रजा उत्पन्न हुई है ॥२१॥

तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।
 मूर्च्छाभिपरितापेन जहौ प्राणान्प्रजापतिः ॥२२॥
 तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम् ।
 अथैकादश ते रुद्रा रुदतोऽभ्यक्रमंस्तथा ॥२३॥
 रोदनात्खलु रुद्रत्व तेषु नैव समजायत ।
 ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मकाः ॥२४॥
 प्राणाः प्राणवता जयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः ।
 अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुराचरितस्य च ॥२५॥
 प्राणास्तस्य ददौ भूयस्त्रिशूलो नीललोहितः ।
 लब्ध्वासुन् भगवान्ब्रह्मा देवदेवमुमापतिम् ॥२६॥
 प्रणम्य संस्थितोऽपश्यद्गायत्र्या विश्वमोक्षरम् ।
 सर्वलोकमय देव दृष्ट्वा स्तुत्वा पितामहः ॥२७॥
 ततो विरमयमापन्नः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
 उवाच वचनं शर्मा सद्यादित्थं कथं विभो ॥२८॥ -

उस पितामह को मर्यन्त तीव्र मूर्छा हो गई थी जो कि
 क्रोध और अमर्ष के कारण उत्पन्न हुई थी । उस मूर्छा के कारण जो
 ब्रह्मा को अभि-परिताप हुआ उससे प्रजापति ने प्राणों का त्याग कर
 दिया था ॥२२॥ अप्रतिम रूप वाले उसके देह से कर्षणा के साथ रुदन
 करते हुए एकादश रुद्र निकल पड़े थे ॥२३॥ रोदन करने से ही उनमें
 रुद्रत्व उत्पन्न हो गया था । जो रुद्र थे वे ही निम्न उससे प्राण थे
 और जो प्राण थे वे तत्स्वरूप वाले थे ॥२४॥ प्राण वालों के प्राण
 जानने के योग्य होते हैं जो कि समस्त प्राणियों में अवस्थित होते हैं ।
 यह अति तीव्र सदाचार और महत्व के साधक हैं ॥२५॥ नील लोहित
 त्रिशूली ने फिर उसके प्राणों को दे दिया था । भगवान् ब्रह्मा ने प्राणों
 को प्राप्त करके देवों के देव उमा के पति को प्रणाम किया था और
 सन्निहित होकर गायत्री के द्वारा विश्व रूप वाले ईश्वर को देखा था ।

सर्व लोकमय देव का दर्शन करके पितामह ने उनका स्तवन किया ।
॥२६॥२७॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा को अत्यन्त विस्मय हुआ । उसने वार-
म्बार प्रणिपात करके भगवान् शम्भु यह वचन कहा कि हे विभो !
आपका सत्त्वादि रूपता कैसे हो गई है अर्थात् तुरन्त ही प्रादुर्भाव कैसे हो
गया है ? ॥२८॥



गायत्री-महिमा

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो भगवान् भवः ।
ब्रह्मरूपी प्रबोधार्थं ब्रह्माणं प्राह सस्मितम् ॥१॥
श्वेतकल्पो यदा ह्यासीदहं मेव तदाभवम् ।
श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेतांबरधरः सितः ॥२॥
श्वेतास्त्रिः श्वेतरोमा च श्वेतामृक् श्वेनलोहितः ।
तेन नाम्ना च विरुप्रातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यमो ॥३॥
मत्प्रसूता च देवेशी श्वेतांगा श्वेतलोहिता ।
श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता ॥४॥
तस्मादहं च देवेश त्वया गुह्येन वै पुनः ।
विज्ञातः स्वेन तपसा सद्योजातस्त्वमागतः ॥५॥
सद्योजातेति ब्रह्मतदगुह्यं चैतत्प्रकीर्तितम् ।
तस्माद्गुह्यत्वमापन्नं ये वेत्स्यन्ति द्विजातयः ॥६॥
मत्समोष गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।
यदा चैव पुनस्त्वासील्लोहितो नाम नामतः ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—उस ब्रह्मा के उस वचन को सुनकर
भगवान् भव जो कि ब्रह्मा के रूप वाले हैं, प्रबोध कराने के लिए मन्द
मुस्कान के साथ ब्रह्मा से बोले ॥१॥ जिस समय श्वेत कल्प था उस

समय मे मैं ही हुआ था । मेरा उस समय श्वेत उष्णीष था, श्वेत ही माल्य था, श्वेत घण्टियों के धारण करने वाला, श्वेत-श्वेन भस्थियो से युक्त, श्वेत रोमों से सम्पन्न, श्वेत रुधिर वाला और मैं श्वेत लोहित था । अतएव उसी नाय से उसी समय मे यह श्वेत कल्प विरूपान हुआ था ॥२॥३॥ मुझसे समुत्पन्न देवेशी श्वेन मङ्गो वाली, श्वेत लोहिता तथा श्वेत वर्ण से युक्त उस समय मे गायत्री ग्रह सजा वाली हुई थी ॥४॥ हे देवेश ! उससे गुह्य तुमने मुझे पुनः जान लिया है और अपने तप के प्रभाव से सद्यं जातस्व को प्राप्त हो गया है ॥५॥ सद्योजात यह ग्रह है जो कि अत्यन्त गुह्य कहा गया है । इससे गुह्यत्व को प्राप्त होने वाले उसको जो द्वि-जातिगण जान लेंगे वे मेरे ही समीप मे गमन करेंगे और फिर उनकी पुनरावृत्ति दुर्लभ है अर्थात् फिर इस सप्ताह मे जन्म ग्रहण नहीं करेंगे । जिस समय यह पुन हुआ था जिसका लोहित नाम था वह मेरे किए द्वये वर्ण से लोहित नामक कहा कहा गया है ॥६॥७॥

मत्कृतेन च वर्णोऽन कल्पोऽथ लोहितः स्मृतः ।
 तदा लोहितमासास्थिलोहितक्षीरसभवा ॥८॥
 लोहिताक्षी स्तनवती, गायत्री गौः प्रकोत्तिता ।
 तत्रोऽस्या लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्ययात् ॥९॥
 वामत्वाच्चैव देवस्य वामदेवत्वमागतः ।
 तत्रापि च महासत्त्वत्वयाहं नियतात्मना ॥१०॥
 विज्ञातः, स्वेन योगेन तस्मिन्वर्णान्तरे स्थितः ।
 ततश्च वामदेवेति ख्यातिं यातोऽस्मि भूतले ॥११॥
 ये चापि वामदेव त्वा ज्ञास्यतीह द्विजातयः ।
 रुद्रलोकं शमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१२॥
 यदाहं पुनरेगेह पीतवर्णो युगक्रमात् ।
 मत्कृतेन च नाम्ना वी पीतकल्पोऽभवत्तदा ॥१३॥

मत्प्रसूता च देवेशी पीतांगी पीतलोहिता ।

पीतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता ॥१४॥

उग समय मांस और अस्थि आदि सब लोहित रंगी और लोहित रंगी से सम्भूत, लोहित नेत्रों वाली, सानों वाली गायत्री गौ कहो गई थी । इसके अनन्तर इसके लोहितत्व से और वर्ण के विपर्यय होने से इसका इस प्रकार का नाम हुआ था ॥८॥९॥ देव के वामत्व होने से यह वाम देवत्व को प्राप्त हुआ था । वहीं पर भी हे महासत्त्व ! नियत आत्मा वाले आपने उग भिन्न वर्ण में स्थित मुझे अपने योग के बल से विज्ञात कर लिया था और इस कारण से भूतल में वामदेव—इस नाम की न्यायि को प्राप्त हुआ था ॥१०॥११॥ जो द्विजाति गए यहाँ वाम देवत्व के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे वे सीधे यद्वा लोक को चले जायेंगे और फिर उनका दुबारा जन्म नहीं होगा ॥१२॥ जिस समय में पुनः यहा पर युग के क्रम से पीत वर्ण वाला हुआ था तब मेरे किए हुए नाम के द्वारा पीत वर्ण हुआ था ॥१३॥ मुझमें प्रसून होने वाली देवेशी, पीताङ्गी, पीत लोहिता, पीत वर्ण वाली उस समय में ब्रह्म संज्ञिता गायत्री हुई थी ॥१४॥

तत्रापि च महासत्त्व योगयुक्तेन चेतसा ।

यस्मादहं तद्विज्ञातो योगतत्परमानसोः ॥१५॥

तत्र तत्पुरुषत्वेन विज्ञातोऽहं त्वया पुनः ।

तस्मात्तत्पुरुषत्वं गी ममैतत्कनकाडज ॥१६॥

ये मा रुद्र च रुद्राणी गायत्रीं वेदमातरम् ।

चेत्स्यति तपसा युक्ता विमला ब्रह्मसंगताः ॥१७॥

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।

यदाह पुनरेवासं कृष्णवर्णं भयानकः ॥१८॥

मत्कृतेन च वर्णेन संकल्पः कृष्ण उच्यते ।

तत्राहं कालसंकाशः यातो लोकप्रकालकः ॥१९॥

विज्ञातोऽहं त्वया ब्रह्मन्धोरो घोरपराक्रमः ।
 मत्प्रसूता च गायत्री कृष्णाङ्गी कृष्णलोहिता ॥२०॥
 कृष्णरूपा च देवेश तदासौद्ब्रह्मसंज्ञिता ।
 तस्माद्धोरत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले ॥२१॥

हे महासत्त्व ! उस समय मे वहाँ पर भी योग मुक्त चित्त के द्वारा योग मे तत्पर मानस वाले उनके द्वारा मैं पहिचान लिया गया था ॥१५॥ वहाँ पर आपने फिर मुझे तत्पुरुष रूप से विज्ञात किया था । हे कनकाण्डज ! मेरा यह तत्पुरुषत्व रहा है ॥१६॥ जो लोग तप से युक्त, विमल और ब्रह्म सङ्गन हैं मुझ रत्न को और वेदों की नात वराणी गायत्री को जान लेंगे अर्थात् ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे वे सब रत्न लोक मे गमन करेंगे और उनकी इस संसार मे फिर दुबारा आवृत्ति दुर्लभ होगी । जिस समय मैं भयानक कृष्ण वर्ण वाला था तब मेरे द्वारा किये हुए वर्ण से वह कल्प कृष्ण कहा जाता है । वहाँ पर मैं कान के समान और लोकों को प्रकाशित करने वाला काल ही था ॥१७॥ १८॥ १९॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय मैं तुमने मुझे घोर और घोर पराक्रम वाला विज्ञात किया था । मुझमे प्रसव ग्रहण करने वाली गायत्री कृष्णाङ्गी, कृष्ण लोहिता और हे देवेश ! ब्रह्म संज्ञिता कृष्ण रूपा उस समय मे थी । इससे घोरत्व को प्राप्त मुझको जो लोग भूतल मे जान जायेंगे उनको मैं अघोर और शान्त अव्यय हो जाऊँगा ॥२०॥ २१॥

तेषामघोरः शान्तश्च भविष्यादेहमव्ययः ।
 पुनश्च विश्वरूपत्वं यदा ब्रह्मन्ममाभवत् । २२॥
 तदाप्यहं त्वया ज्ञातः परमेण समाधिना ।
 विश्वरूपा च संवृत्ता गायत्री लोकधारिणी ॥२३॥
 तस्मिन्विश्वत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले ।
 तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव हि ॥२४॥

यस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः ।
 विश्वरूपा तथा चेयं सावित्री समुदाहृता ॥२५॥
 सर्वरूपा तथा चेमे संवृत्ता मम पुत्रकाः ।
 चत्वारस्ते मया ख्याताः पुत्रा वै लोकसंमताः ॥२६॥
 यस्माच्च सर्ववर्णत्वं प्रजानां च भविष्यति ।
 सर्वमक्षा च मेध्या च वर्णतश्च भविष्यति ॥२७॥
 मोक्षो धर्मस्तथार्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम् ।
 यस्माद्वेदाश्च वेद्यं च चतुर्धा च भविष्यति ॥२८॥

इसके पदवात् फिर जिस समय मैं मैं विश्व रूपत्व को हे
 ब्रह्मन् प्राप्त हुआ अर्थात् मेरी विश्व रूपा हो गई थी तब भी परमो-
 रूढ समाधि के द्वारा तुमने मुझे जान लिया था और यह गायत्री लोक-
 धारिणी विश्वरूपा हो गई थी ॥२२॥२३॥ उसमें भूतल में जो लोग मुझे
 विश्वरूपत्व को प्राप्त होने वाला जान लीये उनके लिए मैं शिवाय और
 परम सौम्यत्व के स्वरूप वाला सदा ही हो जाऊँगा ॥२४॥ मैंने यह
 विश्व रूप वत्स समुदाहृत कर दिया है और उसी प्रकार से यह
 सावित्री विश्वरूपा बतादी है ॥२५॥ जिस प्रकार से समस्त रूपा वाली
 गायत्री है वैसे ही ये सब मेरे पुत्र ही समुत्पन्न हुए हैं। मेरे
 द्वारा वे चार लोक सम्मत पुत्र ख्यात हैं ॥२६॥ जिससे प्रजापति का
 सब वर्णत्व होगा। यह वर्ण से और चत्वार से अर्थ से सर्वमक्ष और
 यज्ञयोग्या होगी। यह गायत्री होगी इसीलिसे प्रजापति की सर्ववर्णता
 होगी ॥२७॥ धर्म अर्थ, काम और मोक्ष इनका चतुष्टय होता है
 जिससे वेद और वेद्य अर्थात् पुरुषार्थ स्वरूप चार प्रकार के होवे।
 ॥२८॥

भूतप्रामाश्च चत्वार आश्रमाश्च तथैव च ।
 धर्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो ममः पुत्रकाः ॥२९॥

तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम् ।
 चतुर्धाविस्थितश्चैव चतुष्पादो भविष्यति ॥३०॥
 भूलोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च महस्तथा ।
 जनस्तपश्च सत्यं च विष्णुलोकस्ततः परम् ॥३१॥
 अष्टाक्षरस्थितो लोकः स्थानेस्थाने तदक्षरम् ।
 भूभुवः स्वर्मेहश्चैव पादाश्चत्वार एव च ॥३२॥
 भूलोकः प्रथमः पादो भुवर्लोकस्ततः परम् ।
 स्वर्लोको वै तृतीयश्च चतुर्यस्तु महस्तथा ॥३३॥
 पञ्च मस्तु जनस्तत्र यष्टश्च तप उच्यते ।
 सत्यं तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भवगामिनाम् ॥३४॥
 विष्णुलोकः स्मृत स्थान पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।
 स्कांदमौम तथा स्थानं सर्वसिद्धिसमन्वितम् ॥३५॥

भूतो भर्षात् प्राणिषो के ग्राम भर्षात् समूह भी चार प्रकार
 के हैं जिनके नाम जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज हैं उसी प्रकार
 से ब्रह्मचर्यं, गाहंस्थ्य, यानप्रस्थ और सन्यास ये आश्रम भी चार प्रकार
 के होते हैं । हे मेरे पुत्रो ! धर्म के दया, दान, तप और सत्य ये चार
 पाद होते हैं ॥३६॥ इसीलिये यह जगत् समस्त चराचर चार युगो की
 अवस्था वाला है । चार प्रकार से अवस्थित यह चार पादो वाला होगा
 ॥३७॥ भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्य-
 लोक और इस सबसे परे विष्णु लोक है ॥३८॥ अष्टाक्षर रूपलोक है
 और स्थान-स्थान में वह अक्षर है । भूः, भुवः स्वः और महः ये चार
 ही पाद होते हैं ॥३९॥ भूर्लोक प्रथम पाद है, इसके पश्चात् भुवर्लोक
 द्वितीय पाद है, फिर स्वर्लोक तृतीय पाद है और उसी प्रकार महर्लोक
 चतुर्थ पाद होता है ॥४०॥ पञ्चम जनलोक, यष्ट तपलोक कहा जाता
 है । सत्य सप्तम लोक है जो कि अपुनर्भावगमियों के ही लिये है भर्षात्
 इनमें पहुँचकर फिर वही पुनरागमन नहीं होता है ॥४१॥ विष्णु लोक

तो एक ऐसा स्थान है जहाँ से पुनरावृत्ति का अत्यन्त दुर्बल ही बही गई है । स्का द तथा श्रीम उस प्रकार के स्थान हैं जो कि समस्त प्रकार की सिद्धियों से समबित होते हैं ॥३५॥

रुद्रलोक स्मृतस्तस्मात्पद तद्योगिना शुभम् ।
निर्गमा निरहकारा कामक्रोध विवर्जिता ॥३६॥
ब्रक्ष्यति तद्दि वजा युक्ता ध्यानतत्परमानसा ।
यस्मात्तनुष्पदा ह्येपा त्वया दृष्टा सरस्वती ॥३७॥
पादात विष्णु लोक वै कीमार शातमुत्तमम् ।
औम माहेश्वर णैव तस्मादृष्टा चतुष्पदा ॥३८॥
तस्मात्तु पशव सर्वे भविष्यति चतुष्पदा ।
ततश्चैपा भविष्यति चत्वारस्ते पयोधरा ॥३९॥
सोमश्च मनसयुक्तो यस्मान्मम मुखाच्च्युत ।
जीव प्राणभृता ब्रह्मन्पुन पीतस्तना स्मृता ॥४०॥
तस्मात्सोममय चैव अमृत जीवसंज्ञितम् ।
चतुष्पादा भविष्यति श्वेतत्व चास्य तेन तत् ॥४१॥
यस्माच्चैत्र क्रिया भूत्वा द्विपदा च महेश्वरी ।
दृष्टा पुनस्तथैनेपा सावित्री लोकभाविनी ॥४२॥

उससे फिर रुद्र लोक कहा गया है, जो कि योगियों के लिए परम शुभ स्थान है । जो ममता से रहित, महङ्कार से गूँथ और काम तथा क्रोध से वरित एवं ध्यान में परायण मन वाल युक्त दिन हैं वे ही उस स्थान का दान करेंगे । जिस कारण से तुमने यह सरस्वती चतुष्पाद वाली देखी है ॥३६॥३७॥ विष्णु लोक पादा न है, कुमार स्का द वा कीमार परम शांत एवं उत्तम है उमा वा लोक श्रीम और महेश्वर वा माहेश्वर भर्मात् शैव लोक है इससे चतुष्पदा यह देखी गई है ॥३८॥ इससे समस्त पशुगण चतुष्पद भर्मात् चार पैर वाले होंगे । इसी कारण से इनके चार ही पयोधर होंगे । मनो के द्वारा इन सोम मेरे मुख से

श्रुत हो गया था जो कि प्राण धारियों का जीव है । हे ब्रह्मन् ! फिर ये पीतस्तन कहे गये हैं ॥३६॥४०॥ इससे सोममय अमृत जीव सजा वाला है । चतुष्पादा होये इसी कारण से उसे श्वेतत्व होता है । दुग्ध को श्वेतत्व और सोम रूपत्व होने से ही होता है, यह तात्पर्य है ॥४१॥ जिस कारण से किया होकर महेश्वरी द्विपदा देखी है फिर उसी प्रकार से यह लोक भाविनी सावित्री है ॥४२॥

तस्माच्च द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः शुभाः ।

तस्माच्चेयमजा भूत्वा सर्ववर्णा महेश्वरी ॥४३॥

या वै दृष्टा महासत्त्वा सर्वमतधरा त्वया ।

तस्माच्च विश्वरूपत्वं प्रजानां वै भविष्यति ॥४४॥

अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति ।

अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः ॥४५॥

तस्मात्सर्वगतो मेध्यः पशुरूपो हुताशनः ।

तपसा भावितात्मानो ये मां द्रक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥४६॥

ईशित्वे च वशित्वे च सर्वगं सर्वतः स्थितम् ।

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्त्यक्त्वा मानुष्यकं वपुः ॥४७॥

मत्समीपमुपेक्ष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।

इत्येवमुक्तो भगवान्ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः ॥४८॥

प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः ।

य एव भगवान् विद्वान् गायत्र्या वै महेश्वरम् ॥४९॥

विश्वात्मानं हि सर्वं त्वां गायत्र्यास्तव चेश्वर ।

तस्य देहि परं स्थानं तथास्त्विति च सोब्रवीत् ॥५०॥

तस्माद्विद्वान् हि विश्वत्वमस्याश्चास्य महात्मनः ।

स याति ब्रह्मसायुज्यं वचनाद्ब्रह्मणः प्रभोः ॥५१॥

और इसी कारण से समस्त मनुष्य शुभ दो पादो वाले है

और दो स्तनो वाले होते हैं । और इसी कारण से यह अजा होकर

महेश्वरी सर्व वर्णा है ॥४३॥ जो कि तुम्हारे द्वारा महान् सत्त्व वाली और समस्त भूतो को धारण करने वाली देखी गई है । इसी कारण से प्रजाग्रो का विश्वरूपत्व होगा ॥४४॥ और महान् तेज वाला धज विश्व रूप होगा । यह सर्वत्र प्रमोघ रेतस वाला है और इसके मुख में हुताशन है ॥४५॥ इससे र वंगत, मेध्य और पशु रूपी हुताशन होता है । तप के द्वारा भावित आत्मा वाले जो द्विज मुझकी देखेंगे वे ईशित्व और वशित्व में सर्वत्र गमन करने वाले और सर्वत्र स्थित रहने वाले तथा रजोगुण और तमोगुण से निर्मुक्त होते हुए इस गानुप शरीर का त्याग करके मेरे समीप में प्राप्त होंगे और फिर इस संसार में उनका आगमन अत्यन्त दुर्लभ हो जायगा । हे द्विजगण ! इस प्रकार से रुद्र भगवान् के द्वारा ब्रह्माजी को कहा गया था ॥४६॥४७॥४८॥ फिर पितामह ने प्रयत्न होकर महेश्वर को प्रणाम किया था और पुनः कहा— जो इस प्रकार से भगवान् गायत्री के साथ महेश्वर के विद्वान् हैं और आपको विश्वात्मा सर्व जानते हैं तो हे ईश्वर ! उनकी गायत्री का और आपका पर स्थान दीजिए । तथा वह 'तथास्तु' मर्मात् ऐसा ही होगा—यह बोला ॥४९॥ ॥५०॥ इससे इस गायत्री का और इस महेश्वर का विश्व रूपत्व का जो विद्वान् है वह प्रभु ब्रह्मा के वचन से ब्रह्म सामुद्र्य को प्राप्य होता है ॥५१॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

॥ योगावतार वर्णन ॥

श्रुत्वावमखिलं ब्रह्मा रुद्रेण परिभाषितम् ।

पुनः प्रणम्य देवेन रुद्रमाह प्रजार्पितः ॥१॥

भगवन्देवदेवेश विश्वरूपं महेश्वर ।

उमाधव महादेव नमो लोकाभिवन्दित ॥२॥

विश्वरूप महाभाग कस्मिन्काले महेश्वर ।

या इमास्ते महादेव तनवो लोकवदिताः ॥३॥

कस्यां वा युगसंभृत्यां द्रक्ष्यंतीह द्विजातयः ।

केन वा तपसा देव ध्यानयोगेन केन वा ॥४॥

नमस्ते वै महादेव शक्यो द्रष्टुं द्विजातिभिः ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शर्वः संप्रेक्ष्य तं पुरः ॥५॥

स्मयन्प्राह महादेवो ऋग्यजुःसामसं भवः ।

तपसा नैव वृत्तेन दानधर्मफलेन च ॥६॥

न तीर्थफलयोगेन ऋतुभिर्वाप्तदक्षिणैः ।

न वेदाध्ययनैर्वपि न विद्वेन न वेदभिः ॥७॥

न शयनं मानवैर्द्रष्टुमृते ध्यानादहं स्निह ।

सप्तमे चैव वाराहे ततस्तस्मिन्नितामह ॥८॥

कल्पेश्वरेऽथ भगवान् सर्वलोकप्रकाशनः ।

मनुर्वैवस्यतचैश्वर्यं तव पोशो भविष्यति ॥९॥

तदा चतुर्गुणावस्थे तस्मिन्कल्पे युगांतिके ।

अनुग्रहार्थं लोकाणां ब्राह्मणानां हिताय च ॥१०॥

उत्पत्स्यामि तदा ब्रह्मन्पुनरस्मिन्पुनर्युगांतिके ।

युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिन् प्रथमे युगे ॥११॥

श्री गूतजी ने कहा—इस प्रकार से ब्रह्माजी ने रत्न के द्वारा
 किए हुए ममस्त परिमाणित का श्रवणकर करके प्रजा पति ने पुनः
 देवेश रत्न को प्रणाम करके कहा ॥१॥ हे भगवन् ! पाप तो देवों के
 भी देव है, पित्र के रूप घोर भान् ईश्वर है । हे उमा के स्वामिन् ! हे
 महादेव ! पाप तोशों के द्वारा अभिवन्धित है पापको मेरा नमस्कार
 है ॥२॥ हे विद्वन् ! पाप महान् भाग वाच है घोर महान् ईश्वर
 है । पापको जो ये लोकवदिता मनु है वे विग ममत् में पचका विग युग
 की ममभूति में पही द्विजाति मनु देवों के घोर विग मम के द्वारा गया

हे देव ! किस ध्यान योग के द्वारा देखेगे, यह बताइये ॥३॥४॥ हे महादेव ! आपको मेरा नमस्कार है । आप द्विजातियों के द्वारा देखे जा सकते हैं । उसके इस वचन का श्रवण कर शम्भु ने उसको अपने आगे देखकर महादेव ने मुस्कराते हुए कहा जो कि ऋक्, यजु और सामवेद से सम्भव है । श्री भगवान् ने कहा—मैं यहाँ पर तप, वृत्त, दान और धर्म का फल, तीर्थों के फल का योग, आस दक्षिणा वाले क्रतु समुदाय, वेदों के अध्ययन, विद्या और शास्त्रों के ज्ञान से मानवों के द्वारा देखा नहीं जा सकता हूँ अर्थात् इन उक्त किसी भी एक या समस्त साधनों से मनुष्य मुझे नहीं देख सकते हैं केवल ध्यान से ही मैं देखा जाने के योग्य होता हूँ । हे पितामह ! इसके पश्चात् सप्तम वाराह कल्प में समस्त लोक का प्रकाश करने वाला कल्पेश्वर भगवान् मैं और वैवस्वत मनु आपके पीन होंगे ॥५॥६॥७॥८॥९॥ उस समय में चतुर्गुणावस्थ उस युगान्तिक कल्प में लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए तथा ब्राह्मणों के हित सम्पादन करने के लिए तब हे ब्रह्मन् ! युग की प्रवृत्ति से उस प्रथम युग में मैं उत्पन्न हो जाऊँगा ॥१०॥ ॥११॥

योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।

प्राप्य माहेश्वर योगं विमला ह्यध्वरेतसः ॥१२॥

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।

एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥१३॥

लिगार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः ।

भक्त्या मयि च योगेन ध्यान निष्ठा जितेन्द्रियाः ॥१४॥

संसारवधच्छेदार्थं ज्ञानमार्गप्रकाशकम् ।

स्वरूपज्ञानसिद्धयर्थं योगं पाशुपतं महत् ॥१५॥

उस समय में योगात्मा और महान् आत्मा वाले वेदों के पारगामी ब्राह्मण माहेश्वर योग की प्राप्ति करके परम विमल और ऊर्ध्व

रेतस हो जायेंगे और फिर वे रुद्र लोक को प्राप्त करेंगे जहाँ पहुँचकर पुनः इस ससार में आवृत्ति होती ही नहीं है। ये पाशुपत सिद्ध हैं जिनका सम्पूर्ण शरीर भस्म से उद्वूलित रहा करता है ॥१२॥१३॥ ये नित्य ही लिङ्ग की अर्चना में रत रहने वाले हैं जो बाहिर और भीतर उसी अर्चन में स्थित रहा करते हैं। भक्ति की भावना के द्वारा मुझमें योग से ध्याननिष्ठ होने हैं और इन्द्रियो को जीतकर रखने वाले हैं ॥१४॥ इस ससार के बन्धन का छेदन करने के लिए ज्ञान के मार्ग को प्रकाशित करने वाला है तथा स्वरूप के ज्ञान की सिद्धि के लिए पाशुपत योग महान् होता है ॥१५॥

योगमार्गं अनेकाश्च ज्ञानमार्गस्त्वेकशः ।

न निवृत्तिमुपायाति विना पञ्चाक्षरी कचित् ॥१६॥

यदाचरेत्तापश्राय सर्वद्वन्द्वविर्जितम् ।

तदा स मुक्तो मतव्यः पक्वं फलमिव स्थितः ॥१७॥

एकाह यः पुमान्सम्यक् चरेत्पाशुपतव्रतम् ।

न साहये पञ्चरात्रे वा न प्राप्नोति गतिं कदा ॥१८॥

इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम् ।

मन्वादिक्वणपर्यंतमष्टाविंशद्युगक्रमात् ॥१९॥

तत्र श्रुतिसमूहानां विभागो धर्मलक्षणः ।

भविष्यति तदा कल्पे कृष्णवृषायनो यदा ॥२०॥

निशम्यैवं महातेजा महादेवेन कीर्तितम् ।

रुद्रावतारं भगवान् प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥२१॥

यों तो योग के अनेक मार्ग हैं और बहुत से ज्ञान के भी मार्ग होते हैं। किन्तु 'ओ नमो शिवाय'—इस पञ्चाक्षरी मन्त्र की ऊप बिद्या के बिना कोई भी निवृत्ति को प्राप्त नहीं होते हैं ॥१६॥ जो समस्त द्वन्द्वों से रहित इस तप का आचरण किया करता है तब उक्त मुक्त ही मान लेना चाहिए। वह तो पके हुये फल की भाँति ही स्थित

होता है ॥१७॥ जो पुष्प एक दिन वाले इस पाशुपत व्रत का भली-
भाँति आचरण करता है वह साध्य अथवा पञ्चरात्र में कही गति को
प्राप्त नहीं होता है ॥१८॥ यह मैंने अवतारों में लक्षण कह दिया है जो
अष्टा विंशत युग के क्रम से भन्वादि कृष्ण पर्यन्त है ॥१९॥ उस कल्प
में जबकि कृष्ण द्वैपायन होंगे श्रुतियों के समूहों का धर्मान्तरण
विभाग होगा ॥२०॥ सूरजी ने कहा—इस प्रकार से महात् तेज वाले
प्रजापति ने महादेव के द्वारा कहे गये इस सबका श्रवण करके रुद्रा-
वतार महेश्वर को प्रणाम किया था ॥२१॥

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः पुनः प्राह च शङ्करम् ।
सर्वे विष्णुमया देवाः सर्वे विष्णुमया गणाः ॥२२॥
न हि विष्णुसभा काचिद्गार्तरन्या विधीयते ।
इत्येव सतत वेदा गायति नात्र सशयः ॥२३॥
स देवदेवो भगवास्तव लिंगार्चने रतः ।
तव प्रणामपरमः कथं देवो ह्यभूत्प्रभुः ॥२४॥
निशम्य वचन तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रपिबन्निव चक्षुर्म्या प्रीतस्तत्प्रदग्निगौरवात् ॥२५॥
पूजाप्रकरणं तस्मै तमालोक्पाह शङ्कर ।
भवाभारायणश्चैव शक्र साक्षात्सुरोत्तमः ॥२६॥
मुनयश्च सदा लिंगं संपूज्य विधिपूर्वकम् ।
स्वस्व पदं विभो प्राप्तास्तस्मात्संपूजयति ते ॥२७॥
लिङ्गार्चनं विना निष्ठा नास्ति तस्मात्तु नार्दनः ।
आत्मनो यजते नित्यं श्रद्धया भगवान्प्रभुः ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः ।
पुनः संप्रेक्ष्य देवेश तत्रैवातरधीयत ॥२९॥
तमुद्दिश्य तदा ब्रह्मा नमस्कृत्य वृताजलि ।
सष्टं त्वशेषं भगवाँल्लब्धसज्जस्तु शङ्करात् ॥३०॥

और अभीष्ट वाणियो के द्वारा महेश्वर का स्तवन किया था । इसके पश्चात् भगवान् शङ्कर से कहा था—पितामह ने कहा—समस्त देवता विष्णुमय हैं और सम्पूर्ण गण भी विष्णुमय हैं । विष्णु के समान अन्य कोई भी गति का विधान नहीं है । इसी प्रकार से समस्त वेद निरन्तर गान किया करते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२२॥ ॥२३॥ वह देवों का भी देव भगवान् विष्णु भी आपके लिङ्ग की अर्चना में निरत रहा करते हैं और निरन्तर आपको प्रणाम करने वाले होते हैं तो वह प्रभु कैसे देव हैं ? ॥२४॥ भूतजी ने कहा—परमेश्वी ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर नेत्रों से मानों पान कर रहे हैं । इस तरह से उसके इस प्रश्न के शीर्ष से शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए थे ॥२५॥ उसको देखकर उसके लिये शङ्कर ने पूजा का प्रकरण कहा था । भगवान् नारायण और शक्र (इन्द्र) साक्षात् सुरोत्तम हैं ॥२६॥ मुनिगण सदा विधि पूर्वक लिङ्ग का पूजन करके हे विभो ! अपने-अपने पद को प्राप्त हुए हैं इससे वे पूजा किया करते हैं ॥२७॥ लिङ्ग की अर्चना के बिना निश्चय नहीं होती है इससे जनार्दन भगवान् प्रभु नित्य श्रद्धा की भावना से आत्मा का यजन किया करते हैं ॥२८॥ इस प्रकार से इतना यह कह कर महेश्वर ब्रह्मा पर अनुग्रह करके और पुनः देवेश भली-भाँति देखकर वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे ॥२९॥ उस समय में ब्रह्माजी ने उनका उद्देश्य करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया था क्योंकि भगवान् शङ्कर से समस्त का सृजन करने के लिए अनुज्ञा प्राप्त करली थी ॥३०॥



शिवोक्त स्नान विधि

कथं पूज्यो महादेवो लिंगमूर्तिर्महेश्वरः ।

यक्तुमर्हसि चास्मान् रोमहर्षण संप्रतम् ॥१॥

देव्या पृष्ठो महादेवः कैलासे तां नगात्मजाम् ।
 अंकस्थामाह देवेशो लिगाचनविधि क्रमात् ॥२॥
 तदा पार्श्वे स्थितो नंदी शालंकायनकात्मजः ।
 श्रुत्वाखिलं पुरा प्राह ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः ॥३॥
 सनत्कुमाराय शुभं लिगाचनविधि परम् ।
 तस्माद्व्यासो महातेजाः श्रुतवाञ्छृतिसमितम् ॥४॥
 स्नानयोगोपचारं च यथा शैलादिनो मुखात् ।
 श्रुतवान् तत्प्रवक्ष्यामि स्नानाद्यं चार्चनाविधिम् ॥५॥
 अथ स्नानविधि वक्ष्ये ब्राह्मणानां हिताय च ।
 सर्वपापहरं साक्षाच्छिवेन कथितं पुरा ॥६॥
 अनेन विधिना स्नात्वा सकृत्पूज्य च शङ्करम् ।
 ब्रह्मकूर्चं च पीत्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७॥

ऋषियो ने कहा—हे रोमहर्षण ! लिङ्ग की मूर्ति वाले
 महेश्वर किस प्रकार से पूजा के योग्य हुये हैं । अब आप हम लोगों को
 इसे बताने के योग्य होते हैं ॥१॥ सूतजी ने कहा—कैलास गिरि पर
 एक बार भवानी के द्वारा पूछे गये महादेव ने उस नगात्मजा को अपनी
 गोद में स्थित करके देवेश ने लिङ्गार्चन की विधि को क्रम से कहा
 था ॥२॥ उस समय में भगवान् शङ्कर के समीप में शालङ्कायन का पुन
 नन्ही स्थित था उसने इस सम्पूर्ण विधान का श्रवण करके पहिले ही
 सुव्रतो । ब्रह्मा के पुत्र के लिए कहा था ॥३॥ यह परम शुभ लिङ्ग के
 अर्चना के विधि जो सनत्कुमार से कही गई थी और उससे महान् तेज
 वाले व्यास ने इस श्रुति समित का श्रवण किया था ॥४॥ शैलादि के
 मुख से जिस प्रकार से स्नान योगोपचार मने सुना था उसे स्नानादिक
 को और अर्चना की विधि को मैं बताता हूँ ॥५॥ शैलादि ने कहा—
 इसके अनन्तर मैं अब स्नान की विधि को बताता हूँ जो कि ब्राह्मणों
 के हित का सम्पादन करने के लिये ही कर रहा हूँ । यह समस्त प्रकार

के पापों का हरण करने वाला है और इसे पहले स्वयं साक्षात् शिव ने कहा था ॥६॥ इस विधि विधान से स्नान करके और एक बार शङ्कर का पूजन करके तथा ब्रह्मकूर्च का पान करके मनुष्य सभी तरह के पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥७॥

त्रिविधं स्नानमाख्यातं देवदेवेन शंभुना ।
 हिताय ब्राह्मणाद्यानां चतुर्मुखसुतोत्तम ॥८॥
 वारुणं पुरतः कृत्वा ततश्चाग्नेयमुत्तमम् ।
 मंत्रस्नानं ततः कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ॥९॥
 भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुद्ध्यति ।
 भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत् ॥१०॥
 सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वप्राप्य नरः ।
 स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुद्ध्यति संशयः ॥११॥
 नृणां हि चित्तकमलं प्रबुद्धमभवद्यदा ।
 प्रसुप्तं तमसा ज्ञानभानोर्भासा तदा शुचिः ॥१२॥
 मृच्छकृत्तिलपुष्पं च स्नानार्थं भसितं तथा ।
 आदाय तीरे निःक्षिप्य स्नानतीर्थे कुशानि च ॥१३॥
 प्रक्षाल्याचम्य पादौ च मला देहाद्विशोष्य च ।
 द्रव्यंस्तु तीरदेशस्थैस्ततः स्नानं समाचरेत् ॥१४॥

देवों के भी देव भगवान् शम्भु ने तीन प्रकार का स्नान बताया है । हे चतुर्मुख के सुतो मे परम श्रेष्ठ ! यह ब्राह्मणादि के हित-सम्पादन करने के लिये ही कहा गया है ॥८॥ सर्व प्रथम वारुण अर्थात् जल का स्नान करे । इसके पश्चात् आग्नेय अर्थात् भस्म स्नान करे जो कि परम उत्तम स्नान कहा जाता है । इन दोनों स्नानों के पश्चात् मार्जन के स्वरूप वाला मन्त्र स्नान करना चाहिए । इनके अनन्तर परमेश्वर की पूजा करे ॥९॥ भावना की शुद्धि परम आवश्यक है । जो भाव से दुष्ट

हो तो जल में स्नान करके तथा भस्म से भी स्नान कर लेने पर कभी शुद्ध नहीं होता है । अतएव भाव से शुद्ध होकर ही शुद्धि करनी चाहिये और अन्यथा कभी भी न करे ॥१०॥ सरित्, सरोवर और तडागो में सब में प्रलय पर्यन्त भी मनुष्य स्नान करके भी यदि भाव दुष्ट है तो कभी शुद्ध नहीं होता है, यह सत्य सिद्धान्त है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥११॥ मनुष्यो का यह चित्त जो कमल के समान है जब प्रबुद्ध हो गया जो कि तम से प्रसुप्त हो रहा था । इसका विकास ज्ञान रूपी सूर्य की दीप्ति ही से होता है, तभी वह शुचि हो जाता है ॥१२॥ मृत्तिका, गोमय, तिल, पुष्प और भस्म स्नान के लिए तीर पर लाकर स्नान तीर्थ पर कुशाग्रो का प्रक्षेप करे ॥१३॥ पादों का प्रक्षालन करके प्राचमन करे और फिर देह से मल का विशोधन करना चाहिये । इसके अनन्तर तीर देश पर स्थित द्रव्यों से स्नान करना चाहिए ॥१४॥

उद्धृतासीतिमंत्रेण पुनर्देहं विशोधयेत् ।
 मृदादाय ततश्चान्यद्वस्त्रं स्नात्वा ह्यनुल्बणम् ॥१५॥
 गंधद्वारां दुराधर्षामिति मंत्रेण मंत्रवित् ।
 कपिलागोमयेनैव खस्थेनैव तु लेपयेत् ॥१६॥
 पुनः स्नात्वा पारित्यज्य तद्वस्त्रं मलिनं ततः ।
 धुक्तवस्त्रपरोधानो भूत्वा स्नानं समाचरेत् ॥१७॥
 सर्वपापविशुद्धयर्थमावाह्य वरुणं तथा ।
 संपूज्य मनसा देवं ध्यानयज्ञेन वै भवम् ॥१८॥
 आचम्य त्रिस्तदा तीर्थे ह्यवगाह्य भवं स्मरन् ।
 पुनराचम्य विधिवदभिमन्थ्य महाजलम् ॥१९॥
 अवगाह्य पुनस्तस्मिन् जपेद्वै चाध मर्पणम् ।
 तत्तोये भानुसोमाग्निमडलं च स्मरेद्वशी ॥२०॥
 आचम्य च पुनस्तस्माज्जलादुत्तीर्य मंत्रवित् ।
 प्रविश्य तीर्थमध्ये तु पुनः पुण्यविवृद्धये ॥२१॥

इसके उपरान्त “उद्धृतासिवराहेण” इस मन्त्र से पुन देह का शोधन करना चाहिए । मृत्तिका को लेकर अपने शरीर की भली-भाँति शुद्धि करे । इसके उपरान्त अन्य निर्मल वस्त्र धारण करे ॥१५॥ मन्त्र के वेत्ता पुरुष को “गन्ध द्वारा दुराधर्षाम्”—इत्यादि मन्त्र के द्वारा कपिला गौ के गोमय से प्रलेपन करना चाहिए ॥१६॥ इसके उपरान्त पुन स्नान करके उस मलिन वस्त्र का त्याग कर देवे । शुक्ल वस्त्र का परिधान करवे ही स्नान करना चाहिये ॥१७॥ समस्त पापों की विशुद्धि के लिए वरुण का आवाहन करे और ध्यान यज्ञ से मन के द्वारा देव भय का भली-भाँति पूजन करना चाहिये ॥१८॥ उस समय में तीन बार आचमन करके भव का स्मरण करते हुए तीर्थ में अथगाहन करे । फिर आचमन करके विधि के साथ महाजल को अभिमन्त्रित करे ॥१९॥ पुन उसमें अथगाहन करके अथमपण मन्त्र का जप करना चाहिए । “ऋत च सत्य च” इत्यादि अथमपण का मन्त्र होता है । उस जल में वशी को सूर्य, सोम और अग्नि के मण्डल का स्मरण करना चाहिए । ॥२०॥ इसके पश्चात् पुन आचमन करके मन्त्र वेत्ता पुरुष को जल से उत्तरण करना चाहिये । फिर तीर्थ के मध्य में पुन पुण्यो की विशेष वृद्धि के लिये प्रवेश करे ॥२१॥

शृगेण परांपुटकं पालाशै क्षालितोस्तथा ।
 सकुशेन सपुष्पेण जलेनैवाभिषेचयेत् ॥२२॥
 रुद्रेण पवमानेन त्वरितारूपेण भववित् ।
 तरत्समदीवर्गाद्यैस्तथा शातिद्वयेन च ॥२३॥
 शातिधर्मेण चैकेन पञ्चब्रह्मपवित्रकै ।
 तत्तन्मन्त्राधिदेवानां स्वरूपं च ऋषीन् स्मरन् ॥२४॥
 एव हि चाभिषिञ्चयात् स्वमूर्ध्नि पयसा द्विजा ।
 घ्यायेच्च त्र्यम्बकं देव तृदि पश्चात्समीश्वरम् ॥२५॥

आचम्याचमनं कुर्यात्स्वसूत्रोक्तं समीक्ष्य च ।
 पवित्रहस्तः स्वासीनः शुचौ देशे यथाविधि ॥२६॥
 अम्युक्ष्य सकुशं चापि दक्षिणेन करेण तु ।
 पिवेत्प्रक्षिप्य त्रिस्तोयं चक्री भूत्वा ह्यतद्रितः ॥२७॥
 प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्विसापापप्रशान्तये ।
 एव संक्षेपतः प्रोक्तं स्नानाचमनमुत्तमम् ॥२८॥
 सर्वपात्राह्मणानां तु हितार्थं द्विजसत्तमाः ॥२९॥

पलास के पत्तो के दोनों में जो कि जल से क्षालित कर लिये गये हो जल लेकर जिसमें कुशा और पुष्प हो भृङ्ग मन्त्र के द्वारा उस जल से अभिषेक करना चाहिए ॥२२॥ फिर मन्त्रों के ज्ञाता पुष्प को स्वरिनाम्न पवमान 'यो रुद्र'—इत्यादि मन्त्र से 'शनो मित्र' तरत्स-मदी वर्गाधि मन्त्र और 'शनोदेवी' इम शान्ति धर्म मन्त्र से तथा सद्योजातादि पञ्च ब्रह्म पवित्रक मन्त्रों से उन-उन मन्त्रों के अधिष्ठाता देवों का और उनके ऋषियों के स्वरूप का स्मरण करते हुए अभिषेक करना चाहिए ॥२३॥२४॥ हे द्विजगण ! इस प्रकार से जल के द्वारा अपने मस्तक पर अभिषिञ्जन करके हृदय में पाँच मुख वाले ईश्वर त्र्यम्बक देव का ध्यान करना चाहिए ॥२५॥ आचमन करके अपने सूत्र में उक्त का समीक्षण करके आचमन करना चाहिए । फिर पवित्र हाथों वाला होकर शुचि देश में यथाविधि बैठकर कुशा के साथ अम्युक्षण करके दाहिने हाथ से पान करे । तीन बार जल को प्रक्षिप्त कर चक्री होकर अतन्द्रित हो जाना चाहिए । इसके अनन्त हिंसा के पाप को प्रशान्ति के लिये प्रदक्षिणा करे । इस प्रकार से यह उत्तम स्नान और आचमन का विधान मैंने संक्षेप में वर्णित कर दिया है ॥२६॥२७॥ ॥२८॥ मैंने यह समस्त ब्राह्मणों के हित के सम्पादन के लिए ही हे द्विजोत्तमो ! वर्णन किया है ॥२९॥

संध्या, नित्यकर्म, पंचयज्ञविधानम्

आवाह येत्ततो देवी गायत्री वेदमातरम् ।
 आयातु वरदा देवीत्यनेनैव महेश्वरीम् ॥१॥
 पाद्यमाचमनीयं च तस्याश्चार्घ्यं प्रदापयेत् ।
 प्राणायामत्रयं कृत्वा समासीनः स्थितोपि वा ॥२॥
 सहस्रं वा तदर्घं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
 गायत्री प्रणवेनैव त्रिविधेष्वेकमाचरेत् ॥३॥
 अर्घ्यं दत्वा समम्यर्घ्यं प्रणम्य शिरसा स्वयम् ।
 उत्तमे शिखरे देवीत्युक्तोद्वास्य च मातरम् ॥४॥
 प्राच्यालोक्याभिवर्धंशा गायत्री वेतमातरम् ।
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेद्भास्करं तथा ॥५॥
 उदुत्यं च तथा चित्रं जातवेदसमेव च ।
 अभवद्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विधानतः ॥६॥
 तथा सौराणि सूक्तानि ऋग्यजुः सामजानि च ।
 जप्त्वा प्रदक्षिण पश्चाद्भिः कृत्वा च विभावसोः ॥७॥

नन्दी ने कहा—इसके पश्चात् वेदों की माता गायत्री देवी का आवाहन करे । “आयातु वरदा देवि” —इत्यादि मन्त्र के द्वारा महेश्वरी का आवाहन करना चाहिए । फिर उस महादेवी गायत्री को अर्घ्य, पाद्य और आचमनीय देवे । इसके अनन्तर तीन प्राणायाम करे और पद्म आदि आसन में बैठकर करे या स्थित होकर ही करे ॥१॥२॥ इसके उपरान्त एक सहस्र, पाँच सौ अथवा अष्टोत्तर शत बार प्रणव के सहित तीनो प्रकार के जपो में से एक प्रकार का जाप करना चाहिये । यह तीन प्रकार के उत्तम, मध्यम और अधम जपो में से जैसा भी समय प्राप्त हो एक तरह का जप करे । इसके पूर्व स्वयं सूर्यदेव को अर्घ्य देवे, भली-भाँति धर्चन करे और शिर से प्रणाम करके ही जप करना चाहिये “उत्तमे शिखरे देवि” — इत्यादि मन्त्र के द्वारा गायत्री माता का उद्वास

न करे ॥३॥४॥ पूर्व दिशा में देखकर श्रीर देवेशी वेदमाता गायत्री को अभिवन्दना करके फिर हाथ जोड़कर भगवान् भुवन भास्कर की प्रार्थना करे ॥५॥ उदुत्य, विप्र तथा जात वेदा (अग्नि) को नमस्कार करके फिर सूर्य और ब्रह्मा की विधान पूर्वक अभिवन्दना करनी चाहिए ॥६॥ इसके अनन्तर सौर सूक्ता तथा ऋक्, यजु और साम का जप अर्घान् पाठ करके फिर विभा वसुदेव की तीन प्रदक्षिणा करे ॥७॥

आत्मानं चांत रात्मानं परमात्मानमेव च ।
अभिवंद्य पुनःसूर्यं ब्रह्माणं च विभावसुम् ॥८॥
मुनीन्पितृन् यथाग्यायं स्वनाम्नावाहयेत्ततः ।
सर्वानावाहयामोति देवानावाह्य सयंतः ॥९॥
तर्पयेद्विधिना पश्चात्प्राङ्मुखो वा ह्युदङ्मुखः ।
ध्यात्वा स्वरूपं तत्तत्त्वमभिवंद्य यथाक्रमम् ॥१०॥
देवानां पुष्पतोयेन ऋषीणां तु कुशाभसा ।
पितॄणां तिलतोयेन गन्धयुक्तेन सधंतः ॥११॥
यज्ञोपवीती देवानां निनीती ऋषितर्पणम् ।
प्राचीनावीती विप्रेन्द्र पितॄणां तर्पयेत् क्रमात् ॥१२॥
अङ्गुल्यग्रणं वै धीमास्तर्पयेद्देवतर्पणम् ।
ऋषीन् कनिष्ठागुलिना श्रोत्रितः सयंसिद्धये ॥१३॥
पितॄंस्तु तर्पयेद्विद्वान्दक्षिणागुष्ठेन तु ।
तथैव मुनिशार्दूलं ब्रह्मयज्ञं यजेद्विजः ॥१४॥

फिर आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की अभिवन्दना करके सूर्य, ब्रह्मा और विभावसु को तथा मुनिगण और पितरों की योजित विधि से अपने नाम से आवाहित करना चाहिये । अन्त में मैं गन्धका धायाह्न करता हूँ, यह कहकर सभी और से देवों का धायाह्न करे फिर विधि पूर्वक प्राङ् मुख भयवा उदङ्मुख होकर तर्पण करे । हस्त रूप का ध्यान करके उनके तल की व्रत के अनुसार प्रणाम करे ॥८॥९॥

॥१०॥ देवों का पुष्प युक्त जल से, ऋषियो का कुश युक्त जल से और पितरो का गन्ध और तिलो से समन्वित जल से तर्पण करना चाहिये ।
 ॥११॥ हे विप्रेन्द्र ! देवों का तर्पण यज्ञोपवीती होकर करे, ऋषियो का तर्पण निवीती होकर और पितरो का तर्पण प्राचीन वीती होकर करना चाहिए ॥१२॥ देवों का तर्पण अङ्गुली के अग्रभाग से करे और धीमान् श्रोत्रिय पुरुष को ऋषियो का तर्पण समस्त सिद्धि के लिये कनिष्ठ अङ्गुली से करना चाहिए ॥१३॥ विद्वान् पुरुष को पितृगण का तर्पण दक्षिण अङ्गुष्ठ से करना चाहिये । हे मुनि शाङ्ख ! इसी भाँति से द्विज को ब्रह्म यज्ञ का यजन करना चाहिये ॥१४॥

देवयज्ञ च मानुष्य भूतयज्ञ तथैव च ।
 पितृयज्ञ च पूतात्मा यज्ञकर्मपरायण ॥१५॥
 स्वशाखाध्ययन विप्र ब्रह्मयज्ञ इति स्मृत ।
 अग्नौ जुहोति यच्चान्न देवयज्ञ इति स्मृत ॥१६॥
 सर्वेषामेव भूतानां बलिदान विधानतः ।
 भूतयज्ञ इति प्रोक्तो भूतिदः सर्वदेहिनाम् ॥१७॥
 सदाराः सर्वतत्त्वज्ञान्ब्राह्मणाः वेदपारगान् ।
 प्रणम्य तेभ्यो यदत्तमहं मानुष उच्यते ॥१८॥
 पितृनुद्दिश्य यदत्त पितृयज्ञ स उच्यते ।
 एव पञ्च महायज्ञान्कुर्यात् सर्वार्थसिद्धये ॥१९॥
 सर्वेषां शृणु यज्ञानां ब्रह्मयज्ञ परः स्मृतः ।
 ब्रह्मयज्ञरतो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते ॥२०॥
 ब्रह्मयज्ञेन तुष्यति सर्वं देवाः सवासवाः ।
 ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शकरो नीललोहित ॥२१॥

देव यज्ञ मानुष्य, भूतयज्ञ और पितृयज्ञ—इनसे भूत आत्मा वाला यज्ञ कर्म में परायण पुरुष जो वेद में अपनी शाखा का अध्ययन करता है हे विप्र ! वही ब्रह्म यज्ञ कहा जाता है । अग्नि में जो यज्ञ का

हवन करता है वह देव यज्ञ कहा गया है ॥१५॥१६॥ समस्त भूतो का विधान पूर्वक बलिदान जिसमें किया जाता है वह भूत यज्ञ कहा गया है जो कि समस्त देहधारियों के लिये भूति का प्रदान करने वाला होता है ॥१७॥ सम्पूर्ण तत्वों के ज्ञाता और वेदों के पारङ्गत पत्नी के सहित ब्राह्मणों को प्रणाम पूर्वक जो भस्त्र का दान दिया जाता है वह मानुष यज्ञ के नाम से कहा जाता है ॥१८॥ पितृगण का उद्देश्य करके जो कुछ भी दिया गया है वह पितृ यज्ञ कहा जाता है । इस प्रकार से ये पाच महायज्ञ होते हैं । इनको सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि के लिये करना ही चाहिये ॥१९॥ इन गमस्त यज्ञों में जो ब्रह्म यज्ञ होता है वह पर कहा गया है । ब्रह्म यज्ञ में अनुरत रहने रहने वाला मनुष्य ब्रह्म लोक में महिमान्वित होकर प्रतिष्ठित हुमा करता है ॥२०॥ ब्रह्म यज्ञ से वासव (इन्द्र) के सहित समस्त देवगण सन्तुष्ट हुमा करते हैं । ब्रह्मा, विष्णु भगवान् और नील लोहित दाहूर ये सभी परम सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥२१॥

वैदाश्च पितरः सर्वे नात्र कार्या विचारणा ।

ग्रामाद्वहिगतो भूत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मयज्ञवित् ॥२२॥

यावत्त्वष्टमभवदुटजाना द्युद नरः ।

प्राच्यामुदीच्यां च तथा प्रागुदीच्यामथापि वा ॥२३॥

पुण्यमाचमनं नुर्याद्ब्रह्मयज्ञार्थमेव तत् ।

प्रीत्यर्थं च श्रुत्वा विप्राः त्रिः पीत्वाप्राज्वप्राज्य च ॥२४॥

यजुषा परिमृज्यैव द्विः प्रज्ञात्य च चारिणा ।

प्रीत्यर्थं सामवेदानामुपस्पृश्य च मूर्धनि ॥२५॥

स्पृशेदथर्वं वेदानां नेत्रे चागिरस्ता तथा ।

नागिने ब्राह्मणोऽज्ञाना क्षात्यक्षात्य च चारिणा ॥२६॥

थटान्नपुराणानां ब्रह्माद्यानां तथैव च ।

तथा चोपपुराणानां गौरादीनां यथाक्रमम् ॥२७॥

पुण्यानामितिहासानां शैवादीनां तथैव च ।

श्रोत्रे स्पृशेद्धि तुष्ट्यर्थं तद्देश्यं तु ततः स्पृशेत् ॥२८॥

वेद और समस्त पितृगण भी इस ब्रह्म यज्ञ से सतृप्त हो जाने है—इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए । अब उस ब्रह्म यज्ञ के करने के विधान को बताया जाता है कि ब्रह्म यज्ञ के वेत्ता ब्राह्मण को ग्राम से बाहिर जाकर रहना चाहिये ॥२२॥ जब तक ब्रह्म हो वहाँ पर मनुष्य को उटजो (भोषडिभो) का छद्म होना चाहिये । प्राची (पूर्व दिशा) में और उदीची (उत्तर दिशा) में अथवा प्रागुदीची में स्थित होकर रहे ॥२३॥ ब्रह्म यज्ञ के ही लिये पुण्य प्राचमन करे । हे विप्रमण ! ऋचाओं की प्रीति के लिये स्नातक कर करके तीन बार पीये ॥२४॥ इसी प्रकार से यजुषों का दो बार जल से प्रक्षालन करके परिमार्जन करे । तथा सामवेदों की प्रीति के लिये मस्तक में उपस्पर्शन करना चाहिये ॥२५॥ अथर्व वेदों की प्रीति के अर्थ क्षेत्र में कने तथा आङ्गिरसों की प्रीति के लिये नासिका में जल से उप-स्पर्शन करे । ब्राह्मण को वेदाङ्गों की प्रीति के लिये जल से क्षालन करना चाहिये ॥२६॥ अष्टादश पुण्यों की तथा ब्रह्मादि की और उप-पुराणों की सौरादि की प्रीति के लिए यथाक्रम करे ॥२७॥ पुण्य इति-हासों की तथा शैवादि की प्रीति के लिये श्रोत्र में स्पर्श करे और इसके पश्चात् तुष्टि के लिये हृद्देश में स्पर्श करना चाहिये ॥२८॥

कल्पादीनां तु सर्वेषां कल्पवित्कल्पवित्तमाः ।

एवमाचम्य चास्तीर्य दर्भपिञ्जलमात्मनः ॥२९॥

कृत्वा पाणितलेधौ मानात्मनो दक्षिणोत्तरम् ।

हेमागुलीयसंयुक्तौ ब्रह्मवधयुतोपि वा ॥३०॥

विधिवद्ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात्सूत्री समाहितः ।

अकृत्वा च मुनिः पञ्च महायज्ञान्द्विजोत्तमः ॥३१॥

भुक्त्वा च सूकराणां तु योनौ नै जायते नरः ।

तरमात्सर्वप्रयत्नेन वर्तव्याः शुभमिच्छता ॥३२॥

अद्भ्यजादथ स्नानं कृत्वादौ सर्वथात्मनः ।

तीर्थं समृद्धं विधिवत्प्रविशोच्छिन्नचिरं वशी ॥३३॥

बहिरेव गृहात्पादौ हस्ती प्रक्षाल्य वारिणा ।

भस्मस्नानं ततः कुर्याद्विधिवद्देहशुद्धये ॥३४॥

शोधय भस्म यथान्यायं प्रणवेनाग्निहोत्रजम् ।

ज्योतिः सूर्यं इति प्रातर्जुं हृषादुदिते यतः ॥३५॥

हे बल्प वित्तमो ! बल्प के वेत्ता पुरुष को समस्त बल्प प्रादि की प्रीति के लिये इस प्रकार से ध्याचमन करके अपना दर्भ पिजूल को वास्तुतः धरे । वृद्धिमान् पुस्तक अपने दक्षिण, उत्तर में पाण्डित्यल में धरे । सुवर्ण की अङ्गुलीय (भूँठो) से सयुक्त हो प्रणवा ब्रह्म बन्ध से युक्त होवे ॥३६॥३७॥ सूत्री ग्रन्थान्त समाहित होता हुआ विधि विधान के साथ ब्रह्म यज्ञ का सम्पादन धरे । द्विजों में उत्तम मुनि इन पाँचो महायज्ञों को न करके भोजन कर लेता है तो वह मनुष्य सुकरो की योनि में जाकर उत्पन्न होता है । इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नों के साथ शुभ की इच्छा रखने वाले मनुष्य को ये पाँच महायज्ञ अवश्य ही करने चाहिए ॥३१॥३२॥ ब्रह्मयज्ञ के अनन्तर अपने शरीर का निमज्जन स्वरूप स्नान चाहिये और इसके पश्चात् तीर्थ का समग्रहण करके शिविर में विधिवत् वशी पुष्प की प्रवेश करना चाहिये ॥३३॥ घर के बाहिर ही जल से हाथों और पैरों का प्रक्षालन करके फिर भस्म स्नान विधि पूर्वक देह की शुद्धि के लिए करना चाहिये ॥३४॥ अग्निहोत्र से उत्पन्न होने वाली भस्म को प्रणय के द्वारा यथोचित रूप से शोधित करे । सूर्य ज्योतिः है अतः प्रातःकाल में सूर्य के उदित होने पर हवन करना चाहिये ॥३५॥

ज्योतिरग्निस्तथा सायं सम्यक् चानुदिते मृषा ।

तस्मादुदितहोमस्थं भसितं पावनं शुभम् ॥३६॥

नास्ति सत्यसमं यस्मादसत्यं पातकं च यत् ।

ईक्षानेन शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण च ॥३७॥

उरोदेशमघोरेण गुह्यं वामेन सुप्रताः ।
 सद्येन पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥३८॥
 ततः प्रक्षालयेत्पादं हस्तं ब्रह्माविदा वरः ।
 व्यपोह्य भस्म चादाय देवदेवमनुस्मरन् ॥३९॥
 मन्त्रस्नानं ततः कुर्यादापोहिष्ठादिभिः क्रमात् ।
 पुण्यैश्चैव तथा मन्त्रैश्चैव यजुः सामसंभवीः ॥४०॥
 द्विजानां तु हितायैवं कथितं स्नानमद्य ते ।
 साक्षिष्य यः सवृत्कुर्यात्स याति परमं पदम् ॥४१॥

अग्नि ज्योति है अतः उसी प्रकार से भस्मी-भाति हवन करना चाहिये । अनुदिन मे करना भूगा होता है । इसलिये उदित मे किये हुए होम मे स्थित ही भस्म परम पावन एव शुभ होता है ॥३८॥ जिस कारण से सत्य सर्वोपरि परम उत्तम है और इसके समान अन्य कुछ भी नहीं है और असत्य महान् पातक होता है । “ईशान” से शिरो देश का, “तत्पुरुष” से मुख का, “अघोर” से उर स्थल का और “वाम” से गुह्य का, “सद्य” से पैरो का और सर्वाङ्ग का प्रणव से अभिषिञ्चन करना चाहिए ॥३७॥३८॥ इसके अनन्तर ब्रह्म के वेत्ताओं मे श्रेष्ठ पुरुष को पाद और हस्त का प्रक्षालन करना चाहिये । भस्म को लाकर और व्यपोहित करके देवों के देव का अनुस्मरण करते हुए फिर क्रम से “आपोहिष्ठा मयी भुवः”—इत्यादि के द्वारा मन्त्र स्नान करना चाहिए जो कि परम पुण्य, पवित्र ऋक् यजु और साम वेदों के ये मन्त्र हैं ॥३९॥ ॥४०॥ द्विजों के हित के लिये इस प्रकार से आज मैंने तुमको इस स्नान का वर्णन करके सुना दिया है । जो एक बार भी संक्षेप मे कर लेगा वह भी परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥४१॥

•२५१३२५•

लिंगार्चन विधि

वक्ष्यामि शृणु संक्षेपाल्लिंगार्चनविधिक्रमम् ।
 ववतुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण यत् ॥१॥

एवं स्नात्वा यथान्यायं पूजास्थानं प्रविश्य च ।
 प्रोणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देवं त्रियंबकम् ॥२॥
 पञ्चवक्त्रं दश भुज शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
 सर्वाभंगणसंयुक्तं चित्रांबरविभूषितम् ॥३॥
 तस्य रूपं समाश्रित्य दाहनप्लावनादिभिः ।
 शैवी तनुं समास्थाय पूजयेत्परमेश्वरम् ॥४॥
 देहशुद्धिं च कृत्वैव मूलमंत्रं न्यसेत्क्रमात् ।
 सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्माणि च यथाक्रमम् ॥५॥
 सूत्रे नमः शिवायेति छंदासि परमे शुभे ।
 मात्राणि सूक्ष्मरूपेण सस्थितानि यतस्ततः ॥६॥
 न्यग्रोधबीजे न्यग्रोधस्तथा सूत्रे तु शोभने ।
 महत्पि महद्ब्रह्म संस्थितं सूक्ष्मवत्स्वयम् ॥७॥

शैलादि ने कहा—अब मैं लिंग के अर्चन की विधि क्रम से से कहता हूँ उमे तुम श्रवण करो । यदि इसे विस्तार पूर्वक कहा जावे तो सौ वर्ष में भी यह वर्णन नहीं की जा सकती है ॥१॥ इस प्रकार से जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है स्नान करके और न्याय पूर्वक पूजा के स्थान में प्रवेश करके तीन प्राणायाम करे और फिर देव त्रियम्बक का ध्यान करना चाहिए ॥२॥ उनके ध्यान करने में इन बातों का ध्यान रखे कि त्रियम्बक भगवाद् के पाँच मुख हैं, दश भुजाएँ हैं और उनका अङ्ग शुद्ध स्फटिक मणि के समान दिव्य है । उन देव का वपु सम्पूर्ण आभूषणों से समन्वित है तथा चित्र-विविध अम्बर से समलङ्कित है । दाहन और प्लावन आदि के द्वारा उनके रूप का समास्थित करके स्वयं शैवी तनु में समास्थित होकर फिर परमेश्वर का पूजन करना चाहिए ॥२॥३॥४॥ अपने देह की शुद्धि करके प्रणव से युक्त “नमः शिवाय”—इस मूल मन्त्र का क्रम से न्यास करे । सर्वत्र प्रणव के द्वारा ही और यथा क्रम ब्रह्मों का न्यास करे ॥५॥ परम शुभ “नमः शिवाय”—इस सूत्र में छन्द और मन्त्र सूक्ष्म रूप से सस्थित

रहा करते हैं । जिस प्रकार बट के फल में जो अत्यन्त सूक्ष्म न्यग्रोध (बड) के बीज होते हैं उस एक बीज में इतना विशाल न्यग्रोध का वृक्ष सूक्ष्म रूप से स्थित रहा करता है वैसे ही इस शोभन सूत्र में महान् से महान् ब्रह्म स्वयं सूक्ष्म वत् सस्थित रहा करता है ॥६॥७॥

सेचयेदर्चनस्थानं गन्धचन्दनवारिणा ।
 द्रव्याणि शोधयेत्पञ्चात्क्षालनप्रोक्षणादिभिः ॥८॥
 क्षालनं प्रोक्षणं चैव प्रणवेन विधीयते ।
 प्रोक्षणी चार्घ्यपात्रं च पाद्यपात्रमनुक्रममात् ॥९॥
 तथा ह्याचमनीयार्थं कल्पितं पात्रमेव च ।
 स्थापयेद्विधिना धीमानवगुण्यं यथाविधि ॥१०॥
 दुर्भैराच्छादयेच्चैव प्रोक्षयेच्छुद्धवारिणा ।
 तेषु तेष्वथ सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम् ॥११॥
 प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोभ्य बुद्धिमान् ।
 उशीरचन्दनं चैव पाद्यं तु परिकल्पयेत् ॥१२॥
 जातिककोलकर्पूरबटमूलतमालकम् ।
 चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके ॥१३॥
 एव सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चन्दनं तथा ।
 कर्पूरं च यथान्यायं पुष्पाणि विविधानि च ॥१४॥

देवाचन करने का जो स्थान है उसका गन्ध, चन्दन से मिश्रित जल के द्वारा सेचन करे । इसके पञ्च त् प्रक्षालन तथा प्रोक्षण आदि के द्वारा द्रव्यों का शोधन करना चाहिए ॥८॥ सबका क्षालन तथा प्रोक्षण प्रणव के द्वारा ही किया जाता है । प्रोक्षणी पात्र, अर्घ्य पात्र, श्रीर पाद्य पात्र इनका अनुक्रम से शासन करे ॥९॥ उसी प्रकार आचमनीय के लिए जो पात्र कल्पित किया है उसे धीमान् गन्ध को यथा विधि अवगुणित करने स्थापित करना चाहिए ॥१०॥ दूसरे से अच्छादन करे श्रीर गुद्ध जल से प्रोक्षण करे । उन उा सबमें सुशीतल जल का क्षेप

करना चाहिए ॥११॥ बुद्धिमान् पुरुष द्रव्यो का आलोचन करके उन पर प्रणव से शेषण करे । पात्र में उशीर और चन्दन को परिवर्त्यित करना चाहिए ॥१२॥ जो आचमनीय के लिये पात्र हो उसके जल में जाति, बबूल, बभूँर, बहूमूल अर्थात् शतावर और तमालक—इन समस्त द्रव्यो का चूर्ण करके यथोचित रूप से शेषण करना चाहिए ॥१३॥ इस प्रकार से सभी पात्रो में चन्दन दिलवाना चाहिए इसके अतिरिक्त बभूँर तथा विविध भाँति के पुष्प भी डाल देने चाहिए ॥१४॥

कुशाग्रमक्षताश्चैव यवग्रीहितिलानि च ।
 आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसित चार्घ्यपात्रये ॥१५॥
 कुशपुष्पयवग्रीहिवहुमूलतमालकम् ।
 दापयेत्प्रोक्षणीपात्रे भसित प्रणवेन च ॥१६॥
 न्यसेत्पचाक्षर चैव गायत्री रुद्रदेवताम् ।
 केवल प्रणव चापि वेदसारमनुत्तमम् ॥१७॥
 अथ सप्रोक्षयेत्पश्चाद्द्रव्याणि प्रणवेन तु ।
 प्रोक्षणीपात्रसंस्थेन ईशानाद्यश्च पञ्चभि ॥१८॥
 पादवंतो देवदेवस्य नदिन मा समर्चयेत् ।
 दीप्तानलामृतप्रलय त्रिनेत्र त्रिदशेश्वरम् ॥१९॥
 वालेंदुमुवुट चैव हरिवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
 पुष्पमालाघर सौम्य सवभिरगभूषितम् ॥२०॥
 उत्तरं चात्मन पुण्या भार्या च मरुता शुभाम् ।
 सुयशा सुव्रता चावापादमडनतत्पराम् ॥२१॥

कुशा का अग्रभाग तण्डुल, भव, ब्रीहि, तिल, घृत, मर्पप पुष्प और भस्म ये द्रव्य अर्घ्य के पात्र में प्रक्षिप्त करे । प्रोक्षणी पात्र में प्रणव के द्वारा जोति वेद का सार है—कुशा, पुष्प, भव, ब्रीहि, शतावर, तमाल और भस्म डालने चाहिये ॥१५॥१६॥ पञ्चाक्षरी मन्त्र का और रूद्र देवता वाणी गायत्री का न्याग करे । अगस्त वेदन समस्त वेद

के सार स्वरूप तथा सर्वोत्तम प्रणव का न्यास करना चाहिए ॥१७॥
 इसके अनन्तर प्रणव से पश्चात् द्रव्यो का संप्रोक्षण करे जो कि 'ईशानः
 सर्वं विद्यानाम्'—यहाँ से आरम्भ करके "रुद्राय नमः"—इसके अनन्त
 तक यजुर्वेद के पाँच मन्त्र हैं उनसे प्रोक्षणी पात्र में सन्धित है । उससे
 करना चाहिए ॥१८॥ देवदेव के पार्श्व में स्थित नन्दी मेरा अर्चन करे ।
 नन्दी स्वयं अपने स्वरूप को बतलाते हैं कि वह प्रदीप्त अग्नि के दश
 सहस्र गुणित प्रख्या वाले हैं. तीन नेत्रों से युक्त, देवों के ईश्वर, मुकुट में
 धालचन्द्र की धारण करने वाले, वानर के सदृश मुख से युक्त, चार
 भुजाओं वाले, पुष्पो की माला धारण करने वाले, अति सौम्य तथा
 समस्त भ्रातृपणों से समलङ्कृत हैं । महेश्वर के दक्षिण में पार्श्व में तो
 नन्दी स्वयं विराजमान हैं और उत्तर पार्श्व में अपनी अर्धात् नन्दी की
 भार्या हैं उनका अर्चन करना चाहिए । यह परम पुष्पमयी मरुता हैं जो
 अतिशुभा, सुपक्षा, सुजना और सर्वदा, जगदम्बा भवानी के बाहों के
 अलङ्करण की क्रिया में तत्पर रहने वाली है ॥१९॥२०॥२१॥

एवं पूज्य प्रविश्यान्तर्भवनं परमेष्ठिनः ।
 दत्त्वा पुष्पांजलिं भक्त्या पञ्चमूर्धसु पञ्चभिः ॥२२॥
 गंधपुष्पैस्तथा धूपैर्विविधैः पूज्य शंकरम् ।
 स्कन्दं विनायकं देवीं लिङ्गशुद्धिं च वारयेत् ॥२३॥
 जप्त्वा सर्वाणि मन्त्राणि प्रणवादिनमोक्तकम् ।
 कल्पयेदासनं पश्चात्पद्याख्यं प्रणवेन तत् ॥२४॥
 तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम् ।
 लघिमां दक्षिणं चैव महिमां पश्चिमं तथा ॥२५॥
 प्राप्तिस्तथोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु ।
 ईशित्वं गैरुत्तरं पत्रं वशित्वं वायुगोचरे ॥२६॥
 सर्वज्ञत्वं तयेशान्यं कर्णिका सोम उच्यते ।
 सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याध पावकः स्वयम् ॥२७॥

धर्मादर्यो विदिक्षेते त्वनंतं कल्पयेत्कृमात् ।

अव्यक्तादिचतुर्दिक्षु सोमस्यांते गुणत्रयम् ॥२८॥

इस प्रकार नन्दी और उमकी भार्या का पूजन करके फिर भगवान् परमेष्ठी के भवन में घनदर प्रवेश करे । वहाँ उनके पाँचों मस्तकों पर भक्ति की भावना से पुष्पाञ्जलि देवे ॥२२॥ फिर गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप आदि विविध प्रकार के उपचारों के द्वारा भगवान् साक्षर की पूजा करे तथा स्कन्द, विनायक और देवी की अर्चना करके लिङ्ग शुद्धि करनी चाहिए ॥२३॥ प्रणव से आदि लेकर नमः—इसके अन्त तक अर्थात् “ॐ निधनप तपे”—यहाँ से आरम्भ करके “परम सिद्धाय नमः” इसके अन्त तक समस्त मन्त्रों का जप करके पीछे प्रणव के द्वारा पद्म नामक आसन की कल्पना करे । अर्थात् पद्मासन लगा लेवे ॥२४॥ उसका पूर्व दल साक्षात् अणिमा सिद्धि रूप नाश से शून्य है । दक्षिण दल लघिमा सिद्धि के रूप वाला है, महिमा नामक सिद्धि के स्वरूप वाला पश्चिम दल है ॥२५॥ प्राप्ति सिद्धि स्वरूप उत्तर पत्र है, प्राप्ताभ्य सिद्धि पावक का स्वरूप है, ईशत्व सिद्धि गैरुत पत्र है और वीशत्व सिद्धि वायु कोण का पत्र है । सर्वज्ञत्व ऐशान्य है और कमल की कणिका अर्थात् मध्य भाग सोम कहा जाता है । सोम के नीचे सूर्य है और मूर्य के नीचे के भाग स्वयं पावक है ॥२६॥२७॥ धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य रूप वाले चार आग्नेय आदि उपदिशाओं में वृत्तिन क्रम से करने चाहिये । अव्यक्त, महत्सत्त्व, अहङ्कार और चित्त इन चारों को पूर्वादि दिशाओं में स्तेय के अन्त में और ऊपर में सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों को परिवर्तित करे ॥२८॥

आत्मग्रयं सतश्चोर्ध्वं सस्याते क्षिप्योष्ठिका ।

सद्योजातं प्रपत्ताभीष्टमावाप्त्य परमेश्वरम् ॥२९॥

वामदेवेन मनेन रथापयेदासनोपरि ।

सात्विज्यं रुद्रनामग्या अघोरेण निरुद्धं च ॥३०॥

ईशानः सर्वविद्यानामिति मंत्रेण पूजयेत् ।
 पाशमाचमनीयं च विभोश्चाघ्यं प्रदापयेत् ॥३१॥
 स्नापयेद्विधिना रुद्रं गघचंदनवारिणा ।
 पञ्चगव्य विधानेन गृह्य पात्रेभिमन्त्र्य च ॥३२॥
 प्रणवेनेव गव्येस्तु स्नापयेच्च यथाविधि ।
 आज्येन मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन च ॥३३॥
 पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिपेचयेत् ।
 जलभांडैः पवित्रैस्तु मन्त्रैस्तोय क्षिपेत्ततः ॥३४॥
 शुद्धिं कृत्वा यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः ।
 कुशापामार्गकपूर्वरजातिपुष्पकचंपकैः ॥३५॥
 करवीरैः सितैश्चोव मल्लिकाकमलोत्पलैः ।
 आपूर्य्य पुष्पैः सुगुग्मैः चदनाद्यैश्च तज्जलम् ॥३६॥

उत्तरे ऊपर विश्व, तंजस और प्राज्ञ रूप वाले आत्मत्रय को और उत्तरे अन्त में अर्गात् आत्मत्रय के ऊपर शिखरीठिगा पेदी की परिवर्तनना करनी चाहिए । इसके पश्चात् मैं भगवान् सद्योमान की दारण में समागत हो गया हूँ, इससे परमेश्वर का आवाहन करे ॥३६॥ फिर यामदेय मन्त्र के द्वारा उन देवों के देव की आगम के ऊपर संस्थापित करना चाहिए । रुद्र मायत्री देव का तसिधीकरण करे और अर्पोर मन्त्र से निहट्टीकरण करना चाहिये । “ईशानः सर्व विद्यानाम्” इत्यादि मन्त्र के द्वारा पूजन करे और फिर विष्णु की सेवा में अर्घ्य, पाद्य तथा आचमनीय प्रस्तुत करने चाहिये ॥३७॥३१॥ इसके अनन्तर भगवान् रुद्र का गन्ध-पान्दन मिश्रित जल में विधि-विधान के महिम्नान करना चाहिये । पञ्चगव्य को विधान पूर्वक बनाकर अर्पण करे और पात्र में उसे अभिमन्त्रित करे । गाय का दूध, दधि, घृत, मूत्र और गोमय का पञ्चगव्य होता है । गाय का दूध, दधि घृत, मधु और बाँस का दल पाँचों का पञ्चामृत होता है ॥३२॥ अर्पण के द्वारा ही यथाविधि पञ्च द्रव्यों में स्नान करावे । आज्य (घृत) में, मधु में और ईश के मग

से तथा पुण्य द्रव्यों से महादेव का प्रणव के द्वारा अभिषेचन करना चाहिये । परम पवित्र मन्त्रों के द्वारा जल के भाण्डों से जल को शिव के ऊपर प्राक्षिप्त करना चाहिए ॥३३॥३४॥ श्वेत वस्त्र से यथोचित रूप से साधक को जल की शुद्धि द्धानकर कर लेनी चाहिये । कुशा, अपामार्ग (ओषा), कपूर, जाति पुष्प, चम्पा के पुष्प, श्वेत-करवीर, मल्लिका पुष्प और कमलोत्पलो के शुभ पुष्पों से तथा चन्द-नादि से उस जल को आपूरित कर लेना चाहिये ॥३५॥३६॥

न्यसेन्मन्त्राणि तत्तोये सद्योजातादिकानि तु ।

सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन वा ॥३७॥

ताम्र एव पद्मपत्रेण पालाशेन दलेन वा ।

शुद्धेन मृन्मयेनाथ शोधितेन शुभेन वा ॥३८॥

सङ्कचैर्न सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।

मन्त्राणि ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसिद्धये ॥३९॥

यैलिङ्ग सकृदप्येवं स्नाप्य मुच्येत मानवः ।

पवमानेन मन्त्रज्ञाः तथा वामीयकेन च ॥४०॥

रुद्रेण नीलरुद्रेण श्रीसूक्तेन शुभेन च ।

रजनीसूक्तकेनैव चमकेन शुभेन च ॥४१॥

होतारे णाथ शिरसा अयर्वेण शुभेन च ।

शात्याचाथ पुनः शान्त्या भारुडेनाहणेन च ॥४२॥

वाहणेन च ज्येष्ठेन तथा वेदव्रतेन च ।

तथातरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च ॥४३॥

त्वरितेर्नैव रुद्रेण कपिना च कपिदिना ।

आवोसजेति साम्ना तु बृहच्चवद्रेण विष्णुना ॥४४॥

विरूपाक्षेण स्कन्देन शतशृङ्गिभिः शिवस्तथा ।

पञ्चब्रह्मंश्च सूत्रेण केवलप्रणवेन च ॥४५॥

स्नापयेद्देवदेवेशं सर्वपापप्रज्ञातये ।

वस्त्रं शिवोपवीतं च तथा ह्याचमनीयकम् ॥४६॥

इसके अनन्तर सलोजातादि मन्त्रों का उस जल में न्यास करे । फिर सुवर्ण के कलस से अथवा चाँदी के निर्मित पात्र से या ताँबे के पात्र से, पद्म पत्र, पलाश का पत्र अथवा दल, शङ्ख वा परम शोधित एवं शुभ मिट्टी के पात्र से कूर्च के सहित एवं पुष्प के सहित मन्त्रों के साथ स्नपन करना चाहिये । उन मन्त्रों को अब मैं तुमको समस्त पथों की सिद्धि के लिये आपनो बताऊँगा, उनका तुम श्रवण करो ॥३७॥३८॥ वे सब ऐसे मन्त्र हैं जिनके द्वारा इस प्रकार की विधि से लिंग का एक बार भी स्नपन कराने से मानव मुक्त हो जाया करता है । हे मन्त्रों के ज्ञाताओ ! पवमान सज्ञा वाले सत्तत्, शाखा के मन्त्र से तथा वामसूक्त से, रुद्राध्याय से, नील रुद्र अथवा सज्ञा वाले सत्तत् मन्त्रों से, शुभ श्री सूक्त से, रजनी सूक्त से, शुभ धमक से, अथर्व के शुभ होतार शिर सम मन्त्रों से, क्षाति, भारुण्ड और भारुण मन्त्रों से, व्येष्ठ वाण मन्त्र से, वेद व्रत, पुरुष सूक्त से, स्वरित रुद्र, से कपर्दी, कपि से, भावोसज इस साम सूक्त से, बृहच्चन्द्र, विष्णु, विरूपाक्ष, स्कन्द, शिव-शत ऋचाओ से, पञ्च ब्रह्मों से, सूत्र और केवल प्रणव से इनमें किसी भी एक से देव देवेश वा समस्त पापों की शान्ति के लिए स्नपन कराना चाहिये । अभिवेक सबसे उत्तम फल होता है । पूजा से अधिक होम, होम से भी उत्तम तर्पण, तर्पण से भी अधिक जप और सबसे अधिक एवं श्रेष्ठ अभिवेक को बताया गया है । इस स्नपन के अनन्तर वस्त्र, शिवोपवीत और आभरणीय देना चाहिये ॥३९॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥४६॥

गन्ध पुष्पं तथा धूप दीपमन्नं क्रमेण तु ।

तोय सुगन्धित चैव पुनराचनीयकम् ॥४७॥

मुकुटं च शुभ छत्रं तथा वै भूषणानि च ।

दापयेत्प्रणवेनीव मुखवासादिकानि च ॥४८॥

ततः स्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम् ।

कारणं सर्वदेवानां सर्वलोकमय परम् ॥४९॥

प्रह्वद्रविष्णुसूद्राद्यं शृपिदेवैरगोचरम् ।
 वेदत्रिभिर्द्वाहि वेदान्तैस्त्वगोचरमिति श्रुतिः ॥५०॥
 आदिमध्यातरहित भेषज भवरोणिणाम् ।
 शिप्रतत्त्वमिति स्यात् शिवलिङ्गे व्यवस्थितम् ॥५१॥
 प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेत्त्रिगमूर्धनि ।
 स्तोत्र जपेच्च विधिना नमस्कार प्रदक्षिणम् ॥५२॥
 अर्घ्यं दत्त्वाय पुष्पाणि पादयोन्तु विकीर्य च ।
 प्रणिपत्य च देवेशमात्मन्यारोपयेच्छिवम् ॥५३॥
 एव सक्षिप्य वदित लिगाचनमनुनमम् ।
 आभ्यतर प्रवक्ष्यामि लिगाचनमिहाद्य ते ॥५४॥

फिर क्रम से गन्ध पुष्प घूप दीप, अन्न, सुगन्धित
 जल और पुन प्राचमनीय समर्पित करे ॥५७॥ मृकुट, धुम ध्वज तथा
 अन्य भूषण एव मुख वासादि द्रव्य प्रणव के द्वारा ही देव को समर्पित
 करना चाहिए ॥५८॥ इसके अनन्तर स्फटिक मणि के समान बणं वाले,
 निष्कल, प्रक्षर, ममस्त देवों के कारण स्वरूप सर्व लोकमय, परम
 और ब्रह्मा ऋ विष्णु आदि देवा तथा श्रुपियो के अगोचर एव वेदों
 व वेदा तथा वेदात्ता के भी शिव अगोचर हैं—ऐसी श्रुति है । लिङ्ग
 के मूर्द्धा में द्वा प्र ॥ १ ॥ का ही ध्यान करना चाहिए । यह ध्यान के प्रकार
 का वर्णन दिया है । शिव तत्त्व आदि, मध्य और अन्त से रहित है
 तथा सत्तात्त्विक रागसमुत्त बनाने के लिए भेषज के स्वरूप वाला है,
 ऐसा ही शिव के लिङ्ग में व्यवस्थित करे । लिङ्ग के मस्तक में प्रणव
 के द्वारा ही पूजन करे । फिर विधि व साथ स्तोत्र पाठ करे तथा नम-
 स्कार और प्रदक्षिण करनी चाहिए । अर्घ्य देकर तथा चरणों में पुष्पों
 या विकीरण करके देव पर प्रणिपन्न करते हुए फिर ऊपर शिव तत्त्व को
 ध्यान हृदय के वचन में स्थापित करना चाहिए । इस तरह से मैं यह
 सर्वोत्तम लिङ्ग व मन्त्र का विधान संपन्न में बना दिया है । अब दूसरे

के कमल में किया जाने वाला आभ्यन्त प्रकार लिङ्गार्चन का
वताऊंगा ॥४६॥५०॥५१॥५२॥५३॥५४॥

शिवार्चन तत्त्व संख्या

आग्नेयं सौरममृत बिम्बं भाव्य ततोपरि ।
गुणत्रय च हृदये तथा चात्मत्रय क्रमात् ॥१॥
तस्योपरि महादेव निष्कल सकलाकृतिम् ।
कातार्धारूढदेहं च पूजयेद्धानविद्याया ॥२॥
ततो बहुविधं प्रोषत चित्तं तत्रास्ति चेद्यतः ।
चित्तकस्य ततश्चिता अन्यथा नोपपद्यते ॥३॥
तस्माद्वर्धये तथा ध्यानं यजमानः प्रयोजनम् ।
स्मरेत्तन्नाम्यथा जातु बुद्ध्यते पुरुषस्य ह ॥४॥
पुरे शेते पुरं देहं तस्मात्पुरुष उच्यते ।
याज्यं यज्ञेन यजते यजमानस्तु स स्मृतः ॥५॥
ध्येयो महेश्वरो ध्यानं चित्तं निवृत्तिः फलम् ।
प्रधानपुरुषेशानं याथातथ्यं प्रपद्यते ॥६॥
इह पञ्चविंशको ध्येयो ध्याता ऽथ पञ्चविंशकः ।
चतुर्विंशकमव्यक्तं महदाद्यास्तु सप्त च ॥७॥

अब इस अध्याय में अपने हृदय के कमल में मनीषयी शिव की मूर्ति के अर्चन का विधान बताया जाता है और उसके करने वाली की महिमा तथा तत्त्वों की संख्या का निरूपण किया जाता है । शैलादि ने कहा—साधक पुरुष को अपने हृदय में एक कमल स्थित है उसमें आग्नेय, सौर, अमृत बिम्ब की भावना करनी चाहिये । फिर उसके ऊपर गुणत्रय और आत्मत्रय की क्रम से भावना करे । उसके ऊपर परम शुद्ध सम्पूर्ण आकृति वाले तथा कान्ता के द्वारा आधे शरीर पर आरूढ़

वपु वाले शिव का ध्यान की विद्या से अर्चन करे । चिन्तन साधक पुरुष के चिन्तन करने के योग्य बहुत से स्वरूप बताये गए हैं उन सभी स्वरूप को एक ही रूप समझना चाहिए तभी ध्यान करने वाले का चिन्तन ठीक प्रकार से हो सकता है अन्यथा भेद वृद्धि के प्रभाव चिन्तन उत्पन्न नहीं होता है । इसलिए ध्येय, ध्यान, यजमान और प्रयोजन उस शिव के रूप का स्मरण करना चाहिए अन्यथा यहाँ पर जीवात्मा के शरीर में वह सांख्य नाम वाला ग्रह किसी भी प्रकार से नहीं जाना जाता है । ॥१॥२॥३॥४॥ पुर यह शरीर है । इस देह के पुर में जो ध्यान करता है वह इसी कारण से पुरुष कहा जाता है । यज्ञ के द्वारा यजन करने के योग्य का यजन करने से ही यजमान कहा जाया करता है ॥५॥ ध्येय भगवान् महेश्वर हैं, ऐसा जो जानता है वही वस्तुतः शिव को प्राप्त किया करता है । उन महेश्वर का चिन्तन करना ही ध्यान कहा जाता है और निर्वृत्ति का होना ही उस चिन्तन का फल होता है । ऐसा समझने वाला पुरुष प्रबल पुरुष ईशान के पायातम्य को प्राप्त करता है ॥६॥ प्रबल छद्मोक्त तत्त्वों का निरूपण किया जाता है । यहाँ लिए शरीर में पण्डित्यात्मक शिव का ध्यान करना चाहिए । ध्येय पण्डित्यात्मक है, ध्याता पञ्च विशक है और अभ्यक्त चतुर्विशक है, तेईस महदादि होते हैं । महदादि सात हैं ॥७॥

महास्तथा त्वहंकारं तन्मात्रं पञ्चकं पुनः ।
 कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च ॥८॥
 मनश्च पञ्च भूतानि शिवः पण्डित्यात्मकः ।
 स एव भर्ता कर्ता च विधेरपि महेश्वरः ॥९॥
 हिरण्यगर्भं रुद्रोऽसौ जनयामास शंकरः ।
 विश्वाधिरुश्च विश्वात्मा विश्वरूप इति स्मृतः ॥१०॥
 विना यथा हि पितरं मातरं तनयास्त्वह ।
 न जायंते तथा सोमं विना नास्ति जगन्नयम् ॥११॥

कर्ता यदि महादेवः परमात्मा महेश्वरः ।
 तथा कारयिता चैव कुर्वतोत्पात्मन स्तथा ॥१२॥
 नित्यो विशुद्धो बुद्धश्च निष्कलः परमेश्वरः ।
 स्वयोक्तो मुक्तिदः किं वा निष्कलश्चेत्करोति किम् ॥१३॥
 कालः करोति सकल काला कलयते सदा ।
 निष्कल च मनः सर्वं मन्यते सोऽपि निष्कलः ॥१४॥

महत्तत्त्व, ग्रहचक्र और पाँच तन्मात्राएँ इस तरह से ये सात होते हैं । पाँच बर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और पाँच महा-भूत हैं । इस प्रकार से शिव पण्डित कहते हैं । वही महेश्वर विधि का भी कर्ता तथा भर्ता होता है ? ॥८॥९॥ इसी रुद्र शङ्कर ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था । यह हिरण्यगर्भ विश्वाधिक, विश्वात्मा और विश्व-रूप कहा गया है ॥१०॥ जिस प्रकार से माता और पिता के बिना संसार में पुत्र उत्पन्न नहीं होते हैं । उसी भाँति सोम के बिना इस जगत्-त्रय की उत्पत्ति भी नहीं होती है ॥११॥ सनत्कुमार ने कहा—महेश्वर परमात्मा महादेव यदि सबके कर्ता हैं और कराने वाले भी वही हैं तो अस्मात्मा समस्त जीवों के पराधीन होने से ईश्वर में वैपश्य होने से बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था का अभाव होने से महेश्वर में मुक्ति दातृत्व सम्भव नहीं होता है । इसलिये महेश्वर को निष्क्रिय, विशुद्ध, बुद्ध, नित्य और परमेश्वर एवं मुक्ति का दाता मानने बताया है और वह निष्कल है तो फिर क्या करना है ॥१२॥१३॥ शीलादि ने कहा—महेश्वर तो स्वयं निष्कल हैं । सब कुछ काल किया करता हैं और वह महेश्वर सदा उस काल को प्रेरित करते हैं । निष्कल मन सब विश्व रूप शिव का साक्षात्कार करता है । इसलिये वह भी निष्कल है ॥१४॥

कर्मणा तस्य चवेह जगत्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
 किमत्र देवदेवस्य मूर्त्यष्टकमिदं जगत् ॥१५॥

विनाकाशं जगन्नेव विना क्षमां वायुना विना ।
 तेजसा वारिणा चैव यजमानं तथा विना ॥१६॥
 भानुना शशिना लोकस्तस्यैतास्तनवः प्रभोः ।
 विचारतस्तु रुद्रस्य स्थूमेतच्चराचरम् ॥१७॥
 सूक्ष्म वदन्ति ऋषयो यत्र वाच्यं द्विजोत्तमाः ।
 यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥१८॥
 आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ।
 न भेतव्यं तथा तस्माज्ज्ञात्वानन्दं पिनाकिनः ॥१९॥
 विभूतयश्च रुद्रस्य मत्वा सर्वत्र भावतः ।
 सर्वं रुद्र इति प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥२०॥
 नमस्कारेण सततं गौरवात्परमेष्ठिनः ।
 सर्वं तु खल्विदं ब्रह्म सर्वो वै रुद्र ईश्वरः ॥२१॥

उसके कर्म से ही यहाँ समस्त जगत् प्रतिष्ठित है । देवदेव का यह चराचर स्थूल मायिक रूप भगवान् की अष्टमूर्ति के स्वरूप वाला है ॥१५॥ आकाश, क्षमा, वायु, तेज, जल और यजमान के बिना यह जगत् नहीं होता है ॥१६॥ भानु और चन्द्रमा से लोक होता है । वे सब उस प्रभु के ही तनु हैं । विचार पूर्वक देखने पर यह चर और अचर भगवान् रुद्र का ही स्वरूप है ॥१७॥ हे द्विजोत्तमो ! ऋषिगण कहते हैं किन्तु जो भगवान् का सूक्ष्म रूप है वह नहीं कहा जा सकने के योग्य होता है । वह ऐसा रूप है कि जहाँ से वाणी मन के साथ निवृत्त हो जाया करती है अर्थात् वाणी और मन की वहाँ तक पहुँच ही नहीं होती है ॥१८॥ ब्रह्मा के आनन्द का विद्वान् कहीं भी भय नहीं खाता है उसी प्रकार से पिनाकी के आनन्द का ज्ञान प्राप्त करके भी उससे भय नहीं खाना चाहिए ॥१९॥ भावना से सर्वत्र रुद्र की विभूतियाँ हैं— ऐसा मानकर तत्त्वों के ज्ञाता मुनिगण सब रुद्र स्वरूप ही हैं, ऐसा कहते हैं ॥२०॥ परमेश्वरी के गौरव से निरन्तर नमस्कार के द्वारा यह निश्चय ही सम्पूर्ण ब्रह्म है और सब ईश्वर रुद्र हैं ॥२१॥

पुरुषो वै महादेवो महेशानः परः शिवः ।
 एवं विभुर्विनिर्दिष्टो ध्यानं तत्रैव चित्तनम् ॥२२॥
 चतुर्व्यूहेण मार्गेण विचार्यालोक्य सुव्रत ।
 संसारहेतुः संसारो मोक्षहेतुश्च निवृत्तिः ॥२३॥
 चतुर्व्यूहः समाख्यातश्चिन्तकस्येह योगिनः ।
 चिन्ता बहुविधा ख्याता संकत्र परमेष्ठिना ॥२४॥
 सुनिष्ठेत्यत्र कथिता रुद्रे रौद्री न सशयः ।
 ऐन्द्री चेन्द्रे तथा सौम्या सोमे नारायणे तथा ॥२५॥
 सूर्ये बह्वी च सर्वेषा सर्वत्रैवं विचारतः ।
 सैवाहं सोहमित्येव द्विधा संस्थाप्य भावतः ॥२६॥
 भक्तोसौ नास्ति यस्तस्माच्चिन्ता ग्राह्यी न सशयः ।
 एव ब्रह्ममयं ध्यायेत्पूर्वं विप्र चराचरम् ॥२७॥
 चराचरविभागं च त्यजेदभिमतं स्मरन् ।
 त्याज्य ग्राह्यमलभ्य च कृत्य चाकृत्यमेव च ॥२८॥

महादेव पुरुष हैं और महेशान शिव सबसे पर हैं इस प्रकार
 से विभु का विभिन्न किया है । अतः वहाँ पर ही ध्यान और चिन्तन
 किया जाता है ॥२२॥ हे सुव्रत ! इस चतुर्व्यूह मार्ग के द्वारा विचार
 करके और भली-भाँति देखकर यही निर्णय होता है कि संसार का हेतु
 संसार है और मोक्ष का हेतु निवृत्ति है । चतुर्व्यूह में, अन्नमय कोश तो
 स्थूल रूप वाला है इससे उसका त्याग कर देते हैं केवल प्राण, मन
 विज्ञान आनन्दमय कोश को ग्रहण करते हैं । अथवा ध्येय, ध्यान, यज्ञ-
 मान और प्रयोजन रूप हैं ॥२३॥ यहाँ पर चिन्तन करने वाले योगी का
 चतुर्व्यूह कहा गया है । एक स्थान पर यह चिन्ता बहुत प्रकार की
 परमेष्ठी के द्वारा कही गई है ॥२४॥ जन्म-मरण को निवृत्ति कराने
 वाली होने से यहाँ पर सुनिष्ठा कही गई है । रुद्र से सम्बद्ध रौद्री होना
 है, इसमें कोई भी शक्य नहीं है । इन्द्र से ऐन्द्री और सोम तथा नारा-

यण मे सोम्या निष्ठा होती है। इस प्रकार से सूर्य और वल्लि में सर्वत्र सबकी विचार से हुमा करती है कि वह (निष्ठा) ही मैं हूँ या वह मैं हूँ, इस प्रकार से भाव से मन को सत्स्थापित करके दो प्रकार की होती है ॥२५॥२६॥ वह जो भक्त है उसको उस ईश्वर से अन्य नहीं है इसलिये यह चिन्ता ब्राह्मी है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस प्रकार से हे विप्र ! अर्थात् हे सनत्कुमार ! पहिले इस चराचर को ब्रह्म-मय ही ध्यान करना चाहिए ॥२७॥ अपने अभिमत का स्मरण करते हुए अर्थात् ब्रह्मात्मक शिव के रूप का स्मरण करके चराचर के विभाग को त्याग ही देना चाहिये। जो अकृत्य है वह त्याग करने के योग्य है और असम्य कृत्य ग्रहण करने के योग्य है। २८॥

यस्य नास्ति सुतृप्तस्य तस्य ब्राह्मी न चान्यथा ।
आम्यन्तरं समाख्यातमेवम्यर्चनं क्रमात् ॥२९॥
आम्यन्तरार्चकाः पूज्या नमस्कारादिभिस्तथा ।
विरूपा विकृताश्चापि न निन्दा ब्रह्मवादिनः ॥३०॥
आम्यन्तरार्चकाः सर्वे परीक्षया विजानता ।
निन्दका एव दुःखार्ता भविष्यन्त्यल्पचेतसः ॥३१॥
यथा दास्यते रुद्रं विनिन्द्य मुनयः पुरा ।
तस्मात्सेव्या नमस्कार्याः सदा ब्रह्मविदस्तथा ॥३२॥
वर्णाश्रमविनिर्मुक्ता वर्णाश्रमपरायणैः ॥३३॥

जिसको चराचर का विभाग नहीं होता है उस सुतृप्त को ब्राह्मी होती है अन्यथा नहीं होती है। इस प्रकार से क्रम से आम्यन्तर अर्चन कहा गया है ॥२९॥ जो आम्यन्तर के अर्चन करने वाले हैं वे नमस्कारादि के द्वारा पूज्य होते हैं। ब्रह्मवादी लोग चाहे विरूप और विकृत भी हो तो भी वे निन्दा करने योग्य नहीं होते हैं ॥३०॥ विशेष रूप से ज्ञान रखने वाले पुरुष को आम्यन्तर अर्चना करने वाले सबकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। जो अल्प अर्थात् क्षुद्रचित्त वाले निन्दक

होते है वेही दुःखार्त्त होंगे ॥३१॥ वे इस तरह दुःख से आर्त्त हो जायेंगे जैसे पहिले दारु वन मे, रुद्र की विनिन्दा करके मुनिगण परम दुःखित हुए थे । इससे ब्रह्म ज्ञाता लोग सर्वदा सेव्य और नमस्कार करने के योग्य होते हैं ॥३२॥ बर्णाश्रम परायण साधक बर्णाश्रम से विनिर्मुक्त होते हैं ॥३३॥



सुवर्शन व्याख्यान, क्रम सन्यास लक्षण

इदानीं श्रोतुमिच्छामि पुरा दारुवने विभो ।
 प्रवृत्तं तद्वनस्थानां तपसा भावितात्मनाम् ॥१॥
 कथं दारुवनं प्राप्नो भगवान्नोललोहितः ।
 विकृतं रूपमास्थाय चान्धर्वरेता दिग्म्बरः ॥२॥
 किं प्रवृत्तं वने तस्मिन् रुद्रस्य परमात्मनः ।
 ववतुमर्हसि तत्त्वेन देवदेवस्य चेष्टितम् ॥३॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रुतिसारविदां वरः ।
 शिलावसूनुर्भगवान्प्राह किञ्चिद्भवं हसन् ॥४॥
 मुनयो दारुगहने तपस्तेषुः सुदारुणम् ।
 तुष्टयर्थं देवदेवस्य सदारतनयान्नयः ॥५॥
 तुष्टो रुद्रो जगन्नायश्चेकितानो वृषध्वजः ।
 धूर्जटिः परमेशानो भगवान्नोललोहितः ॥६॥
 प्रवृत्तिलक्षणां ज्ञानं ज्ञातुं दारुवनोक्तसाम् ।
 परीक्षार्थं जगन्नायः श्रद्धया क्रीडया च सः ॥७॥

सतत्कुमार ने कहा—हे विभो ! पहिले दारुवन मे तप से भावित आत्मा वाले उस वन में निवासियों को जो प्रवृत्त हुआ उसे प्रथम श्रवण करने की मेरी इच्छा होती है ॥१॥ उर्ध्व रेता दिग्म्बर भगवान् नील-लोहित विकृत रूप में आस्थित होकर दारुवन मे कंठे प्राप्त हुये

थे ? ॥२॥ परमात्मा रुद्र भगवान् को उस वन में क्या प्रवृत्ता हुआ था ? उन देवों के देव के चेष्टित को तात्त्विक रूप से प्राप वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥३॥ सूतजी ने कहा— उसके उस वचन का श्रवणकर श्रुति के सार के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ शिक्षाद सुनु भगवान् भव का स्मरण कर कुछ हंसते हुए बोले ॥४॥ शैनादि ने कहा— दारुवन में मुनिगण, सुदागण तपस्या कर रहे थे जो कि अपनी स्त्री, पुत्र और अग्नि के सहित थे और देवों के देव भव की तुष्टि के लिये ही तप कर रहे थे ॥५॥ माया के द्वारा अत्यन्त संशय को समुत्पन्न करने वाले, जगत् के नाथ, वृषध्वज, घूर्जटि, परमेशान, भगवान् नील लोहित रुद्र उनकी तपस्या से सतुष्ट हो गये थे ॥६॥ किन्तु दारुवन के निवास करने वाले मुनियों के प्रवृत्ति स्वरूप ज्ञान को जानने के लिये वह जगतों के नाथ श्रद्धा और क्रीडा से परीक्षा करने के हेतु ऐसे विकृत स्वरूप वाले हुए थे ॥७॥

निवृत्तिलक्षणज्ञानप्रतिष्ठार्थं च शकरः ।

देवदारुवनस्थानां प्रवृत्तिज्ञानचेतसाम् ॥८॥

विकृतं रूपमास्थाय दिग्वासा विपमेक्षणः ।

मुग्धो द्विहस्तः कृष्णाङ्गो दिव्यं दारुवनं ययौ ॥९॥

मन्दस्मितं च भगवान् स्त्रीणां मनसिजोद्धवम् ।

भ्रविलास च गान च चकारातीव सुन्दरः ॥१०॥

संप्रेक्ष्य नारोवृन्दं वै मुहुर्मुहुरनङ्गहा ।

अङ्गवृद्धिमकरोदतीव मधुराकृतिः ॥११॥

वने तं पुरुषं दृष्ट्वा विकृतं नीललोहितम् ।

स्त्रियः पतिव्रताश्चापि तमेवान्वयुरादरात् ॥१२॥

वनोदजद्वारगताश्च नार्यो

विस्मस्तवस्त्राभरणा विचेष्टाः

लब्ध्वा स्मितं तस्य

मुखारविदाद्द्रुमालयस्थास्तमयान्वयुस्ताः ॥१३॥

दृष्ट्वा काश्चिद्भूवं नार्यो मदधूणितलोचनाः ।

विलासवाह्यास्ताश्चापि भ्रूविलासं प्रचक्रिरे ॥१४॥

प्रवृत्ति के ज्ञान में चित्त लगाने वाले दाहवन के निवासी मुनियों के निवृत्ति लक्षण ज्ञान की प्रतिष्ठा के लिये भर्थात् निवृत्ति के ज्ञान के महत्त्व को प्रतिष्ठित करने के वास्ते भगवान् शङ्कर ने अपना विकृत रूप आस्थित करके दिगम्बर (नग्न), विपन्न नेत्रों वाले, सुन्दर, दो हाथों वाले और कृष्ण के समान भङ्ग वाले होकर उस परम दिव्य दाहवन में गये थे ॥८॥१६॥ वहाँ परम सुन्दर भगवान् ने स्त्रियों के काम-देव को उत्पन्न करने वाला मन्दस्मित, भ्रूयों का विलास और गान किया था ॥१०॥ भगवान् को मस्म कर देने वाले भगवान् रुद्र ने जोकि अत्यन्त मधुर आकृति वाले थे बारम्बार नारियों के समुदाय को देखकर उनके कामदेव की वृद्धि करदी थी ॥११॥ उस वन में उस विकृत पुरुष को देखकर जो कि नील लोहित थे, पतिव्रता स्त्रियाँ भी आदर से उसके पीछे चल दी थी ॥१२॥ वन के उदज्ज्वल पर गई हुई नारियाँ अपने वस्त्र और आभरणों का त्याग करके विचेष्ट हो गई थी । उसके मुखारविन्द से स्मित को प्राप्त कर द्रुमालयों में रहने वाली ये सब उसका अनुगमन करने लगी थी ॥१३॥ जो विलास करने की अवस्था से बाह्य भर्थात् वृद्धा थी वे भी कुछ नारियाँ मद से धूणित नेत्रों वाली होनी हुईं भय को देखकर भ्रूविलास कर रही थी ॥१४॥

अथ दृष्ट्वापरा नार्यः किञ्चित्प्रहसिताननाः ।

किञ्चिद्विस्मस्तवसनाः सस्तकाञ्चीगुणा जगुः ॥१५॥

काश्चित्तदा तं विपिने तु दृष्ट्वा

विप्रांगनाः सस्तनवाञ्शुकं वा ।

स्वान्स्वान्विचित्रान् चलयान्प्रविध्य

मदान्विता वधुजनांश्च जग्मुः ॥१६॥

काचित्तदा तं न विवेद दृष्ट्वा

विवासना सस्तमहांशुका च ।

शाखाविचित्रान् विटपान्प्रसिद्धा-

न्मदान्विता वंधुजनांस्तथान्याः ॥१७॥

काश्चिज्जगुस्तं ननृतुनिपेतुश्च धरातले ।

निपेदुर्गजवच्चान्या प्रोवाच द्विजपुंगवाः ॥१८॥

अन्योन्य सस्मितं प्रेक्ष्य चालिलिङ्गुः समंततः ।

निरुध्य मार्गं रुद्रस्य नपुणानि प्रचक्रिरे ॥१९॥

को भवानिति चाहुस्तं आस्यतामिति चापराः ।

कुत्रेत्यथ प्रसीदेति जजल्पुः प्रीतमानसाः ॥२०॥

विपरीता निपेतुर्वै विस्रस्तांशुकमूर्धजाः ।

पतिघ्नताः पतीनां तु सन्निधौ भवमायया ॥२१॥

इसके अनन्तर दूसरी नारियाँ अपने मुख पर कुछ हास्य का भाग लाती हुई अपने बन्धो का कुछ त्याग करके काँवीरुण को छोड़कर गाने लगी ॥१५॥ कुछ विप्रों की नारियाँ वन में उसको सस्त नयाँ शुक के सहस्र देखकर अपने-अपने विचित्र वस्त्रों को प्रविष्ट करके मदान्वित होती हुई बन्धुजनों के पास चली गई थी ॥१६॥ कुछ उस समय में उसको देखकर अपने आपको न जान पाईं थी और अपने यहाँ शुक अर्थात् साड़ी का त्याग कर बख्क रहित हो गई थी । दूसरी ऐसी मद से मुक्त हो गई थी कि शाखाओं से विविध प्रसिद्ध विटों को तथा बन्धु-जनों को भी नहीं जान पाईं थी ॥१७॥ कुछ नारियाँ उसके घामे गान करती थी, कुछ नृत्य कर रही थी और कुछ धरातल में गिर गई थी । हे द्विज पुङ्गवो ! दूसरी हाथों की भाँति बैठ गई थी और कुछ घोली ॥ ८॥ वे एक दूसरे के स्मित की देनकर परस्पर में पारो पार से घानिङ्गन करने लगी थी और रुद्र के मार्ग को रोककर विनाश कर रही थीं ॥१९॥ आप बीन हैं—यह उनसे पूछा था और अन्यो ने कहा बैठ जाओ, प्रसन्न मन वाली उन ने 'वहाँ पर', इसके अनन्तर 'प्रसन्न

हो जाओ', यह बातचीत करती थी ॥२०॥ भव की माया से वे पति-प्रताएँ पतियो की सन्निधि में बेश और बल्ल खुले हुए करके विपरीत होती हुईं गिर गईं थी ॥२१॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा भवस्तासां चेष्टावाक्यानि चाव्ययः ।
 शुभं वाप्यशुभं वापि नोक्तवान्परमेश्वरः ॥२२॥
 दृष्ट्वा नारीकुलं विप्रास्तथाभूतं च शंकरम् ।
 अतीव परुषं वाक्यं जजल्पुस्ते मुनीश्वराः ॥२३॥
 तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याह्वयन्त शंकरे ।
 यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिताः ॥२४॥
 श्रूयते ऋषिशापेन ब्रह्माणस्तु महात्मन ।
 समृद्धश्रेयसां योनिर्यज्ञो वै नाशमाप्तवान् ॥२५॥
 भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्यवान् ।
 प्रादुर्भावाद्दश प्राप्नो दुःखितश्च सदा कृतः ॥२६॥
 इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञं च्छिन्नं सवृषणं पुरा ।
 ऋषिणा गीतमेनोव्यां क्रुद्धेन विनिपातितम् ॥२७॥
 गर्भवाप्तो वसूनां च शापेन विहितस्तथा ।
 ऋषीणां चैव शापेन नहुषः सर्पतां गतः ॥२८॥

उस समय ब्राह्मणों ने नारियों के समूह को उस प्रकार की चेष्टा करते हुए देखकर तथा शङ्कर को उस स्वरूप में अवलोकन करके उन मुनीश्वरों ने अत्यन्त ही कठोर वचन कहे थे । और शङ्कर ने उन नारियों के उस प्रकार के वचन श्रवण करके तथा उन तरह की चेष्टायें देखकर शुभ या अनुशुभ कुछ भी अव्यय परमेश्वर ने नहीं कहा था ॥२२॥ ॥२३॥ उक्त सबकी तपस्यायें जो शङ्कर के लिये की जा रही थी सूर्य के प्रकाश से आकाश में स्थित तारकों की भाँति प्रति हन्यमान हो गई थी ॥२४॥ यह सुना जाता है कि ऋषि वसिष्ठ के शाप से ब्राह्मण और महारमा के शाप से समस्त समृद्ध श्रेयों की योनि यज्ञ नाश को प्राप्त हो

गया था ॥२५॥ ये दोनों क्यारों भारत में विस्तृत रूपसे ही क गई हैं ।
भृगु ऋषि के शाप से परम वीर्य वाले विष्णु भगवान् भी दश प्रादु-
र्भावों को प्राप्त हुये और सदा दुःखित किये गये थे ॥२६॥ हे धर्मज्ञ !
पहिले इन्द्र के भी सवृषण छिन्न हो गये थे और क्रुद्ध
गौतम ऋषि ने भूमि में गिरा दिया था ॥२७॥ वसुधो का गर्भ
वास शाप के द्वारा ही किया गया था और ऋषियों के शाप से राजा
नहुष सर्प के स्वरूप को प्राप्त हो गया था ॥२८॥

क्षीरोदश्च समुद्रोसौ निवासः सर्वदा हरेः ।
द्वितीयश्चामृताधारो ह्यपेयो ब्राह्मणैः कृतः ॥२९॥
अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्या जनादनः ।
क्षीरेण चाभिषिञ्च्येशं देवदेवं त्रियम्बकम् ॥३०॥
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेषामृतेन वै ।
निषिञ्चतेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः ॥३१॥
सेचयित्वाथ भगवान्ब्रह्मणा मुनिभिः समम् ।
क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चात्मनः प्रभुः ॥३२॥
धर्मश्चैव तथा शप्तो माडव्येन महात्मना ।
वृष्णयश्चैव कृष्णेन दुर्वासाद्यर्महात्मभिः ॥३३॥
राघवः सानुजश्चापि दुवसिन महात्मना ।
श्रीनरेश्च मुनेः पादपतनात्तस्य धीमतः ॥३४॥
एते चान्ते च बहवो विप्राणां वक्ष्यमागताः ।
वर्जयित्वा विरूपाक्षं देवदेवमुमापतिम् ॥३५॥

यह क्षीर सागर जो सर्वदा भगवान् कृष्ण का निवास स्थान रहा
है और दूसरे समुद्र का आधार था यह भी ब्राह्मणों ने न पीने के योग्य
कर दिया गया है ॥२९॥ जनादन ने वाराणसी में अविमुक्तेश्वर को
प्राप्त करने वहाँ पर ईश त्रियम्बक देवदेव का क्षीर से अभिषेक किया
था । परम धडा से मधुसूदन देव स्वयं उग निषिक्त समुद्र क्षीर से देव

मे आश्लेष अर्थात् सयोग करके युक्त हुए थे ॥३०॥३१॥ ब्रह्मा और मुनियों के साथ भगवान् विष्णु ने इस तरह से सेचन कराकर अपने निवास स्थान क्षीर सागर को पूर्व की भाँति किया था ॥३२॥ भाण्डव्य महात्मा ने धर्म को भी क्षाप दे दिया और दुर्वासा आदि मुनियों ने कृष्ण के साथ समस्त यादवों को भी क्षाप दिया था ॥३३॥ अनुज के सहित श्री राघव भी महात्मा दुर्वासा के द्वारा क्षापित हुये थे । उस महात्मा घोमान् मुनि के भृगुलता प्रहार से श्री वत्स विष्णु क्षाप युक्त हुए थे ॥३४॥ इस तरह से ये क्षीर अग्न्य बहुत सारे ब्राह्मणों के वक्ष में आ गये थे वेवल देवों के देव विरूपाक्ष उमा पति को छोड़कर सभी देव ब्राह्मणों के क्षाप से प्रायः युक्त हुए हैं ॥३५॥

एव हि मोहितास्तेन नावबुध्यत शंकरम् ।

अत्युग्रवचन प्रोचुश्च ओप्यत्तरधीयत ॥३६॥

तेपि दारुवनात्तास्मात्प्रातः सविग्गमानसा ।

पितामह महात्मानमासीन परमासने ॥३७॥

गत्वा विज्ञापयामासुः प्रवृत्तमखिल विभोः ।

शुभे दारुवने तस्मिन् मुनयः क्षीणचेतसः ॥३८॥

सोपि सचित्त्य मनसा क्षणादेव पितामहः ।

तेषां प्रवृत्तमखिल पुण्ये दारुवने पुरा ॥३९॥

उत्थाय प्राजलिभूत्वा प्रणिपत्य भवाय च ।

उवाच सत्वर ब्रह्मा मुनीन्दारुवनालयान् ॥४०॥

इस प्रकार से वे मुनिगण भी मोहित हो गये थे और भगवान् दादुर को नहीं जान पाये थे । उन्होंने अत्यन्त उग्र वचन कहे थे और शिव भी वही पर अन्तर्हित हो गये थे ॥३६॥ फिर वे सब मुनिगण अत्यन्त सविग्ग मन वाले होते हुए उस दारुवन से प्रातः काल ही मे परमासन पर विराजमान महात्मा पितामह के समीप में गये थे और विभु के इस समस्त प्रवृत्त को उन्होंने वही विज्ञापित किया था । उस परम शुभ दारुवन में मुनिगण क्षीण चित्त

वाले हो गये थे ॥३७॥३८॥ उस पितामह ने एक क्षण पर्यन्त मन से चिन्तन किया था जो कि पहिले उनके साथ परम पुण्य दारुवन मे पहिले समस्त प्रवृत्त हुआ था ॥३९॥ फिर ब्रह्माजी ने उठकर हाथ जोडकर भव को प्रणाम किया था । इसके अनन्तर शीघ्र ही ब्रह्मा ने दारुवन मे रहने वाले मुनियो से कहा था ॥४०॥

धिग्युष्मान्प्राप्तनिधनान्महानिधिमनुत्तमम् ।
वृथाकृत यतो त्रिषा युष्माभिर्मग्न्यवर्जितः ॥४१॥
यस्तु दारुवने तस्मिंस्त्रिणी दृष्टोप्यलिगिभिः ।
युष्माभिर्विकृताकारः स एव परमेश्वरः ॥४२॥
गृहस्थैश्च न निधास्तु सदा ह्यतिथयो द्विजाः ।
विरूपाश्च सुरूपाश्च मलिना श्राप्यपण्डिता ॥४३॥
सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम् ।
पुरा भूमौ द्विजाग्रयेण जितो ह्यतिथिपूजयः ॥४४॥
अग्नयथा नास्ति सततुं गृहस्थैश्च द्विजोत्तमैः ।
त्यक्त्वा चातिथिपूजा तामात्मनो भुवि शोधनम् ॥४५॥
गृहस्थोपि पुरा जेतुं सुदर्शन इति श्रुतः ।
प्रतिज्ञामकरोज्जाया भार्यामाह पतिव्रताम् ॥४६॥
सुग्रहे सुभ्रु सुभगे शृणु सर्वं प्रयत्नतः ।
त्यया वै नावमतव्या गृहे ह्यतिथयः सदा ॥४७॥

ब्रह्मा ने कहा कि प्राप्त निधन आपकी धिवार है आपने तो सर्वोत्तम महानिधि को प्राप्त कर लिया था । आप सब भोग बहुत ही भाग्यहीन हैं और जो कुछ भी आपने किया है सब व्यर्थ कर दिया है । ॥४१॥ उस दारुवन मे आतिथी आप लोगो ने देखा था वह विकृत आकार वाला साक्षात् परमेश्वर ही थे ॥४२॥ हे द्विजपण । गृहस्थों को सदा अतिथियों को निन्दा नहीं करनी चाहिए । वे अनिविधाहे विरूप हों या गुरूप हों, मलिन हों या श्राण्डित हों, स्त्री भी रूप मे हों

प्रतिथि गृहस्थाश्रमी के सदा सत्कार के ही पात्र होते हैं ॥४३॥ पहिले भूमि में सुदर्शन मुनि के द्वारा जो कि द्विजो मे परम शिरोमणि था स्वयं काल मृत्यु भी अतिथि की पूजा के द्वारा जीत लिया था ॥४४॥ द्विजोत्तम गृहस्थो के द्वारा सन्तरण करने का अन्य कोई साधन नहीं है । इस भूमण्डल मे इस अतिथि सत्कार को छोड़कर अन्य कोई भी आत्मा के शोधन का सपाय नहीं है ॥४५॥ पहिले सुदर्शन के नाम वाले ने जो एक गृहस्थ था जीतने की प्रतिज्ञा की थी और अपनी पतिव्रता भार्या से उसने कहा था ॥४६॥ हे सुव्रते ! हे सुभ्रु ! हे सुभगे ! मेरा सब उपदेश श्रवण करो तुमको अपने समस्त प्रपत्नों से सदा अतिथियों का सत्कार करना है और वे कभी भी तिरस्कृत नहीं होने चाहिये ॥४७॥

सर्व एव स्वयं साक्षादतिथिर्यत्पिनाकधृक् ।
 तस्मादतिथये दत्त्वा आत्मानमपि पूजय ॥४८॥
 एवमुक्त्वाथ संतप्ता विवशा सा पतिव्रता ।
 पतिमाह रुदंती च किमुक्त भवता प्रभो ॥४९॥
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह सुदर्शनः ॥
 देयं सर्वं शिव यार्ये शिव एवातिथिः स्वयम् ॥५०॥
 तस्मात्सर्वं पूजनीयाः सर्वेऽतिथयः सदा ।
 एवमुक्त्वा तदा भर्ता भार्या तस्य पतिव्रता ॥५१॥
 शोषामिवाज्ञामादाय मूर्ध्ना सा प्राचरत्तदा ।
 परीक्षितुं तथा श्रद्धां तयोः साक्षाद्विजोत्तमाः ॥५२॥
 धर्मो द्विजोत्तमो भूत्वा जगामाथ मुनेर्गृहम् ।
 तं दृष्ट्वाचार्यं यामास सार्धार्धं रनघा द्विजम् ॥५३॥
 संपूजितस्तया तां तु प्राह धर्मो द्विजः स्वयम् ।
 भद्रे कुतः पतिर्धोमास्तव भर्ता सुदर्शनः ॥५४॥
 अनार्थं रत्नमद्यार्ये स्वं दातुमिह चाहंसि ।
 सा च लज्जःवृता नारी स्मरंतो कवितं पुरा ॥५५॥

सुरतांतस्तु विप्रेन्द्र संतुष्टोहं द्विजोत्तम ।
 सुदर्शनस्ततः प्राह सुप्रवृष्टो द्विजोत्तमः ॥६०॥
 भुंक्ष्व चेनां यथाकामं गमिष्येहं द्विजोत्तम ।
 दृष्टोय दर्शयामास स्वात्मानं धर्मराट् स्वयम् ॥६१॥

अपने स्वामी की आज्ञा से उसने अपने नेत्रों को मूँद लिया था और वह पतिव्रता चलायमान हो गई थी । उसने धर्म में उसने अपनी बुद्धि करली थी और वह पति की आज्ञा से उस प्रतियि को अपना धरीर समर्पित करने के लिए उससे बोली थी । इसी अन्तर में उस नारी का स्वामी सुदर्शन घर के द्वार पर पहुँच गया था । वह धीमान् महामुनि अपनी उस भाषा से बोला—हे भद्रे ! आग्रो-आग्रो, तुम कहाँ चली गई हो ? फिर इसके अनन्तर प्रतियि ने स्वयं उससे कहा कि मैं आज इस तुम्हारी भाषा के साथ मैथुन करने में स्थित हूँ । हे महाभाग ! सुदर्शन ! अब क्या करना चाहिए ? बननामो ॥५६॥५७॥५८॥५९॥ हे द्विजोत्तम विप्रेन्द्र ! सुरत क्रीड़ा करने के पश्चात् मैं संतुष्ट होऊँगा । तब द्विजोत्तम सुदर्शन ने परम हर्षित होने हुए कहा ॥६०॥ हे द्विजोत्तम ! आप इस नारी का उपभोग इच्छा पूर्वक करिये, मैं यहाँ से चला जाऊँगा । तब धर्मराज बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने स्वरूप को स्वयं प्रकट करके दिखा दिया था ॥६१॥

प्रददौ चेप्सितं सर्वं तमाह च महावृत्तिः ।
 एषना भुक्ता विप्रेन्द्र मनसापि सुखोभना ॥६२॥
 मया चेपा न संदेहः श्रद्धां ज्ञातुमिहागतः ।
 जितो वै यस्त्वया मृत्युर्धर्मणेकेन सुव्रत ॥६३॥
 अहोस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा प्रययो च सः ।
 तस्मात्तथा पूजनीयाः सर्वे ह्यतिथयः सदा ॥६४॥
 बहुनात्र किमुक्तेन भाग्यहीना द्विजोत्तमाः ।
 तमेव शरणं तूष्णं गंतुमर्ह्य शंकरम् ॥६५॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा ब्रह्मणो ब्राह्मणपंभा ।
 ब्रह्माणमभिवद्यार्ताः प्रोचुराकुलितेक्षणाः ॥६६॥
 नापेक्षित महाभाग जीवित विकृताः स्त्रियः ।
 दृष्टोस्माभिमंहादेवो निदितो यस्त्वनिदितः ॥६७॥
 क्षप्तश्च सर्वंगः झूली पिनाकी नीललोहितः ।
 अज्ञानाब्ध्यापजा सक्तिः कुंठितास्य निरीक्षणात् ॥६८॥

धर्म ने उसका सम्पूर्ण प्रभोष्ट प्रदान किया था और महान्
 जुनि गला धर्म उससे बहो लगा कि हे विप्रेन्द्र ! मैंने यह सुसोभा
 प्रापनी भार्या का मन से भी उपभोग नहीं किया था, इनसे कुछ भी
 सन्देह नहीं है । मैं तो नेवम तुम्हारी श्रद्धा को जीव करने के ही लिए
 यों प्राया था । हे सुव्रत ! तुमने एक ही धर्म के द्वारा जो मृत्यु है उस
 को भी जीत लिया है ॥६२॥६३॥ अहो ! इन तपस्या में बड़ी भारी
 शक्ति होती है, यह बहुर बह बना गया था । इन कारण से समस्त
 प्रतिधि गए सदा पूजा करने के योग्य हुआ करते हैं ॥६४॥ यहाँ पर
 अब अधिका बहने से क्या लाभ है । ब्रह्मा ने कहा कि हे द्विजगण !
 तुम बहुत ही भाग्यहीन हो । अब तुम उमी शङ्कर की कारण मे सोध
 जाने के योग्य होते हो ॥६५॥ ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके
 उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने ब्रह्माजी की वन्दना की और बाहुनित नेत्रों वाले
 दुःखित होकर वे बोल ॥६६॥ हे महामाग ! जीवन की अपेक्षा नहीं
 की थी क्योंकि स्त्रिया विकृत हो गई थी । जो गर्वश प्रतिदिन स्वप्न
 वाले है उन महादेव का भी हमन निन्दन देगा था ॥६७॥ गर्वगामी,
 पिनाक को धारण करने वाले, नील लाहिर झूली को क्षाप्त दिया गया
 था जो कि प्रज्ञान से दिया था । हमने निरीक्षण से यह साध ने उपद्रव
 होने वाली शक्ति कुण्ठित हो गई थी ॥६८॥

यवतुमर्हमि देवेश सन्यास यं धमेण तु ।
 द्रष्टुं यं देवदेवेशमुप भोम वर्षदिनम् ॥६९॥

आदौ वेदानधीत्यैव श्रद्धया च गुरोः सदा ।
 विचार्यार्थं मुनेधर्मान् प्रतिज्ञाय द्विजोत्तमाः ॥७०॥
 ग्रहणान्तं हि वा विद्वानथ द्वादश वार्षिकम् ।
 स्नात्वात्हत्य च दारान्वै पुनानुत्पाद्य सुव्रतान् ॥७१॥
 वृत्तिभिश्चानुरूपाभिस्तान्विभज्य सुतान्मुनिः ।
 अग्निष्टोमादिभिश्चेष्ट्वा यज्ञैर्यज्ञेश्वर विभुम् ॥७२॥
 पूजयेत्परमात्मान प्राप्यारण्य विभावसी ।
 मुनिर्द्वादशवर्षं वा वर्षमात्रमथापि वा ॥७३॥
 पक्षद्वादशक वापि दिनद्वादशक तु वा ।
 क्षीरभुक् सयुतः शातः सर्वान् सपूजयेत्सुरान् ॥७४॥
 इष्टुं च जुहुयादग्नी यज्ञपात्राणि मन्त्रतः ।
 अप्सु चै पाथिव न्यस्य गुरवे तीजसानि तु ॥७५॥

हे देवेश ! आप क्रम से सन्यास का वर्णन करने को योग्य होते हैं जो कि देवों के भी देवेश, उग्र, भीम, कपर्दी को देखने के लिये है ॥६९॥ पित्तमह ने कहा—सबसे प्रथम आदि में सदा गुरु से श्रद्धा पूर्वक वेदों का अध्ययन करे । फिर हे द्विजोत्तम गण ! अर्थों का विचार करके मुनि के धर्मों की प्रतिज्ञा ग्रहण करे ॥७०॥ विद्वान् को ग्रहण के अन्त तक अथवा बारह वर्ष तक इस नियम का पालन करना चाहिए । स्नान करके अर्थात् समापवर्तन स्नान करके आर्याओं का आह्वरण करे और उनमें सुव्रत पुत्रों की उत्पत्ति करे ॥७१॥ इसके अनन्तर मुनि को चाहिये कि अनुरूप वृत्तियों से सुतों का विभाजन कर देवे और यज्ञेश्वर विभु का अग्निष्टोमादि यज्ञों के द्वारा यजन करना चाहिए ॥७२॥ विभा वसु में मुनि को द्वादश वर्ष पर्यन्त अथवा केवल एक ही वर्ष तक अरण्य में जाकर परमात्मा का पूजन करना चाहिये ॥७३॥ बारह पक्ष तक अथवा द्वादश दिन तक क्षीर का आहार करने वाला रहकर परम सयत एव शान्त होते हुए समस्त गुरो का गली-भौति पूजन करे ॥७४॥ इस प्रकार से यजन करके अग्नि में हवन करे और मन्त्र से जो

यज्ञ पात्र हो उनमें पाथिरो की तो जल में विसर्जन कर देवे और जो तंजस हो उनका गुरु के लिए न्यास कर देना चाहिए ॥७५॥

स्वधनं सकलं चैव ब्राह्मणेभ्यो विशंकया ।

प्राणिपत्य गुरुं भूमौ विरक्तः संन्यसेद्यतिः ॥७६॥

निकृत्य केशान्सशिखानुपवीत विसृज्य च ।

पञ्चभिर्जुहुयादप्सु भूः स्वाहेति विचक्षणः ॥७७॥

तत्तदचोर्ध्वं चरेदेवं यतिः शिवविमुक्तये ।

व्रतनानशनेनापि तोयवृत्त्यापि वा पुनः ॥७८॥

पर्यवृत्त्या पयोवृत्त्या फलवृत्त्यापि वा यतिः ।

एवं जीवन्मृतो नो चेत् पण्मासाद्वत्सरास्तु वा ॥७९॥

प्रस्थानादिकमायासां स्वदेहस्य चरेद्यतिः ।

शिवसायुज्यमाप्नोति कर्मणाप्येवमाचरन् ॥८०॥

सद्योपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो हृदयताः ॥८१॥

त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन भक्तस्य स्त्रस्य शुभैर्वा तैश्च ।

यज्ञैश्च दानैर्विवधैश्च होमलब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः ॥८२॥

श्वेतेनैव जिनो मृत्युं भवभक्त्या महात्मना ।

नोस्तु भक्तिर्महादेवे शंकरे परमात्मनि ॥८३॥

अरुना सम्पूर्ण धन बिना किसी शक्का के ब्राह्मणों के लिये भूमि में गुरु की प्राणिपात करके विरक्त यति की त्याग देना चाहिये । ॥७६॥ शिखा के सहित केशों को बिल्कुल कटवा कर तथा उपवीत का भी त्याग करके “भू स्वाहा” इत्यादि पांच मृदाग्रों से विचक्षण पुरुष को जल में हवन करना चाहिये अर्थात् आहूतिया जल में देवे ॥७७॥ इसके पश्चात् ऊपर ६५ प्रकार से यति को शिव-विमुक्ति के लिये आचरण करना चाहिये । व्रत के द्वारा, अनशन से, तोय वृत्ति से, पर्यवृत्ति से, पयो वृत्ति और फल वृत्ति से यति को आचरण करना चाहिये । इस प्रकार से वह जीवित रहता हुआ मृत रहता है । अन्यथा यः प्राण मे या वत्सर मे मर जायेगा ॥७८॥७९॥ यति का कर्तव्य है कि

यह अपने देह के प्रस्थान आदि आयास का आचरण करे । इस प्रकार के कर्म के द्वारा आचरण करता हुआ मुनि शिव के सायुज्य की प्राप्ति कर लिया करता है ॥८०॥ हे दृढ व्रत वालो ! भक्ति से युक्त होने वाला मनुष्य तुरन्त भी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥८१॥ त्याग क्या है और इस विधान से भी क्या लाभ है ? रुद्र के भक्त को शुभ व्रतो, यज्ञ, विविध भाति के दान, होम प्राप्त किये हुए विविध शास्त्र और वेदों से शिव सायुज्य प्राप्त हो जाता है ॥८२॥ महात्मा श्वेत ने इन प्रकार से भव की भक्ति के द्वारा मृत्यु को जीत लिया था । मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ और शुभ कामना करता हूँ कि आप सब की परमात्मा महान् देव शङ्कर में भक्ति होवे ॥८३॥

शिवाराधन से श्वेत मुनि की मृत्यु विजय

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्राह्मणार्पभाः ।
 श्वेतस्य च कथां पुण्यामपृच्छन्परमर्षयः ॥१॥
 श्वेतो नाम मुनिः श्रीमान् गतायुर्गिरिगह्वरे ।
 सक्तो ह्यभ्यर्च्य यद्भक्त्य तुष्टाव च महेश्वरम् ॥२॥
 रुद्राध्यानेन पुण्येन नमस्तेत्यादिना द्विजाः ।
 ततः कालो महातेजाः कालप्राप्तं द्विजोत्तमम् ॥३॥
 नेमुं संचित्य विप्रेन्द्रास्सान्निध्यमकरोन्मुनेः ।
 श्वेतोपि दृष्ट्वा तं काल कालप्राप्तोपि शङ्करम् ॥४॥
 पूजयामास पुण्यात्या त्रियंवकमनुस्मरन् ।
 त्रियंवकं यजेदेवं सुगधि पुष्टिवर्धनम् ॥५॥
 किं करिष्यति मे मृत्युमृत्योर्मृत्युरहं यतः ।
 तं दृष्ट्वा सस्मितं प्राह श्वेतं लोकभयंकरः ॥६॥

एहो हि श्वेत चानेन विधिना किं फलं तव ।
 रुद्रो वा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मा वा जगदीश्वरः ॥७॥
 कः समर्थः परित्रातुं मया ग्रस्तं द्विजोत्तम ।
 अनेन मम किं विप्र रौद्रेण विधिना प्रभोः ॥८॥

शैलादि ने कहा—उन पितामह ने जब इस प्रकार से श्रेष्ठ ब्राह्मणों से कहा तो उस समय में उन परमपियो ने श्वेत की परम पुण्य कथा को उनसे पूछा था ॥१॥ पितामह ने कहा—गतायु श्रीभाव श्वेत नामधारी मुनि गिरि की गह्वर में सक्त हो गया था अर्थात् निरन्तर निवास करने लगा था । वहाँ उसने देवेश की अभ्यर्चना की थी और उसने भक्ति के भाव से महेश्वर का स्तवन भी किया था ॥२॥ हे द्विजगण ! श्वेत ने 'नमस्ते रुद्रमन्यवे' इत्यादि याजुष चतुर्थ काण्डीय पञ्चम प्रश्न रूप रुद्राध्याय के द्वारा महेश्वर की स्तुति की थी । इसके अनन्तर काल प्राप्त अर्थात् मनायु द्विजोत्तम श्वेत को महान तेज वाले काल ने ले जाने की बात सोचकर हे विप्रेन्द्रो ! उस मुनि का सान्निध्य किया था । गत आयु वाले भी श्वेत ने उस काल स्वरूप शङ्कर को देखकर उस पुण्यात्मा त्रियम्बक का स्मरण करते हुए पूजा की थी इस प्रकार सुगन्धि पुष्टि वर्धन त्रियम्बक का यजन करना चाहिए । मृत्यु मेरा क्या करेगा क्योंकि मैं मृत्यु का मृत्यु हूँ । मन्द मुस्काम से युक्त उस श्वेत को देखकर लोक की भय बरने वाला श्वेत से बोला ॥३॥४॥५॥ ॥६॥ हे श्वेत ! आओ, आओ, इस विधि से तुझे क्या फल होता है । रुद्र, भगवान् विष्णु अथवा जगदीश्वर इनमें मेरे द्वारा ग्रस्त प्राणी को हे द्विजोत्तम ! कौन परित्राण करने में समर्थ है ? अर्थात् कोई भी नहीं बचा सकता है । हे विप्र ! प्रभु की इस रौद्र विधि से मेरा क्या हो सकता है ॥७॥८॥

नेतुं यस्योत्थितश्चाहं यमलोकं क्षणेन वै ।
 यस्माद्गतायुस्त्व तस्मान्मुने नेतुमिहोद्यतः ॥९॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भैरवं धर्ममिश्रितम् ।
 हा रुद्र रुद्ररुद्रेति ललाप मुनिपुंगवः ॥१०॥
 त प्राह च महादेव काल सप्रेक्ष्य वै दृशा ।
 नेत्रेण वाष्पमिश्रेण सभ्रातेन समाकुलः ॥११॥
 स्वया किं काल नो नाथश्चास्ति चेद्धि वृषध्वजः ।
 लिंगेऽस्मिन् शङ्करो रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः ॥१२॥
 अतीव भवभक्तानां मन्त्रिधाना महात्मनाम् ।
 विधिना किं महाबाहो गच्छ गच्छ यथागतम् ॥१३॥
 ततो निशम्य क्रुपितस्तीक्ष्णदृष्टो भयङ्करः ।
 श्रुत्वा श्वेतस्य तद्वाक्य पाशहस्तो भयावहः ॥१४॥
 सिंहनादं महत्कृत्वा चास्फाट्य च मुहुमुहुः ।
 बबध च मुनिं कालः कालप्राप्तं तमाह च ॥१५॥

श्रीर मैं जिसको एक ही क्षण में यमनोक में ले जाने के लिए
 उठकर खड़ा हो गया हूँ क्योंकि हे मुने ! तू गत आयु वाला हो गया
 है इसी कारण से मैं तुझे लेने को यहाँ प्रस्तुत हुआ हूँ ॥१०॥ उसके धर्म
 से मिश्रित भैरव उस वचन का श्रवण कर वह मुनियो में श्रेष्ठ हा रुद्र,
 हा रुद्र, यह बार-बार चित्तलान लगा था ॥१०॥ वह श्वेत अभ्र युक्त
 सम्भ्रांत नेत्र से उस काल को देखकर घबराया हुआ होकर उस महा-
 देव से बोला ॥११॥ श्वेत ने कहा—हे बाल ! तुझमें हमको क्या होगा
 यदि वृषध्वज हमारा स्वामी है । समस्त देवों का उद्भव करने वाला
 भव रुद्र शङ्कर इस लिङ्ग में वर्तमान है ॥१२॥ मेरे जैसे महान् आत्मा
 वाले भव के भक्तों का वह इस विधि से अत्यन्त रक्षा करने वाला देव
 है । हे महाबाहो ! आप जैसे आये हैं वैसे ही वापिस चले जाओ ॥१३॥
 इसके अनन्तर श्वेत ने इस वचन का श्रवण करके पाश हाथ में लेने
 वाला, मरत्यन्त मय प्रद और तीक्ष्ण दाढ़ी वाला काल बहुत ही क्रुपित
 हो गया था ॥१४॥ उस बाल ने महान् सिंहनाद करके और बार-बार

गर्जना करके उस मुनि को बाँध लिया था और प्रायु व्यतीत हो जाने वाले उससे बोला ॥१५॥

मया वद्धोसि विप्रर्षे श्वेत नेतुं यमालयम् ।
अथ वै देवदेवेन तव रुद्रेण किं कृतम् ॥१६॥
क्व शयंस्तव भक्तिश्च क्व पूजा पूजया फलम् ।
क्व चाह क्व च मे भीतिः श्वेतः वद्धोसि वै मया ॥१७॥
लिगेस्मिन् सस्थितः श्वेत तव रुद्रा महेश्वरः ।
निश्चेष्टोसौ महादेवः क्व पूज्यो महेश्वरः ॥१८॥
ततः सदाशिवः स्वयं द्विजं निहन्तुमागतम् ।
निहन्तुमतकं स्मयन् स्मरारियज्ञहा हरः ॥१९॥
त्वरन् विनिर्गतः परः शिवः स्वयं त्रिलोचनः ।
त्रियम्बकोऽम्बया समं सनदिता गणेश्वरः ॥२०॥
ससज्जीवित क्षणाद्भुव निरोक्ष्य वै भयात् ।
पपात चाशु वै वली मुनस्तु सन्निधौ द्विजाः ॥२१॥

हे विप्रर्षे ! यमालय तुझ श्वेत नेतुं ल जाने के लिये घब घने मौध लिया है । आज दवा के देव तेरे रुद्र ने क्या किया है ? तेरा यह दाहक कहाँ है और तेरी भक्ति तथा पूजा कहाँ गई ? इस तेरी पूजा से क्या फल हुआ है ? कहाँ मे और मेरा भय है ? हे श्वेत ! मेरे द्वारा मर तु बद्ध हो गया है ॥१६॥१७॥ हे श्वेत ! तेरे इस लिङ्ग में सस्थित रहने वाला तेरा महेश्वर रुद्र महादेव चेष्टाहीन हो रहा है । तेरा यह पूज्य महेश्वर मंता है अर्थात् हमको पूजा से तुझे क्या फल मिल रहा है ॥१८॥ उस समय भगवान् सदाशिव स्वयं ही उस द्विज को मारने के लिए आये हुए बाल का निहने करने के लिए यज्ञ का धम करने वा, कामदेव का भस्म करने वा न हरे परम शिव त्रिनाचन मुस्कराते हुए बड़ी दोग्रता से वहाँ निकल आये थे । उस समय भगवान् त्रियम्बक व साय भयानी जगदम्बा, नन्दी और गणेश्वर भी थे । भव का देहवर एव ही

क्षण मे भय से उस बली अन्तक ने जीव को छोड़ दिया था और हे
द्विजगण ! वह शीघ्र ही मुनि की सन्निधि में गिर पड़ा था ॥१६॥२०॥
॥२१॥

ननाद चोर्ध्वमुच्चधीनिरोक्ष्य चातकातकम् ।
निरीक्षणो न च मृतं भवस्य विप्रपुंगवाः ॥२२॥
विनेदुहृष्टमोश्वराः सुरेश्वरा महेश्वरम् ।
प्रणेमुर्विकामुमा मुनीश्वरास्तु हर्षिताः ॥२३॥
ससर्जुरस्य मूर्ध्नि वै मुनभेवंस्य खेचरा ।
सुशोभन सुशोतल सुपुष्पवर्षमंबरात् ॥२४॥
अहो निरीक्ष्य चातक मृतं तदा सुविस्मितः ।
शिलाशनात्मजोऽयं शिव प्रणम्य शंकरम् ॥२५॥
उवाच बालधीमृतः प्रसीद चेति वै मुनेः ।
महेश्वरं महेश्वरस्य चानुगो गणेश्वरः ॥२६॥
ततो विवेश भगवाननृगृह्य द्विजोत्तमम् ।
क्षणादगूढशरीरहि ध्वस्त दृष्ट्वातकं क्षणात् ॥२७॥
तस्मान्मृत्युं जय चैव भक्त्या संपूजये द्विजाः ।
मुक्तिद भुक्तिद चैव सर्वेषामपि शंकरम् ॥२८॥

हे विप्रो मे श्रेष्ठो ! उत्तम बुद्धि वाला स्वेत ने भव के
निरीक्षण मात्र से मृत उस काल को देखकर और अन्त करने वाले
के भी अन्त करने वाले भगवान् शिव का दर्शन करके आनन्द से आनन्द
को अव्यक्त ध्वनि की थी ॥२२॥ उस समय में ईश्वर और सुरेश्वर सभी
ने आनन्द की बहुत उच्च ध्वनि की थी और परम हर्षित मुनीश्वर गण
ने भगवान् महेश्वर और जगदम्बा उमा को प्रणाम किया था ॥२३॥
आकाश में स्थित देवगण ने भगवान् भव के तथा इस मुनि के मस्तक
पर नभोमण्डल से सुन्दर एवं सुशोतल पुष्पो की वृष्टि की थी ॥२४॥
उस समय में उस अन्त करने वाले काल को मरा हुआ देखकर नन्दी

को बहुत ही विस्मय हुआ और वह शिलाशनात्मज नन्दी अव्यय शङ्कर भगवान् शिव को प्रणाम करके बोले यह बालघी अर्थात् मन्द बुद्धि वाला मृत हो गया है । आप इस मुनि पर प्रसन्न हो जाइये, यह महेश्वर के अनुचर गणेश्वर ने महेश्वर से कहा था ॥२५॥२६॥ इसके पश्चात् भगवान् ने द्विजोत्तम पर अनुग्रह करके और भूमि पर ध्वस्त शरीर वाले अन्तक को देखकर क्षण भर में उसके गूढ़ शरीर में प्रवेश किया था । यहाँ पर दर्शन से ही अन्तक उज्जीवित हो गया था । इस कारण से हे द्विजगण ! मृत्यु के ऊपर जय प्राप्त करने वाले भगवान् शङ्कर की भक्ति भाव से भली-भाँति पूजा करनी चाहिये । क्योंकि वह शङ्कर मुक्ति दाता, भोगों के देने वाले सबके होते हैं ॥२७॥२८॥

बहुना कि प्रलापेन सन्ध्याभ्यर्च्य वै भवम् ।
भक्त्या चापरया तस्मिन् विशोका वै भविष्यथ ॥२६॥
एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
प्रसीद भवितद्वेदो भवेद्रुद्रे पिनाकिनि ॥२७॥
येन वा तपसा देव यज्ञनाप्यथ येन वा ।
अतर्ता भगवद्भुवना भविष्यन्ति द्विजातयः ॥२८॥
न दानेन मुनिश्रेष्ठास्तपसा च न विद्यया ।
यज्ञहोमैश्च तैर्वेदयोगशास्त्रैर्निरोधनं ॥२९॥
प्रसादे नैव सा भवित शिवे परमकारणे ।
अथ तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते परमपथः ॥३०॥
सदारतनयाः श्रुताः प्रणेमुश्च पितामहम् ।
तस्मात्पाशुपती भक्तिर्गमं कामार्थमिद्विदा ॥३१॥
मुनेर्विजयदा जीव सर्वमृत्युजयप्रदा ।
दधौ चस्तु पुरा भक्त्या हरिं जित्वा मरं विभुम् ॥३२॥
क्षयं जघान पादेन यज्यास्थित्वं च लब्धवान् ।
मयापि निजितो मृत्युमंहा देवस्य कीर्तनात् ॥३३॥

श्वेतेनापि गतेनास्यं मृत्योर्मुनिवरेण तु ।

महादेवप्रसादेन जितो मृत्युर्यथा मया ॥३७॥

अधिक प्रलाप करने से क्या लाभ है । सन्यास धारण करके शिव की अनन्य भाव से भक्ति पूर्वक अभ्यर्चना करके शोक रहित हो जाओगे ॥३६॥ शैवादि ने कहा—इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे हुए ब्रह्मवादि ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मान् ! प्रसन्न हो जाइये और यह बताइये कि देवेश पिनाकधारी रुद्र मे किस तप से अथवा किस यज्ञ से अथवा किन सत्तों के द्वारा भक्ति होनी है तथा द्विजानिगण भगवान के भक्त होंगे ? ॥३७॥३८॥ पितामह ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! शिव की भक्ति, दान, तप और विद्या से नहीं होती है यज्ञ, होम, व्रत, वेद योगशास्त्र और निरोधनों के द्वारा शिव के प्रसाद से ही परम कारण स्वरूप शिव मे वह भक्ति हुआ करती है । इसके अनन्तर उनके वचन का श्रवण कर के सब महर्षिगण भ्रान्त हो गये और स्त्री तथा पुत्रों के सहित उनमें पितामह को प्रणाम किया था । उससे धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि प्रदान करने वाली पाशुपति भक्ति हो गई थी ॥३९॥४०॥ पाशुपती भविन मुनि को विजय के देने वाली और सब प्रकार की मृत्यु के जय को प्रदान करने वाली होती है । पहिले दधीच ने भक्ति से अमरों के साथ विभु हरि को जातकर क्षय को पाद से मार दिया था और अपनी अस्थियों की वज्रता प्राप्त की थी । मैंने भी (नन्दी ने) महादेव के कीर्तन से मृत्यु को निजित कर दिया था । मुनियों मे श्रेष्ठ और मृत्यु के मुख मे गये हुए श्वेत ने भी महादेव के प्रसाद से मेरी ही भाति मृत्यु पर अपनी विजय प्राप्त की थी ॥४१॥ ॥४२॥४३॥



मुनियों द्वारा शिवाराधन

कथं भव प्रसादेन देवदास्वनीरुसः ।

प्रपन्नाः शरणं देव वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥४४॥

तानुवाच महाभागान्भगवानात्मभूः स्वयम् ।
 देवदारुवनस्थांस्तु तपसा पावकप्रभान् ॥२॥
 एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
 न तस्मात्परमं किञ्चित्पदं समधिगम्यते ॥३॥
 देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चैव स प्रभुः ।
 सहस्रयुगपयंते प्रलये सर्वदेहिनः ॥४॥
 संहारत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः ।
 एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा ॥५॥
 एष चक्री च वज्रो च श्रीवत्सकृतलक्षणः ।
 योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतु रन्व्यते ॥६॥
 द्वापरे चैव कालाग्निघर्मकेतुः कलौ स्मृतः ।
 वद्रस्य मूर्तयस्स्वेता येऽभिध्यायति पंडिताः ॥७॥

सनत्कुमार ने कहा—हे प्रभो ! देवदारु घरण्य के समुद्र
 निवास करने वाले मुनिगण महादेव के प्रताप से फिर कैंसे उस देव के
 घरण्य में प्राप्त हुए थे, यह आप बताने के योग्य हैं ॥१॥ ऋषादि ने
 कहा—भगवान् आत्म भू (ब्रह्मा) ने स्वयं तप के द्वारा अग्नि के समान
 प्रभा वाले देवदारु वन के निवासी उन महाभागों से बोले थे ॥२॥
 पितामह ने कहा—यह देव सबसे बड़ा देव है अतः महेश्वर का विशेष
 ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । उससे परम अन्य कोई भी पद नहीं समधि-
 गत होता है ॥३॥ देवों का, पितृगण का और ऋषियों का यह ही प्रभु
 है । यह भगवान् महेश्वर बाल स्वरूप होकर एक महद्य पर्यन्त प्रलय
 में सम्पूर्ण देह धारियों का सहार बिगा करता है । और यह ही एक
 अपने तेज से समस्त प्रजा का सृजन करता है ॥४॥५॥ यह
 वज्रो है अर्थात् चक्र को घारण करने वाला है, यह ही वज्रो अर्थात्
 इन्द्र है और यह ही श्री वत्स का चिन्ह धारण करने वाला है । यह
 कृतयुग में योगी है और त्रेता में क्रतु के नाम वाला कहा जाना है ।
 द्वापर में कालाग्नि और कलियुग में घर्म केतु कहा गया है । वद्र

की ये इतनी मूर्त्तिया है । इनका पण्डित लोग अभिषेकन किया करते हैं ॥६॥७॥

चतुरस्रं बहिष्वातरष्टास्रं पिंडिकाश्रये ।
 वृत्त सुदर्शन योग्यमेव लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥८॥
 तमो ह्यग्नौ रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकम् ।
 मूर्तिरेका स्थिता चास्य मूर्तयः परिकीर्तिताः ॥९॥
 यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ।
 तस्माद्वि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम् ॥१०॥
 आराधयति विप्रेन्द्रा जितक्रोधा जितेंद्रिया ।
 लिंगं कृत्वा यथान्यायं सर्वलक्षणसयुतम् ॥११॥
 अगुष्ठमानं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसमतम् ।
 समनाभं तथाष्टास्रं षोडशास्रमथापि वा ॥१२॥
 सुवृत्तं मण्डलं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
 वेदिका द्विगुणा तस्य समा वा सर्वसमता ॥१३॥
 गोमुखी च त्रिभागीका वेद्या लक्षणसयुता ।
 पट्टिका च समताद्रे यवमात्रा द्विजोत्तमा ॥१४॥

बाहिर में चतुरस्र और अंदर अष्टास्र पिण्ड काश्रय में वृत्त और सुन्दर दर्शन वाला इस प्रकार से योग्य लिङ्ग का पूजन करना चाहिये । ॥८॥ तमोगुण अग्नि, रजोगुण ब्रह्मा और सत्त्व गुण प्रकाश करने वाला विष्णु है, इस प्रकार से ये परिकीर्तित मूर्तियाँ इस शिव की एक मूर्ति हैं ॥९॥ जिसमें वह ब्रह्म योग से समन्वित होकर स्थित रहा करता है । इस कारण से देवों के देवेश, ईशान अव्यय प्रभु का क्रोध को और इन्द्रियों को जीन लेने वाले विप्रेन्द्र आराधन किया करते हैं और विधान के नियम के अनुसार सम्पूर्ण लक्षणों से सयुक्त लिङ्ग का निर्माण करते हैं ॥१०॥११॥ वह लिङ्ग अगुष्ठ के परिमाण वाला होना चाहिये इससे न्यून नहीं होवे । सुन्दर एवं शुभ, सुवृत्त, समनाभ, सर्व

सम्मत प्राठ अक्षो से युक्त या सोलह अक्षो वाला होना चाहिये ॥१२॥
सब कामो के फल का देने वाला सुवृत्त एवं दिव्य मण्डल होना चाहिये ।
उसकी वेदिका दुगुनी अथवा सम्मान ही सर्व सम्मत होती है । वेदी के
लक्षण से सयुक्त एक तीन भाग वाली और गोमुखी होती है । हे द्विजो-
त्तम गण ! चारो ओर यक्ष के परिमाण वाली पट्टिका होती है ॥१३॥
॥१४॥

सौवर्णं राजतं शैल वृत्वा ताम्रमय तथा ।
वेदकायाश्च विस्तार त्रिगुण वे समन्ततः ॥१५॥
वर्तुलं चतुरस्रं वा षडस्रं वा त्रिरस्रकम् ।
समतान्निर्गुणं शुभ्रं लक्षणैः स्तत्सुलक्षितम् ॥१६॥
प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं पूजालक्षणसयुतम् ।
कलशं स्थापयेत्तस्य वेदिमध्ये तथा द्विजाः ॥१७॥
सहिरण्यं सवोजं च ग्रहाभिश्चाभिर्मात्रतम् ।
सेचयेच्च ततो लिङ्गं पवित्रं पञ्चभिः शुभैः ॥१८॥
पूजयेच्च यथालाभं ततः सिद्धिमवाप्स्यथ ।
समाहिता पूजयध्वं सपुत्राः सह वधुभिः ॥१९॥
सर्वे प्राजलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यत ।
ततो द्रक्ष्यथ देवेश दुर्दशमकृतात्मभिः ॥२०॥
य दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मंश्च प्रणश्यति ।
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा ग्रहाणाममितीजसम् ॥२१॥

सुवर्ण का, चांदी का अथवा ताम्रमय एवं शैल का निर्माण
करे । वेदिका का चारों ओर त्रिगुण विस्तार होना चाहिए ॥१५॥ वह
वर्तुल, चतुरस्र, षडस्र अथवा त्रिरस्र और चारो ओर निर्गुण, शुभ्र
और लक्षणों के द्वारा सुलक्षित होना चाहिए ॥१६॥ पूजा के लक्षणों
से सयुक्त न्याय के अनुसार प्रतिष्ठापित करने उसकी वेदी के मध्य में
हे द्विजगण ! कलश की स्थापना करनी चाहिये ॥१७॥ हिरण्य के
सहित तथा पञ्चाक्षर मन्त्र के सहित सघोजातादि मन्त्रों के द्वारा अभि-

मन्त्रित लिङ्ग का पवित्र एवं शुभ पाँचों से सेचन करना चाहिए ॥१८॥
 और यथा लाभ पूजन करे तो उस समय सिद्धि को प्राप्त करोगे ।
 समाहित होकर पुनो के सहित और बन्धुओं से युक्त रहकर पूजन करो
 ॥१९॥ सब लोग प्राञ्जलि होकर अर्थात् हाथ जोड़ते हुये शूलपाणि भग-
 वान् की शरण में प्राप्त होओ । इसके करने पर फिर अकृतात्माओं के
 द्वारा दुर्दश देवेश का दर्शन प्राप्त करोगे ॥२०॥ जिन देवेश्वर का दर्शन
 प्राप्त करके सम्पूर्ण अज्ञान और अधर्म नष्ट हो जाता है । इसके अन-
 स्तर अपरिमित भोज वाले ब्रह्माजी की प्रदक्षिणा की थी ॥२१॥

सप्रस्थिता वनौकास्ते देवदारुवनं ततः ।
 आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा ॥२२॥
 स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वताना गुहासु च ।
 नदीनां च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च ॥२३॥
 शैवालशोभनाः केचित्केचिदतज्जलेशयाः ।
 केचिद्भविषाशास्तु पादागुष्ठाग्रघृष्टिताः ॥२४॥
 दतोलूखलिनस्त्वन्ये अश्मकुट्टास्तथा परे ।
 स्थानवीरासनास्त्वन्ये मृगचर्यारताः परे ॥२५॥
 कालं नयति तपसा पूजया च महाधियः ।
 एव सवत्सरे पूर्णं वसन्ते समुपस्थिते ॥२६॥
 ततस्तेषां प्रसादार्थं भक्तानामनुकंपया ।
 देवः कृतयुगे तस्मिन्निरौ हिमवतः शुभे ॥२७॥
 देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः ।
 भस्मपासूपदिग्धांगो नग्नो विकृतलक्षणाः ॥२८॥

फिर वे वनवासी मुनिगण देवदारु वन को प्रस्थान कर गये
 थे । यहाँ पर उन्होंने ब्रह्माजी ने जिस रीति से आराधना क्रम एवं
 विधान बताया था ठीक उसी के अनुसार आराधन आरम्भ कर दिया
 था ॥२२॥ उनकी तपस्या के विभिन्न से । विचित्र स्थण्डिलों में, पर्वतों

गुफाओं में और नदियों के परम एकान्त एवं शुभ पुलिनों में उन दाहवन निवासी मुनियों ने तपस्या की थी । उनमें कुछ तो शैवाल के घासनों पर स्थित होने वाले थे, कुछ लोग जल में मन्दर शयन करने वाले थे । कुछ दलों पर्याप्त कुशाओं के मध्य में स्थित थे, कुछ अपने पैर के अंगूठा के अग्रभाग पर अधिष्ठित थे, कुछ दन्तोलूखल वाले और अन्य भस्म कुट्ट थे, कुछ स्थान पर खोरासन में स्थित थे और दूसरे मृगवर्या रत थे । इस प्रकार वे महाबुद्धि वाले सब पूजा और तप के द्वारा अपना काल यापन कर रहे थे । इस तरह से एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर जब वसन्त ऋतु समुपस्थित हुआ तो उस समय में उन सबकी प्रसन्नता के लिये भक्तों पर अनुग्रह करके उस कृत्तयुग में हिमालय के परम शुभ पर्वत पर अत्यन्त प्रसन्न होकर परमेश्वर देव दाहवन में प्राप्त हुए थे जिनका स्वरूप भस्म और तूनि से उपदिष्ट अङ्गो वाला था और वे पूर्ण नग्न एवं विकृत लक्षणों से युक्त थे ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥

उत्तमुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिंगललोचनः ।
 क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिदगायति विस्मितः ॥२९॥
 क्वचिन्मृत्यति शृंगारं क्वचिद्रोति मुहुर्मुहुः ।
 अश्रमे ह्यटते भक्ष्यं याचते च पुनः पुनः ॥३०॥
 माया कृत्वा तथारूपा देवस्तद्वनमागतः ।
 ततस्ते मुनयः सर्वे तुष्टुवृश्च समाहिताः ॥३१॥
 अद्भिर्विविधमात्यैश्च धूपैर्गन्धैस्तथैव च ।
 सपत्नीका महाभागाः सपुत्राः सपरिच्छदाः ॥३२॥
 मुनयस्ते तथा वाग्भरीश्वरं चेदमब्रुवन् ।
 अज्ञानाद्देवदेवेश यदस्माभिरनुश्रितम् ॥३३॥
 कर्मणा मनसा वाचा तत्सर्वं क्षतुमर्हसि ।
 चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च ॥३४॥
 ब्रह्मादीनां च देवानां दुर्विज्ञेयानि ते हर ।
 अगतिं ते न जानोमो गतिं नैव च नैव च ॥३५॥

उनके हाथ उल्मुकों से व्यग्र थे और उनके नेत्र रक्त एवं पिङ्गल
 वर्ण वाले थे । वे किसी समय में तो रौद्र रूप में हँसते थे और कभी
 विस्मित होकर गान करते थे ॥२६॥ किसी समय में शृङ्गार का नृत्य
 करने लगते थे तो कही पर बार-बार रुदन करते थे । आश्रम में भिक्षाटन
 करते हुए पुनः-पुनः याचना किया करते थे ॥३०॥ इस प्रकार से अग्नी
 माया करके देव उस वन में आये थे । उस समय में उन समस्त मुनियों
 ने समाहित होकर उनका स्तवन किया था ॥३१॥ जल, विविध भाँति
 की माला, धूप, गन्धों के द्वारा अपनी पत्नियों के एक पूर्ण परिच्छद तथा
 पुत्रों के साथ उन महाभाग मुनियों ने ईश्वर से यह कहा था—हे देव
 देवेश ! भग्नान पूर्वक हम लोगो ने जो भी कुछ आपका अपराध किया
 है वह कर्म के द्वारा मन से और वचन के द्वारा किया गया अपराध आप
 मन उसे क्षमा कर देने के योग्य होते हैं । आपके परम विविध, गुह्य
 और अत्यन्त गहन चरित्र हैं । हे हर ! उन्हे हम लोग जैसे साधारण तो
 क्या समझ सकते हैं वे तो ब्रह्मादिक के द्वारा भी दुर्विज्ञेय होते हैं । हम
 आपकी भगति और गति को बिल्कुल भी नहीं जानते हैं ॥३२॥३३॥
 ॥३४॥३५॥

विश्वेश्वर महादेव योसि सोसि नमोस्तु ते ।
 स्तुवंति त्वां महात्माना देवदेवं महेश्वरम् ॥३६॥
 नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च ।
 अनंतबलवीर्याय भूतानां पतये नमः ॥३७॥
 संहर्त्रे च पिशङ्गाय अव्ययाय व्ययाय च ।
 गंगासलिलधाराय आधाराय गुणात्मने ॥३८॥
 त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे ।
 कंदपार्थ' हुताशाय नमोस्तु परमात्मने ॥३९॥
 शंकराय वृषांकाय गणानां पतये नमः ।
 दंडहस्ताय कालाय पाशहस्ताय च नमः ॥४०॥

वेदमंत्रप्रधानाय शतजिह्वाय वै नमः ।

भूतं भव्यं भविष्यं च स्थावरं जगमं च यत् ॥४१॥

तव देहात्समुत्पन्नं देव सर्वमिदं जगत् ।

पासि हसि च भद्रं ते प्रसीद भगवस्ततः ॥४२॥

हे विश्व के ईश्वर ! हे महादेव ! आप जो भी हैं वह हैं । हम सब आपको नमस्कार करते हैं । महात्मा आत्मा वाले देवों के देव महेश्वर आपकी स्तुति करते हैं ॥३६॥ भव, भव्य, भावन और उद्भव आपके लिए नमस्कार है । अनन्त बल और वीर्य वाले तथा समस्त भूतों के स्वामी आपके लिए नमस्कार करते हैं । सहार करने वाले, पिशाङ्ग स्वरूप, अव्यय, व्यय, गङ्गा के सलिल को धारण करने वाले, सबके आधार और आप गुण स्वल्पा हैं । आप त्रिगुणा पार्वती वाले ज्यम्बक हैं, तीन नेत्रों वाला भायका स्वरूप है, त्रिशूल के तथा वरदान के धारण करने वाले हैं, आप सुख से हर्षित करने वाले, हुताक्ष एवं परम आत्मा हैं ऐसे विभिन्न स्वरूपों के धारण करने वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार है ॥३७॥३८॥३९॥ शङ्कर, वृषाङ्क और गणों के स्वामी आपको नमस्कार है । दण्ड हाथी में धारण करने वाले, काल स्वरूप और पास ग्रहण करने वाले आपकी नमस्कार है ॥४०॥ वेद मन्त्रों में परम प्रधान और शत जिह्वा वाले आपको नमस्कार है । भूत, भव्य और भविष्य स्थावर तथा जङ्गम जो वह जगत् है वह सम्पूर्ण है देव । आपके ही देश से समुत्पन्न हुआ है । आप ही उसका पालन करते हैं और आप ही सहार करने वाले हैं । हे भगवन् ! आपका भद्र हो, आप कृपा कर प्रसन्नता प्रकट करें ॥४१॥४२॥

अज्ञानार्थादि विज्ञानार्थात्किंचित्कुस्ते नरः ।

तत्सर्वं भगवानेव कुस्ते योगमायया ॥४३॥

एव स्तुत्वा तु मुनयः प्रतृष्टंरंतरात्मभिः ।

याचन्त तपसा युक्तः पश्यामस्त्वा यथापुरा ॥४४॥

ततो देवः प्रसन्नात्मा स्वमे वास्थाय शकरः ।

रूपं त्र्यक्ष च संप्रष्टुं दिव्य चक्षुरदात्प्रभुः ॥४५॥

लब्धदृष्ट्या तया दृष्ट्वा देवदेव त्रियम्बकम् ।

पुनस्तुष्टुवुरीशान देवदारुवनौकसः ॥४६॥

यदि मनुष्य अज्ञान से अथवा विशेष ज्ञान से जो कुछ भी करता है वह सब अपनी योग की माया के द्वारा आप ही किया करते हैं ॥४३॥ अपनी परम प्रसन्न अन्तरात्माओं के द्वारा उन मुनियों ने इस प्रकार से भगवान् शङ्कर का स्तवन किया था और फिर उनसे याचना की थी कि हम सब तप से युक्त आपको जैसा कि पहले स्वरूप था वैसा ही देखें ॥४४॥ तब उनके स्तवन के अनन्तर देव शङ्कर परम प्रसन्न हुये और अपने ही स्वरूप में आस्थित हो गये थे तथा फिर प्रभु ने उन्हें अक्ष स्वरूप का दर्शन प्राप्त करने के लिए दिव्य चक्षु प्रदान किये थे । ॥४५॥ प्राप्त हुई उस दिव्य दृष्टि के द्वारा देवों के देव उन त्रियम्बक का दर्शन करके देवदारु वन के निवासी उन मुनियों ने पुनः ईशान का स्तवन किया था ॥४६॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नमो दिग्वाससे नित्यं कृताताय त्रिदूलिने ।

विकटाय करालाय करालवदनाय च ॥१॥

अरूपाय सुरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ।

कटंठाय रुद्राय स्वाहागराय वै नमः ॥२॥

सर्वप्रणतदेहाय स्वयं च प्रणतात्मने ।

नित्यं नीलशिखडाय श्रोतृणाय नमोनमः ॥३॥

नीलकण्ठाय देवाय चिताभस्मागधारिणे ।

त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः ॥४॥

आत्मा च सर्वभूतानां साख्यैः पुरुष उच्यते ।

पवंतानां महामेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमा ॥५॥

ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासव स्तथा ।

ओङ्कारः सर्ववेदानां श्रेष्ठं साम च सामसु ॥६॥

आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः ।

ग्राम्याणामृषभश्चासि भगवांल्लोकपूजितः ॥७॥

दाखन के निवासी ऋषियो ने पुनः स्तवन करते हुए कहा—

नित्य ही विशाखो के वस्त्र धारण करने वाले के लिए हमारा नमस्कार है । कृतान्त, त्रिशूली, विकट, कराल, कराल वदन वाले, बिना रूप वाले, सुरूप और विश्वरूप वाले आपको नमस्कार है । कटकट, रुद्र और स्वाहाकार आपके लिये नमस्कार है ॥१॥२॥ यह कृतान्त का अर्थ प्रलय वा कारण है, विकट का अर्थ सुन्दर होता है, कराल का अर्थ संसार रूषी विटप के छेदन करने वाला कुठार अर्थ होता है । आप सबके द्वारा प्रणत देह वाले हैं और स्वयं प्रणत आत्मा वाले हैं ऐसे आपको नमस्कार है । नित्य नील जटा जूट धारण करने वाले और श्री कण्ठ आपको हमारा प्रणाम है । नीलकण्ठ और चित्ता की भस्म को अङ्गो मे धारण करने वाले आपको हमारा बार-बार नमस्कार है । आप समस्त देवो के ब्रह्मा हैं, रुद्रो के नील लोहित हैं । आप समस्त प्राणियो के आत्मा हैं और आप ही सायन सिद्ध न्तियो के द्वारा पुरष बहे जाया करते हैं । आप पर्वतो मे महामेरु हैं और नक्षत्रो मे आप चन्द्रमा हैं । ऋषियो मे वसिष्ठ हैं और देवो मे इन्द्र हैं । आप समस्त वेदो मे ओङ्कार हैं तथा सामो मे आप श्रेष्ठ साम है । जङ्गली पशुओ मे परमेश्वर आप सिंह हैं । ग्राम्य पशुओ मे आप अरुभ हैं । आप तो समस्त लोको के द्वारा पूजित हैं ॥३॥४॥५॥६॥७॥

सर्वथा वर्तमानोपि योयो भावो भविष्यति ।

त्वामेव तत्र पश्यामो ब्रह्मणा कथितं तथा ॥८॥

कामः क्रोधश्च लोभश्च विपादो मद एव च ।

एतदिच्छामहे वोद्भू प्रसीद परमेश्वर ॥९॥

महासंहरणे प्राप्ते त्वया देव कृतात्मना ।
 करं ललाटे संविध्य वह्निस्त्पादितस्त्वया ॥१०॥
 तेनाग्निना तदा लोका अर्चिभिः सर्वतो वृताः ।
 तस्मादग्निसमा ह्येते वहवो विकृतात्मनः ॥११॥
 कामः क्रोधश्च लोभश्च म हो दम्भ उपद्रवः ।
 यानि चान्यानि भूतानि स्यावराणि चराणि च ॥१२॥
 दह्यन्ति प्राणिनस्ते तु त्वत्समुत्थेन वह्निना ।
 अस्माकं दह्यमानानां ज्ञाता भव सुरेश्वर ॥१३॥
 त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिपिचसि ।
 महेश्वर महाभाग प्रभो शुभनिरीक्षक ॥१४॥
 आज्ञापय वयं नाथ कर्तारो वचनं तव ।
 भूतकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु च ॥१५॥
 अन्तं गतुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोऽस्तु ते ॥१६॥

वर्तमान भी'जो जो भाव आपका स्वरूप होगा उसमे ब्रह्माजी
 ने सर्व स्वरूपत्व कहा था उसे उसी तरह सब प्रकार से हम देख रहे
 हैं ॥८॥ काम, क्रोध, लोभ, विषाद और मद इनका पञ्चक सबका दाहक
 कैसे होता है, इसे हम जानना चाहते हैं आप हे परमेश्वर ! प्रसन्न होइये
 ॥९॥ हे देव ! आपके द्वारा महा संहार के प्रस होने पर कृतात्मा
 आपने ललाटे मे करके संविद्ध करके अग्नि उत्पन्न करदी थी ॥१०॥
 उस समय उस अग्नि से सम्पूर्ण लोक अविद्यो के द्वारा सब ओर से
 वृत हो गये थे । उससे अग्नि के समान ये बहुत से विकृत अर्थात् छत्र
 रूप कामादि अग्नि उत्पन्न हो गई है । वे काम, क्रोध, लोभ, मोह,
 दम्भ उपद्रव ये अग्नि है । जो मनुष्यादि भूत हैं तथा अन्य स्यावर एवं
 चर हैं वे प्राणी आपकी उठी हुई अग्नि से दग्ध हो रहे हैं । दह्यमान
 हमारे आप हे सुरेश्वर ! ज्ञान करने वाले हो जाओ ॥११॥१२॥१३॥

और आप तो लोको के हित के लिये भूतो का परिपिञ्चन करते हैं । हे
महेश्वर ! आप महान् भाग्य वाले, प्रभु और शुभ के देखने वाले हैं ।
हे नाथ ! आप आशा देवें, हम आपके वचनों का पालन करने वाले हैं ।
सहस्रो करोड़ भूतो में और संकटो करोड़ रूपों में, हम अन्त तक जाने
में असमर्थ हैं । हे देवों के देव ! आपको हमारा नमस्कार है ॥१४॥
॥१५॥॥१६॥



शिव-ऋषिगण संवाद

स्तुतस्तुतोप भगवाननुगृह्य महेश्वरः ।
स्तुतिं श्रुत्वा स्तुतस्तेषामिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि युष्माभिः कीर्तितं स्तवम् ।
आवयेद्वा द्विजान्विप्रो गणपत्यमवाप्नुयात् ॥२॥
वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भवतानां मुनिपुंगवाः ।
स्त्रीलिंगमखिलं देवी प्रकृतिर्मम देह जा ॥३॥
पुंल्लिंगं पुत्सो विप्रा मम देहसमुद्भवः ।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न सशयः ॥४॥
न निदेद्यतिनं तस्माद्द्विवाससमनुत्तमम् ।
जालोन्मत्ताविचेष्टं तु मत्परं ब्रह्मवादिनम् ॥५॥
ये हि मां भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः ।
यथोक्तकारिणोदाता विप्रा ध्यानपरायणाः ॥६॥
महादेवपरा नित्यं चरतो ह्यध्वरेतसः ।
अर्चयति महादेवं वाङ्मनः कायसयताः ॥७॥
रुद्रलोकमनुप्राप्य न निवर्तन्ति ते पुनः ।
यस्मादेतद्ब्रह्मं दिव्यमव्यक्तं व्यष्टर्लिंगिनः ॥८॥

इस अध्याय में ऋषियों के स्तव से परम प्रसन्न होकर भग-
वान् शङ्कर ने स्वयं शीघ्र भक्तों के स्तव की महिमा का वर्णन किया

है । नन्दी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् शङ्कर परम संतुष्ट हो गये थे । ऋषियों के द्वारा स्तुत महेश्वर ने स्तुति का श्रवण करके और अनुग्रह करके उनसे यह वचन कहा था । भगवान् शङ्कर ने कहा था कि आपके द्वारा किए हुये इस स्तव को जो कोई भी पढ़ेगा या श्रवण करेगा अथवा ब्राह्मणों को श्रवण करावेगा वह विप्र गाणपत्य को प्राप्त होगा ॥१॥२॥ हे मुनियों मे परम श्रेष्ठमण ! मेरे भक्ता आपको मैं आपका हित और पुण्य प्रद कहता हूँ । संसार मे जो भी सम्पूर्ण स्त्री लिंग हैं वे सब मेरे देह से उत्पन्न होने वाली प्रकृति देवी हैं । हे विप्रो ! जो पुल्लिंग हैं वह मेरे देह से समुद्भव प्राप्त करने वाले पुरुष हैं । हे विप्रो ! इन दोनों से ही मेरी यह सृष्टि होती है । इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥३॥४॥ इसलिये यति जो कि विशाग्रो के ही वल्ल धारण करने वाले और सर्वोत्तम है उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि बालक और उन्मत्त की भांति विवेक होते हैं तथा मुक्तो परायण और ब्रह्मवादी होते हैं ॥५॥ जो मेरी भस्म मे रति रखने वाले हैं वे भस्म के द्वारा अपने पापों को दग्ध कर देने वाले हैं । मेरे कथनानुसार करने वाले, दमनशील, ध्यान मे परायण, महादेव को ही अपना परम इष्ट मानने वाले, नित्य चरण करने वाले, ऊर्ध्वरेता विप्र भ्रात्री वाणी तथा मन और शरीर के द्वारा महादेव का अर्चन किया करते हैं एव संयत रहते हैं वे रुद्रलोक को प्राप्त किया करते हैं और वही से फिर कभी नहीं लौटते हैं । इससे यह व्यक्त लिंग वाले का अव्यक्त एव दिव्य व्रत है ॥६॥७॥८॥

भस्मव्रताश्च मुंडाश्च व्रतिनो विश्वरूपिणः ।

न तान्परिवदेद्विद्वान्न चैतान्नाभिलषयेत् ॥६॥

न हसेन्नाप्रियं ब्रूयादमुत्रेह हितार्थवान् ।

यस्तान्निदति भूढात्मा महादेवं स निदति ॥१०॥

यस्त्वेतान्पूजयेन्नित्यं स पूजयति शंकरम् ।

एवमेष महादेवो लोकानां हितकाम्यया ॥११॥

युगेयुगे महायोगी क्रीडते भस्मगुण्ठित ।
 एव चरत भद्र वस्तत सिद्धिमवाप्स्यथ ॥१२॥
 अतुलमिह महाभयप्रणाशहेतु
 शिवरथित परम पद विदित्वा ।
 व्यपगतभवलोभमोहचित्ता
 प्रणिपतिता सहसा शिरोभिरग्रम् ॥१३॥
 तत प्रमुदिता विप्रा श्रुत्वेव कथित तदा ।
 गधोदके सुशुद्धंश्च कुशपुष्पविमिश्रितं ॥१४॥
 स्नापयति महाकुभैरङ्घ्रिभ्यः महेश्वरम् ।
 गायति विविधं गुह्यं ह्यङ्गुलैश्चापि सुस्वरं ॥१५॥

जो भस्म धारण करने के मन वाले हैं मुण्डित शिर वाले हैं, प्रत के धारण करने वाले और विश्व रूपी हैं उनका विद्वान् पुरुष को कभी पारीवाद नहीं करना चाहिये और इनका अभिनन्दन भी न करे । ॥१६॥ इस लोका में और परलोक में हित धर्म वाले पुरुष को इनका कभी हास्य नहीं करना चाहिये और इनसे अप्रिय वचन भी न बोलें । जो मूढ़ पुरुष इनकी निन्दा किया करता है वह मह देव की ही निन्दा करता है ॥१७॥ जो पुरुष निश्चय सबदा इनका समचन करता है वह भगवान् शङ्कर का ही पूजन करता है । इस प्रकार से यह यदि जोको के हित करने की कामना से महादेव ही होता है ॥१८॥ युग युग में महा योगी भस्म से गुण्ठित होकर क्रीडा किया करता है । आप लोग इसी प्रकार का आचरण करो आपका बल्याण होगा और आप सब सिद्धि की प्राप्ति करेंगे ॥१९॥ यहा पर अनुपम शिव के द्वारा वलन दिया हुआ महान् भय के प्रणाश का हेतु परम पद को जानकर अपगत हो गये हैं तसार के योग और मोह जिसे ऐसे चित्त वान विप्र सहसा भगवान् शिव की शिर स प्रणिपात करने लगे थे । इसने अनन्तर उस समय में इस प्रकार से वर्णिता का अवलोकन कर परम प्रसन्न हुये थे और अनि पुत्र कुला एव पुत्रा से विभिन्न सुगन्ध से युक्त जल से बड़े वासा

के द्वारा जन से ही महेश्वर का स्तवन करने लगे तथा विविध सुस्वर गुह्य (स्तोत्र) हुद्धारो के द्वारा गान करने लगे थे ॥१३॥१४॥१५॥

नमो देवाधि देवाय महादेवाय च नमः ।
 अर्धनारीशरीराय साख्ययोगप्रवर्तिने ॥१६॥
 मेघवाहनकृष्णाय गजचर्मनिवासिने ।
 कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्याल यज्ञोपवीतिने ॥१७॥
 सुरचितसुविचित्रकुण्डलाय
 सुरचितमात्यविभूषणाय तुभ्यम् ।
 मृगपतिवरचर्मवाससे च
 प्रथितयशसे नमोऽस्तु शकराय ॥१८॥
 ततस्तान्स मुनीन्प्रतिः प्रत्युवाच महेश्वरः ।
 प्रीतोऽस्मि तपसा युष्मान्वर वृणुत सुव्रताः ॥१९॥
 ततस्ते मुनयः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ।
 भृगुगिरा वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०॥
 गौतमोऽत्रि, सुवेशश्च पुलस्त्य, पुलहः क्रतुः ।
 मरीचि, कश्यप कण्व, सवर्तश्च महातपा, ॥२१॥
 ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन् ।
 भस्मस्नानं च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता ॥२२॥
 सेव्यासेव्यत्वमेव च ह्येतदिच्छाम वेदितुम् ।
 ततस्तेषां वचः श्रुत्वा भगवान्परमेश्वरः ॥२३॥
 सस्मितः प्राह सप्रेक्ष्य सर्वान्मुनिवरास्तदा ॥२४॥

उन्होंने शिव का स्तवन किया—देवों के अधिदेव महादेव के लिए हमारा नमस्कार है । अर्ध नारी शरीर वाले के लिए, साख्य और योग के प्रवर्तक के लिये, मेघ के रूप से कृष्ण के वाहन वाले के लिये, गज के चर्म को धारण करने वाले के लिए कृष्णा जिनके उत्तरीय वाले के लिये, व्यालो के उपवीत धारण करने वाले के लिये, सुन्दर

रीति से निर्मित एव विचित्र कुंडलो वाले के लिये तथा सुनिर्मित मात्स्यो के भूषण वाले आपके लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है । सिंह के परम श्रेष्ठ चर्म के वस्त्र वाले और प्रसिद्ध यश वाले भगवान्, शङ्कर के लिए हमारा सबका प्रणाम है ॥१६॥१७॥१८॥ इसके अनन्तर वह भगवान्, महेश्वर उन मुनियो से अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले । हे सुन्दर व्रत वालो ! मैं आपके तप से बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ । अब आप जो चाहो धरदान माँग लो ॥१९॥ ऐसा शङ्कर के कथन के पश्चात् उन सब मुनिगण महेश्वर के चरणो में प्रणाम किया था । उन मुनियो में भृगु, अगिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, तुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु मरीचि, कश्यप, कण्व, सवर्त्त को महा नपा थे । उन सबने महादेव को प्रणाम करके यह वचन कहे भस्म से स्नान और नग्नत्व यह सव्य मार्ग का प्रकार है और काम्य कर्मों के मार्ग का सेवन है । हम सेवस्व और असेव्यस्व को जानना चाहते हैं । इस ऋषियो के कथन के अनन्तर उनके वचन का श्रवण कर भगवान् परमेश्वर स्मित के सहित उन सब मुनिवरो को देखकर बोले ॥२०॥२१॥२२॥२३॥ ॥२४॥



भस्म एवं स्नान विधि

एतद्वः संप्रवक्ष्यामि कथा सर्वस्वमद्य वै ।
 अग्निर्ह्यहं सोमकर्ता सोमश्चाग्निमुपाश्रितः ॥१॥
 कृतमेतद्वहत्यग्निभूयो लोकसमाश्रयात् ।
 असकृत्त्वग्निना दग्ध जगत् स्थावरजंगमम् ॥२॥
 भस्मसाद्विहितं सर्वं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
 भस्मना वीर्यमास्थाय भूतानि परिपिचति ॥३॥
 अग्निकार्यं च यः कृत्वा करिष्यति त्रियायुषम् ।
 भस्मना यमवीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषः ॥४॥

वस्त्रों के द्वारा सवृत होता हुआ भी नग्न ही होता है । इन्द्रियों के जीतने वाले कुछ गुण विशेष होते हैं उनके द्वारा जो सवृत होता है वह ही गुप्त है और इस सवरण करने का कारण वस्त्र नहीं कहा गया है ॥१४॥

क्षमा धृतिरहिंसा च वंराग्यं जीव सर्वशः ।
 तुल्यो मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम् ॥१५॥
 भस्मस्नानेन दिग्धागो ध्यायते मनसा भवम् ।
 यद्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना ॥१६॥
 तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम् ।
 तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा ॥१७॥
 भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति ।
 समारूढ्य ऋतून् सर्वान्गृहीत्वा ब्रतमुत्तमम् ॥१८॥
 ध्यायंति ये महादेवं लीलासद्भावभाविताः ।
 उत्तरेणार्यपंथान् तेऽमृतत्वमवाप्नुयुः ॥१९॥
 दक्षिणेन च पथानं ये श्मशानानि भेजिरे ।
 अणिमा गरिमा चं व लघिमा प्राप्तिरेव च ॥२०॥
 इच्छा कामावसायित्व तथा प्राकाम्यमेव च ।
 ईशित्वं च यशित्वं च अमरत्वं च ते गताः ॥२१॥

क्षमा, धृति, अहिंसा, सब और से होने वाला वंराग्य, मान और धवमान इन दोनों की समानता ये गुण ही मानव व प्रत्युत्तम आवरण होते हैं ॥१५॥ अन्त में सिंहावनोराग श्याम के मनुगार पुनः भस्म या माहारम्य बनलाते हुए कहने हैं कि भस्म के स्नान से दिग्ध भगों वाला मनोयोग के साथ जो भव का ध्यान किया करता है और यदि सहगों भवायं करके भी कोई पुण्य भस्म से स्नान कर लेता है तो वह भस्म जिस तरह अग्नि अपने तेज के द्वारा वन की जला दिया परता है उसी भाँति सबको दग्ध कर दिया करता है । इसलिये परम यत्न परायण होकर मदा सोनो बानों में जो भस्म से स्नान करता है

वह गणपत्य को प्राप्त करता है । समस्त वेदा विहित पञ्च महा यज्ञादि कर्तुषो को करके और उत्तम मन स्वास्थ्य स्वरूप घत को ग्रहण करके लीला विग्रह के सद्भाव से भावित होने वाले जो पुरुष महादेव का ध्यान किया करते है वे उत्तर आर्यों के मार्ग के द्वारा मोक्ष को प्राप्त होवे हैं ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ जिन्होंने श्मशान भादि दक्षिण मार्गों का सेवन किया है अर्थात् काम्य कर्मों का सेवन किया है वे आणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, इच्छा का भाव साधित्व, प्रायाम्य, ईशित्व, वशित्व और अमरत्व को प्राप्त हुये हैं अर्थात् आठो प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की हैं तथा देव योनि प्राप्त करती है ॥२०॥२१॥

इन्द्रादयस्तथा देवाः कामिकप्रतमास्थिताः ।

ऐश्वर्यं परम प्राप्य सर्वे प्रथिततेजसः ॥२२॥

व्यपगतमदमोह मुक्तरागस्त-

मरजदोषविर्वाजितस्वभावः ।

परिभवमिदमुत्तम विदित्वा

पशुपतियोगपरो भवेत्सदैव ॥२३॥

इम पाशुपत ध्यायन् सर्वपापप्रणाशनम् ।

यः पठेच्च शुचिर्भूत्वा श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ॥२४॥

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ।

ते सय मुनय श्रुत्वा वशिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः ॥२५॥

भस्मपादुरदिग्धागा बभूवुर्विगतस्पृहाः ।

रुद्रलोकाय कल्पान्ते सस्थिताः शिव तेजसा ॥२६॥

इन्द्र आदिच समस्त देवता कामिक प्रतो में ही प्रास्थित रहते है । इसलिये ये परम ऐश्वर्य प्राप्त करके सब प्रथित तेज वाले हो गये हैं ॥२२॥ मरु और मोह को व्यपगन करने तथा राग का त्याग करने और तमोगुण एवं रजोगुण से दोषों से बजिन स्वभाव धारा होता हुआ इसको उत्तम परिभव जानकर सदा ही पशुपति योग में

परायण होना चाहिए अर्थात् पाशुपत योग को करे ॥२३॥ इस पाशुपत योग की इतनी महिमा है कि इसका ध्यान करने वाला अपने समस्त पापों का नाश कर देता है । जो इसका पवित्र होकर पाठ किया करता है और इन्द्रियो को जीतकर इसमें पूर्ण थका रहता है वह सभी पापों से विमुक्त आत्मा वाला होकर रुद्र लोक को चला जाता है । परम श्रेष्ठ द्विज वसिष्ठ आदि मुनियों ने सबने इसका अद्भुत माहात्म्य बतलाने के लिये सभी ने विशेष स्पृहा का त्याग कर दिया था और सब भस्म से दिग्घ पाण्डुर भङ्गो वाले हो गए थे । कल्प के अन्त में भी शिव के तेज से रुद्रलोक में सन्निवृत्त रहे थे ॥२४॥२५॥२६॥

तस्मान्न निन्दाः पूज्याश्च विकृता मलिना अपि ।

रूपाविविताश्च विप्रेन्द्राः सदा योगीन्द्रशङ्कया ॥२७॥

बहुना किं प्रलापेन भवभक्ता द्विजोत्तमाः ।

संपूज्याः सर्वमत्नेन शिववन्नात्र संशयः ॥२८॥

मलिनाश्चैव विप्रेन्द्रा भवभक्ता दृढव्रताः ।

दधीचस्तु यथा देवदेव जित्वा व्यवस्थितः ॥२९॥

नारायण तथा लोके रुद्रभवत्या न संशयः ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मदिग्घतनूरुहाः ॥३०॥

जटिनो मुण्डिनश्चैव नग्ना नानाप्रकारिणः ।

संपूज्याः शिववन्नित्यं मनसा कर्मणा गिरा ॥३१॥

इसलिये हे विप्रेन्द्रगण ! विकृत और मलिन तथा रूप से अशुद्धियों की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए । ये सदा ही योगीन्द्र की शङ्का वाले होते हैं । अतएव इनकी सर्वदा पूजा एवं सत्कार ही करने चाहिए ॥२७॥ हे शिव भक्त ! द्विजोत्तमगण ! अधिक निरर्थक कथन से क्या लाभ है । इन शिव की उपासना करने वाले यतियों का सम्पूर्ण प्रयत्न के द्वारा शिव की ही भाँति अर्चन करना चाहिये, इसमें कुछ भी संशय नहीं करे ॥२८॥ हे विप्रेन्द्रगण ! ये मलिन होते हुए भी शिव के भक्त दृढ व्रत वाले होते हैं । दधीच रुद्रदेव की भक्ति के बल

से ही देवों के देव नारायण को जीतकर व्यवस्थित हो गया था, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इसलिए जो मत्स्य से दिग्ब तनू रह वाले, जटा-धारी, मुण्डित, नग्न एवं अनेक रूपों के धारण करने वाले हो उनकी सभी प्रयत्नों के द्वारा मन, कर्म और वचन से शिव की भाँति ही नित्य पूजा करनी चाहिए ॥२६॥३०॥३१॥

दधीच द्वारा क्षुप का पराभव

कथं जघान राजान क्षुप पादेन सुव्रत ।
 दधीचः समरे जित्वा देवदेव जनार्दनम् ॥१॥
 वज्रास्थित्व कथं लेभे महादेवान्महातपाः ।
 चक्षुर्महंसि क्षीलादे जितो मृत्युस्त्वया यथा ॥२॥
 ब्रह्मपुत्रा महातेजा राजा क्षुप इति स्मृतः ।
 अभून्मित्रो दधीचस्य मुनीन्द्रस्य जनेश्वरः ॥३॥
 चिरातायोः प्रसगाद्वा दधीचक्षुपदधीचयोः ।
 अभवत् क्षत्रियश्रेष्ठो विप्र एवेति विश्रुतः ॥४॥
 अध्वाना लोकपालाना वपुर्धारयते नृपः ।
 तस्मादिन्द्रो ह्ययं बह्मिर्यमश्च निश्च्युतिस्तथा ॥५॥
 वरुणश्चैव वायुश्च सोमो धनद एव च ।
 ईश्वरोह न सदेहो नावमन्तव्य एव च ॥६॥
 महती देवता या सा महतश्चापि सुव्रत ।
 तस्मात्त्वया महाभाग व्यावनेय सदा ह्यहम् ॥७॥
 नावमन्तव्य एवेह पूजनीयश्च सर्वथा ।
 श्रुत्वा तथा मत तस्य क्षुपस्य मुनिसत्तमः ॥८॥

सनत्कुमार ने कहा—हे सुव्रत ! दधीच ने समराङ्गण में देवों के देव भगवान् जनार्दन को जीतकर क्षुप राजा को पाद से कँसे मार

दिया था ॥१॥ उस महा तपस्वी ने महादेव से अस्त्रियों का व्रज हो जाना कैसे प्राप्त किया था ? हे शीलादे ! जिस प्रकार से आपने मृत्यु पर जय प्राप्त कर लिया है, यह भी सब आप वरुण करके बताने के योग्य हैं ॥२॥ शीलादि ने कहा—राजा क्षुप महान् तेजस्वी और ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है । यह जनेश्वर मुनि श्रेष्ठ दधीच का परम मित्र था । ॥३॥ बहुत अधिक समय के लिए उन दोनों मित्र क्षुप और दधीच में प्रसंग वश एक वाद छिड़ गया था कि क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है या विप्र ही श्रेष्ठ विश्रुत है ॥४॥ राजा घाठे लोकपालों का शरीर धारण किया करता है । इसलिये यह इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और कुबेर ही होता है । मैं राजा हूँ अतएव मैं इश्वर ही हूँ इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । मुझ राजा का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए ॥५॥६॥ वरुणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण का सबसे बड़ा देवता विष्णु होता है वह मैं ही तो हूँ अतएव हे मुवन ! हे महाभाग व्यावर्तनेय ! इसलिये तुमको मेरा कभी अपमान नहीं करना चाहिए और इस ससार में मैं सभी प्रकार से पूजा करने के योग्य हूँ । इस तरह के उस क्षुप राजा के वचनों का मुनियों ने परम श्रेष्ठ दधीच ने श्रवण किया था और उसका मन जान लिया था ॥७॥८॥

दधीचश्च्योदनिश्रोत्रो गौरवादात्मनो द्विजः ।
 अताडयत्क्षुपं मूर्ध्नि दधीचो वाम मुष्टिना ।
 विच्छेद वज्रेण च तं दधीचं बलवान् क्षुपः ॥९॥
 ब्रह्मलोके पुरासो हि ब्रह्मणः क्षुतसंभवः ।
 लब्धं वज्रं च कार्यार्थं वज्रिणा चोदितः प्रभुः ॥१०॥
 स्वेच्छयैव नरो भूत्वा नरपालो बभूव सः ।
 तस्माद्राजा स विप्रेन्द्रमजयद्वं महाबलः ॥११॥
 यथा वज्रधरः श्रीमान्बलवांस्तमसान्वितः ।
 पपात भूमौ निहतो वज्रेण द्विजपुंगवः ॥१२॥

सस्मार च तदा तत्र दुःखाद्वै भार्गवं मुनिम् ।

शुक्रोपि संघयामास ताडितं कुलिशेन तम् ॥१३॥

योगादेत्य दधीचस्य देह देहभृतावरः ।

संघाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः ॥१४॥

ज्याबनि दधीच द्विज उग्र स्वभाव वाला था उसने अपने शरीर के कारण वाममुष्टि से क्षुप राजा के मस्तक में प्रहार किया था । बलवान् क्षुप ने अपने वज्र से दधीच का छेदन कर दिया था । ॥१६॥ वह पहिले ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की जँभाई से उत्पन्न हुआ था । वज्री के द्वारा प्रभु प्रेरित हुआ और कार्य के लिये वज्र की प्राप्ति की थी ॥१०॥ अपनी इच्छा से ही मनुष्य होकर वह राजा हो गया था । इसलिये महान् बलवान् उस राजा में विप्रेन्द्र को जीत लिया था ॥११॥ वज्र के धारण करने वाला श्रीमान् और बलवान् तथा तमोगुण से आवृत था । वज्र के द्वारा निहत द्विजश्रेष्ठ भूमि पर गिर गया था । ॥१२॥ उस समय वहाँ पर उसने दुःख से भार्गव मुनि का स्मरण किया था और शुक्र ने भी योग की गति से वहाँ आकर वज्र से ताडित उस दधीच के देह को सन्धित कर दिया था अर्थात् पूर्ववत् जोड़ दिया था ॥१३॥ देहधारियों में श्रेष्ठ भार्गव योग के बल से वहा दधीच के पास समुपस्थित होकर पहिले की भाँति दधीच के शरीर को जोड़कर उससे कहा ॥१४॥

ओ दधीच महाभाग देवदेवमुमापतिम् ।

संपूज्य पूज्यं ब्रह्मा देवदेवं निरंजनम् ॥१५॥

अवध्यो भव विप्रर्षे प्रसादाद्यम्बकस्य तु ।

मृत संजीवनं तस्माल्लब्धमेतन्मया द्विज ॥१६॥

नास्ति मृत्युभयं शंभोभक्तानामिह सर्वतः ।

मृतसंजीवनं चापि शैवमद्य वदामि ते ॥१७॥

त्रियम्बकं यजामहे त्रैलोक्यपितरं प्रभुम् ।

त्रिमण्डलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम् ॥१८॥

त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः ।

त्रिवेदस्य महादेवं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ॥१९॥

सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणे प्रकृतौ तथा ।

इन्द्रियेषु तथाऽन्येषु देवेषु च गणेषु च ॥२०॥

पुष्पेषु गन्धवत्सूदमः सुगन्धिः परमेश्वरः ।

पुष्टिश्च प्रकृतिर्यस्मात्पुरुषस्य द्विजोत्तम ॥२१॥

हे महाभाग ! हे वधीच ! तुम देवों के भी देव, निरञ्जन और ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा वन्द्यमान उमा के पति की भली-भाँति पूजा करके अवध्य हो जाओ । भगवान् शम्भु के प्रसाद से हे विप्रर्षे ! तुम किसी के भी द्वारा वध न करने के योग्य हो जाओगे । हे द्विज ! उन्हीं देवदेव से मैंने यह मृतों को सजीवित करने वाली शक्ति प्राप्त की है । ॥१५॥१६॥ इस संसार में भगवान् शम्भु के भक्तों को सब ओर से मृत्यु का भय नहीं होता है । आज मैं तुमको शिव की मृत सजीवन की भी बताता हूँ ॥१७॥ भव मृत सजीवक मन्त्र का विवरण किया जाता है । त्रैलोक्य के पिता प्रभु त्रियम्बक का यजन करते हैं । यहाँ त्रैलोक्य के पिता से शम्भु शब्द का पितृरूप अर्थ दिखाया गया है । सोम, अग्नि और सूर्य रूप त्रिमण्डल के पिता, सत्त्वरजस्नमो रूप त्रिगुण के महेश्वर, बुद्धि, अहङ्कार और मन रूप त्रित्वका, गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि रूप के, सब में त्रिधाभूत अर्थात् तीन प्रकार वाले के, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप त्रिदेव के पिता शम्भु सुगन्धि और पुष्टि के वर्धन महादेव का यजन करते हैं ॥१८॥१९॥ समस्त भूतों में सर्वत्र त्रिगुणात्मक प्रकृति में, इन्द्रियों में तथा अन्य देवों में और गणों में, पुष्पों में गन्ध की भाँति परमेश्वर सुगन्धि हैं । हे द्विजोत्तम ! जिससे प्रकृति होती है उस पुरुष की पुष्टि है ॥२०॥२१॥

महदादिविशेषात्तविकल्पस्यापि सुव्रतः ।
 विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने ॥२२॥
 इन्द्रस्यापि च देवानां तस्माद्धं पुष्टिवर्धनः ।
 तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा तपसा तथा ॥२३॥
 स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च यजामहे ।
 सत्येनानेन मुक्षीयान्मृत्युपाशाद्भवः स्वयम् ॥२४॥
 बन्धमोक्षकरो यस्मादुर्वारुक्रमिव प्रभुः ।
 मृतसज्जीवनो मन्त्रो मया लब्धस्तु शकरोत् ॥२५॥
 जप्त्वा हुत्वाभिमन्त्र्यैव जलं पीत्वा दिवानिशम् ।
 लिंगस्य सान्निध्यं ध्यात्वा नास्ति मृत्युमय द्विज ॥२६॥

हे महामुने ! हे सुव्रत ! महर् से आदि सेकर विशेष के अत
 तक माया भ्रम वा, विष्णु का, पितामह का और मुनियों का तथा
 इन्द्र का और देवों का उस कारण से पुष्टि वर्धन होना है । अतएव यह
 सबका प्रकृति से वर्धन है उस नाश से मृत्यु रुद्र अज्ञान के द्रावण करने
 वाले देव की धर्म के द्वारा, तप के द्वारा, स्वाध्याय से, योग के द्वारा
 और ध्यान के द्वारा यजन करते हैं । स्वाध्याय वेदों के अध्ययन, योग से
 समाधि तथा ध्यान में चिन्तन करना यथाया गया है । इन तत्त्व के आश्रय
 से जो पूर्व में कहा गया है भय स्वयं भी मृत्यु के पाश से मुक्त करें ।
 ॥२२॥॥२३॥॥२४॥ जिससे उर्वारु की भाँति प्रभुस्वयं बन्धन से मोक्ष
 के करने वाले होत हैं । यह मृत सजीवन मन्त्र मैंने भगवान् शङ्कर से
 प्राप्त किया है ॥२५॥ इसका जप करने, हवन करने और अहर्निश
 इससे जल की अभिमन्त्रित करने पान करे तथा निद्रा की मन्त्रिधि
 में ध्यान करे तो हे द्विज ! फिर उसको मृत्यु का भय नहीं होता है ।
 ॥२६॥

तस्य सद्बचनं श्रुत्वा तपमाराध्य शकरोत् ।
 यज्ज्यास्यत्यमवध्यत्तमदीनत्वं च लब्धवान् ॥२७॥

एवमाराध्य देवेशं दधीचो मुनिसत्तमः ।
 प्राप्यवध्यत्वमन्यैश्च वज्रास्थित्वं प्रयत्नतः ॥२८॥
 अताडयच्च राजेंद्रं पादमूलेन मूर्धनि ।
 क्षुपो दधीचं वज्रेण जघानोरसि च प्रभुः ॥२९॥
 नाभून्नाशाय तद्वच्चं दधीचस्य महात्मनः ।
 प्रभावात्परमेशस्य वज्रवद्धशरीरिणः ॥३०॥
 दृष्ट्वाप्यवध्यत्वमदीनतां च

क्षुपा दधीचस्य तदा प्रभावम् ।

आराधयामास हरिं मुकुन्द-
 मिन्द्रानुजं प्रेक्ष्य तदांभु जाक्षम् ॥३१॥

उसके इस वचन को श्रवण करके दधीच ने तपस्या के द्वारा भगवान् शङ्कर की आराधना करके वज्र की अस्थियो का होना, न मारे जाने योग्य होना और अदीन होना प्राप्त कर लिया था ॥२७॥ मुनियो में परम श्रेष्ठ दधीच ने इस प्रकार से देवेश की समाराधना करके दूसरो के द्वारा अवध्यत्व और प्रयत्न से वज्रास्थित प्राप्त किया था । दधीच ने अपने पाद मूल से राजेन्द्र क्षुप के मस्तक में ताड़न किया था और राजा क्षुप ने दधीच के उरःस्थल में वज्र के द्वारा हतन किया था ॥२८॥२९॥ वह वज्र दधीच महात्मा के नाश करने वाला नहीं हुआ था । क्योंकि दधीच परमेश की कृपा के प्रभाव से वज्र से बद्ध शरीर वाला था ॥३०॥ राजा क्षुप ने दधीच की अवध्यता और अदीनता को देखा था तथा दधीच के अद्भुत प्रभाव को देखकर उस समय कयल के सहस्र सुन्दर नेत्रो वाले, इन्द्र के अनुज मुकुन्द हरि को सामर्थ्य समन्वित विचार कर उसने भगवान् विष्णु की आराधना की थी ॥३१॥

ॐ नमः शिवाय

दधीच और विष्णु का संग्राम

पूजया तस्य संतुष्टो भगवान्पुरुषोत्तमः ।
 श्रीभूमिसहितः श्रीमान्शङ्खचक्रगदाधरः ॥३२॥

किरीटी पद्महस्तश्च सर्वाभरण भूषितः ।
 पीताम्बरश्च भगवान्देवदेत्यैश्च संवृतः ॥२॥
 प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वं गरुडध्वजः ।
 दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम् ॥३॥
 तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम् ।
 स्तवमादिस्तवमनादिश्च प्रकृतिस्त्वं जनार्दनः ॥४॥
 पुरुषस्त्वं जगन्नाथो विष्णुर्विश्वेश्वरो भवान् ।
 योयं ब्रह्मासि पुरुषो विश्वमूर्तिः पितामहः ॥५॥
 तत्त्वमाद्यं भवानेव परं ज्योतिर्जनार्दन ।
 परमात्मा परंधाम श्रोपते भूषते प्रभो ॥६॥
 त्वत्क्रोधसंभवो रुद्रस्तमसा च समावृतः ।
 त्वत्प्रसादाज्जगद्धाता रजसा च पितामहः ॥७॥

इस अध्याय में क्षुप के द्वारा किया हुआ वैष्णव स्तोत्र से निरूपण किया जाता है। नन्दी ने कहा—भगवान् पुरुषोत्तम उस राजा क्षुप की पूजा से सन्तुष्ट हो गये थे। भगवान् यही भूमि के सहित और श्रीमान् शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले थे ॥१॥ भगवान् किरीट धारी, हाथ में पद्म ग्रहण किए हुये थे तथा समस्त आभरणों से विभूषित थे। भगवान् ने पीताम्बर धारण कर रक्ता था तथा सम्पूर्ण देव और दंत्यों से संवृत थे ॥२॥ गरुड ध्वज भगवान् ने उस क्षुप को दिव्य दर्शन दिया था। दिव्य दर्शन के द्वारा ही देव जनार्दन को उसने देखा था ॥३॥ फिर उसने भगवान् गरुड ध्वज को प्रणाम करके अभीष्ट वाणियों के द्वारा उसने उनका स्तवन किया था। आप सबके आदि हैं और आपका कभी कोई आदि काल नहीं होता है। आप प्रकृति हैं तथा अपने भक्त जनो के दुःखों का नाश करने वाले हैं ॥४॥ आप पुराण पुरुष हैं और इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप इस विश्व के ईश्वर विष्णु हैं। जो यह ब्रह्मा है वह भी विश्वमूर्ति पितामह आप ही पुरुष हैं ॥५॥ आप ही आद्य तत्त्व हैं, आप परम ज्योति और

जनादेन हँ । हे श्योपते ! हे भूपते ! हे प्रभो ! आप परम धाम श्रीर परमात्मा है ॥६॥ आपके ही क्रोध से तमोगुण से आवृत्त रुद्र उत्पन्न हुए हैं । आपके ही प्रसाद से रजोगुण से धाता पितामह उत्पन्न हुए हैं ॥७॥

त्वत्प्रसादात्स्वयं विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः ।
 कालमूर्ते हरे विष्णो नारायण जगन्मय ॥८॥
 महांस्तथा च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
 त्वयैवाधिष्ठितान्येव विश्वमूर्ते महेश्वर ॥९॥
 महादेव जगन्नाथ पितामह जगद्गुरो ।
 प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर ॥१०॥
 प्रसीद त्वं जगन्नाथ शरण्यं शरणं गतः ।
 वैकुण्ठ शीरे सर्वज्ञ वासुदेव महाभुज ॥११॥
 संकर्षण महाभाग प्रद्युम्न पुरुषोत्तम ।
 अनिष्टद महाविष्णो सदा विष्णो नमोस्तु ते ॥१२॥
 विष्णो तवासनं दिव्यमव्यक्तं मध्यतो विभुः ।
 सहस्रफलसंयुक्तस्तमोमूर्तिर्धराधरः ॥१३॥
 अघश्च घर्मो देवेश ज्ञानं वैराग्यमेव च ।
 ऐश्वर्यमासनस्यास्य पादरूपेण सुव्रत ॥१४॥

आपके ही प्रसाद से सत्त्रिगुण के द्वारा स्वयं पुरुषोत्तम विष्णु हुए हैं । हे विष्णो ! आप कालमूर्ति हैं, पाशों के हरण करने वाले हैं श्रीर जगत् से परिपूर्ण साक्षात् नारायण हैं ॥८॥ हे विश्वमूर्ते ! हे महेश्वर ! महान्, भूतादि, पञ्च तन्मात्रा और इन्द्रियाँ ये सब आपके द्वारा ही अधिष्ठित हैं ॥९॥ हे महान् देव ! हे जगतों के नाथ ! हे पितामह ! हे जगत् के गुरो ! हे देवों के भी देवेश ! हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइये, आप कृपा कीजिये ॥१०॥ हे जगन्नाथ ! आप अपनी प्रसन्नता कीजिए । आप शरण्य हैं अर्थात् शरणागत की रक्षा करने वाले हैं । मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ । हे वैकुण्ठ ! हे शीरे ! आप

सबसे हैं वासुदेव हैं, महान् भुजावा वाले हैं । हे सङ्कर्षण ! हे महा-
भाग ! हे प्रद्युम्न ! हे समस्त पुरुषा म परम श्रेष्ठ ! हे अग्नि दत्त ! हे
महा विष्णो ! हे विष्णो ! हमारा सदा आपको प्रणाम है ॥११॥
॥१२॥ हे विष्णो ! क्षीर सागर के मध्य में आपका आसन तो बहुत
ही दिव्य और अव्यक्त है । वह विम्ब तमो मूर्ति घरा की धारण करने
वाले दोष सहस्र फनो से संयुक्त है ॥१३॥ हे देवेश ! इस आसन के
नीचे घर्म, ज्ञान, वैराग्य और एश्वय पाद रूप से हैं ॥१४॥

सप्तपातालपादस्त्व घराजघनमेव च ।
वासासि सागरा सम दिशश्चैव महाभुजा ॥१५॥
द्यौर्मूर्धां ते विभो नाभि ख वायुर्नासिका गत ।
नत्रे सोमश्च सूर्यश्च केशा वै पुष्करादय ॥१६॥
नक्षत्रतारका द्यौश्च अवेयवविभूषणम् ।
कथं स्तोष्यामि देवेश पूज्यश्च पुरुषोत्तम ॥१७॥
श्रद्धया च कृत दिव्य यच्छ्रुत यच्च कीर्तितम् ।
यदिष्ट तत्क्षमस्व श नारायण नमोस्तु ते ॥१८॥
इदं तु वंशव स्तत्र सर्वपापप्रणाशनम् ।
य पठेच्छ श्रुयाद्वापि क्षुपेण परिकीर्तितम् ॥१९॥
श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥
संपूज्य च निदेशेश्वराद्यं स्तुत्वा स्तुत देवमजेयमोशम् ।

विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या जनादनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥२१॥

आपके सात पाताल चरण हैं । यह भूमि ही आपके जघन हैं ।
सात सागर और सम्पूर्ण दिग्याये आपकी महान् भुजाये हैं ॥१५॥ हे
विभो ! द्यौ आपका मूर्धा है, आकाश नाभि है और वायु श्वासोच्छ्वास
लेने वाली नासिका है । चन्द्र और सूर्य दोनों आपके नेत्र हैं तथा पुष्कर
आदि नाम वाले मेघ आपके केश हैं ॥१६॥ नक्षत्र और तारे तथा द्यौ
आदि आपके कण्ठ के विभूषण हैं । देवों के ईश आपका मैं किस प्रकार से

स्तवन करे । आप तो पुण्योत्तम और सब प्रकार से पूजा करने के योग्य हैं ॥१७॥ मैंने जो कुछ भी स्तवन किया है वह श्रद्धा से दिव्य किया है । जो श्रवण किया है वही मैंने वर्णन किया है जो कि मुझे अभीष्ट था । हे ईश ! हे नारायण ! उसे क्षमा कीजिए, मेरा आप को नमस्कार है ॥१८॥ शैलादि ने कहा—यह वैष्णव स्तोत्र सब प्रकार के पापों के प्रणाश करने वाला है । राजा दुष के द्वारा कहे हुए इस स्तोत्र को जो कोई पढ़ता है अथवा श्रवण करता है या भक्ति के भाव से द्विजों को श्रवण कराता है वह विष्णु लोक को जाता है ॥१९॥२०॥ देवादि के द्वारा स्तुत, अजेय, ईश देव की स्तुति करके और भली भाँति अर्पण करके तथा भक्तिभाव से उनका दर्शन करके भगवान् जनार्दन को शिर से प्रणाम करके प्रार्थना की थी ॥२१॥

भगवन्ब्राह्मणः कश्चिद्दधोच इति विश्रुतः ।

धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुरामवत् ॥२२॥

अवध्यः सर्वदा सर्वैः शङ्करार्चनतत्परः ।

सायज्ञं कामपादेन स मां भूञ्जि सदस्यथ ॥२३॥

ताडयामास देवेश विष्णो विश्वजगत्पते ।

उवाच च मदाविष्टो न विभेमोति सर्वतः ॥२४॥

जेतुमिच्छामि तं विप्रं दधीचं जगदीश्वर ।

यथा हितं तथा कर्तुं त्वमहंसि जनार्दन ॥२५॥

ज्ञात्वा सोऽपि दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः ।

सस्मार च महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः ॥२६॥

एवं स्मृत्वा हरिः प्राह ब्रह्मणः सुतसंभवम् ।

विप्राणा नास्ति राजेन्द्र भयमेत्य महेश्वरम् ॥२७॥

विशेषाद्बुद्धभक्तानामभयं सर्वदा नृप ।

नीचानामपि सर्वत्र दधीचस्यास्य किं पुनः ॥२८॥

राजा दुष ने कहा—हे भगवन् ! कोई एक दधीच इस नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण है जो धर्म का जानने वाला तथा विनीत आत्मा वाला

है और पहिले यह मेरा सखा था ॥२२॥ वह भगवान् शङ्कर के अर्चन करने में तत्पर रहता है और सर्वदा सबके द्वारा अवध्य है । उसने अवज्ञा पूर्वक मेरे मस्तक में वाम पाद से सभा में प्रहार किया था ॥२३॥ हे देवेश ! हे विष्णो ! हे विश्व और जगत् के स्वामिन् ! उमने मद में आविष्ट होकर कहा था कि मैं किसी से भी नहीं डरता हूँ ॥२४॥ हे जगत् के ईश्वर ! मैं अब उस दधीच विप्र को जीतने की इच्छा करता हूँ । हे जनार्दन ! जिस प्रकार से मेरा हित हो वैसे ही आप करने के योग्य होते हैं ॥२५॥ शंखादि ने कहा—उन भगवान् हरि ने भी महान् आत्मा वाले दधीच की अवध्यता को जानकर महेश्वर के अतुल प्रभाव का स्मरण किया था ॥२६॥ इन प्रकार से हरि ने स्मरण करके ब्रह्मा की जँभाई से समुत्पन्न राजा क्षुप से कहा—हे राजेन्द्र ! भगवान् महेश्वर के समीप में सरणागत होने वाले विप्रों को भय नहीं हुआ करता है । ॥२७॥ हे नृप ! विशेष रूप से जो रुद्र के भक्त होते हैं वे चाहे नीच भी हो उनको सर्वत्र सर्वदा अभय होना है तो फिर द्विजेन्द्र दधीच के विषय में तो कहना ही क्या है अर्थात् उसे तो कभी भय हो ही नहीं सकता है ॥२८॥

तस्मात्तव महाभाग विजयो नास्ति भूपते ।
 दुःखं करोमि विप्रस्य शापार्थं समुरस्य मे ॥२९॥
 भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरैः समम् ।
 विनाशो मम राजेन्द्र पुनस्तथानमेव च ॥३०॥
 तस्मात्समेत्य विप्रेन्द्रं सर्वयत्नेन भूपते ।
 करोमि यत्नं राजेन्द्र दधीचविजयाय ते ॥३१॥
 श्रुत्वा वाक्यं क्षुपः प्राह तथास्त्विति जनार्दनम् ।
 भगवानपि विप्रस्य दधीचस्याश्रमं ययौ ॥३२॥
 आस्थाय रूपं विप्रस्य भगवान् भक्तवत्सलः ।
 दधीचमाह ब्रह्मापिमभिवन्द्य जगद्गुरुः ॥३३॥

भोभो दधीच ब्रह्मर्षे भवार्चनरताव्यय ।

वरमेकं वृणो त्वत्तस्तं भवान्दातुमर्हति ॥३४॥

याचितो देवदेवेन दधीचः प्राह विष्णुना ।

ज्ञातं तवेप्सितं सर्वं न विभेमि तवाप्यहम् ॥३५॥

इस कारण से हे महामाग राजन् ! तुम्हारी विजय नहीं है । मेरे शत्रुर विप्र के क्षाप के लिए मैं दुःख करता हूँ ॥३४॥ उसके क्षाप से दक्ष प्रजापति के यज्ञ में देवों के साथ मेरा विनाश होगा । हे राजेन्द्र ! फिर उत्थान भी होगा ॥३०॥ हे भूपते ! इससे विप्रेन्द्र के समीप में जाकर सब प्रकार के यत्न से हे राजेन्द्र ! तेरा दधीच पर विजय होने के लिये यत्न करता हूँ ॥३१॥ शंसादि ने कहा—राजा क्षुप ने इस वाक्य को सुनकर भगवान् जनार्दन से कहा, 'ऐसा ही होवै' । फिर भगवान् भी विप्रवर दधीच के आश्रम गये थे ॥३२॥ भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् ने ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके जगत् गुह ने ब्रह्मर्षि दधीच को प्रणाम करके उनसे कहा ॥३३॥ श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मर्षि दधीच ! आप तो भगवान् शङ्कर की अर्चना में पूर्ण रति रखने वाले और अव्यय हैं । मैं आप से एक वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ उसे आप देने के योग्य हैं ॥३४॥ देवों के भी देव विष्णु के द्वारा इस तरह से याचना किए गये दधीच ने कहा, मैंने आपका सम्पूर्ण हृच्छित विचार जान लिया और आप से भी भय नहीं खाता हूँ ॥३५॥

भवान् विप्रस्य रूपेण आगतोसि जनार्दन ।

भूत भविष्यं देवेश वर्तमानं जनार्दन ॥३६॥

ज्ञातं प्रसादाद्रुद्रस्य द्विजत्वं त्यज सुव्रत ।

आराधितोसि देवेश क्षुपेण मधुमूदन ॥३७॥

जाने तवनां भगवन्भक्तवत्सलतां हरे ।

स्थाने तवपा भगवन्भक्तवात्सल्यता हरे ॥३८॥

अस्ति चेद्भगवन् भोतिर्भवार्चनरतस्य मे ।

ववतुमर्हसि यत्नेन वरदावुजलोचन ॥३९॥

वदामि न मृषा तस्मान्न विभेमि जनार्दन ।
 न विभेमि जगत्त्यस्मिन् देवदैत्यद्विजादपि ॥४०॥
 श्रुत्वा वाक्यं दधीचस्य तदास्थाय जनार्दनः ।
 स्वरूप सस्मितं प्राह संत्यज्य द्विजतां क्षणात् ॥४१॥
 भयं दधीच सर्वत्र नास्त्येव तव सुव्रत ।
 भवार्चनरतो यस्माद्भवान् सर्वज्ञ एव च ॥४२॥
 विभेमीति सकृद्वक्तुं त्वमहंसि नमस्तव ।
 नियोगान्मम विप्रेन्द्र क्षुपं प्रति सदस्यय ॥४३॥

हे जनार्दन ! आप एक विप्र का स्वरूप धारण करके मेरे पास आये हैं । हे देवेश ! हे जनार्दन ! भूत, भविष्य और वर्तमान में सब भगवान् रुद्र के प्रसाद से ज्ञान लिया है अतएव हे सुव्रत ! सब इस द्विजत्व का त्याग कर दें । हे देवेश मधुसूदन ! आप क्षुप के द्वारा आराधित हुए हैं ॥ ३६॥३७॥ हे हरे ! हे भगवन् ! मैं आपकी इस भक्त वत्सलता को जानता हूँ । आपकी यह भक्त वत्सलता जो कि आपकी है वह समुचित ही है । हे भगवन् ! यदि वाङ्मय की भर्चना में रत मुझ से आपको कुछ भय होता है तो हे धर देने वाले ! हे कमल नयन ! आप जो चाहते हैं यत्न पूर्वक कहने के योग्य हैं ॥३८॥३९॥ हे जनार्दन ! इस कारण से मैं उससे नहीं डरता हूँ और न मिथ्या ही बोल रहा हूँ । मैं इस जगत् में देव दैत्य और द्विज किसी से भी भय नहीं खाता हूँ । ॥४०॥ नन्दी ने कहा—दधीच के इस वचन का श्रवण कर जनार्दन प्रभु उस समय अपने स्वरूप में आस्थित हो गये थे और द्विजता को क्षण मात्र में त्याग दिया था । फिर मुस्कराहट के साथ बोले ॥४१॥ श्री भगवान् ने कहा, हे सुव्रत दधीच ! आपको सर्वत्र भय नहीं है । आप तो भगवान् शङ्कर के समर्चन में रत रहने वाले हैं अतएव सभी कुछ के ज्ञाता भी हैं ही ॥४२॥ मैं एकबार कहते में डरता हूँ । आप योग्य होते हैं । आपको मेरा प्रणाम है । हे विप्रेन्द्र ! मेरे नियोग से क्षुप के प्रति त्याग कीजिएगा ॥४३॥

एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं सांत्वं विष्णोर्भहामुनिः ।
 न विभेमोति त प्राह दधीचो देवसत्तमम् ॥४४॥
 प्रभावाद्देवदेवस्य शंभोः साक्षात्पिनाकिनः ।
 सर्वस्य शंकरस्यास्य सर्वज्ञस्य महामुनिः ॥४५॥
 ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः ।
 चक्रमुद्यम्य भगवान्दिघक्षु मुनिसत्तमम् ॥४६॥
 अभवत्कुण्ठिताग्र हि विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
 प्रभावाद्धि दधीचस्य क्षुपस्यैव हि सन्निधौ ॥४७॥
 दृष्ट्वा तत्कुण्ठिताग्र हि चक्रं चक्रिणमाह सः ।
 दधीचः सस्मित साक्षात्सदसव्यक्तिकारणम् ॥४८॥
 भगवन् भवता लब्ध पुरातीव सुदारुणम् ।
 सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णो प्रयत्नतः ॥४९॥
 भवस्यैतच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह ।
 ब्रह्मास्त्रार्थस्तथान्येहि प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥५०॥

इस तरह महामुनि ने उस सान्त्वना युक्त विष्णु के वाक्य को
 सुनकर भी दधीच ने नहीं डरता हूँ, यह उन देवों में श्रेष्ठ से कहा था ।
 ॥४४॥ महामुनि ने कहा कि मुझे कोई भी भय नहीं है क्योंकि देवों के
 देव, साक्षात् पिनाक के धारण करने वाले, सब कुछ के ज्ञाता, इन
 सर्व शङ्कर का प्रभाव ही ऐसा है जो डर को दूर भगा देता है ॥४५॥
 इसके अनन्तर मुनि के इन वचनों का श्रवण कर भगवान् हरि को बड़ा
 क्रोध आ गया था और भगवान् ने चक्र को उठाकर मुनि श्रेष्ठ के
 हाथ कर देने की इच्छा की थी ॥४६॥ किन्तु उस समय राजा क्षुप की
 सन्निधि में ही भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र दधीच मुनि के प्रभाव
 से कुण्ठित अग्रभाग वाला हो गया था ॥४७॥ फिर उस मुनि ने चक्रधारी
 विष्णु से उनके उस सुदर्शन चक्र को कुण्ठित अग्र वाला देवकर दधीच
 से मुस्कराते हुए साक्षात् सद और असत् व्यक्ति का कारण बताया था
 ॥४८॥ हे भगवन् ! आपने पहिले यह अतीव सुदारुण सुदर्शन नाम से

प्रसिद्ध चक्र हे विष्णो ! प्रयत्न पूर्वक प्राप्त किया है ॥४६॥ भव का यह शुभ चक्र मुझको यहां मारना नहीं चाहता है । आप ब्रह्मास्त्र आदि अन्य अस्त्रों के द्वारा भी प्रयत्न करने के योग्य होते हैं । अर्थात् अग्न्यास्त्रों का भी प्रयोग कर लेवें ॥४७॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्यमायुधम् ।
ससर्जं च पुनस्तस्मै सर्वास्त्राणि समंततः ॥४१॥
चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोः साहाय्यमव्ययाः ।
द्विजेनैकेन योद्धुं हि प्रवृत्तस्य महाबलाः ॥४२॥
कुशमुष्टिं तदादाय दधीचः संस्मरन्भवम् ।
ससर्जं सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थिः सर्वतो वशी ॥४३॥
दिव्यं त्रिशूलमभवत्कालाग्निसदृशप्रभम् ।
दग्धुं देवान्मतिं चक्रे युगांताग्निरिवापरः ॥४४॥
इन्द्रनारायणा द्यौश्च देवैस्त्यक्तानि यानि तु ।
आयुधानि समस्तानि प्रणेमुखिशिखं मुने ॥४५॥
देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे ध्वस्तवीर्या द्विजोत्तम ।
ससर्जं भगवान् विष्णुः स्वदेहात्पुरुषोत्तमः ॥४६॥
आत्मनः सदृशान्दिव्यांलक्षलक्षायुतान् गणान् ।
तानि सर्वाणि सहसा ददाह मुनिसत्तमः ॥४७॥

ईलादि ने कहा—इस मुनि के इस वचन का श्रवण करके और अपने सुदर्शन चक्र नामक आयुध की पराक्रम से हीन देख कर फिर उस पर चारों ओर से अन्य समस्त अस्त्रों का प्रयोग किया जा ॥४१॥ इसके अनन्तर अव्यय देवों ने भी भगवान् विष्णु की सहायता की थी और महान् बल वाले देवगण उस एक द्विज के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त विष्णु का सहायक हुए थे ॥४२॥ उस समय में दधीच ने कुशाग्र की एक मुट्ठी भर कर महादेव का स्मरण करते हुए वज्र की अभ्यि वाने ओर गव्य प्रकार से वशी मुनि ने सब देवों पर छोड़ दी थी ॥४३॥ वे सब कुशाग्रों जालाग्नि के सदृश प्रभाव वाले त्रिशूल हो गयी थी और वे

अन्य युगान्त की अग्नि के समान देवगण को दग्ध करने के लिये प्रवृत्त हो गये थे ॥५४॥ हे मुने ! इन्द्र और नारायण आदि देवों ने जो भी कुछ आयुध उनके पास थे उन सबका त्याग कर दिया था और उन त्रिशिख अर्थात् तीन शिखा वाले त्रिशूल को प्रणाम करने लगे थे ॥५५॥ हे द्विजोत्तम ! समस्त देवगण भय से भीत होकर ध्वस्त पराक्रम बाल वहाँ से भाग गये थे । पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने अपने देह से अपने ही सदृश लाखों और अयुतो गणों का सृजन किया था किन्तु मुनिश्रेष्ठ ने सहसा उन सबका दग्ध कर दिया था ॥५६॥॥५७॥

ततो विस्मयनार्थाय विश्वमतिरभूद्धरि ।
 तस्य देहे हरे साक्षादपश्यद्विजसत्तमः ॥५८॥
 दधीचो भगवान्विप्र देवतानां गणान् पृथक् ।
 रुद्राणां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तदा ॥५९॥
 अढानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तस्तनो तदा ।
 दृष्ट्वैतदखिलं तत्र व्यावर्तिर्विस्मितः तदा ॥६०॥
 विष्णुमाह जगन्नाथ जगन्मयमजं विभुम् ।
 अभिसाम्युक्ष्य तं विष्णुं विश्वरूपं महामुनिः ॥६१॥
 मायां त्यज महाबाहो प्रतिभासा विचारतः ।
 विज्ञानानां सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव ॥६२॥
 मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया सार्धंमनिन्दितं ।
 ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते ॥६३॥
 इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनो निखिलं मुनिं ।
 तं प्राह च हरिं देवं सर्वदेवभवोद्भवम् ॥६४॥

इसके अनन्तर हरि ने विस्मय करने के लिये स्वयं अपना विश्वमूर्ति स्वरूप धारण कर लिया था । द्विज श्रेष्ठ दधीच ने उन हरि के देह में साक्षात् देखा था कि वहाँ पृथक् देवताओं के गण थे—करोड़ों रुद्र तथा करोड़ों ही गण थे । उस समय में उस विश्व मूर्ति के शरीर में करोड़ों ही गण देखे थे । इन सबको देखकर चयावनि दधीच विस्मित हुए और

उन जगन्मय, जगत् के नाथ भ्रज विष्णु से कहा और महामुनि ने विश्वरूप उन विष्णु का जल से अभ्युक्षण किया था । हे महाबाहो ! इस माया का त्याग कर दो । प्रतिभासा विचार से हे माधव ! सहस्रो विज्ञान दुर्विज्ञेय हुआ करते हैं ॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥ हे निन्दित ! मुझसे आप अपने साथ समस्त जगत् को देखिये, ब्रह्मा और रुद्र को भी देखिये । मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ ॥६३॥ यह कहकर मुनि ने अपने शरीर में सब दिखा दिया था और समस्त देवों के उत्पत्ति स्थान देव हरि से कहा था ॥६४॥

मायया ह्यनया किं वा मंत्रशक्त्याथ वा प्रभो ।
वस्तुशक्त्याथ वा विष्णो ध्यानशक्त्याथ वा पुनः ॥६५॥
त्यक्त्वा मायामिमा तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः ।
एव तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा माहात्म्यदभुतम् ॥६६॥
देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देव नारायण च तम् ।
चारयामास निश्चेष्टं पद्मयोनिर्जगद्गुरुः ॥६७॥
निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मण स्तेन निजितः ।
जगाम भगवान् विष्णुः प्रणिपत्य महामुनिम् ॥६८॥
क्षुपो दुःखातुरो भूत्वा संपूज्य च मुनीश्वरम् ।
दधीचमभिवद्याशु प्राययामास विरक्तवः ॥६९॥
दधीचक्षम्यता देव मयाऽज्ञानात्कृतं सखे ।
विष्णुना हि सुरर्वापि रुद्रमक्तस्य किं तव ॥७०॥
प्रसीद परमेशाने दुर्लभा दुर्जनैर्द्विज ।
भक्तिर्भक्तिमता श्रेष्ठ मद्विधैः क्षत्रियाधमैः ॥७१॥

हे प्रभो ! इस माया से क्या लाभ है अथवा इस मन्त्र शक्ति से क्या प्रयोजन है ? हे विष्णो ! वस्तु शक्ति अथवा ध्यान शक्ति से क्या फल होता है ? ॥६५॥ अतएव इस माया को छोड़कर प्रयत्न पूर्वक आप मुक्त करने के योग्य होते हैं । उसके दृढ प्रकार के बधन का

श्रवण कर और उसकी अत्यद्भुत महिमा को देखकर देवगण फिर उन देव नारायण का और भागे थे । पद्म योनि जगद्गुरु ने चेष्टाहीन का धारण किया था ॥६६॥६७॥ उस ब्राह्मण का वचन सुनकर उसके द्वारा निर्जित भगवान् विष्णु महा मुनि को प्रणाम करके चले गये थे ॥६८॥ राजा क्षुप दुःख से अत्यन्त कातर होकर मुनीश्वर की पूजा करके लगा था और दधीच की अभिवन्दना करके अत्यन्त विवर्तव होते हुए उसने प्रार्थना की थी ॥६९॥ हे दधीच ! हे देव ! हे सखे ! मैंने जो कुछ भी अज्ञान के वश में होकर आपका अपराध किया है उसे क्षमा कीजियेगा । भगवान् रुद्र के भक्त आपका भगवान् विष्णु और सुरों के द्वारा भी कुछ बिगाड़ नहीं हो सकता है ॥७०॥ भाव प्रसन्न होइये । हे द्विज परमेशान ॥ दुर्जनो के द्वारा भक्ति का होना अत्यन्त दुर्लभ है । हे श्रेष्ठ ! मुझे जैसे भयम सन्त्रियों से भक्तिमानों की भक्ति नहीं की जा सकती है ॥७१॥

श्रुत्वानुगृह्य तं विप्रो दधीचस्तपतां वरः ।
 राजानं मुनिशार्दूलः सशाप च सुरोत्तमान् ॥७२॥
 रुद्रकोपाम्बिना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वरैः ।
 ध्वस्ता भवन्तु देवेन विष्णुना च समन्विताः ॥७३॥
 प्रजापतेर्मखे पुण्ये दक्षस्य सुमहात्मनः ।
 एवं क्षप्त्वा क्षुपं प्रेक्ष्य पुनराह द्विजोत्तमः ॥७४॥
 देवंश्च पूज्या राजेन्द्र नृपैश्च विविधैर्मणैः ।
 ब्राह्मणा एव राजेन्द्र बलिनः प्रभविष्णवः ॥७५॥
 इत्युक्त्वा स्वोटज विप्रः प्रविवेश महाश्रुतिः ।
 दधीचमभिवर्चय जगाम स्वं नृपः क्षयम् ॥७६॥
 तदेव तीर्थमभवत्स्थानेश्वरमिति स्मृतम् ।
 स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसापुज्यमाप्नुयात् ॥७७॥
 पणित स्तव संक्षेपाद्विवादः शुद्धधीनयोः ।
 प्रभावश्च दधीचस्य भवस्य च महामुने ॥७८॥

य इदं कीर्तयेद्दिष्यं विवादं शुब्दधीचयोः ।

जित्वापमृत्युं देहाते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः ॥७६॥

य इदं कीर्त्यं संग्रामं प्रविशेत्तस्य सर्वदा ।

नास्ति मृत्युभयं चैव विजयी च भविष्यति ॥७७॥

तपस्वियो में परम श्रेष्ठ विप्र दधीच ने क्षुप के इस स्तवन का श्रवण करके उस राजा पर अनुग्रह किया था । और मुनि दार्दूल ने सुरात्मो को शाप दे दिया था कि रुद्र की कोपाग्नि से देवेन्द्र, मुनीश्वर और देव विष्णु के सहित सब ध्वस्त हो जावें ॥७२॥७३॥ महान् भ्रातृमा वाले प्रजापति दक्ष के परम पुण्यमय मल में इस प्रकार शाप देकर और फिर क्षुप को देराकर द्विज श्रेष्ठ बोले ॥७४॥ हे राजेन्द्र ! देवों के द्वारा, नृपों के द्वारा और विविध गणों के द्वारा ब्राह्मण पूजा के योग्य हैं, बली हैं और प्रभविष्णु हैं ॥७५॥ इतना कह कर वह महाद्युति से युक्त विप्र अपने कुटीर में प्रवेश कर गया था । राजा दधीच की धन्दना करके अपने घर को चला गया था ॥७६॥ वह स्थल ही स्थाने-स्वर, इस नाम वाला तीर्थ हो गया था । स्थानेश्वर में पहुँचकर मानव शिव के सायुज्य को प्राप्त किया करना है ॥७७॥ इस तरह से जो राजा क्षुप और दधीच का सम्वाद है वह हमने तुम्हारे सामने सक्षेप से कह दिया है । हे महामुने ! भगवान् भव ना और उनके भक्त दधीच का प्रभाव भी बता दिया है ॥७८॥ इस क्षुप और दधीच के दिव्य सम्वाद का जो कीर्तन करेगा वह क्षण मृत्यु पर विजय पाकर देह के ध्वन में ब्रह्म लोक में चला जाता है ॥७९॥ जो इस पवित्र सम्वाद का पाठ करके संग्राम में प्रवेश करता है उसका सर्वदा मृत्यु का भय नहीं होता है और वह अवश्य ही विजयी होता है ॥८०॥



ब्रह्माजी को शिव का वरदान

भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवमुमापतिम् ।
 श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१॥
 प्रजाकामः शिलादोभूत्पिता मम महामुने ।
 सोप्यधः सुचिरं कालं तपस्तेषु सुदुश्चरम् ॥२॥
 तपतस्तस्य तपसा सन्तुष्टो वज्रघृक् प्रभुः ।
 शिलादिमाह तुष्टोऽस्मि वरयस्व वरानिति ॥३॥
 ततः प्रणम्य देवेश सहस्राक्षं सहामरं ।
 प्रोवाच मुनिशार्दूल कृताजलिपुटो हरिम् ॥४॥
 भगवन्देवतारिष्णु सहस्राक्षं वरप्रद ।
 अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रत ॥५॥
 पुत्रं दास्यामि विप्रर्षे योनिजं मृत्युसंयुतम् ।
 अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सति व ॥६॥
 न दास्यति सुततेऽत्र मृत्युहीनमयोनिजम् ।
 पिसामहोपि भगवान्किमुतान्ये महामुने ॥७॥

सनत्कुमार ने कहा—आप उमा के स्वामी महादेव के समीप
 मे कैसे प्राप्त हुए थे ? हे प्रभो ! मैं यह सब श्रवण करने की इच्छा
 करता हूँ, आप इसका वर्णन करने की कृपा करें ॥१॥ शिलादि ने
 कहा—हे महामुने ! मेरे पिता शिलाद सन्तान की इच्छा रखने वाले
 थे और वह अन्धे थे तो भी बहुत समय पर्यन्त उन्होंने मत्पन्त कठिन
 तपस्या की थी ॥२॥ तपस्या करते हुए उसके तप से वज्र धारण करने
 वाले इन्द्र प्रभु बहुत सन्तुष्ट हुए थे और आकर शिलाद मेरे पिता से
 बोले थे कि मैं बहुत तुष्ट हूँ तु वरदान मांग ले ॥३॥ इसके उपरान्त हे
 मुनिशार्दूल ! शिलाद ने समस्त देवों के सहित देवेश सहस्राक्ष को
 प्रणाम करके हाथ जोड़ते हुये इन्द्र से कहा था ॥४॥ शिलादि बोला—

हे भगवन् ! आप जो देवों के ऋषियों के नाश करने वाले, सहस्र नेत्रों वाले और वरदान प्रदान करने वाले हैं । मैं अपना ऐसा पुत्र चाहता हूँ जो योनिज प्रजाति बिना ही योनि के उत्पन्न होने वाला और मृत्यु से रहित हो ॥५॥ इन्द्र ने कहा—हे दिप्रर्षे ! मैं तुमको पुत्र तो दूँगा किन्तु वह योनिज होगा और मृत्यु से युक्त भी होगा । यदि ऐसा पुत्र नहीं चाहते हो तो फिर मैं पुत्र नहीं दूँगा क्योंकि मृत्यु से हीन नहीं होते हैं ॥६॥ हे महामुने ! इस ससार में तुमको मृत्यु से रहित और योनिज पुत्र तो मैं क्या साक्षात् भगवान् विष्णु और पितामह ब्रह्मा श्री नहीं दूँगे, अन्य देवों की बात ही क्या है ॥७॥

सोपि देवः स्वयं ब्रह्मा मृत्युहीनो न चेश्वरः ।
योनिजश्च महातेजाश्चाण्डजः पद्मसम्भवः ॥८॥
महेश्वरगजश्चैव भवान्यास्तनयः प्रभुः ।
तस्याप्यायुः समारुधात् पराघट्टयसमितम् ॥९॥
कोटिकोटिसहस्राणि जहर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि पल्पाना तावच्छेषा परम मे ॥१०॥
तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः ।
परित्यज्यासा विप्रेन्द्र गृहाणात्मसमं सुतम् ॥११॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पिता मे लोकविश्रुतः ।
शिलाद इति पुण्यात्मा पुनः प्राह शचीपतिम् ॥१२॥
भगवन् डयोनिवत् पद्मयोनिवत्मेव च ।
महेश्वरगयोनिवत् श्रुतं वै ब्रह्मणो मया ॥१३॥
पुरा महेंद्रदायादादगदतश्चास्य पूर्वजात् ।
नारदाहं महाबाहो कथमत्राशु नो वद ॥१४॥

महेश्वर के भङ्ग से उत्पन्न होने वाले हैं और उनकी भी दो परार्थ प्राप्ति परिमित एवं संख्यात है ॥६॥ करोड़ों कल्प ग्रहभूत होकर व्यतीत हो गये हैं और अपरार्थ में उनमें ही संख्या वाले कल्प दोष हैं । ॥१०॥ इसलिए हे विप्रेन्द्र ! अयोनिज और मृत्यु हीन पुत्र को प्राप्त करने की आशा रखना छोड़ दो तथा ऐसा कोई प्रयत्न करना तुमको नहीं चाहिये । तुम्हें पुत्र प्राप्त करने की ही इच्छा है तो अपने ही समान पुत्र प्राप्त कर लो ॥११॥ शीलादि ने कहा—उस इन्द्रदेव के इस वचन का श्रवण कर लोक में प्रसिद्ध एवं पुण्यात्मा मेरे पिता शिलाद ने फिर दासी के स्वामी इन्द्र से कहा—॥१२॥ शिलाद बोला—हे भगवन् ; मैंने भी ब्रह्माजी का अण्डयोनि होना, पद्म योनि का होना और महेश्वर के भङ्ग से उत्पन्न होना सुना है जो कि पहिले बोलते हुए महेंद्र क्षमाद से और ब्रह्मा के पूर्वोत्पन्न पुत्र नारद से सुना है । हे महाबाहो ! यही कैसे है, यह आप खीघ्रता से हमको बताइये ॥१३॥ ॥१४॥

दाक्षायणी स दक्षोपि देवः पद्मोद्भवात्मजः ।

पौजी कनकगर्भस्य कथं तस्याः सुतो विभुः ॥१५॥

स्थाने संशयितुं विप्र तव वक्ष्यामि कारणम् ।

कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं ब्रह्मणः परमेश्विनः ॥१६॥

ससर्ज सकलं ध्यात्वा ब्रह्माणं परमेश्वरः ।

जनार्दनो जगन्नाथः कल्पे वै मेघवाहने ॥१७॥

दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्वरम् ।

नारायणो महादेव बहुमानेन सादरम् ॥१८॥

दृष्ट्वा भावं महादेवो हरेः स्वात्मनि शङ्करः ।

प्रददौ तस्य सकलं स्रष्टुं वै ब्रह्मणा सह ॥१९॥

तदा तं कल्पमाहुर्वै मेघवाहनसंज्ञया ।

हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा तस्य देहोद्भवस्तदा ॥२०॥

जनार्दनमुतः प्राह तपसा प्राप्य शङ्करम् ।

तव वामांगजो विष्णुर्दक्षिणांगभवो ह्यहम् ॥२१॥

मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः

जगन्मयोवह्वस्मान्मेघो भूत्वा दिवानिशम् ॥२२॥

प्रजापति दस पद्मोद्भव ब्रह्मा का पुत्र था और दाक्षायणी दक्ष प्रजापति की कन्या भी ब्रह्मा की पौत्री थी फिर उसका [पौत्री का] विधु ब्रह्मा सुत कैसे हुआ ? इन्द्र ने कहा— हे विप्र ! आप का ऐसा संशय करना बहुत ही उपयुक्त है । मैं इसका कारण आप को बत-
साऊँगा । तत्पुरुष नाम वाले कल्प में परम शिव परमेश्वरी ब्रह्मा का मेघ वृत्तान्त है ॥१५॥१६॥ परमेश्वर शिव ने सम्पूर्ण उत्पादन करने के योग्य का ध्यान करके ब्रह्मा को उत्पन्न किया था । मेघवाहन कल्प में जगत् के स्वामी जनार्दन ने दिव्य एक सहस्र वर्ष पर्यन्त मेघ होकर नारायण ने मादर के साथ बहु मान से महादेव व हर को बहन किया था ॥१७॥१८॥ महादेव शङ्कर ने अपनी माशमा में हरि के भाव को देखकर उनकी सब ब्रह्मा के साथ सृजन करने के लिये दे दिया था ॥१९॥ सत समय मेघवाहन के नाम से उस कल्प को कहते थे । उसके देह से उद्भव होने वाले हिरण्यगर्भ ने उसको देखा था ॥२०॥ जनार्दन के पुत्र ने तप के द्वारा शङ्कर को प्राप्त कर कहा आपके धाम भङ्ग से उत्पन्न होने वाले विष्णु हैं और दक्षिण भङ्ग से उत्पन्न होने वाला मैं हूँ ॥२१॥ अच्युत ने मेरे साथ तो भी सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया था । जिससे जगन्मय मेघ होकर अर्धनिश बहन करता था ॥२२॥

भवंतमवहद्विष्णुर्देवदेवं जगद्गुरुम् ।

नारायणादपि विभो भक्तोहं तव शङ्कर ॥२३॥

प्रसीद देहि मे सर्वं सर्वात्मत्वं तव प्रभो ।

तदाथ लब्ध्वा भगवान् भवात्सर्वात्मतां क्षणात् ॥२४॥

त्वरमाणोऽथ सगम्य ददशं पुरुषोत्तमम् ।

एकाग्रं बालये शुभ्रे त्वन्धकारे मुदारुणे ॥२५॥

हेमरत्नचिते दिव्ये मनसा च विनिमिते ।
 दुष्प्राप्ये दुर्जनैः पुण्यैः सनकाद्यैरगोचरे ॥२६॥
 जगदावासत्तद्वदं ददर्श पुरुष त्वजः ।
 अनंत भोगशय्याया शायिनं पंकजेक्षणम् ॥२७॥
 शंखचक्रगदापद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम् ।
 सर्वाभरणसंयुक्तं शशिमण्डलसन्निभम् ॥२८॥

विष्णु ने देवों के देव और जगत् के गुरु आपका वहन किया था । हे विभो ! हे शङ्कर ! मैं नारायण से भी आपका भक्त हूँ ॥२३॥ हे प्रभो ! आप प्रसन्न होइये और आप अपना सर्वात्मत्व सब मुझे प्रदान कीजिये । इसके अनन्तर उस समय भगवान् भव के क्षण मान में सर्वात्मता प्राप्त की थी ॥२४॥ क्षीप्रता करते हुए संगत होकर सुदारण अन्धकार से शुभ्र एकार्णव में पुरुषोत्तम को देखा था ॥२५॥ सुवर्ण और रत्नों विरचित, परम दिव्य, मन के द्वारा विनिर्मित, बुजनों को दुष्प्राय तथा महान पुण्य आत्मा वाले सनकादि के द्वारा अगोचर उस एकार्णव में उस भज ने सम्पूर्ण जगत् के निवास स्थान पुरुष को देखा था जोकि शेष नाग की शय्या में शयन करने वाला तथा कमल के समान नेत्रों वाला था । वह परम पुरुष शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले, चार भुजाओं से समन्वित, सम्पूर्ण आभरणों से समलङ्कृत और शशिमण्डल के तुल्य थे ॥२६॥२७॥२८॥

श्रीवत्स लक्षणं देव प्रसन्नास्यं जनार्दनम् ।
 रमामृदुकराभोजस्पर्शरक्तपदाबुजम् ॥२९॥
 परमात्मानमीशान तमसा कालरूपिणम् ।
 रजसा सर्व लोकाना सर्गलीलाप्रवर्तकम् ॥३०॥
 सत्त्वेन सर्वभूतानां स्थापकं परमेश्वरम् ।
 सर्वात्मानं माहात्मान परमात्मानमीश्वरम् ॥३१॥
 क्षीराण्येऽमृतमये शायिनं योगनिद्रया ।
 तं दृष्ट्वा प्राहु वं ब्रह्मा भगवन्तं जनार्दनम् ॥३२॥

ग्रसामि त्वां प्रसादेन यथापूर्वं भवानहम् ।
 समय मानस्तु भगवान् प्रतिबुध्य पितामहम् ॥३३॥
 उदैक्षत महाबाहुः स्मितमीपञ्चकार सः ।
 विवेश चाडज त तु ग्रस्तस्तेन महात्मना ॥३४॥
 ततस्तं चासृजद्ब्रह्मा भ्रूवोर्मध्येन चाच्युतम् ।
 सृष्टस्तेन हरिः प्रेक्ष्य स्थितस्तस्याथ सन्निधौ ॥३५॥

उस परम पुरुष के शीवत्स का बिन्दु या और वह जनार्दन देव प्रसन्न मुख वाले थे । रमा के कोमल कर कमलो के स्पर्श से रत्न पद्म कमल वाले थे । वे ईशान परमात्मा तमोगुण से काल रूपी, रजोगुण से समस्त लोको के सृजन की लीला के प्रवर्तक और सत्त्व गुण से सम्पूर्ण भूतो के स्थापक थे । सबकी आत्मा, परम आत्मा और महान् आभा वाले ईश्वर को जो कि अमृतमय क्षीर सागर में योग निद्रा से शयन करने वाले हैं, देखकर उन भगवान् जनार्दन से ब्रह्मा ने कहा ॥३६॥३०॥३१॥३२॥ शिव के प्रसाद से जैसे आपने मुझे ग्रस्त किया था उसी प्रकार मैं अब आपको ग्रसता हूँ । भगवान् के विस्मित होते हुए ब्रह्मा का समझकर महाबाहु ने देखा और कुछ थोड़ी सी मुस्कराहट की थी । उस महान् आत्मा के द्वारा ग्रस्त होते हुये उस अण्डज में प्रवेश किया था ॥३३॥३४॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा ने भृकुटियों के मध्य के उस अच्युत का सृजन किया था । उसके द्वारा सृजन किये हुए हरि ने देखकर उसी की सन्निधि में स्थिति की थी ॥३५॥

एतस्मिन्नंतरे रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः ।
 विकृत रूपमास्थाय पुरा दत्तवरस्तपः ॥३६॥
 आगच्छद्यत्र वै विष्णुर्विश्वात्मा परमेश्वरः ।
 प्रसादमतुलं कतुं ब्रह्माणश्च हरेः प्रभुः ॥३७॥
 ततः समेत्य तौ देवौ सर्वदेवभवोद्भवम् ।
 अपश्यतां भवं देवं कालाग्निसदृशं प्रभुम् ॥३८॥

तो तं तुष्टुवतुश्चैव शर्वमुग्रं कर्पादिनम् ।
 प्रणम्य तु वरदं बहुमानेन दूरतः ॥३६॥
 भवोपि भगवान् देवमनुगृह्य पितामहम् ।
 जनार्दनं जगन्नाथस्तथैवांतरधीयत ॥४०॥

इसी अन्तर में सम्पूर्ण देवों की उत्पत्ति करने वाले भगवान् रुद्र विष्टत स्वरूप में आस्थित होकर उन दोनों को जिन्होंने पहिले कर दिया था वहाँ आ गये थे जहाँ पर विश्वात्मा परमेश्वर विष्णु थे । प्रभु का यहाँ भागमन् ब्रह्मा और हरि पर अनुल प्रसन्नता करने के लिये ही हुआ था ॥३६॥३७॥ इसके पश्चात् उन दोनों ने वहाँ एकत्रित होकर दे। भव को जो कि समस्त देव गण के उद्भव स्थान है, कालाग्नि के समान् प्रभु को देता था ॥३८॥ उन दोनों ने उग्र कपर्दी शिव का स्तवन किया था और उन वरदान देने वाले को बहुमान पूर्वक दूर से ही प्रणाम किया था ॥३९॥ भगवान् भव भी पितामह देव पर अनुग्रह करके और जनार्दन पर कृपा की वृष्टि करके जगतों के स्वामी वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥४०॥



विष्णु द्वारा माहात्म कथन

गते महेश्वरे देवे तमुद्दिश्य जनार्दनः ।
 प्रणम्य भगवान्प्राहं पद्मयोनिमजोद्भवः ॥१॥
 परमेशो जगन्नाथः शंकरस्त्वेष सर्वगः ।
 आवयोरखिलस्येशः शरणं च महेश्वरः ॥२॥
 अहं वामागजो ब्रह्मान् शंकरस्य महात्मनः ।
 भवान् भवस्य देवस्य दक्षिणागभवः स्वयम् ॥३॥
 मामाहुर्द्वयः प्रेक्ष्य प्रधानं प्रकृतिं तथा ।
 अव्यक्तमजमित्येवं भवत पुरुषस्त्विति ॥४॥

एवमाहुर्महादेवमावयोरपि कारणम् ।
 ईशं सर्वस्य जगतः प्रमुमव्ययमोश्चरम् ॥५॥
 सोपि तस्यामरेशस्य वचनाद्वारिजोद्भवः ।
 वरेण्यं वरदं रुद्रमस्तुवत्प्रणनाम च ॥६॥
 अयाम्भसा प्लुतां भूमिं समाधाय जनार्दनः ।
 पूर्ववत्स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः ॥७॥

शैलादि ने कहा — भगवान् महेश्वर देव के अन्तर्हित होकर चले जाने के पश्चात् भगवान् जनार्दन ने उसका उद्देश्य करके प्रणाम किया था और अजोद्भव ने पद्मयोनि से कहा, श्री विष्णु ने कहा — यह परम ईश्वर जगतो के स्वामी भगवान् दाक्षर सर्वत्र गमन करने वाले, अखिल के ईश हम दोनों के महेश्वर कारण अर्थात् रक्षक हैं ॥१॥२॥ हे प्रधान ! मैं महात्मा दाक्षर के आमाङ्ग से समुत्पन्न होने वाला हूँ और आप स्वयं देव भव के दक्षिण अङ्ग से समुत्पन्न होने वाले हैं ॥३॥ अष्टपिण्ड मुझे देकर अर्थात् विचार कर प्रधान तथा प्रकृति अर्थात् और भज करते थे और आपको पुरुष कहा करते हैं ॥४॥ हम दोनों का भी इस प्रकार से महादेव को कारण बताते हैं जो कि सम्पूर्ण जगत् का ईश, प्रभु, अव्यय और ईश्वर है ॥५॥ उस वारिज (कमल) से उत्पन्न होने वाले ने उस देवो के ईश के वचन से वरेण्य और वरद रुद्र का स्तवन किया और उसी प्रणाम किया था ॥६॥ इसके अनन्तर जन से प्लुत (गर्भ) भूमि को जनार्दन ने वाराह रूप में आस्थित होकर पूर्व की भाँति ही स्थापित कर दिया था ॥७॥

नदीनदसमुद्राश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः ।
 कृत्वा चोर्वो प्रयत्नेन निम्नोन्नतविर्वाजिताम् ॥८॥
 घरायां सोचिनोत्सर्वान् भूधरान् भूधराकृतिः ।
 भूराद्याश्चतुरो लोकान् यत्पयामास पूर्ववत् ॥९॥
 सप्तुं च भगवांश्चक्रे मति मतिमतां यरः ।
 मुर्यं च तैयं ग्यो ग्यं च दैविकं मानुषं तथा ॥१०॥

विभुश्चानुग्रहं तत्र कौमारकमदीनघोः ।
 पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा ॥११॥
 सनातनं सतां श्रेष्ठं नैष्कर्म्येण गताः परंम् ।
 मरीचिभृग्वंगिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥१२॥
 दक्षमग्निं वसिष्ठं च सोसृजद्योगविद्याया ।
 संकल्पं चैव घर्मं च ह्यंघर्मं भगवान्प्रभुः ॥१३॥
 द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 ऋभुं सनत्कुमारं च ससर्जादौ सनातनः ॥१४॥
 तौ चोद्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मा वादिनौ ।
 कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ ॥१५॥
 एवं मुख्यादिकान् सृष्ट्वा पद्मयोनिः शिलाशन ।
 युगधर्मनिशेषांश्च कल्पयामास विश्वसृक् ॥१६॥

प्रभु ने सम्पूर्ण नदियों और नदों की भी भूमि को ऊँचाई और नीचेपन से रहित प्रथम पूर्वक स्थापित करके पूर्व की तरह काम्य कर दिया था ॥८॥ भूधर के तुल्य भाकृति वाले महाबाराह प्रभु ने पृथ्वी में समस्त पर्वतों को भली भाँति चुन कर जमा दिया था । भूलोक आदि चारों लोकों को भी पूर्व की भाँति ही कल्पित कर दिया था ॥९॥ मतिमानों में परम श्रेष्ठ भगवान् ने सृजन करने का विचार किया था उसमें वृक्ष सर्ग, तिर्यग् योनि का पशु सर्ग, दैविक और मानुष मार्ग सभी की सृष्टि करने का विचार किया था ॥१०॥ अदीन बुद्धि वाले विभु देव ने सबसे पहिले उस सृजन कार्य में कुमारों का सर्ग किया था जिनमें सनक, सनन्द तथा सत्पुरुषों में परम-श्रेष्ठ सनातन थे जो कि अपने ज्ञान योग से परम ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो गये थे । फिर योग विद्या के द्वारा मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, दक्ष, अग्नि और वसिष्ठ की उसने सृष्टि की थी ॥११॥१२॥ ॥१३॥ फिर सङ्कल्प, घर्म और अघर्म का सृजन भगवान् प्रभु ने किया था । अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की ये बारह ही प्रजा हुई थी अर्थात् इन

द्वादशों का ही सृजन किया था । सनातन भगवान् विष्णु ने प्रादि मे ऋभु तथा सनत्कुमार का सृजन किया था ॥१४॥ ये दोनो ऊर्ध्वरेता, दिव्य और ब्रह्मावादी भग्नज हुए थे । ये दोनो कुमार ब्रह्मा के तुल्य ही सर्वज्ञ और सर्व भावी थे ॥१५॥ इस प्रकार से हे शिलाशन ! पद्मयोनि ने इन प्रादि के मुख्यों की सृष्टि करके फिर विश्व के स्रष्टा ने सम्पूर्ण युग धर्मों की कल्पना की थी ॥१६॥



चारो युगो मे लोक-धर्म

श्रुत्वा शक्रेण कथित पिता मम महामुनि ।
 पुनः पप्रच्छ देवेश प्रणम्य रचिताजलि ॥१॥
 भगवन् शक्र सर्वज्ञ देवदेवनमस्कृत ।
 शचीपते जगन्नाथ सहस्राक्ष महेश्वर ॥२॥
 युगधर्मनिकथ चक्र भगवान्पद्मसम्भव ।
 वक्तुमर्हसि मे सर्वं साप्रत प्रणताय मे ॥३॥
 तस्य तद्वचन श्रुत्वा शिलादस्य महात्मनः ।
 व्याजहार यथादृष्ट युगधर्मं सुविस्तरम् ॥४॥
 आद्य कृतयुगं विद्धि ततस्त्रेतायुगं मुने ।
 द्वापरं तिष्यमित्येते चत्वारस्तु समासतः ॥५॥
 सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं च रजस्तमः ।
 कलिस्तमश्च विज्ञेय युगवृत्तिर्युगेषु च ॥६॥
 ध्यानं परं कृतयुगे त्रेताया यज्ञ उच्यते ।
 भजनं द्वापरे शुद्ध दानमेव कलौ युग ॥७॥

इस अध्याय मे वेद व्यास मुनि युग धर्म, वृत्तियाँ और पुराणों के क्रम का निरूपण करते हैं । संसादि ने कहा—महान् मुनि मेरे पिता ने शक्र ने द्वारा इस वचन का श्रवण करके देवेश को प्रणाम करके

हाथ जोड़ते हुए पुनः पूछा था । शिलाद ने कहा—हे भगवन् ! हे शक्र ! आप तो देवों के भी देवों के वन्द्यमान हैं और सर्वज्ञ हैं । हे शची के स्वामिन् ! आप जगत् के नाथ हैं तथा सहस्र नेत्रों वाले महेश्वर हैं । भगवान् पद्म सम्भव ने युग धर्मों को कैसे किया था, इसे परम प्रणव मुझे आप भद्र सब बताने के योग्य होते हैं ॥१॥२॥३॥ शैलादि ने कहा—महात्मा शिलाद के उस वचन को सुनकर जिस प्रकार को देखा था वैसा युग धर्म को पूर्ण विस्तार पूर्वक कहा था ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे मुने ! सबसे प्रथम होने वाला कृत युग है और इसके अनन्तर त्रेता युग होता है । इसके पश्चात् द्वापर और कलियुग होते हैं । संक्षेप में तुम्हें बतलाता हूँ कि ये क्रम से चार युग होते हैं ॥५॥ कृतयुग सत्त्व गुण रूप होता है, त्रेता रजोगुण रूप है, द्वापर रजोगुण तथा तमोगुण रूप होता है और कलियुग तमोगुण रूप है । इस प्रकार से युगों में युग वृत्ति होती है ॥६॥ कृतयुग में ईश्वर का चिन्तन करना सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, त्रेता में यज्ञ, यागदि का करना मुख्य कहा जाता है, द्वापर में भजन करने को प्रशस्त बताया जाता है और इस कलियुग में दान देना ही परमोत्कृष्ट कर्म होता है ॥७॥

चत्वारि च सहस्राणि वर्षाणि तत्कृत युगम् ।
 तस्य तावच्छती संध्या संध्याशश्च तथाविधः ॥८॥
 चत्वारि च सहस्राणि मानुषाणि शिलाशन ।
 आयुः कृतयुगे विद्धि प्रजानामिह सुव्रत ॥९॥
 ततः कृतयुगे तस्मिन् संध्यांशे च गते तु वै ।
 पादा दशितो भवति युगधर्मस्तु सर्वतः ॥१०॥
 चतुर्भागिकहोनें तु त्रेतायुगमनुत्तमम् ।
 कृतार्थं द्वापरं विद्धि तदर्थं त्रिप्यमुच्यते ॥११॥
 त्रिशती द्विशती संध्या तथा चैवशती मुने ।
 संध्यांशकं तथाप्येवं पल्पेप्येवं युगेयुगे ॥१२॥

वाद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः ।

त्रेतायुगे त्रिपादस्तु द्विपादो द्वापरे स्थितः ॥१३॥

त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण धिष्ठितः ।

कृते तु मिथुनोत्पत्तिवृत्तिः साक्षाद्रसोल्लासा ॥१४॥

चार सहस्र दिव्य वर्षों का कृतयुग होता है । चार सौ वर्ष की सङ्ख्या और उतना ही सङ्ख्याश होता है ॥८॥ हे शिनाशन, इस कृत युग में प्रजापति ने मनुष्यों को मायु चार सहस्र होती है । इसके अनन्तर उस कृत युग के तथा सङ्ख्याश के समाप्त हो जाने पर युग का धर्म सब प्रकार से एक पाद अवशिष्ट रहता है ॥९॥१०॥ चौथे भाग से हीन पति उत्तम त्रेता युग होता है । कृतयुग से माया द्वापर युग होता है और इस द्वापर का माया कलियुग हुआ करता है ॥११॥ इन तीनों युगों की सङ्ख्या भी क्रम से तीन सौ, दो सौ और एक सौ वर्षों की होती है । हे मुने ! बल्गों में प्रत्येक युग में सङ्ख्याश भी उसी प्रकार का इस तरह होता है ॥१२॥ सबसे प्रथम कृत युग में सनातन धर्म चार पादों वाला पूर्ण होता है । त्रेता युग में धर्म के तीन ही पाद रह जाते हैं अर्थात् एक चौथा भाग धर्म का त्रेता में कम हो जाता है । द्वापर युग में धर्म केवल दो ही पाद वाला रहता है ॥१३॥ कलियुग में वह धर्म तीन पादों से हीन केवल सत्ता मात्र से ही अधिष्ठित रहा करता है । कृत युग में स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति मधुरादि रसों के उत्सर्ग वाली होती है और जीवन का उपाय प्रजा की इच्छा से होता है ॥१४॥

प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वनिन्दाश्च भोगिनः ।

अधमोत्तमता तासां न विशेषाः प्रजाः शुभाः ॥१५॥

तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन्कृते युगे ।

तासां प्रीतिर्न च द्वंद्वं न द्वेयो नास्ति च क्रमः ॥१६॥

पर्वतोदधिगासिन्यो ह्यनिकेताश्च यास्तु ताः ।

विशोकताः सत्त्वबहुला एकांतबहुलास्तथा ॥१७॥

ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ।
 अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः ॥१८॥
 वर्णाश्रमव्यवस्था च तदासीन्न च संकरः ।
 रसोल्लासः कालयोगात्रेत्तारूपे नश्यते द्विज ॥१९॥
 तस्या सिद्धी प्रनष्टायामन्या सिद्धिः प्रजायते ।
 अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु वै ॥२०॥
 मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तां वृष्टिसर्जनम् ।
 सकृदेव तथा वृष्ट्या सयुक्ते पृथिवीतले ॥२१॥
 प्रादुरासंस्तदा तासा वृक्षास्ते गृहसञ्ज्ञिताः ।
 सर्ववृत्त्युपभोगस्तु तासा तेभ्यः प्रजा यते ॥२२॥

कृतयुग में सदा समस्त प्रजा परम सुख, सब तरह के आनन्द से मुक्त और भोग वाली थी। उनमें अधमता और उत्तमता नहीं थी तथा सम्पूर्ण प्रजाओं की आयु समान होती है और सुख तथा रूप भी सबका तुल्य होता है। उनमें पारस्परिक प्रेम रहता है तथा द्वन्द्व अर्थात् शीतोष्णादि का सन्तान एव ग्लानि नहीं होती है ॥१९॥१८॥ वे प्रजा पर्वत और समुद्र में निवास करने वाली थी उनका कोई निकेत तथा आश्रय नहीं था। उस प्रजा में किसी प्रकार का शोक नहीं था और बहुदायत से सत्त्वगुण की प्रधानता होती है। अधिकतर एकान्त में रहने वाले थे। वे प्रजाजन निष्काम कर्मवीर थे। उनकी स्वर्ग और नरक के कारण स्वरूप कर्मों से अर्थात् पाप-पुण्य में प्रवृत्ति नहीं थी। उनका मन नित्य ही प्रसन्न रहा करता है ॥१७॥१८॥ उस समय में वर्णाश्रम की कोई व्यवस्था नहीं थी और सकल सृष्टि भी नहीं होती थी। हे द्विज ! त्रेता नामक युग में काल के योग से रस का प्रादुर्भाव नष्ट हो जाता है। ॥१९॥ उस सिद्धि के प्रनष्ट हो जाने पर अन्य सिद्धि उत्पन्न हो जाती है। उस समय मेघ के रूप में जलो की सूक्ष्मता हो जाने पर गर्जते हुए मेघों से वृष्टि का सृजन आरम्भ हो गया था। एक बार ही पृथ्वी-तल का वृष्टि के साथ संयोग होने पर उस समय में उन जलो से गृह

की सजा वाले वृक्ष उत्पन्न हो गये थे । उन वृक्षों से प्रजा जनो के लिये सब प्रकार की वृत्तियों का उपभोग हो जाता है ॥२०॥२१॥२२॥

चतयति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः ।

ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात् ॥२३॥

रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ।

विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना ॥२४॥

प्रणश्यति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसज्जिताः ।

ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्राता मंथुनोद्भवाः ॥२५॥

• अपि व्यापति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।

प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसज्जिताः ॥२६॥

वृक्षाणि ते प्रसूयते फलान्याभरणानि च ।

तेष्वेव जायते तासां गघवर्णरसान्वितम् ॥२७॥

अमाक्षिक महावीर्यं पुटकेपुटके मधु ।

तेन ता चतयति स्म सुखमायुः सदैव हि ॥२८॥

रहष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजा वै विगतज्वराः ।

ततः कालातरेणैव पुनर्लोभावृतास्तु ताः ॥२९॥

येता युग के प्रारम्भ में प्रजा के जीव उनको व्यवहार में लाया करते थे । फिर अधिक समय के पश्चात् उनके ही विपर्यय हो जाने से उस समय में राग और लोभ के स्वरूप वाला भाव आकस्मिक उत्पन्न हो जाया करता है । उस समय में उत्पन्न होने वाले उनके उस विपर्यय से वे गृह की सजा वाले वृक्ष सम्पूर्ण नष्ट हो जाते हैं । इसके अनन्तर उन सब के नष्ट हो जाने पर मंथुनोद्भव सब विषेय रूप से भ्रान्त होते हुए सत्य के अभिध्यान करने वाले पुनः उसी निधि का ध्यान किया करते हैं और उनके ये गृहों की सजा वाले वृक्ष प्रादुर्भूत हुए थे ॥२३॥२४॥२५॥२६॥ वे सब वस्त्रों का, फलों का और प्राभूषणों का प्रभव किया करते हैं । उनमें ही उनके गन्ध वर्ण और रस से युक्त बिना ही मशियों का महान् रीब पाना मधु प्रत्येक पुटक में उत्पन्न हो

जाता है । वे सब उसको बरताव में लाते हैं अर्थात् उनका उपभोग किया करते हैं जिससे उन्हें पूर्ण सुख प्राप्त होता है और सदा ही धायु प्राप्त होती है ॥२७॥२८॥ उस सिद्धि से वे अत्यधिक हृष्ट-पुष्ट होकर सब प्रकार के दुःखों से रहित हो जाते हैं । फिर कुछ समय के पश्चात् ही वे फिर लोभ से धावून हो जाया करते हैं ॥२९॥

वृक्षास्तान्पयंगृह्णन्ति मधु वा माक्षिकं यत्नात् ।
 तासां तेनोपचारेण पुनर्लोभकृतेन वै ॥३०॥
 प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्प वृक्षाः क्वचित्क्वचित् ।
 तस्याभेवस्त्वसिष्टायां सिद्ध्यां कालवशात्तदा ॥३१॥
 आवर्तिनात्तु त्रेतायां द्वंद्वान्यभ्युत्थितानि वै ।
 शीतवर्षा तपस्तीव्रस्ततस्ता दुःशिताः भृशम् ॥३२॥
 द्वंद्वः संपीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु ।
 कृतद्वंद्वप्रतीघाताः वेतनानि गिरी ततः ॥३३॥
 पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिवेता अथावसन् ।
 यथायोगं यथाप्रोति निवेतेष्वयसन्पुनः ॥३४॥
 कृत्वा द्वंद्वोपघातास्तान्वृत्पुष्यायम नितयन् ।
 नष्टेषु मधुना मार्घं यत्नवृक्षेषु वै तदा ॥३५॥

गुफाग्री में अपने गृह बनाये थे अर्थात् पर्वतों का अपना आश्रय बनाया था ॥३३॥ इसके पहिले वे बिना ही आश्रय वाले स्वेच्छा चारी थे और चाहे जहाँ रहा करते थे किन्तु फिर वे यथायोग प्रेम पूर्वक निकेतनो मे वास करने लगे थे ॥३४॥ पर्वतों की गुहाओं में अपने घर बनाकर धर्पातपादि द्वन्द्वों का तो उन्होंने प्रतिकार कर लिया था किन्तु अब उन्हें अपने निर्वाह करने की चिन्ता उत्पन्न हो गई थी क्योंकि वे समस्त वृक्ष तो मधु के साथ ही उस समय मे नष्ट हो गये थे ॥३५॥

विवादव्याकुनास्ता वै प्रजास्तृष्णाश्रुधादिताः ।
ततः प्रादुर्बुभौ तामां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ॥३६॥
घातार्याः साधिकाप्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः ।
तासां वृष्ट्युदकादीनि ह्यभवन्निम्नगानि तु ॥३७॥
अभवन्वृष्टिसंतत्मा स्रोतस्थानानि निम्नगाः ।
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने ॥३८॥
ये पुनस्तदपा स्तोकाः पतिताः पृथिवीतले ।
अपा भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् ॥३९॥
अमाल्पकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
श्रुतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे ॥४०॥
प्रादुर्भूतानि चंतानि वृक्षजात्यौषधानि च ।
तेनोपधेन वर्तते प्रजास्त्रेता युगे तदा ॥४१॥
ततः पुनरभूतासां रागो लोभश्च सर्वशः ।
अवश्यं भाविनार्थेन त्रेतायुगवदोन च ॥४२॥
ततस्ताः पर्यगृह्यन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।
वृक्षगुल्मीपधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम् ॥४३॥

उस समय प्रजा भूख, प्यास से दुःखित होकर अनेक विवादों मे व्याकुल हो गई थी । इसके अनन्तर फिर त्रेता युग मे उनको मिट्टि का प्रादुर्भाव हुआ था ॥३६॥ अब उनको निर्वास का साथन एक समय

वृष्टि हो गई थी । उनकी वृष्टि के जल निम्न स्थल की ओर जाने वाले हो गये थे ॥३७॥ वर्षा के होने से स्रोतो के जो स्थान थे वे सब नदियां होकर बहने लगी थी । इस प्रकार से इस द्वितीय वृष्टि के सर्ग में नदियां प्रवृत्त हुई थी ॥३८॥ ये स्रोतो के जत्र इस भूमितल पर गिरे तो जल का ओर पृथ्वी के सम्पर्क होने से उस समय में वीहि, माप और गोधूम आदि चोदह प्रकार की औषधियां उत्पन्न हुई थी ॥३९॥ ये थोड़े ही कर्षण वाली थीं अर्थात् इनके लिए अधिक भूमि की जुताई आवश्यक नहीं थी । ये बीजों के कारण से भी रहित थीं अर्थात् ये बोई नहीं गई थीं । ऐसी ये ग्राम्य चोदह प्रकार की औषधियां थीं । ऋद्धियां तथा वृक्ष भी उत्पन्न हुए थे जो ऋतुओं के फल एवं पुष्प देने वाले थे ॥४०॥ इस प्रकार से ये वृक्ष जाति की औषधियां प्रादुर्भूत हुई थी और उस समय त्रेता युग में इन्हीं औषधों से प्रजा जन अपना निर्वाह किया करते थे ॥४१॥ इसके अनन्तर फिर उन प्रजाओं में सब प्रकार का राग और लोभ उत्पन्न हो गया था । त्रेता युग में होने वाले इस प्रयोजन के कारण से फिर उन्होंने अपने बल के अनुसार नदी, क्षेम, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और औषधियों को जवर्दस्ती ग्रहण कर लिया था । ॥४२॥४३॥

विपर्ययेण औषध्यः प्रनष्टास्ताश्चतुर्दश ।

मत्वा घरा प्रविष्टास्ता इत्यौषध्यः पितामहः ॥४४॥

दुदोह गां प्रयत्नेन सर्वभूतहिताय वै ।

तदाप्रभृति औषध्यः फालकृष्टास्त्विदस्ततः ॥४५॥

वार्ता कृषि समायाता वतुं कामाः प्रयत्नतः ।

याता वृत्तिः समास्याता कृषिकामप्रयत्नतः ॥४६॥

अन्यथा जीवित तासा नास्ति त्रेतायुगात्यये ।

हस्तोद्धवा ह्यपश्चव भवति बहुशस्तदा ॥४७॥

तत्रापि जगृहुः सर्वे चान्योन्य क्रोधयुच्छिद्रताः ।

सुतदारधनाद्यास्तु बलाद्युगबलेन तु ॥४८॥

मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः ।

ससर्ज क्षत्रियास्त्रातुं क्षतात्कमलसंभवः ॥४६॥

ये चौदह प्रकार की औपधियाँ विपर्यय होने के कारण नष्ट हो गई थीं । पितामह ने यह मान कर कि ये औपधियाँ पृथ्वी में प्रविष्ट हो गई हैं इस भूमि का ममस्तन प्राणियों के हित का सम्पादन करने के लिए प्रयत्न पूर्वक दोहन किया था । तब से लेकर ये औपधियाँ हल से जोती हुई भूमि में कृषि के स्वरूप से प्रकट हुई थी और निर्वाह की दृष्टि से कृषि धर्म यह कहलाया था ॥४४॥४५॥४६॥ इस कृषि धर्म के बिना अन्य वित्तों भी प्रकार से त्रेता युग के अत्यय में उनका जीवन नहीं रहता था । उग ममय में जब की प्राप्ति हाथ से भूमि का खनन करने ही होनी थी अर्थात् प्रायः कुँए आदि खोदकर जब प्राप्त करते थे ॥४७॥ उस समय में भी सब लोग युग के प्रभाव से सुत, स्त्री और धन प्रादि का बल पूर्वक क्रोध के आवेश में आकर ग्रहण कर लेते थे । ॥४८॥ विभु ने जब ऐसी दशा को देखा तो मर्यादा की वायम रगने के लिए कि कोई परम्पर में भगवा न हो, उस दुःस से बचाव करने के लिए ब्रह्माजी ने क्षत्र (युग) से त्राणार्थ क्षत्रियों का अर्थात् क्षत्रिय वर्ण का गृहण किया था ॥४९॥

यर्णाश्रमप्रतिष्ठा च सारं स्वेन तेजसा ।

वृत्तेन वृत्तिना वृत विश्वात्मा निर्ममे स्वयम् ॥५०॥

यज्ञप्रवर्तनं चैव त्रेतायामभवत्क्रमात् ।

पशुयज्ञं न सेवते केचित्तात्रापि सुयताः ॥५१॥

यलाद्विष्णुस्तदा यज्ञमकरोत्सर्वदृक् क्रमान् ।

द्विजास्तदा प्रजसति ततस्त्र्याह्निकं मुने ॥५२॥

द्वापरेष्वपि वर्तते मतिभेदात्तदा नृणाम् ।

मनसा धर्मणा याचा शृङ्गाद्वार्ता प्रमिष्यति ॥५३॥

तदा तु मयंभूतानां वायव्यदेशवशात्प्रमात् ।

सोमो भृतियंणिभुदं तत्त्वानामपिनिधयः ॥५४॥

वेदशाखाप्रणयनं धर्माणि संकरस्तथा ।
 वर्णाश्रमपरिध्वंसः काम द्वेषौ तथैव च ॥५५॥
 द्वापरे तु प्रवर्तन्ते रागो लोभो मदस्तथा ।
 वेदो व्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥५६॥
 ऐको वेदश्चतुष्पादः स्त्रेतास्विह विधीयते ।
 संक्षयादायुपश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु सः ॥५७॥

ब्रह्माजी ने अपने ही तेज से विश्वात्मा ने स्वयं अपने धर्म से जीवनोपाय के द्वारा वर्णों और आश्रमों की प्रतिष्ठा का निर्माण किया था ॥५०॥ त्रेता युग में क्रम से यज्ञों का प्रवर्तन हुआ था । उस समय में भी कुछ सुन्नत लोग पशु यज्ञ को नहीं किया करते थे ॥५१॥ उस समय में सबके दृष्टा विष्णु बल पूर्वक क्रम से यज्ञ किया था । हे मुने ! तब से द्विजगण भी महिसक यज्ञ की प्रशंसा करते हैं ॥५२॥ द्वापर युग में भी मनुष्यों के मति-भेद अर्थात् विचारों के भेद रहते थे । मन, बर्मे वचन के द्वारा बड़े बड़े से वार्ता की प्रसिद्धि होती है ॥५३॥ उस समय में समस्त प्राणियों के शारीरिक क्लेश के वश से, क्रम से लोभ, भृति, वणिग्युद्ध तत्त्वों का विशेष निश्चय न होना, वेदों की शाखाओं का प्रणयन, धर्मों का सङ्कट, वर्णों और आश्रमों का नाश, काम, द्वेष ये सब राग, लोभ और मद द्वापर युग से प्रवृत्त होने हैं । द्वापर के आदि काल में व्यास मुनि ने द्वारा वेद को चार भागों में विभक्त किया जाता है । ॥५४॥५५॥५६॥ यहाँ पर त्रेता युग में चतुष्पाद एक ही वेद था जिसका कि अध्ययन किया जाता था । आयु की सीलता होने के कारण द्वापर में उसका पृथक् विभाग करके अलग २ किया जाता है ॥५७॥

अपिपुत्रैः पुनर्भेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमः ।
 मत्प्रशङ्काविन्यासैः स्वरवणविपर्ययैः ॥५८॥
 सहिता ऋग्यजु साम्ना संहन्यते मनोर्षिभिः ।
 सामान्या वैकृताश्चैव द्रष्टुमिस्तैः पृथक्पृथक् ॥५९॥

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मंत्रप्रवचनानि च ।
 अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वं केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः ॥६०॥
 इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते कालमोरवात् ।
 ब्राह्मं पाद्यं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥६१॥
 भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमनः परम् ।
 आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च ॥६२॥
 वामनाख्यं ततः कूर्मं मात्स्यं गार्हपत्यमेव च ।
 स्कान्दं तथा च ब्रह्माण्डं तेषां भेदः प्रकथ्यते ॥६३॥
 लैङ्गमेकादशविधं प्रभिन्नं द्वापरे शुभम् ।
 मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥६४॥

भिन्न मति वाले मनीषी ऋषियो के पुत्रों के द्वारा ऋक्, यजु और साम की संहिताओं का मन्त्र, ब्राह्मण के विन्यासों के द्वारा तथा स्वर वर्ण विपर्ययो के द्वारा विमान किया जाता है ॥५८॥५९॥ विधि, प्रज्ञप्ता और मन्त्रों का विनियोष करने वाला ब्राह्मण, क्रिया के प्रति-पादन करने वाले कल्प सूत्र और मन्त्र प्रवचन मीमांसा न्याय सूत्र किए थे । अन्य उनके न्यूनता के बोधक तथा कुछ उनके प्रत्यवस्थित थे । ॥६०॥ इतिहास और पुराण भी अनेक कल्पों के भेद स्वरूप काल के गौरव होने से भेद युक्त हो गये थे । ब्राह्म, पाद्य, वैष्णव, शैव, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय और इनसे आये आग्नेय, ब्रह्म वैवर्त, लिंग, वाराह, वामन, कूर्म, मात्स्य, गार्हपत्य, स्कान्द और ब्रह्माण्ड ये उनके (पुराणों के) भेद कहे जाते हैं ॥६१॥६२॥६३॥ परम कल्याण करने वाला लैङ्ग पुराण एकादश प्रकार का द्वापर में विभक्त हुआ है । प्रथम वेद तथा पुराणों के विभाजक मुख्य ऋषियों को बतलाते हैं—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा ये उनके नाम हैं ॥६४॥

यमापस्तवंसंवर्तिः कात्यायनवृहस्पती ।

पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौ तमो ॥६५॥

शातातपो वसिष्ठश्च एवमाद्यैः सहस्रशः ।
 अवृष्टिर्मरणं चैव तथा व्याध्याद्यपद्रवाः ॥६६॥
 वाङ्मनः कर्मजैर्दुःखैर्निर्वदो जायते ततः ।
 निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥६७॥
 विचारणाञ्च वैराग्यं वैराग्यादोपदशनम् ।
 दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसंभवः ॥६८॥
 एषा रजस्तमोगुणैः कृतिर्वै द्वापरे स्मृता ।
 आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते ॥६९॥
 द्वापरे व्याकुलीभूत्या प्रणश्यति कलौ युगे ॥७०॥

यम, आपस्तम्ब, सर्वा, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ आदि इन प्रकार से सहस्रो ऋषि हुए हैं। अब यह बताते हैं कि द्वापर युग में वैराग्य बिना ज्ञान के हठ नहीं होता है और वह भी दोष दर्शन के बिना नहीं होता है। वह दोषों का दर्शन दुःख के बिना नहीं होना है। वर्षा का न होना, मौत का होना, रोगों का हो जाना, चोर व्याघ्रादि तथा नृप आदि के द्वारा उपद्रुन होना आदि कारणों से वाचिक, कायिक और मानसिक दुःख होते हैं और फिर दोष दर्शन होकर निर्वेद उत्पन्न हो जाया करता है। निर्वेद के होने से उन प्राणियों को दुःखों से छुटकारा पाने का विचार उत्पन्न हुआ करता है ॥६५॥६६॥॥६७॥ ऐसी विचारणा जब होती है तो वैराग्य हो जाता है और फिर दोष दिखाई देने लगते हैं। द्वापर में इस तरह दोषों के दर्शन से ही ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। कृतयुग और त्रेता में स्वाभाविकी ज्ञान-प्रवृत्ति होती है। द्वापर में जो ऐसी वृत्ति होती है वह रजोगुण और तमोगुण से युक्त कही गई है। आद्य कृतयुग में जो धर्म है वह त्रेता में प्रवृत्त हुआ करता है। द्वापर में वह व्याकुली भूत हो जाता है और बलियुग में नष्ट ही हो जाया करता है ॥६८॥६९॥७०॥



चारों युगों का परिमाण वर्णन

तिष्ठे मायामसूया च वध चैव तपस्विनाम् ।
 साधयति नरास्तत्र तमसा व्याकुलेन्द्रिया ॥१॥
 कलौ प्रमादको रोगः सतत क्षुब्धानि च ।
 अनावृष्टिभय घोर देशाना च विपर्ययः ॥२॥
 न प्राणाप्य श्रुतेरस्ति नृणां चाधर्मसेवनम् ।
 अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपालचेतसः ॥३॥
 अनृत द्रवते लुब्धास्तिष्ठे जानाश्च दुष्प्रजाः ।
 द्रिष्टेर्दुरधीतेश्च दुराचारैर्दुरागमैः ॥४॥
 विप्राणा कर्म दोषेण प्रजाना जायते भयम् ।
 नाधीयन्ते तदा वेदान्त यजति द्विजातय ॥५॥
 उत्सीदति नराश्चैत्र क्षत्रियाश्च विश क्रमात् ।
 शूद्राणा भ्रमयोगेन सवधो ब्राह्मणैः सह ॥६॥
 भवतीह कलौ तस्मिञ्शयनासनभोजनैः ।
 राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयति ते ॥७॥

इस अध्याय में कलियुग में उत्पन्न होने वाले धर्मों का वर्णन करके कृतारम्भ और कल्प मन्वन्तर की व्याख्या की जाती है । शक्र ने कहा—कलियुग में तमोगुण के प्रभाव से व्याकुल इन्द्रियो वाले मनुष्य माया, असूया और तपस्वियों का वध किया करते हैं ॥१॥ कलियुग में प्रमाद, रोग, क्षुधा और भय, घोर वृष्टि के अभाव का डर, देशों का विपर्यय होता है तथा श्रुति की प्रामाणिकता नहीं मानी जाती है एवं अधर्म का सेवन किया करते हैं । मनुष्य कलियुग में अधार्मिक, आचारहीन, महान् क्रोधी और बहुत छोटे दिल वाले होते हैं ॥२॥३॥ कलियुग में उत्पन्न होने वाली प्रजा अत्यन्त लोभी और मिथ्या भाषी होती है । उनकी बुरी-बुरी भावनाएँ होती हैं, दूषित अध्ययन करते हैं, कुत्सित आचार वाले होते हैं, तथा दोष युक्त ज्ञान वाले दूषा करते हैं ॥४॥

विप्रों के ऐसे दूषित कर्म होते हैं कि समस्त प्रजाओं को भय होता है । द्विजानि लोग बलि वान में न तो वेदों का अध्ययन किया करते हैं और न वे यजन ही करते हैं ॥१॥ क्षत्रिय और वैश्य सभी मनुष्य कर्म से उत्सन्न हो जाते हैं । शूद्र लोगों के मन्त्रोपदेश से बलियुग में ब्राह्मणों के साथ दायन, आसन और भोजन में सम्बन्ध होता है । राजा लोग बहुधा शूद्र होते हैं जो कि ब्राह्मणों को बाधित किया करते हैं ॥१॥ ॥७॥

भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायते प्रजासु वै ।
 शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥८॥
 राजवृत्तिस्थिताश्चोराश्चोराचाराश्च पार्थिवाः ।
 एकपत्न्यो न शिष्यति बधिष्यत्यभिसारिकाः ॥९॥
 वर्णाश्रमप्रतिष्ठानो जायते नृपु सर्वतः ।
 तदा स्वल्पफला भूमिः क्वचिच्चापि महाफला ॥१०॥
 अरक्षितारो हर्तारः पार्थिवाश्च शिलाशन ।
 शूद्रा वै ज्ञानिनः सर्वे ब्राह्मणेरभिवदिताः ॥११॥
 अक्षत्रियाश्च राजानो विप्रा शूद्रोपजीविनः ।
 आसनस्था द्विजान्दृष्ट्वा न चलत्यल्पबुद्धयः ॥१२॥
 ताडयति द्विजेन्द्राश्च शूद्रा वै स्वल्पबुद्धयः ।
 आस्ये निवाय वै हस्तं कर्णं शूद्रस्य वै द्विजाः ॥१३॥
 नीचस्येव तदा वाक्यं वदति विनयेन तम् ।
 उचवासनस्यान् शूद्राश्च द्विजमये द्विजर्षभ ॥१४॥

व्यभिचार मूलता के कारण भ्रूण हत्या (गर्भ नाश) और विक्रान्त वीर पुरुषों की हत्या प्रजा में उत्पन्न होनी है । जो शूद्र वर्ग के मनुष्य हैं वे ब्राह्मणों के समान आचार किया करते हैं और बलियुग में ब्रह्मण शूद्रों की आचार किया करते हैं ॥८॥ राजा के यही रहने वाले व्यवस्थापक चोरी के समान वृत्ति वाले होंगे और राजा लोग स्वयं चोरी के तुल्य आचार वाले होने हैं । पत्नी व्रत और पाति व्रत नाम मात्र को

भी शेष मही रहेगा और सर्वत्र अभिसरण करने वाली व्यभिचारिणी नारिया होती है ॥६॥ मनुष्यो मे सभी और वर्णाश्रमो का प्रतिष्ठान हो जाता है । उस समय कलियुग मे जब कि ऐसी दशा उपस्थित होती है तो भूमि मे उपज बहुत ही कम होती है कही पर ही महान् फलो वाली हुमा करती है ॥१०॥ हे शिलाशन ! राजा लोग रक्षा न करके हरण करने वाले होते हैं । शूद्र वर्ण वाले सब और जानी होते हैं और ब्राह्मण उनकी वन्दना करने वाले दिखाई देते हैं ॥११॥ अक्षत्रिय राजा लोग हो जाते हैं तथा ब्राह्मण शूद्रो से उपजीवी हुमा करते हैं । ब्राह्मणों को देखकर भी अपने आसनो पर सस्थित बने रहा करते है ॥१२॥ स्वल्प बुद्धि वाले शूद्र लोग द्विजेन्द्रो को ताड़ना देते हैं । द्विज लोग शूद्र के मुख पर हाथ और कान रखकर चाटुकारिता करते है ॥१३॥ हे द्विजों मे श्रेष्ठ ! उस समय मे द्विजो के मध्य मे शूद्रो के प्रति जो कि उच्च आसनो पर स्थित होते हैं नीच की भाति बहुत ही विनय के साथ ब्राह्मण लोग वचन बोला करते है ॥१४॥

ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालयशेन तु ।
 पुष्पैश्च वासितैश्चैव तथान्यैर्मंगलैः शुभैः ॥१५॥
 शूद्रानभ्यर्चयंत्यल्प श्रुतभाग्यवलान्विताः ।
 न प्रेक्षते गर्विताश्च शूद्रा द्विजवरान् द्विज ॥१६॥
 सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठति वै द्विजाः ।
 वाहनस्थान् समावृत्य शूद्राञ्छूद्रोपजीविनः ॥१७॥
 सेवते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवंति स्तुतिभिः कलौ ।
 तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 यतयश्च भविष्यति बहवोस्मिन्कलौ युगे ।
 पुरुषाल्पं बहुछीकं युगांते समुपस्थिते ॥१९॥
 निन्दन्ति वेदविद्यां च द्विजाः कर्माणि वं कलौ ।
 कलौ देवो महादेवः शङ्करो नीललोहितः ॥२०॥

प्रकाशते प्रतिष्ठायं धर्मस्य विक्रानाकृतिः ।

ये त विप्रा निवेद्यते येन केनापि शङ्करम् ॥२१॥

कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयाति परमं पदम् ।

श्यापदप्रबलत्वं च गवा चैव परिक्षयः ॥२२॥

कलियुग में वास के प्रभाव के कारण राजा सब कुछ ज्ञान राखने भी हिंसा नहीं करता है । अल्प शास्त्र का ज्ञान, छोटा भाग्य और कम बल वाले लोग पुष्पों, सुगन्धित पदार्थों और अन्य अनेक मङ्गल एवं शुभ पदार्थों के द्वारा शूद्रों का प्रभ्यर्चन किया करते हैं । हे द्विज ! शूद्र ऐसे घमण्डी हो जाया करते हैं कि वे द्विजवरो की ओर देखते भी नहीं हैं ॥१५॥१६॥ द्विजगण जो कि शूद्रों से ही उपजीवित होते हैं उनकी सेवा का अवसर देखकर बाहुनों पर स्थित शूद्रों को घेर कर उनके द्वार पर खड़े रहा करते हैं ॥१७॥ वहाँ पर कलियुग में ब्राह्मण लोग उन शूद्रों की सेवा करते हैं । और विविध स्तुतियों के द्वारा उनका स्तवन किया करते हैं । द्विजोत्तम गण अपने तप और यज्ञ के फलों का विक्रय किया करते हैं ॥१८॥ कलियुग में बहुत लोग यति के वेप धारण करने वाले सम्प्राप्ती हो जाया करते हैं और युगान्त के उपस्थित होने पर पुरुष तो कम होंगे और स्त्रियाँ अधिक संख्या में हो जायेंगी ॥१९॥ द्विज लोग वेदों की विद्या और वैदिक कर्मों की कलियुग में निन्दा करते हैं और इस कलि काल में नील लोहित शङ्कर महादेव ही देव माने जाते हैं ॥२०॥ वह शङ्कर भी उच्छिन्न-भिन्न लिङ्ग के स्वरूप वाले धर्म की प्रतिष्ठा के लिये प्रकाशित होते हैं । जिसको कि विप्र लोग जिम किसी प्रकार से सेवन किया करते हैं और शङ्कर की जैसी तैसी सेवा के द्वारा ही वे लोग कलियुग के दोषों के ऊपर विजय प्राप्त कर परम पद को प्राप्त हो जाते हैं । कलियुग में श्यापदों की प्रबलता होती है और गोघो का परिक्षय होता है ॥२१॥२२॥

साधूनां विनिवृत्तिश्च वेद्या तस्मिन् युगक्षये ।

तदा सूक्ष्मो महोदको दुर्लभो दानमूलवान् ॥२३॥

चातुराश्रमशैथिल्ये धर्मः प्रतिचलिष्यति ।
 अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ॥२४॥
 युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ।
 अट्टशूला जनपदाः शिवशूला श्रतुष्पयाः ॥२५॥
 प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे ।
 क्षित्रवर्षी तदा देवो यदा प्राहुर्युगक्षयम् ॥२६॥
 सर्वे वणिग्जनाश्चापि भविष्यत्यधमे युगे ।
 कुशीलचर्याः पापण्डैर्वृथारूपैः समावृताः ॥२७॥
 बहुयाजनको लोको भविष्यति परस्परम् ।
 नाभ्यादृतक्रूरवाक्यो नार्जवी नानसूयकः ॥२८॥
 न कृते प्रातिकर्ता च युगक्षीणो भविष्यति ।
 निदकाश्चैव पतिता युगात्तस्य च लक्षणम् ॥२९॥

उस कलियुग में सच्चे और भ्रष्टे साधुओं का अभाव हो जाता है । कलिकाल में दान के मूल वाला सूक्ष्म भी ऐश्वर्य रूप दुर्लभ हो जाता है ॥२३॥ चारों ग्रहाचर्चादि आश्रमों की शिथिलता हो जाने पर धर्म चला ही जायेगा और राजा लोग किसी भी प्रकार की रक्षा न करके केवल अपने ही बलिभाग के हरण करने वाले हो जायेंगे ॥२४॥ ये राजा लोग युगांत में केवल अपनी ही रक्षा करने में परायण रह जायेंगे । समस्त देश घट्टाकर अर्थात् मन्त्रों के विक्रय करने वाले होंगे और चारों आश्रमों वाले ब्राह्मण वेद का विक्रय करने वाले हो जायेंगे ॥२५॥ कलियुग में स्त्रियाँ अपने बेटादि की सुगन्धा करके भग्न का विषय करने वाली हो जायेंगी । जिस समय युग क्षय होता है उस समय मेंच चित्रवर्षी अर्थात् वही-वही पर ही मुवृष्टि के करने वाले हो जायेंगे ॥२६॥ इस अंशम कलियुग में समस्त वणिक् लोग भी कुत्सित आचरण वाले और धर्म के दम्भ से परिपूर्ण अवैदिक मार्गों से युक्त हो जायेंगे ॥२७॥ सभी लोग परस्पर में अभ्यादृत क्रूर वाक्य बोलने वाले प्राप्त या जनक हो जायेंगे । इन सबका स्वभाव तथा व्यवहार कष्टमय

और निन्दा से परिपूर्ण हो जायगा । कोई भी किसी के किये हुए उपकार का प्रत्युपकार नहीं करेगा । सभी निन्दक और पतित स्वरूप वाले हो जायेंगे, यही इस युगान्त का लक्षण होता है ॥२८॥२९॥

नृपशून्या वसुमती न च धान्यघनावृता ।
मण्डलानि भविष्यन्ति देशेषु नगरेषु च ॥३०॥
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुधरा ।
गोप्ताश्चाप्यगोप्ताः संभविष्यन्त्यशासनाः ॥३१॥
हर्तारः परवित्तानां परदारप्रघर्षकाः ।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यघमाः साहसप्रियाः ॥३२॥
प्रनष्टचेष्टनाः पुंस मुक्तकेशाश्च शूलिनः ।
जनाः षोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥३३॥
शुक्लदताजिनाक्षाश्च मुन्डाः कापायवाससः ।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगाते समुपस्थिते ॥३४॥
सस्यचोरा भविष्यति दृढचैलाभि लापिणः ।
चोराश्चोरस्वहर्तारो हतुंहर्ता तथापरः ॥३५॥

कलियुग में यह भूमि एक ऐसा भी समय उपस्थित होगा जबकि रक्षक नृपो से रहित हो जायगी और इसमें धन-धान्य का एकदम अभाव हो जायगा । देशों में और नगरों में जनो से शून्य स्थल हो जायेंगे ॥३०॥ यह सम्पूर्ण पृथ्वी अति अल्प फल वाली और थोड़े जल वाली हो जायगी । जो इसकी रक्षा करने वाले होंगे वे सब अरक्षक हो जायेंगे और कोई भी भूमि पर शासन करने वाला नहीं रहेगा ॥३१॥ प्रायः लोग दूसरों के घनों के अपहरण करने वाले, दूसरों की स्त्रियों के प्रघर्षण करने वाले, काम वासना से परिपूर्ण तथा दुष्ट आत्मा वाले, नीच कर्म करने वाले तथा साहस पूर्वक दुष्कर्म में प्रवृत्त होने वाले हो जायेंगे ॥३२॥ कलियुग में बहुधा सभी बिना उद्योग वाले, निर्लज्ज, ध्याधिग्रस्त तथा पण्य स्त्रियों के साथ सम्पर्क रखने वाले और सोलह वर्ष की अवस्था वाले लोग युगभय में समुत्पन्न होंगे ॥३३॥ शुक्ल दन्त,

मृग चर्म तथा रुद्राक्ष धारण करने मुण्डित हो कापाय वस्त्र धारण करने वाले यति वेपधारी शूद्र युगान्त के समुपस्थित होने पर धर्म का आचरण करेंगे ॥३४॥ दृढ चैल (वस्त्र) के अभिलाषा रखने वाले सस्य (धान्य), का चोरी करने वाले होंगे और चोर चोरो के ही धन का हरण करने वाले तथा उस हरण करने वाले का कोई अन्य हर्ता होगा ॥३५॥

योग्यकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ।
कीटमूपकसर्पाश्च धर्पयिष्यन्ति मानवान् ॥३६॥
सुभिक्ष क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तदा ।
कौशिकी प्रतिपत्स्यन्ते देशान्धुद्भयपीडिताः ॥३७॥
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा ।
दृश्यते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ॥३८॥
उत्सीदति तदा यज्ञा केवलाधर्मपीडिताः ।
कापायिणोप्य निग्रन्थाः कापालोबहुलास्त्वह ॥३९॥
पेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे ।
वर्णाश्रमाणा ये चान्ये पापण्डाः परिपन्थिनः ॥४०॥
उत्पद्यन्ते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ।
अधीयन्ते तदा वेदाञ्छूद्रा धर्मार्थकोविदा ॥४१॥
यजते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः ।
स्त्रीयालगोवर्धं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ॥४२॥

योग्य एवं समुचित कर्मों के समाप्त प्राय हो जाने पर लोग बहुधा क्रिया हीन होंगे और कीट-मूपक तथा सर्प मनुष्यों का धर्पण करेंगे ॥३६॥ सुभिक्ष (सच्चा सम्बत्) कुशल, आरोग्य और शक्ति ये सब उस समय में अत्यन्त दुर्लभ हो जायेंगे और लोग भूय के भय से उत्पीडित होकर अन्य देशों को तथा कौशिकी नाम वाली नदी की ओर भाग कर जायेंगे ॥३७॥ दुःखों से व्याप्त एवं घिरे हुए मानवों की उस समय तो धर्म की अन्तिम आयु होगी । समस्त वेद कनिष्ठ में दिखाई देंगे और न भी दिखाई देंगे ॥३८॥ उस समय में यज्ञ-याग आदि समाप्त हो

होमे और बहुत से रोग देहो में बस जायेंगे ॥४३॥ पूर्णतया अधर्म का ही अभिनिवेश सबमें हो जाने के कारण कलियुग में तमोगुण का ही व्यवहार प्रताया गया है । उस समय में प्रजाजनों में ब्रह्महत्या आदि महा पाप प्रवृत्त हो जाते हैं ॥४४॥ इसी कारण से कलियुग के प्राप्त होने पर मनुष्यों की आयु, बल और रूप सब क्षीण हो जाया करते हैं । उस समय में इतनी ही विशेषता है कि मनुष्यों को अत्यन्त अल्प काल में ही सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं ॥४५॥ वे द्विज श्रेष्ठ परम धन्य एवं महान् भाग्यशाली हैं जो धर्म का आचरण करेंगे । जो लोग श्रुति एवं स्मृति से प्रतिपादित धर्म का किसी की बुराई न करते हुए करते हैं वे अत्यन्त बड़भागी हैं ॥४६॥ जो कृतयुग में दश वर्ष तक धर्माचरण किया जाता है वह श्रेष्ठा में एक वर्ष में ही सिद्धि प्रद धर्म होता है । पृथ्वी द्वारा में एक मास में फलप्रद होता है और वनेश के साथ पण्डित उसी धर्म का आचरण करके कलियुग में एक ही दिन में फल प्राप्त कर लेता है ॥४७॥ यह कलियुग की दशा का वर्णन किया गया है । अब आप उसका सन्ध्यांश मुझमें समझ लो । युग-युग में सिद्धियों के तीन पादों का ह्रास होता है ॥४८॥ युग के स्वभाव वाली सन्ध्या पाद से न्यून यहाँ प्रतिष्ठित होती है । घटने प्रशो में सन्ध्या के स्वभाव पाद न्यून हुआ करते हैं ॥४९॥

एवं सन्ध्याशके वाले संप्राप्ते तु युगांतिके ।
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भूतानां निधनोत्थितः ॥५०॥
गोत्रेऽस्मिन्वं चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिश्च्यते ।
मानवस्य तु सोमेन पूर्व स्वायमुवेन्तरे ॥५१॥
समा. स विंशतिः पूर्णा पयंटन्वं वसुन्धराम् ।
अनुत्पन्नं स वै सेना सवाजिरथकुञ्जराम् ॥५२॥
प्रगृहीतायुधंविप्रैः पतशोघ सहस्रशः ।
स तदा तैः परिवृतो म्नेच्छान् हनि सहस्रशः ॥५३॥

स हत्वा सर्वशश्चैव राजस्ताञ्शूद्रयोनिजान् ।
 पाखडांस्तु ततः सर्वाग्निः शेष कृतवान् प्रभुः ॥५४॥
 नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वतः ।
 वरुणव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः ॥५५॥
 प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामतकृत्स तु ।
 अधृष्यः सर्वभूतानां चचात्साय वसुन्धराम् ॥५६॥
 मानवस्य तु सोशेन देवस्येह विजज्ञिवान् ।
 पूर्वजन्मनि विष्णोस्तु प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥५७॥
 गोत्रतो वै चन्द्रमसः पूर्ण कलियुगे प्रभुः ।
 द्वात्रिंशोऽभ्युदिते वर्षे प्रजातो विशतिः समाः ॥५८॥
 विनिघ्नन्सर्वभूतानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
 कृत्वा बीजावशेषा तु पृथिवी क्रूरकर्मणः ॥५९॥

इस प्रकार से कलियुग का सन्ध्याशक काल उपस्थित होगा उस समय में युगातिक काल उपस्थित होने पर उन असाधुओं का शासन करने वाला और प्राणियों के निघ्न से उत्पन्न अर्थात् उत्पन्न मनु पुत्र के अर्वा से सोम क्षर्मा नामक ब्राह्मण के गोत्र में जन्म ग्रहण करेगा जो कि पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रमिति कहा जाता है । ॥५०॥५१॥। वह बीस वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन करता हुआ तथा अश्व, रथ और हाथियों से समन्वित सेना का अनुकर्ण करते हुए तथा संकड़ों सहस्री अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करने वाले विप्रों से पूरुंतया सुमज्जित एवं परिवृत्त होकर हजारों ही म्लेच्छों का हनन करेगा ॥५२॥५३॥ वह समस्त शूद्र योनि में समुत्पन्न समस्त राजाओं का सर्वत्र वध करके जितने भी पापण्डी लोग थे उन सभी को उस प्रभु समाप्त कर देगा ॥५४॥ जो भी पूरुंतया धार्मिक नहीं है उन सब का सभी ओर में वह हनन कर देता है । वरुणों के व्यत्यास (विपर्ष) से जो उत्पन्न होने वाले हैं और जो उनके अनुजीवी हैं उनका हनन करने वाला होगा । उस वनवात् का ऐसा चक्र प्रवृत्त होगा कि वह

सर्वत्र ही म्लेच्छों का अन्त कर देने वाला होगा । वह समस्त प्राणियों के धर्षण करने के अयोग्य होना हुआ इस सम्पूर्ण भूमण्डल में विचरण करने वाला होगा ॥५५॥५६॥ वह पूर्वजन्म में मनुदेव के अश से प्रमिति नाम वाला था । वही वीर्यवान् अब इस भरत खण्ड में पुनः कलियुग के पूर्ण होने पर सोम शर्मा के गोत्र में उत्पन्न हुआ है । जब बत्तीस वर्ष का हो जायगा तो वह बीस वर्ष तक समस्त भूमण्डल पर प्रक्रमण करेगा और हजारों ही दुष्ट प्राणियों का वध करके इस पृथ्वी को क्रूर कर्म करने वालों के बीज से मुक्त कर देगा ॥५७॥५८॥५९॥

परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु ।
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ॥६०॥
गगायमुनयोर्मध्ये स्थितिं प्राप्तः सहानुगः ।
ततो व्यतीते काले तु सामात्यः सहस्रैनिकः ॥६१॥
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छाश्चैव सहस्रशः ।
तत्र सध्याशके काले सप्राप्ते तु युगातिके ॥६२॥
स्थितास्वव्यावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित् ।
अप्रग्रहारततस्ता वै लोभाविष्टास्तु कुत्सनशः ॥६३॥
उपहिसन्ति चान्योन्यं प्रणिपत्य परस्परम् ।
अराजके युगवशात्सशये समुपस्थिते ॥६४॥
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयादिताः ।
व्याकुलाश्च परिभ्रातास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ॥६५॥
स्वान्प्राणाननपेक्षन्तो निष्कारुण्याः सुदुःखिताः ।
नष्टे श्रौते स्मार्तधर्मे परस्परहतास्तदा ॥६६॥

परस्पर में अचानक उत्पन्न होने वाले कोप के निमित्त में वह वृषलों का जो प्रायः अधार्मिक थे साधन करके अर्थात् धान करके गङ्गा और यमुना के मध्य भाग में अपने अनुगों के सहित स्थिति को प्राप्त करेगा । इसके अनन्तर कुछ समय के व्यतीत होने पर वहाँ पर युगा-

नितक सभ्याशक्त काल आ जाने पर वह भन्त्री और सैनिकों के सहित सम्पूर्ण भोक्ष्य राजाओं का और दुष्ट प्राणियों का सहस्रों की सख्या में उत्सादन कर देगा ॥६०॥६१॥६२॥ यह कस्त्रिक भवतार का वर्णन है । इसकी समाप्ति के अनन्तर जो कलियुग का भाग शेष होगा उसमें कहीं-यहीं पर बहुत ही भय प्रजा शेष रह जायगी वह भयादा के बन्धन से दूग्य पूर्णतया लोभादिष्ट लोग हो जायेंगे ॥६३॥ वे सब आपस में विश्वास उत्पन्न करके एक दूसरे का घात किया करेंगे । युव धर्म के प्रभाव से उस समय एक तरह की अराजकता सी हो जायगी और सबको सशय उत्पन्न हो जाया करेगा ॥६४॥ उस समय में सम्पूर्ण प्रजा परस्पर में भय से बहुत ही दुःखित हो जायगी । लोग ऐसे आकुल हो जायेंगे कि वे अपने घर और स्त्रियों का भी त्याग करके इधर-उधर भारे-भारे धूमके ॥६५॥ सम्पूर्ण शीत और स्मार्त नष्ट हो जायगा, लोग अपने प्राणों की भी उपेक्षा करते हुए निदयी और अत्यन्त दुःखित होकर परस्पर में ही मारकाट करेंगे ॥६६॥

निर्मर्षा निराक्रान्ता निःस्नेहा निरपन्थाः ।

नष्टे धर्मे प्रतिहताः ह्रस्वकाः पञ्चविंशका ॥६७॥

हित्वा पुत्राश्च दाराश्च विवादव्याकुलेन्द्रियाः ।

अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दूरतः ॥६८॥

प्रत्यक्षानुपसेवते हित्वा जनपदान् स्वकान् ।

सरित्सागररूपास्ते सेवते पर्वतास्तथा ॥६९॥

मधुमासंभूतफलैर्वर्तयति सुदुःखिताः ।

धीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥७०॥

वह एक ऐसा भोषण समय होगा कि लोग सभी अपने मर्षा का त्याग करके निराक्रान्त, बिना स्नेह वाले और निर्लज्ज हो जायेंगे । धर्म के नष्ट हो जाने पर प्रतिहत होने तथा बंद में बहुत छोटे तथा पञ्चीस वर्ष की आयु वाले रह जायेंगे ॥६७॥ उस समय में लोग विवादों

मे व्याकुल इन्द्रियो बाने होकर अपने पुत्रों और स्त्रियों को भी त्याग देंगे । वृष्टि के न होने से अत्यन्त उत्पीडित होते हुए अपना काम-धन्या छोड़-छोड़ कर दूर-दूर देश के भागों को जाकर खेवन करेंगे तथा अपने देशों को छोड़ देंगे । नदियों के छट तथा सागर और घूनों के सहारे पर पर्वतीय भागों में रहने लगेंगे ॥६८॥६९॥ मनुष्य अत्यन्त दुःखित होकर मधु मांस, वन्द भून और फलों के सहारे से अपना जीवन नियाँह करेंगे और चौर-पत्र, चमड़ा पारण करेंगे तथा बिन्दुन क्रिया हीन एवं परिग्रह से रहित हो जायेंगे ॥७०॥

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सवटं घोरमास्थिताः ।
 एष कष्टमनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्तदा ॥७१॥
 जराव्याधिद्युधाविष्टा दुःखाश्रियेदमानसाः ।
 विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणा ॥७२॥
 साम्यावस्थात्मनो बोधः सवोधाद्धर्मशीलता ।
 अल्पशमयुक्तास्तु कलिनिष्ठा हि वै स्वयम् ॥७३॥
 अहोरात्रात्तदा तामा युगं तु परिवर्तते ।
 चित्तसमोहनं कृत्वा तामा वै मुप्तमत्तरत् ॥७४॥
 भाविनोर्यस्य च यत्रात्ततः तत्तमवर्तते ।
 प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पुनः पुनर्युगे तु वै ॥७५॥
 उपायाः कलिनिष्ठास्तु प्रजाः पार्श्वगुणास्तदा ।
 तिष्ठति चेह ये गिह्या अदृष्टा विचरन्ति च ॥७६॥
 सप्त मण्डपिनिर्द्वयं तत्र ते तु व्यवस्थिताः ।
 ब्रह्मधनविशः सूत्रा बीजाप्यं ये स्मृता इह ॥७७॥

मन में निर्वेद उत्पन्न होने लगेगा । उस वैराग्य से साम्यावस्था का विचार उत्पन्न होगा ॥७२॥ साम्यावस्था के स्वरूप वाले ज्ञान के होने से लोगो में धर्म शीलता का जागरण होगा । उस कलियुग में जो भी बचे-खुचे लोग रह जायेंगे वे अशक्ति मूल वाली शान्ति से युक्त हो जायेंगे ॥७३॥ उस समय में एक ग्रहोरात्र से उन प्रजा जनो का सौष्ट्व हुए प्रमत्त की भाँति सम्मोहन करके यह कलियुग निवृत्त हो जायगा । ॥७४॥ इसके अनन्तर होने वाले अर्ध का कृत युग हो जाता है और पुनः उस कृतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर उन समय में कलियुग में बचे हुए प्रजा जब कृतयुग के होकर उत्पन्न होते हैं जो कि सिद्धगण ग्रहण होते हुए यहाँ विवरण करने वाले हैं वे ही स्थित रहते हैं ॥७५॥७६॥ वे सात सप्तर्षियो के नाम से व्यवस्थित होते हैं जो कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनके बीज के लिए कहे गये हैं । ॥७७॥

कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाऽभवन् ।
 तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेपि च ॥७८॥
 वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतं स्मार्तं द्विधा तु यम् ।
 ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्धन्ते वै प्रजाः कृते ॥७९॥
 श्रौतस्मार्तकृतानां च धर्मो सप्तर्षिदर्शिते ।
 केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह युगक्षये ॥८०॥
 मन्वंतराधिकारेषु तिष्ठति मुनयस्तु वै ।
 यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विवह ततः क्षितौ ॥८१॥
 वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु संभवः ।
 तथा कातंयुगानां तु कलिजेष्विवह संभवः ॥८२॥
 एवं युगाद्युगस्येह संतानं तु परस्परम् ।
 वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वंतरक्षयः ॥८३॥
 सुखमायुर्वर्त्तं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च ।
 युगेष्वेतानि हीयन्ति श्रीस्त्रीन्पादान्क्रमेण तु ॥८४॥

कलियुग में उत्पन्न होने वालों के साथ वे सब उस समय में विशेषता से रहित होकर रहा करते थे । सप्तपि और दूसरे लोग भी उनके धर्म को बतलाया करते हैं ॥७८॥ वह धर्म श्रौत अर्थात् वेद, प्रतिपादित और स्मार्त अर्थात् स्मृतियों से प्रतिपादित दो प्रकार का होता है । फिर सब लोग जब कर्म निष्ठ हो जाया करते हैं तो ऐसा हो जाने पर कृतयुग में प्रजा की वृद्धि हो जाया करते हैं ॥७९॥ सप्त-पियों के द्वारा प्रदर्शित किए जाने पर श्रौत स्मार्त पद्धति से किए हुए धर्मों की व्यवस्था करने के लिए युग के क्षय के समय में कुछ लोग यहाँ भू-मण्डल में स्थित रहा करते हैं ॥८०॥ मन्वन्तरो के अधिकारों में मुनिगण स्थित रहा करते हैं । जिस प्रकार से दावाग्नि के द्वारा समस्त वृक्ष, वृक्ष आदि के जल जाने पर इस पृथ्वी में उन सबका कुछ मूल भाग किसी प्रशाश रूप में रह जाया करता है ॥८१॥ जब यहिली वृद्धि होती है तो उन प्रदाव हुए वनों के मूलों से पुनः अङ्कुरोत्पत्ति हो जाती है और समस्त वन हरा-भरा कुछ समय में हो जाया करता है उसी प्रकार से यहाँ कलियुग में अन्ये हुए लोगो से कृतयुग वालों का उद्भव हुआ करता है ॥८२॥ इसी प्रकार से एक युग से दूसरे युग में यहाँ पर परस्पर में सन्तान हुआ करती है । वह भवच्छिन्न रूप से जब नव मन्वन्तर का क्षय होता है रहा करते हैं ॥८३॥ सुख, प्रायु, बल, रूप, धर्म, अर्थ और काम ये सब कृत श्रेता और द्वापर युगों में तीन-तीन पादों के रूप से क्रम से हीयमान हुआ करते हैं ॥८४॥

ससंख्यांशेषु हीयन्ते युगाना धर्मसिद्धयः ।

इत्येषा प्रतिसिद्धिर्वै कीर्तितया क्रमेण तु ॥८५॥

चतुर्युगाना सर्वेषामनेनैव तु साधनम् ।

एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रादुगुणीवृत्ता ॥८६॥

ब्रह्माणस्तदहः प्रोक्त रात्रिश्चैतावती स्मृता ।

अनार्जवं जडोभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥८७॥

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
 ऐषां चतुर्गुणा च गुणिता ह्येकसप्ततिः ॥८८॥
 क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरं मुच्यते ।
 चतुर्गुणे यथैकस्मिन्भवतीह यदा तु यत् ॥८९॥
 तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ।
 सर्गोसर्गो यथा भेदा उत्पद्यंते तथैव तु ॥९०॥
 पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ।
 तथा कल्पा युगेः सार्धं भवति सह लक्षणाः ॥९१॥
 मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥९२॥

युगों के सङ्ख्याको मैं धर्म सिद्धियाँ ह्मण को प्राप्त हुआ करती हैं । इस प्रकार से यह प्रति मिथि हुयने क्रम से वर्णित कर दी है । ॥८८॥ इन समस्त चारो युगो का इसी रूप से साधन होना है । यह चारो युगों की आवृत्ति एक सहस्र से गुणित होने पर ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है और इतनी ही उसकी राति बताई गई है । युग के क्षय से लेकर भूतो का जड़ी भाव और अनार्जव होना है अर्थात् वे समस्त प्राणी जडता से युक्त ऋजुता (सरलता) से रहित होने हैं । ॥८९॥॥९०॥ यह ही समस्त युगो का लक्षण बताया गया है । इन चारो युगो की जो चौकड़ी होनी है वह जब गुणित होकर इकहत्तर होती है तो क्रम से परिवृत्त होती है और उस परिवर्तन को ही मन्वन्तर कहते हैं । जिस तरह चारो युगो मे से एक युग मे परिवर्तित होने पर होना है वैसे ही क्रम के अनुसार मन्वन्तर के परिवर्तन के समय मे होता है । ॥८८॥॥९१॥ उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग मे भेद उत्पन्न होते हैं । कुल पञ्चीस तत्त्व हैं । न तो इस सख्या से कभी कम होते हैं और न अधिक ही होते हैं । इन्ही तत्त्वो से सब भेदो की उत्पत्ति हुआ करती है । उसी प्रकार से युगो के साथ लक्षणों के सहित कल्प होते हैं ॥९०॥॥९१॥ समस्त मन्वन्तरो का यह ही लक्षण होता है ॥९२॥

यथा युगानां परिवर्तनानि

चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।

तथा तु सतिष्ठति जीवलोकः

क्षयोदयाम्यां परिवर्तमानः ॥६३॥

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।

अतोतानागताना हि सर्वमन्वन्तरेषु वै ॥६४॥

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि च ।

व्याख्या तानि न संदेहः कल्पः कल्पेन चैव हि ॥६५॥

अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतोतानागतेष्विह ॥६६॥

तुल्यभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवंत्युत ।

देवा ह्यष्टविधा ये च ये च मन्वन्तरेश्वराः ॥६७॥

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः ।

एव वर्णाश्रमाणा तु प्रविभागे युगेयुगे ॥६८॥

युगस्वभावश्च तथा विधत्ते वै तदा प्रभुः ।

वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः ॥६९॥

जिस रीति से चिरकाल से प्रवृत्त होने वाले युगों के परिवर्तन हुआ करते हैं जो कि युगों के स्वभाव के अनुसार होते हैं उसी प्रकार से युगों के अनुरूप क्षय और उदय से यह जीवों का लोक संस्थित रहा करता है और इनमें भी युगों के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है ॥६३॥ इस प्रकार से यह युगों का लक्षण संक्षेप में वर्णन कर दिया गया है जो कि समस्त मन्वन्तरो में व्यतीत हो चुके हैं और आगे होने वाले हैं । ॥६४॥ एक ही मन्वन्तर से अन्य समस्त मन्वन्तरो की व्याख्या कर दी गई है । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । इसी तरह से कल्प से अन्य कल्प भी व्याख्यात होते हैं ॥६५॥ इसी की भाँति अनागतों में अर्थात् जो नहीं आये हैं और आये होते वाले हैं उनमें विशेष रूप में ज्ञान रखने वाले को तर्क कर लेना चाहिये । समस्त आगत और अनागत मन्वन्तरो में इसी प्रकार से यहाँ हुआ करता है ॥६६॥ जो इन सब मन्व-

मृत्तरी की ईश्वर हैं और जो आठ प्रकार देव हैं वे सब नाम और रूप से समान अभिमान वाले होते हैं ॥६७॥ जो ऋषिगण हैं और मनु वगैरे हैं वे सब तुल्य ही प्रयोजन वाले होते हैं अर्थात् सबका प्रयोजन एक-सा ही हुमा करता है । इस प्रकार से युग-युग से वरुण और प्राथम्यो का प्रविभाग हुमा करता है ॥६८॥ युग का स्वभाव भी इसी प्रकार से विभक्त हुमा है । वरुणश्रयो के विभाग युग और युगों में होने वाली सिद्धियाँ इन सबको प्रभु किया करते हैं ॥६९॥



नन्दिकेश्वर की उत्पत्ति

गते पुण्ये च धरदे सहस्राक्षे शिलाशनः ।
 आराधयन्महादेवं तपसाऽतोषयद्भुवम् ॥१॥
 अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य तु ।
 दिव्यं वर्षसहस्रं तु गत क्षणं मिवाद्भुतम् ॥२॥
 बल्मीकेनावृतागश्च लक्ष्यः कीदृगणैर्मुनिः ।
 वज्रसूचोमुखैश्चान्यै रक्तकीटैश्च सर्वतः ॥३॥
 निर्मासहधिरत्त्वग्वै निर्लेपः कुडम्बवत्स्थितः ।
 अस्थिशेषीऽभवत्पश्चात्तममन्यत शङ्करः ॥४॥
 यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण च स्मरारिणा ।
 तदैव मुनिशार्दूल श्रोत्ससर्जं ह्रमं द्विजः ॥५॥
 तपतस्तस्य तपसा प्रभुस्तुष्टाय शङ्करः ।
 तुष्टस्तवेत्यथोवाच सगणश्रीमया सह ॥६॥
 तपसानेन किं कार्यं भवतस्ते महामते ।
 ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥७॥

इस अध्याय में शिलाद की तपस्या से प्रसन्न हुए महेश्वर से शिलाद को सुत की प्राप्ति और नन्दी के बरसाह का वर्णन किया जाता

है। सूत जी ने कहा — परम पुण्य स्वरूप एव वरदान देने वाले इन्द्र के चले जाने पर शिलाशन ने महादेव की आराधना करते हुए तपस्या के द्वारा भव को सन्तुष्ट कर दिया था ॥१॥ इसके अनन्तर इस प्रकार से निरन्तर तत्पर रहने वाले द्वित्र के दिव्य इस सहस्र वर्ष भद्रभुत एक क्षण की भीति घ्यतीत हो गये थे ॥२॥ बल्मीको के द्वारा आवृत भङ्गो वाला वह मुनि शरीर की आकृति के न दिखलाई देने से कीटगण तथा अन्य वज्र सूची मुख रक्त कीटो के द्वारा ही लक्ष्य होता था ॥३॥ बिना मांस, अधिर और स्वचा के कारण निर्लेप वह मुनि तपस्या के करने के समय में एक दीवाल की भीति स्थित था। वह फिर केवल अस्थिमात्र शेष रहने वाला हो गया था। ऐसी दशा में भगवान् शङ्कर ने उस पर कृपा की थी ॥४॥ जिस समय भगवान् काम के दग्ध करने वाले शङ्कर ने हाथ से उस मुनि का स्पर्श किया था उसी समय मुनि शार्ङ्गल द्विज ने भ्रम का त्याग कर दिया था अर्थात् तप करना समाप्त कर दिया था ॥५॥ तपस्या करने वाले उसके तप से प्रभु शङ्कर तुष्ट हुए थे। उमा और गणो के सहित भगवान् शङ्कर ने कहा — मैं तुम्हें प्रसन्न हूँ। हे महामते! आपके इस तप से आपके लिये मुझे क्या करना चाहिए। अर्थात् तुम बताओ, मुझमें क्या चाहते हो? मैं तुमको समस्त शास्त्रों के अर्थ का पारगामी और सर्वज्ञ पुत्र देता हूँ ॥६॥७॥

ततः प्रणम्य देवेश स्तुत्योवाच शिलाशन ।

हर्षगदगदया वाचा सोम सोमविभूषणम् ॥८॥

भगवन्देवदेवेश त्रिपुरार्दन शङ्कर ।

अयोनिज मृत्युहीन पुत्रमिच्छामि सत्तम ॥९॥

पूर्वमाराधित प्राह तपसा परमेश्वर ।

शिलाद ब्रह्मणा रुद्र प्रीत्या परमपापुन ॥१०॥

पूर्वमारा धितो विप्र ब्रह्मणाह तनान् ।

तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च मुनेभ्यः ।

तव पुत्रो भविष्यामि नंदिनाम्ना त्वयोनिजः ।

पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने ॥१२॥

एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितं धृणी ।

सोमः सोमोपमः प्रीतस्तत्रैवांतरधीयत ॥१३॥

लब्धपुत्रः पिता रुद्रात्प्रीतो मम महामुने ।

यज्ञाङ्गणं महत्प्राप्य यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः ॥१४॥

तदंगणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया ।

संजातः पूर्वमेवाह युगांताग्निसमप्रभः ॥१५॥

उसके धमातर देवेश को प्रणाम करके धीरे स्तुति करके शिलाशन ने हर्ष से गदगद वाणी के द्वारा चन्द्र के भूषण वाले भगवान् शङ्कर से कहा, शिलाद ने कहा—हे भगवन् ! आप देवों के भी देव हैं, आप त्रिपुर के अर्दन करने वाले धीरे कल्याण करने वाले हैं । हे सत्तम ! मैं ऐसा अपना पुत्र प्राप्त करने की इच्छा रखता हूँ जो योनि से उत्पन्न न होने वाला हो और मृत्यु के भय से रहित हो ॥१२॥ सूत जी ने कहा—ब्रह्मा के द्वारा तप से पहिले आराधना किये गये परमेश्वर रुद्र परम प्रीति से पुनः शिलाद से बोले ॥१०॥ श्री देवदेव ने कहा—हे तपोधन ! हे विप्र ! पहिले मेरी आराधना ब्रह्मा ने की थी और श्रेष्ठ देवों तथा मुनियों ने तप से अवतार के लिये मेरी आराधना की थी ॥११॥ मैं नन्दी के वाम से तुम्हारा अयोनिज पुत्र होऊँगा । हे मुने ! समस्त जगत् के पिता मेरे आप पिता होंगे ॥१२॥ इस प्रकार से कहकर धीरे मुनि को देख कर तथा स्थित को प्रणाम करके सोम के समान वह सोम धृणी वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे ॥१३॥ हे महामुने ! मेरे पिता को रुद्र से पुत्र प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई थी । किन्तु यज्ञों के वेत्ताओं ने परम श्रेष्ठ वह महान् यज्ञाङ्गण मे प्राप्त हुए थे । उस यज्ञाङ्गण से मैं शम्भु का तनुज उगकी ही आज्ञा से उत्पन्न हुआ था और मैं पहिले ही युगान्त काल की अग्नि के तुल्य प्रभा वाला समुत्पन्न हुआ था । ॥१४॥१५॥

ववपुस्तदा पुष्करावर्तकाद्या जगुः

खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः ।

शिलादात्मजत्व गते मय्युपेन्द्रः सप्त-

जयि वृष्टि सुपुष्पोधमिश्राम् ॥१६॥

मा दृष्ट्वा कालसूर्याभ जटामुकुटधारिणम् ।

त्र्यक्ष चतुर्भुज बाल शूलटकगदाधरम् ॥१७॥

वज्रिण वज्रदष्ट्र च वज्रिणाराधित शिशुम् ।

वज्रकुण्डलिन धार नीरदोपमनि. स्वनम् ॥१८॥

ब्रह्माद्यास्तुष्टुबुः सर्वे सुरेन्द्रश्च मुनीश्वराः ।

नेदुः समस्ततः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१९॥

ऋषयो मुनिशाङ्खल ऋग्यजुः सामसभवंः ।

मन्त्रमहिेश्वरैः स्तुत्वा सप्तलोमुमुं दान्विताः ॥२०॥

उक्त समय जबकि मैं उत्पन्न हुआ था पुष्करावर्तक प्रभृति मेघों ने वृष्टि की थी और खेचर अर्थात् आवाज में विचरण करने से ले विघ्नर तथा सिद्ध साध्यों ने गायन किया था । शिलाद के पुत्र के स्वरूप में मेरे हो जाने पर उपेन्द्र ने सुन्दर पुष्टों के समूह से मिश्रित वृष्टि की थी ॥१६॥ काल सूर्य के समान आभा वाले मुक्तों सबने देखा था जो जटा और मुकुट की धारण करने वाला, तीन नेत्र वाला, चार भुजाओं वाला, बाल स्वरूप से युक्त, शूल टेंक और गदा की धारण करने वाला, वज्री, वज्र दृष्टा वाला, वज्री (दंष्ट्र) के द्वारा समाराधित, शिशुरूप वाला, हीरा के कुण्डल धारण करने वाला, और मेघ के तुल्य ध्वनि करने वाला था । उसकी सुरेन्द्र और ब्रह्मादि समस्त मुनीश्वरों ने स्तुति की थी, चारों ओर वाद्य बजाये गये थे और अप्सरा गणों ने नृत्य किया था ॥१७॥१८॥१९॥ हे मुनि शाङ्खल ! उक्त समय ऋषियण ने ऋग्वेद, यजु, और सामवेद के माहेश्वर मन्त्रों के द्वारा उगता स्तवन करने लगे ही आनन्द के साथ सबने प्रणाम किया था ॥२०॥

ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च शक्रः साक्षाच्छिवांविका ।
 जीवश्चेन्दुर्महातेजा भास्करः पवनोनलः ॥२१॥
 ईशानो निष्कृतिर्यक्षो यमो वरुण एव च ।
 विश्वेदेवास्तथा रुद्रा वसवश्च महाबलाः ॥२२॥
 लक्ष्मीः साक्षाच्छची ज्येष्ठा देवी चैव सरस्वती ।
 अदितिश्च दितिश्चैव श्रद्धा लज्जा धृतिस्तथा ॥२३॥
 नन्दा भद्रा च सुरभी सुशीला सुमनास्तथा ।
 वृषेन्द्रश्च महातेजा धर्मो धर्मात्मजस्तथा ॥२४॥
 आवृत्य मां तथालिङ्ग्य तुष्टुवुमुनिसत्तम ।
 शिलाक्षोपि मुनिहंष्ट्रा पिता मे सादृशं तदा ॥२५॥
 प्रीत्या प्रणम्य पुण्यात्मा तुष्टावेष्टप्रदं मुतम् ।
 भगवन्देवदेवेश त्रियंबक ममाग्यय ॥२६॥
 पुत्रोसि जगतां यस्मात्पिता दुःखाद्धि किं पुनः ।
 रक्षको जगतां यस्मात्पिता मे पुत्र सर्वग ॥२७॥
 अयोनिज नमस्तुभ्यं जगद्योने पितामह ।
 पिता पुत्र महेशान जगतां च जगद्गुरो ॥२८॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, साक्षात् जगदम्बा पार्वती, वृहस्पति, चन्द्र, महान् तेजस्वी सूर्य, वायु, अग्नि, ईशान, निष्कृति, यमा, यम, वरुण, विश्वेदेवा, रुद्रगण, वसुधर्म जो कि महाबल वाले थे, साक्षात् लक्ष्मी, शची, ज्येष्ठा देवी, सरस्वती, अदिति, दिति, श्रद्धा, लज्जा, धृति, नन्दा, भद्रा, सुरभी, सुशीला, सुमना, वृषेन्द्र, महातेजा धर्म, धर्मात्मज इन सबने मुझे आवृत करके और मेरा आलिङ्गन करके हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरा स्तुति की थी । मेरे पिता त्रिनाद मुनि ने भी उस समय मुझे उग प्रभार की स्थिति में देगा था ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥ त्रिनाद ने भी जो परम पुण्यात्मा था अपने अभीष्ट प्रदान करने वाले पुत्र को प्रणाम कर के प्रीति के साथ स्तवन किया था । त्रिनाद ने कहा—हे भगवन् ! आप देशों के भी देव हैं, नील अम्बर हैं और विनाश रहित

हैं। आप मेरे पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हैं जो कि दुखों से समस्त जगत् का श्राण करने वाले हैं। इससे अधिक और क्या हो सकता है ? हे सबंग ! आप सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले पिता इस समय मेरे पुत्र हुए हैं। हे अयोनिज ! आप तो समस्त इस जगत् के कारण स्वरूप पितामह हैं। आप पिता भी हैं, पुत्र भी हैं, हे महेशान ! आप सब जगतों के गुरु हैं आपको मेरा प्रणाम है ॥२६॥२७॥२८॥

वत्सवत्स महाभाग पाहि मा परमेश्वर ।
 त्वयाऽहं नदितो यस्मान्नदी नाम्ना सुरेश्वर ॥२९॥
 तस्मान्नदय मा नदिन्नमामि जगदीश्वरम् ।
 प्रसीद पितरो मेघ रुद्रलोक गतौ विभो ॥३०॥
 पितामहाश्च भो नदिन्नवतीर्णो महेश्वरे ।
 ममैव सफल लोके जन्म वै जगता प्रभो ॥३१॥
 अवतीर्णो सुते नदिन् रक्षार्थं मह्यमीश्वर ।
 तुभ्य नमः सुरेशान नदीश्वर नमोस्तु ते ॥३२॥
 पुत्र पाहि महाबाहो देवदेव जगद्गुरो ।
 पुत्रत्वमेव नदीश मत्वा यत्कीर्तित मया ॥३३॥
 त्वया तत्क्षम्यता वत्स स्तवस्तव्य सुरासुरैः ।
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि मम पुत्र प्रभाषितम् ॥३४॥
 श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या मया सार्धं स मोदते ।
 एव स्तुत्वा सुत बाल प्रणम्य बहुमानतः ॥३५॥
 मुनीश्वराश्च सप्रेक्ष्य शिलादोवाच सुव्रत ।
 पश्यध्व मुनयः सर्वे महाभाग्य ममाव्ययः ॥३६॥
 नन्दी यज्ञाङ्गणो देवश्चावतीर्णो यतः प्रभुः ।
 मत्समः यः पुर्माँल्लोके देवो दानवोपि ॥३७॥
 एष नदी यतो जातो यज्ञभूमौ हिताय मे ॥३८॥

हे वत्स ! हे महाभाग ! हे परमेश्वर ! मेरी रक्षा करो आपके द्वारा मैं धरत्यन्त नन्दित हुआ हूँ इमोनिये हे गुरेश्वर ! आप नाम से

नन्दी हो जाइये ॥२९॥ हे नन्दिन् ! इसलिये मेरा नन्दन अर्थात् आनन्द कीजिए । जगत् के ईश्वर आपको मैं प्रणाम करता हूँ । हे विभो ! आज मेरे माता-पिता रुद्र लोक में चले गये हैं, आप प्रसन्न होइए ॥३०॥ पितामह आदि भी सब चले गये हैं । भो नन्दिन् ! हे जगत् के स्वामिन् ! साक्षात् भगवान् महेश्वर के अवतीर्ण होने पर इस लोक में मेरा जन्म सफल हो गया है ॥३१॥ हे ईश्वर ! हे नन्दिन् ! आप मेरी रक्षा करने के लिये ही सुत के स्वरूप में अवतीर्ण हुए हैं । हे सुरेशान ! हे नन्दीश्वर ! आपके लिये मेरा प्रणाम है और बारम्बार नमस्कार है ॥३२॥ हे महान् बाहुप्रो वाले पुत्र ! आप देवों के भी देव और इस जगत् के गुरु हैं । हे नन्दीश ! मैंने आपको पुत्र मानकर जो कुछ आपका कीर्त्तन किया है उसे आप क्षमा कर दीजिए । आप तो समस्त सुर और असुरों के द्वारा स्तवों से स्तवन करने के योग्य हैं । हे पुत्र ! मेरे इस प्रभाषित अर्थात् कथन एवं स्तवन को जो कोई भी पढ़ेगा या श्रवण करेगा अथवा ब्राह्मणों को भक्ति से श्रवण करावेगा वह मेरे ही साथ आनन्द को प्राप्त होगा । इस प्रकार से सुत को प्रणाम करके और बालक का स्तवन करके तथा बहुमान पूर्वक मुनीश्वरों को देखकर सुप्रत शिलाद बोला—हे मुनिगण ! आप सब मेरे इस महान् भाग्य को देखिये कि मेरे यज्ञाङ्गण में अविनाशी साक्षात् प्रभु नन्दी देव अवतीर्ण हुए हैं । मेरे समान इस समय लोक में कौन पुत्रपन्धेव या दागव है ? अर्थात् कोई भी नहीं है । यह भगवान् नन्दी मेरे ही हित के सम्पादन करने के लिये इस यज्ञ भूमि में समुत्पन्न हुए हैं ॥३३॥३४॥ ॥३५॥३६॥३७॥३८॥



नन्दिकेश्वर अभिषेक वर्णन

मया सह पिता तृष्टः प्रणम्य च महेश्वरम् ।
 उटज स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निधनः ॥१॥
 यदागतोहमुटज शिलादस्य महामुने ।
 तदा वै दैविक रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः ॥२॥
 नष्टा चं व स्मृतिर्दिव्या येन केनापि कारणात् ।
 मानुष्यमास्थित दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः ॥३॥
 विललापात् दुःखातः स्वजनैश्च समावृतः ।
 जातकर्मादिकाश्चं चकार मम सर्ववित् ॥४॥
 शालकायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः ।
 उपदिष्टा हि तेनैव ऋक्शास्त्रा यजुषस्तथा ॥५॥
 सामशाखासहस्रं च साङ्गोपाङ्गं महामुने ।
 आयुर्वेदं धनुर्वेदं गाधर्वं चाश्वलक्षणम् ॥६॥
 हरितना धरित च व नराणां च व लक्षणम् ।
 सपूणं सप्तमे वर्षे ततोथ मुनिसत्तमौ ॥७॥
 मित्रावरुणनामानौ तपोयोगबलान्वितौ ।
 तस्याश्रमं गतौ दिव्यौ द्रष्टुं मा चाज्ञया विभोः ॥८॥

इस अध्याय में मानुष रूप में प्राप्त हुए नन्दी रुद्र के आराधन से महान् प्रसाद को प्राप्त हुए, इसका वर्णन किया जाता है । नन्दिकेश्वर ने कहा—मेरे साथ मेरे पिता को परम हर्ष हुआ था और अत्यन्त प्रहृष्ट होकर उनने भगवान् महेश्वर को प्रणाम किया और एक निधन को किसी महान् निधि के प्राप्त होने की भाँति वह परम प्रसन्नता से अपने उटज (निवास स्थान) को शीघ्र चले गये थे ॥१॥ हे महामुने ! जिस समय मैं अपने पिता शिलाद के उटज (भोपड़ी) में आकर प्राप्त हुआ तो उस समय मैंने अपना दैविक रूप को त्याग दिया था और मानुष्य के रूप में समास्थित हो गया था ॥२॥

जित किसी अनिर्वचनीय ईश्वर की इच्छा स्वरूप कारण से मेरी वह दिव्य स्मृति भी नष्ट हो गई थी । लोको के द्वारा चन्दमान मेरे पिता ने मानुष्य स्वरूप में आस्थित मुझको देखकर अत्यन्त-दुःखित होकर अपने जनों से समावृत्त होते हुए बहुत विलाप किया था । उस सर्व वेत्ता पिता ने मेरे जात कर्म आदि सम्पूर्ण आवश्यक संस्कार किये थे ॥१॥ ॥४॥ शालङ्कायन के पुत्र परम पुत्र वत्सल शिलाद ने यजुर्वेद तथा ऋग्वेद की शाखा का उपदेश दिया था ॥५॥ हे महामुने ! सनत्कुमार ! ऋग्वेद और यजुर्वेद के सहित सामवेद की सहस्र शाखा तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद और अश्वी के संक्षण वाला शास्त्र एवं गन्धर्व शास्त्र की शिक्षा दी थी ॥६॥ हरितो के चरित्र तथा नरों के संक्षणों का भी उपदेश किया था । सात वर्ण के सम्पूर्ण हो जाने पर इसके अनन्तर विष्णु की आज्ञा से मुझे देखने के लिए उस शिलाद के आश्रम में परम श्रेष्ठ मुनि, तप और योग के बल से समन्वित अति दिव्य मित्रा वरुण नाम धारी गये थे ॥७॥८॥

ऋचतुश्च महात्मानो मा निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः ।

सात नक्षयमल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥६॥

न दृष्टमेवमाश्चर्यमायुर्वर्पादतः परम् ।

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रः शिलादः पुत्रवत्सलः ॥१०॥

समालिङ्ग्य च दुःखार्तो हरोदातीव विस्वरम् ।

हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च समततः ॥११॥

अहो बलं दैवविघोर्विघातुश्चेति दुःखितः ।

तस्य चार्तस्थरं श्रुत्वा तदाश्रमनिवासिनः ॥१२॥

निपेतुर्विह्वलात्यर्थं रक्षाश्चक्रुश्च मंगलम् ।

तुष्टुवुश्च महादेव त्रियंबकमुमापतिम् ॥१३॥

हृत्वा त्रियंबकेनैव मधुनैव च संप्लुताम् ।

दूर्वामयुतसंख्यातां सर्वं द्रव्यसमन्विताम् ॥१४॥

उन दोनों महान् आत्मा वालों ने मुझको बार-बार देखकर कहा था—हे तात ! यह समस्त शास्त्रों के अर्थ को पूर्णतया जानने वाला शास्त्र पारंगामी नन्दी अत्यन्त आयु वाला है ॥६॥ इस वर्ष से आगे इसकी आयु नहीं देखी जाती है, यह बड़ा ही आश्चर्य की बात है । उनके इतना कहने पर पुत्र पर प्यार करने वाला विप्रेन्द्र शिलाद समालिङ्गन करके दुःख से अत्यन्त आर्त्ता होते हुए बुरे स्वर के साथ अत्यन्त रुदन सा करने लगे थे । वह “हाय पुत्र, हा पुत्र” ऐसा कहकर भूमि पर गिर पड़े थे ॥१०॥११॥ दंबकी विधि का और विधाता का बल बड़ा ही अद्भुत है, यह कहता हुआ वह बहुत ही दुःखित हुआ था । उसके इस आर्त्ति से परि पूर्ण, दुःख भरे शब्द का श्रवण कर उसके आश्रम के निवासी लोग भी अत्यन्त विह्वल होकर पछाड़ लाने लगे और मञ्जल के लिये रक्षा के उपक्रम करने लगे थे । उमा के पति त्रियम्बक महादेव की सबने स्तुति की थी ॥१२॥१३॥ सबने त्रियम्बक मन्त्र से मधु से सम्प्लुत दूर्वा का जो सभी द्रव्यों से भी युक्त थी दस हजार की सख्या में हवन किया था ॥१४॥

पिता विगतसज्जश्च तथा चैव पितामहः ।
 विचेष्टश्च ललाशसो मृदवन्निपपात च ॥१५॥
 मृत्योर्भीताहेमचिराच्छिरसा चाभिवद्य तम् ।
 मृतवत्पपित साक्षात्पितर च पितामहम् ॥१६॥
 प्रदक्षिणीकृत्य च स रद्रजाप्यरतोऽभवम् ।
 दृष्ट्वा डरीवेसुपिरे घ्यात्त्रा देय त्रियम्बकम् ॥१७॥
 अथ दशभुज शान्त पञ्चगात्र सदाशिरम् ।
 सारितश्चातरे पुण्ये स्थितं मा परमेश्वरः ॥१८॥
 तुष्टोग्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्धभूषणः ।
 यत्ता नदिन्महागहो मृत्योर्भीतिः कुनस्तत्र ॥१९॥
 मयं प्रेपिनी विप्रो मत्तमस्त्यं न सगयः ।
 वत्संनतय देह च तौकियं परमार्यतः ॥२०॥

नास्त्येव दैविकं दृष्टं शिलादेन पुरा तव ।
 देवंश्च मुनिभिः सिद्धैर्गन्धर्वैर्दानवोत्तमैः ॥२१॥
 पूजितं यत्पुरा वत्स दैविकं नन्दिकेश्वर ।
 संसारस्य स्वभावोयं सुखं दुःखं पुनः पुनः ॥२२॥

मेरे पिता संज्ञा शून्य अर्थात् बेहोश थे और इसी प्रकार पिता-
 मह भी चेष्टा रहित थे । यह निश्चेष्ट की भाँति बोलते थे और एक
 मृतक की तरह गिर पड़े थे ॥१५॥ मृत्यु से डरा हुआ मैंने तुरन्त ही
 शिर से उनको प्रणाम किया था जो कि साक्षात् एक मृतक की भाँति
 पिता और पितामह पड़े हुये थे । मैंने उनकी प्रदक्षिणा की थी और मैं
 फिर व्रत के मन्त्र के जप में निरत हो गया था । मैंने सुषिर, हृदय कमल
 में त्रियम्बक देव का ध्यान किया था ॥१६॥१७॥ मैंने तीन नेत्र से युक्त,
 दश भुजाओं वाले, परम शान्त स्वरूप, पाँच मुख वाले सदा शिव का
 ध्यान किया था । उस समय मे मैं सरित् के पुण्य अन्तर में स्थित था
 कि परमेश्वर मुझ पर प्रसन्न हुए थे ॥१८॥ महादेव ने अत्यन्त तुष्ट
 होकर मुझसे कहा था । महादेव चन्द्रखण्ड के भूषण वाले सोम स्वरूप
 थे । उन्होंने मुझसे कहा—हे वत्स ! हे नन्दिन् ! तुम तो महान् बाहुओं
 वाले हो, तुमको मृत्यु का भय कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ वे दोनों
 विप्र तो मैंने ही भेजे थे । तुम तो मेरे ही तुल्य हो, इसमें कुछ भी शंका
 नहीं है । हे वत्स ! यह तुम्हारा देह तो लौकिक है । वास्तविक शरीर
 तुम्हारा यह नहीं है । पहिले शिलादे ने तुम्हारा दैविक शरीर नहीं देखा
 है । देव, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, दानवोत्तमों के द्वारा वन्दित पहिला
 तुम्हारा दैविक शरीर है । हे वत्स नन्दिकेश्वर ! यह तो संसार का स्व-
 भाव है कि पुनः पुनः सुख और दुःख होता है ॥२०॥२१॥२२॥

नृणां योनिपरित्यागः सर्वथैव विवेकिनः ।
 एवमुक्त्वा तु मां साक्षात्सर्वदेवमहेश्वरः ॥२३॥

कराभ्यां सुशुभाभ्यां च उभाभ्यां परमेश्वरः ।
 पस्पर्श भगवान् रुद्रः परमर्तिहरो हरः ॥२४॥
 उवाच च महादेवस्तुष्टात्मा वृषभध्वजः ।
 निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवी हिमवतः सुताम् ॥२५॥
 समालोक्य च तुष्टात्मा महादेवः सुरेश्वरः ।
 अजरो जरया त्यक्तो नित्यं दुःखविर्वजितः ॥२६॥
 अक्षयश्चाव्ययश्चैव सपिता ससुतद्वज्जनः ।
 ममेष्टो गणपश्चैव मदीर्यो मत्पराक्रमः ॥२७॥
 इष्टो मम सदा चैव मम पार्श्वगतः सदा ।
 मद्वलश्चैव भविता महायोगबलान्वितः ॥२८॥
 एवमुक्त्वा च मां देवो भगवान् सगणस्तदा ।
 कुशेशयमयी भालां समुन्मुच्यात्मनस्तदा ॥२९॥

नरो का योनि परित्याग होता है और विवेकी का सभी प्रकार से हुषा करता है । सर्वदेव महेश्वर भगवान् ने साक्षात् इस प्रकार से मुक्तसे कहकर फिर परमेश्वर ने अपने दोनों परम शुभ करो से मेरे शरीर को स्पर्श किया था जो कि हर भगवान् रुद्र परम भक्ति के हरण करने वाले हैं ॥२३॥॥२४॥ फिर परम सन्तुष्ट एव प्रसन्न होते हुए वृषभ-ध्वज महादेव ने अपने गणों के स्वामियों को तथा हिमवान् की सुता जगदम्बा की ओर देखकर कहा था ॥२५॥ परम प्रसन्न आत्मा वाले सुरों के ईश्वर महादेव ने भली-भाँति अवलोकन करते हुए कहा था, तुम अजर हो और जरा (वार्धक्य) से पूर्णतया त्यक्त हो तथा नित्य ही दुःखों से विशेष रूप से रहित हो ॥२६॥ तुम क्षय से रहित, नाश से शून्य हो । अपने पिता के तथा अपने सुहृज्जनो के सहित मेरे परम प्रिय अर्थात् प्रिय हो । मेरे गणप, मेरे जैसे वीर्य वाले और मेरे ही समान पराक्रम वाले हो ॥२७॥ तुम मेरे सर्वदा प्रिय हो और सदा मेरे ही पार्श्वगत हो । तुम मेरे ही तुल्य बल वाले और महान् योग बल से समन्वित होओगे ॥२८॥ इस प्रकार से भगवान् गणों के सहित महादेव

ने मुझसे कहकर उस समय में अपनी कुशोन्नयमयी माला को खोलकर
महान् तेजस्वी वृषभध्वज देव ने उसको मेरे दाँघ दी थी ॥२६॥

आववंध 'महातेजा मम देवो वृषध्वजः ।
तयाहं मालया जातः शुभया कण्ठसक्तया ॥३०॥
श्र्यक्षो दशभुजश्चैव द्वितीय इव शङ्करः ।
तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः ॥३१॥
उवाच ब्रूहि किं तेद्य ददामि वरमुत्तमम् ।
ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा चातिनिर्मलम् ॥३२॥
उक्ता नदी भवस्येति उत्ससर्जं वृषध्वजः ।
ततः सा दिव्यतोया च पूर्णसितजला शुभा ॥३३॥
पद्मोत्पलवनोपेता प्रावर्तत महानदी ।
तामाह च महादेवो नदी परम शोभनाम् ॥३४॥
यस्माज्जटोदकादेव प्रवृत्ता त्वं महानदी ।
तस्माज्जटोदका पुण्या भविष्यसि सरिद्वरा ॥३५॥

मेरे कण्ठ में प्राप्त उस शुभ माला से मैं उसी समय त्रिनेत्र,
दश भुजाओं से समन्वित द्वितीय शङ्कर के ही समान हो गया था । उसके
अनन्तर ही परमेश्वर ने हाथ से मुझे ले जाकर कहा था—बोल, आज
मैं तुझे उत्तम वर प्रदान करता हूँ । इसके उपरान्त जटाओं से ढँहने
वाला अत्यन्त निर्मल जल उन्होंने ग्रहण किया था ॥३०॥३१॥३२॥
नदी हो जाओ, यह कहकर वृषभ ध्वज ने उसका उत्सर्ग कर दिया
था । इसके पश्चात् वह दिव्य जल वाली, पूर्णतोया श्वेत जल से युक्त,
परम शुभ तथा पद्म एवं उत्पलो से उपेत महानदी प्रवृत्त हो गई थी
और उस परम शोभन नदी से महादेव ने कहा था ॥३३॥३४॥
यद्यपि महानदी तुझको मैंने एक ही जटा से प्रवृत्त किया है इस कारण
से तू परम पुण्यमयी सरिताओं में अति श्रेष्ठ जटोदका हो जावेगी ।
॥३५॥

त्वयि स्नात्वा नरः कश्चित्सर्वं पापैः प्रमुच्यते ।
 ततो देव्या महादेवः शिलादत्तनयं प्रभुः ॥३६॥
 पुत्रस्तेज्यमिति प्रोच्य पादयोः संन्यपातयत् ।
 सा मामात्राय शिरसि पाणिभ्यां परिमार्जतो ॥३७॥
 पुत्रप्रेम्णाभ्यपिञ्चच्च स्रोतोभिस्तनयंस्त्रिभिः ।
 पयसा शंसगीरेण देवदेवं निरोदय सा ॥३८॥
 तानि स्रोतांसि शोण्यस्याः स्रोतस्विन्योभवंस्तदा ।
 नदी त्रिस्रोतसं देवो भगवानयदद्भवः ॥३९॥
 त्रिस्रोतसं नदी दृष्ट्वा वृषः परमहर्षितः ।
 ननाद नादात्तस्माच्च सरिदन्या ततोऽभवत् ॥४०॥
 वृषघ्ननिरिती स्याता देवदेवेन सा नदी ।
 जायूनदमयं चित्रं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥४१॥
 स्य देवश्चाद्भुतं दिव्यं निमित्तं विश्वरमणा ।
 मृकटं चावगधेतो मम मूर्ध्नि वृषघ्नजः ॥४२॥

गया था । देवदेव ने उस नदी को 'वृषध्वनि'—इस नाम से सुसोभित किया था । इसका रूप सुवर्णमय तथा विचित्र एवं शुभ रत्नों से परिपूर्ण था ॥४०॥४१॥ फिर वृषध्वज देव ने अपना अत्यन्त मद्भुत एवं दिव्य तथा विश्वकर्मा के द्वारा निर्माण किया हुआ मुकुट मेरे मस्तक पर बाँध दिया था ॥४२॥

कु डले च शुभे दिव्ये वज्रवन्द्यभूषिते ।
 आवद्यच्च महादेव स्वयमेव महेश्वर ॥४३॥
 मा तथाम्यर्चित व्योम्नि दृष्ट्वा मेवं प्रभाकर ।
 मेघाभसा चाम्प्रपिचच्छिलादनमथो मुने ॥४४॥
 तस्याभिषिक्तस्य तदा प्रवृत्ता स्रोतसा मृशम् ।
 यस्मात्सुवर्णाग्नि सृत्य नद्यंया सप्रवर्तते ॥४५॥
 स्वर्णोदकेति तामाह देवदेवस्त्रियवकः ।
 जाम्बूनदमयाद्यस्माद्विनीया मुकुटान्छुभा ॥४६॥
 प्रावर्तत नदी पुण्या ऊवुर्जाबूनदीति ताम् ।
 एतत्पचनद नाम जप्येश्वरसमोपगम् ॥४७॥
 यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम् ।
 पूजयेच्छिवसागुज्य प्रयात्येव न सशयः ॥४८॥
 अथ देवो महादेव सर्वभूतपतिर्भव ।
 देवीमुवाच शर्वाणोमुमा गिरिसुतामजाय ॥४९॥
 देवि नदीश्वर देवमभिषिचामि भूतपम् ।
 गणोन्द्र व्याहरिष्यामि किं वा त्व मन्यसेऽव्यये ॥५०॥

महादेव महेश्वर ने स्वयं ही परम शुभ एवं दिव्य दो मुण्डन जो कि हीरा और वन्द्य रत्नों से विभूषित थे मेरे बाँध दिये थे ॥४३॥ मुक्तो इस प्रकार से अर्पित आकाश में देखकर प्रभाकर ने मेघों के द्वारा मेघ जल से हे मुने ! इसके बाद-तर शिलादन का अभिदिशान किया था ॥४४॥ उस समय में उमरे अभियेन के स्त्रोत्र से जोकि

अत्यन्त आधिक्य से प्रवहन कर रहा था जिसके सुवर्ण से निकलकर यह नदी प्रवृत्त हो जाती है ॥४५॥ देवों के देव त्रियम्बक भगवान् उसको स्वर्णोदका, इस शुभ नाम से कहा करते थे । जाम्बूनदमय जिस मुकुट से दूसरी एक शुभ नदी प्रवृत्त हुई थी उसको परम पवित्र जाम्बू नदी इस नाम से कहा गया था । इस प्रकार से इन पाँच नदियों का समुदाय जप्येश्वर के समीप में रहने वाला था ॥४६॥४७॥ जो इस पञ्च नद के समीप में प्राप्त होकर इनमें स्नान करता है और जप्येश्वर का सविधि अर्चन करता है वह निश्चय ही शिव के सामुज्य को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४८॥ इसके अनन्तर समस्त भूतो के स्वामी भव देव महादेव गिरिजा भद्रा शर्वाणि उमा देवी से बोले— ॥४९॥ हे देवि ! मैं भूतपति इस नन्दीश्वर देव का अभिषिञ्चन करता हूँ और इसको गणेश्वर कहूँगा । हे अव्यये ! आप क्या इसका अनुमोदन करती है ॥५०॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा भवानी हर्षितानना ।

स्मर्यन्ति वरदं प्राह भव भूतपति पतिम् ॥५१॥

सर्वलोकाधिपत्यं च गणेशत्वं तथैव च ।

दातुमर्हसि देवेश दीलादिस्तनयो मम ॥५२॥

ततः स भगवान्शर्वः सर्वलोकाेश्वरेश्वरः ।

सस्मार गणपान् दिव्यान्देवदेवो वृषध्वजः ॥५३॥

श्री भगवान् महादेव के इन वचन का श्रवण करके भवानी परम हर्ष से प्रफुल्लित मुख वाली होनी हुई मुस्कुराकर वरदान प्रदान करने वाले भूत पति भव अपने स्वामी से बोली ॥५१॥ हे देवेश ! समस्त लोको का आधिपत्य और गणेशत्व इसे आप प्रदान करने के योग्य होते हैं । यह दीलादि मेरा तनय है ॥५२॥ इसके अनन्तर मय लोको के ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् शर्व और देवों के भी देव वृषध्वज ने दिव्य गणपों का स्मरण किया था ॥५३॥

शिव का विराट रूप कथन

सूत सुव्यक्तमखिलं कथितं शंकरस्य तु ।
 सर्वात्मभावं रुद्रस्य स्वरूपं वक्तुमहंसि ॥१॥
 भूभुवः स्वर्महश्चैव जनः साक्षात्तपस्तथा ।
 सत्यलोकश्च पातालं नरकाणां वकोटयः ॥२॥
 तारकाग्रहसोमार्का ध्रुवः सप्तपंथस्तथा ।
 वैमानिकास्तथान्ये च तिष्ठन्त्यस्य प्रसादतः ॥३॥
 अनेन निर्मितास्त्वेवं तदात्मानो द्विजपंभाः ।
 समष्टिदृष्टः सर्वात्मा संस्थितः सर्वदा शिवः ॥४॥
 सर्वात्मानं महात्मानं महादेवं महेश्वरम् ।
 न विजानन्ति संमूढा भायया तस्य मोहिताः ॥५॥
 तस्य देवस्य रुद्रस्य शरीरं वै जगत्त्रयम् ।
 तस्मात्प्रणम्य तं वक्ष्ये जगतां निर्णयं शुभम् ॥६॥
 पुरा वः कथितं सर्वं मयाण्डस्य यथा कृतिः ।
 भुवनानां स्वरूपं च ब्रह्माण्डे कथयाम्यहम् ॥७॥

महेश्वर महादेव को उसकी सम्मोहनी माया से मोहित होने वाले मूढ लोग उसको नहीं जान पाते हैं ॥५॥ उस महामायामय रुद्र देव का यह त्रिभुवन ही शरीर है । इस कारण से समष्टि स्वरूप इस जगत्प्रात्मक शिव के शरीर को प्रणाम करके जगतों के शुभ विभाग का वर्णन करता हू ॥६॥ मैंने पहिले प्राप लोगों के सामने इस ब्रह्माण्ड की जैसे उत्पत्ति हुई थी वह सब बतला दी है । अब उस ब्रह्माण्ड में समस्त भुवनो का स्वरूप बतलाता हू ॥७॥

पृथिवीचांतरिक्ष च स्वर्गमहर्जन एव च ।
तपः सत्यं च सप्तंते लोकास्त्वडोद्भवाः शुभाः ॥८॥
अधस्तादत्र चैतेषां द्विजाः सम तलानि तु ।
महातलादयस्तेषां अधस्ताद्वरकाः क्रमात् ॥९॥
महातलं हेमतलं सवर्तनोपशोभितम् ।
प्रासादश्च विचित्रैश्च भव स्यायतनस्तथा ॥१०॥
अनतेन च संयुतं मुचुकुदेन धीमता ।
नृपेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना ॥११॥
शील रसातलं विप्राः शार्कर हि तलातलम् ।
पीत सुतलमित्युवत वितलं विद्रुमप्रभम् ॥१२॥
सित हि अतलं तच्च तलं यच्च सितेतरम् ।
धमायास्तु यावद्विस्तारो ह्यधस्तेषां च सुप्रताः ॥१३॥
तलानां चैव सर्वेषां तावत्सरया समाहिता ।
सहस्रयोजनं व्योम दशमाहसमेव च ॥१४॥

पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्गोक्त, महर्गोक्त, जल भोज, तपनोक्त और सत्य लोक आदि ये ऊपर रहने वाले गत लोक परम शुभ हैं और इसी ब्रह्माण्ड से उद्भव प्राप्त करने वाले हैं ॥८॥ इन पृथ्वी मन के नीचे महाजन आदि सात तल हैं और ऊपर नीचे क्रम से समस्त नरक हैं ॥९॥ महाजन का अधोभाग हेम के समान मन याचा है और समस्त प्रसार के रत्नों से यह उपशोभित है तथा भगवान् मन के विभिन्न प्राप-

तन एव प्रासादो से वह युक्त है ॥१०॥ वहा गगवान् अनन्त विराज-
मान रहते हैं और घीमान् मुचुकुन्द एव राजा बलि पाताल रूपी स्वर्ग
के निवास करने वाले से वह संयुक्त है ॥११॥ हे विप्रगण ! रसातल तो
सम्पूर्ण धौलमय है और तल्पतल सिक्ता से परिपूर्ण होता है । सुतल
पीत वर्ण का है तथा वितल लोक विद्रुम के समान प्रभा वाला है ॥१३॥
अतल श्वेत वर्ण का है और तल लोक सित वर्ण से भिन्न वर्ण वाला है
अर्थात् वृष्ण वर्ण है । हे सुव्रत वालो ! भूमि का जिनना विस्तार है
नीचे के भाग में उन समस्त तलों की संख्या भी उतनी ही समाहित
होती है । अथ तलों का अन्तर्वर्त्ती व्योम का प्रमाण बताया जाता है,
सहस्र योजन व्योम है और दश सहस्र भी है ॥१३॥१४॥

तक्ष सप्तसहस्रं हि तलानां सघनस्य तु ।
व्योम्नः प्रमाणं मूलं तु निशरसाहस्रकेण तु ॥१५॥
सुवर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम् ।
रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्च निपेवितम् ॥१६॥
विरोचनहिरण्याक्षनरकाद्यं च सेवितम् ।
तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम् ॥१७॥
वैनावकादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः ।
पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलं च तथापरैः ॥१८॥
वितलं दानवाद्यं च तारकाग्निमुखंस्तथा ।
महात काद्यैर्नागैश्च ब्रह्मादेनासुरेण च ॥१९॥
वितलं चात्र विख्यातं कबलाश्वनिपेवितम् ।
महाकुभेन वीरेण हयग्रीवेण घीमता ॥२०॥
शकुणैर्न समिष्टं तथा नमुचिपूर्वकैः ।
तथान्यैर्विविधैर्वीरैस्तलं च सुशोभितम् ॥२१॥
तलेषु तेषु सर्वेषु चावया परमेश्वरः ।
स्केन्द्रेण नदिना सार्धं गणपे सर्वतो वृत ॥२२॥

तलानां चैव सर्वेषामूर्ध्वतः सप्तसप्तमाः ।

क्षमातलनि धरा चापि सप्तधा कथयामि वः ॥२३॥

धन से उपलब्धित आकाश का महालतादि चारों का सहस्र योजन से आरम्भ करके लक्ष तक होता है । सात सहस्रान्त प्रमाण फिर मूलभूत तलादि तीन तीस सहस्र से व्योम प्रमाण से युक्त होने है । हे मुनिश्रेष्ठो ! सुवर्ण वासुकि नाग से वह शुभ लोक रसातल, इस नाम से ख्यात है और वह अन्यो के द्वारा भी सेवित होता है ॥१५॥१६॥ जो विरोचन हिरण्याक्ष और नरकासुर आदि से सेवित है वह सम्पूर्ण शोभा से समन्वित तलातल इस नाम से प्रविद्ध है ॥१७॥ कालनेमि पुरोगम वैनायक प्रभृति पूर्व देवों से घिरा हुआ सुतल लोक होता है तथा उसमें ऊपर लोग भी निवास किया करते हैं ॥१८॥ तारकाग्नि प्रमुख दानवादि जिसमें रहते हैं वह वितल लोक कहा जाता है । महान्तकारि नाग और असुर प्रह्लाद भी जिसमें निवास किया करते हैं और यह विख्यात वितल कम्बलाश्र के द्वारा भी निषेवित होता है । वीर महा कुम्भ तथा धीमाद् हयग्रीव के द्वारा एव शंकुकर्ण और नमुचि पूर्वक अग्न्य अनेक वीरों के द्वारा सुशोभित लोक तल लोक के नाम से विख्यात है ॥१९॥ ॥२०॥२१॥ इन सम्पूर्ण तलों में परमेश्वर जगदम्बा के सहित स्वामि कार्तिकेय और नन्दी के साथ एव गणपति से युक्त होते हुए सभी और घृत रहते हैं ॥२२॥ इन समस्त सात तलों के ऊपर है साधु श्रेष्ठो ! सात धरातल हैं जिनको मैं अभी आपको बतलाता ॥ । अर्थात् वे सात प्रकार के द्वीप होते हैं ॥२३॥



सप्त द्वीप निरूपण

सप्त द्वीपा तथा पृथ्वी नदीपर्वतसंकुला ।
 समुद्रैः सप्तभिश्चैव सर्वतः समलंकृता ॥१॥
 जम्बूः प्लक्षः शाल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चस्तथैव च ।
 शाकः पुष्करनामा च द्वीपास्त्वभ्यन्तरे क्रमात् ॥२॥
 सप्तद्वीपेषु सर्वेषु सांवः सर्वगणवृंतः ।
 नानावेषधरो भूत्वा साक्षिष्यं कुरुते हरः ॥३॥
 क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदधिः ।
 दध्यर्णवश्च क्षीरोदः स्वादूदश्चाप्यनुक्रमात् ॥४॥
 समुद्रेष्विह सर्वेषु सर्वदा सगणः शिवः ।
 जलरूपी भवः श्रीमान् क्रीडते चोर्मिबाहुभिः ॥५॥
 क्षीरार्णवामृतमिव सदा क्षीरार्णवे हरिः ।
 शेते शिवज्ञानधिया साक्षाद् योगान्निद्रया ॥६॥
 यदा प्रबुद्धो भगवान्प्रबुद्धमखिलं जगत् ।
 यदा सुप्तस्तदा सुप्तं तन्मयं च चराचरम् ॥७॥

इस अध्याय में भूद्वीप, सागर और प्रियव्रत के आत्मजाकीर्ति एवं उनके विभाग का वर्णन किया जाता है । सून जी ने कहा—यह पृथ्वी सात द्वीपों से युक्त है । इसमें बहुत सी नदियाँ तथा पर्वत भी हैं और यह सात समुद्रों से सभी ओर से विभूयित होती है ॥१॥ इसमें जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नामो वाले क्रम से अन्दर सात द्वीप होते हैं ॥२॥ इन समस्त सात द्वीपों में अपने अपने समस्त गणों संयुक्त भगवान् साम्ब हर अनेक वेषों को धारण करके साक्षिष्य किया करते हैं ॥३॥ सात समुद्रों के नाम क्षारोद, दक्षुरसोद, सुरोद, घृतोदधि, दध्यर्णव, क्षीरोद, स्वादूद इस अनुक्रम से हैं ॥४॥ इन सम्पूर्ण समुद्रों में अपने गणों के भगवान् शिव सर्वदा विराजमान रहा करते हैं और श्रीमान् जलरूप वाले भव तरङ्ग रूपी बाहुओं से

फ्रीडा किया करते हैं ॥५॥ हरि भगवान् क्षीर सागर में क्षीराण्व के
 प्रमृत की भाँति सदा साक्षात् शिव ज्ञान की दुद्धि वाली योग निद्रा से
 घायन किया करते हैं ॥६॥ जिस समय में भगवान् प्रबुद्ध (जागे हुए)
 होते हैं तो उस समय यह सम्पूर्ण जगत् भी प्रबुद्ध रहा करता है ।
 जब भगवान् सुपुष्टि की अवस्था में रहते हैं उस समय में यह समस्त
 चराचरमय जगत् सुपुष्ट रहा करता है ॥७॥

तेनैव सृष्टमखिल घृतं रक्षितमेव च ।
 संतृप्तं देवदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥८॥
 सुपेणा इति विख्याता यजते पुष्पवंभम् ।
 अनिरुद्धं मुनिश्रेष्ठाः शङ्खचक्रगदाधरम् ॥९॥
 ये चानिरुद्धं पुरुषं ध्यायन्त्यात्मविदां वराः ।
 नारायणसमाः सर्वे सर्वसंपत्समन्विताः ॥१०॥
 सनंदनश्च भगवान् सनकश्च सनातनः ।
 बालखिल्याश्च सिद्धाश्च मित्रावरुणकौ तथा ॥११॥
 यजति सततं तत्र विश्वस्य प्रभवं हरिम् ।
 सप्तद्वीपेषु तिष्ठति नानाशृङ्गा महोदयाः ॥१२॥
 आसमुद्रायताः केचिद्दिगयौ गह्वरंस्तथा ।
 धरायाः पतयश्चासन् बहवः कालगौरवात् ॥१३॥
 सामर्थ्यात्परमेशानाः क्रौञ्चारेर्जनकात्प्रभोः ।
 मन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥१४॥

उन्ही भगवान् के द्वारा यह समस्त जगत् सृजन को प्राप्त हुआ
 है अर्थात् रच गया है, अखिल जगत् को उन्ही ने धारण किया है तथा
 उन्ही ने इसकी रक्षा की है और देवों के भी देव परमेश्वरी के प्रसाद से
 इस सबका सहार भी उन्ही ने किया है ॥८॥ जो पुरुषों में परम श्रेष्ठ
 का यजन किया करते हैं वे 'सुपेण'—इस नाम से विख्यात हुए हैं ।
 मुनियों में श्रेष्ठ शङ्ख, चक्र और गदा को धारण करने वाले अनिरुद्ध

का यजन करते हैं। जो आत्मवेत्ताओं श्रेष्ठ पुरुष अनिरुद्ध का ध्यान किया करते हैं वे सब सबप्रकार की सम्पत्ति से समन्वित होते हुए नारायण के ही तुल्य हुमा करते हैं ॥१॥१०॥ सनन्दन, भगवान् सनक और सनातन तथा बालखिल्य ऋषिगण, सिद्धगण और मित्र वरुणक वहाँ पर इस विश्व के कारण स्वरूप भगवान् हरि का यजन करते हैं। सातो द्वीपों में अनेक भाँति की शिखरों से युक्त, महान् उदय वाले और समुद्र पर्यन्त फैले हुए लम्बे-चौड़े गिरि गुफाओं के सहित स्थित रहते हैं जो इस धरा के बहुत से काल के गौरव से पति थे ॥११॥१२॥१३॥ ये पर्वत स्वामि कार्तिकेय के जन्म देने वाले प्रभु शिव की शक्ति से सब भाँति समर्थ थे जो कि अतीत और आगे आने वाले सभी मन्वन्तरों में यहाँ पर स्थित रहते हैं ॥१४॥

प्रवक्ष्यामि धरेशान् वो वक्ष्ये स्वायंभुवन्तरे।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु च ॥१५॥
तुल्याभिमानिनश्चैव सर्वं तुल्यप्रयोजनाः।
स्वायंभुवस्य च मनोः पौत्रास्त्वासन्महा बलाः ॥१६॥
प्रियव्रतात्मजा वीरास्ते दशेह प्रकीर्तिताः।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेघा मेघातिथिर्वसुः ॥१७॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च।
प्रियव्रतोऽर्घ्यपिचतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ॥१८॥
जंबूद्वीपेश्वरं चक्रं आग्नीध्रं सुमहाबलम्।
प्लक्षद्वीपेश्वरं द्वापि तेन मेघातिथिः कृतः ॥१९॥
शात्मलेश्च वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान्।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे राजानं कृतवान्नृपः ॥२०॥
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौंचद्वीपे समादिशत्।
शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रं प्रियव्रतः ॥२१॥

अब मैं आपको स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो भी इस धरा के ईश हैं उन्हें बताता हूँ जो कि सभी अतीत अर्थात् व्यतीत हुए और आनागत

भन्वन्तरो मे रहा करते हैं ॥१५॥ ये सभी समान अभिमान वाले थे और इन सभी का प्रयोजन भी था, ये महान बलवान् और स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥१६॥ वे सब दश वीर यहाँ पर प्रिय व्रत राजा के पुत्र थे जो कि कहे गये हैं । आग्नीध्र, अग्निवाहु, मेघा, मेघातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र ये उनके दश नाम हैं ॥१७॥ ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र इन सात पारिवो का प्रिय व्रत ने सातो द्वीपो मे अभिषेक किया था ॥१८॥ सुन्दर और महान् बल वाले आग्नीध्र को जम्बू द्वीप का स्वामी किया था । मेघा तिथि को लक्षद्वीप का अधिपति उसने बना दिया था ॥१९॥ वसुष्मान् को शात्मलि द्वीप का राजा बनाया था । राजा ने ज्योतिष्मान् को कुक्ष द्वीप मे राजा बनाया था ॥२०॥ द्युतिमान् का क्रीश्च द्वीप मे राज्याभिषेक किया था । प्रिय व्रत शक द्वीप मे हव्य को राज्याधिपति किया था ॥२१॥

पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि सुव्रताः ।
 पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत् ॥२२॥
 धातकी चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवता वरौ ।
 महावीत स्मृत वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥२३॥
 नाम्ना तु धातकेऽर्चैव धातकीखंडमुच्यते ।
 हृद्योप्यजनयत्पुत्राञ्छाकद्वीपेश्वरः प्रभुः ॥२४॥
 जलद च कुमारं च सुकुमारं मणोचक्रम् ।
 कुसुमोत्तरमोदाकी सप्तमस्तु महाद्रुमः ॥२५॥
 अलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ।
 कुमारस्य तु कीमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥२६॥
 सुकुमार तृतीयं तु सुकुमारस्य कीर्त्यते ।
 मणचिकं चतुर्थं तु मणोचक्रमिहोच्यते ॥२७॥
 कुसुमोत्तरस्य वै वर्षं पचमं कुसुमोत्तरम् ।
 मोक्षकं चापि मोदाकेऽर्चं षष्ठं प्रकीर्तितम् ॥२८॥

हे सुव्रतवालो ! सवन को पुष्कर द्वीप का अधिपति नियुक्त किया
 था । पुष्कर द्वीप में सवन का महावीर पुत्र हुआ था और घात की भी
 पुत्र हुआ था । ये दोनों पुत्र पुत्र वालों के परम श्रेष्ठ पुत्र थे । महावीर
 वर्ष कहा गया है जो कि उस महान् आत्मा वाले के नाम से हुआ था ।
 ॥२२॥२३॥ घातकी के नाम से घातकी स्रष्ट कहा जाता है । शाक द्वीप
 के अधिपति हव्य ने भी पुत्रों का जन्म दिया था । उन पुत्रों के नाम
 जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुसुमोत्तर और मोदाकी तथा सातवाँ
 महा द्रुम नाम वाला था ॥२४॥२५॥ जलद का जलद प्रथम वर्ष कहा
 जाता है और कुमार का कौमार द्वितीय कहा गया है ॥२६॥ सुकुमार
 का तीसरा सुकुमार कहा जाता है । मणीचक चौथा है जो मणीचक
 नाम से कहलाता है ॥२७॥ कुसुमोत्तर का पाचवाँ वर्ष कुसुमोत्तर है
 और मोदाकि का मोदक नाम वाला षष्ठ वर्ष कहा गया है ॥२८॥

महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तम तन्महाद्रुमम् ।
 तेषां तु नामानि स्तानि सप्त वर्षाणि तत्र वै ॥२९॥
 कौचद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ।
 कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चाधकारकः ॥३०॥
 मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ।
 तेषां स्वनामभिर्देशः कौचद्वीपाश्रयाः शुभाः ॥३१॥
 कुशलदेशः कुशलो मनुगस्य मनोनुगः ।
 उष्णस्मोष्णः स्मृतो देशः पीवर पीवरस्य च ॥३२॥
 अधकारस्य वधितो देशो नाम्नाय वारकः ।
 मुनेर्देशो मुनिः प्रोक्तो दुन्दुभेर्दुभिः स्मृतः ॥३३॥
 एते जनपदाः सप्त कौचद्वीपेषु भास्वराः ।
 ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त चासन्महोजसः ॥३४॥
 उद्भिदो वेणुमाश्चैव द्वैरथो लवणो धृतिः ।
 पञ्चः प्रभाकरश्चापि सप्तमः वपिलः स्मृतः ॥३५॥

महाद्रुम के नाम से सप्तम महाद्रुम है । उन के नामों से ये सात वर्ष वहाँ पर होते हैं ॥२६॥ क्रीञ्च द्वीप के स्वामी के जिसका नाम छुतिमान है पुत्र हुए हैं । छुतिमान् के पुत्रों के नाम कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि दु दुभि ये नाम थे । उन सबके न मों से क्रीञ्च द्वीप के आश्रम में होने वाले शुभ देश थे ॥३०॥३१॥ कुशल के देश का नाम कुशल था, मनुग के देश का नाम मनोनुग था । उष्ण के नाम से उष्ण देश था और पीवर का देश भी पीवर इन नाम से कहा गया है ॥३२॥ अन्धकार के देश का नाम अन्धकारक कहा गया था । मुनि के देश का नाम मुनि और दु-दुभि के देश का नाम भी दु-दुभि था ॥३३॥ इतने से सात देश परम प्रकाशयुक्त क्रीञ्च द्वीपों में थे । कुशल द्वीप में ज्योतिष्मान् के सात महान् भोज वाले पुत्र हुए थे ॥३४॥ उनके नाम उद्भिमत, वेणुमान्, द्वैरथ, लवण, धृति, पण्ड प्रभाकर और सातवाँ कपिल नाम धारी था ॥३५॥

उद्भिद प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमंडलम् ।
तृतीयं द्वैरथं चैव चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥३६॥
पञ्चमं धृतिमत्पण्डं प्रभाकरमनुत्तमम् ।
सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥३७॥
कालमलस्येश्वरा सप्त सुतास्ते वै वपुष्मतः ।
श्वेतश्च हरिश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥३८॥
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा ।
श्वेतस्य देशः श्वेतस्तु हरितस्य च हारितः ॥३९॥
जीमूतस्य च जीमूतो रोहितस्य च रोहितः ।
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्य च मानसः ॥४०॥
सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्त वै देशलाट्यवाः ।
प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनंतरम् ॥४१॥
सप्त भेदातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः ।
ज्येष्ठः शातभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै ॥४२॥

उद्दिमद प्रथम वर्ष था और दूसरा वेणुमण्डल नाम वाला था ।
 द्वैत्य तीसरा और चतुर्थ लवण कहा गया है ॥३६॥ धृतिमत् पाँचवा
 तथा छटा अत्युत्तम प्रभाकर था । कपिल का सातवाँ कपिल नाम से ही
 कहा गया है ॥६७॥ शाल्मलि द्वीप के अधिपति वपुष्मान् के भी सात
 पुत्र थे । उनके नाम इवेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और
 सप्तम सुप्रभ था । इवेत के देश का नाम इवेत ही था और हरित के
 देश का नाम हरित था ॥३८॥३९॥ जीमूत का जीमूत तथा रोहित
 के देश का नाम रोहित था । वैद्युत का वैद्युत और मानस का मानस
 नाम वाला देश था ॥४०॥ सुप्रभ का सुप्रभ देश था । ये सात देश
 लाञ्छक हुए थे । अर्थात् अपने नामों से ही देशों के नाम रखने वाले
 थे । अब जम्बू द्वीप के अनन्तर प्लक्षद्वीप के विषय में बतलाऊँगा ॥४१॥
 प्लक्षद्वीप के स्वामी राजा मेधातिथि के सात पुत्र थे । उनमें सबसे बड़ा
 शान्तभय था । वे भी सात वर्ष हैं ॥४२॥

तस्मान्च्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः ।
 आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा ॥४३॥
 तानि तेषां तु नामानि सप्तवर्णाणि भागशः ।
 निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वाय भुवेन्तरे ॥४४॥
 मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः प्लक्षद्वीपनिवासिभिः ।
 वर्णाश्रमाचारयुताः प्रजास्तत्र निवेशिताः ॥४५॥
 प्लक्षद्वीपादिवर्षेषु शाकद्वीपातिकेषु वै ।
 क्षीयः पंचसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥४६॥
 सुखमायुः स्वरूपं च वलं धर्मो द्विजोत्तमाः ।
 पचस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वसाधारण स्मृतम् ॥४७॥
 रुद्रार्चनरता नित्य महेश्वरपरायणाः ।
 अन्ये च पुष्करद्वीपे प्रजाताश्च प्रजेश्वराः ॥४८॥
 प्रजापतेश्च रुद्रस्य भावामृतसुखोत्कटाः ॥४९॥

उस दान्तमय से शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, धेमक, ध्रुव थे । ये उनके नाम हैं । उन्होंने स्वायम्भुव अन्तर में पहिले वे सात वर्ष निवेशित किये थे ॥४३॥४४॥ अथ द्वीप में निवास करने वाले मेघातिथि के उन पुत्रों ने वहाँ पर वणों और भाय्रमों के आचार से समन्वित प्रजा निवेशित की थी ॥४५॥ अथ द्वीपादि वर्षों में और द्वाक द्वीपान्तिकों में इन पाँचों के वर्णाश्रम के विभाग से धर्म को जानना चाहिये ॥४६॥ हे द्विजोत्तमो ! इन पाँचों द्वीपों में सुख, मायु, स्वरूप बल और धर्म सबमें साधारण रूप वाला था ॥४७॥ उस पुष्कर द्वीप में अन्य प्रजात और प्रजेश्वर नित्य ही रुद्र के अर्चन में रत रहने वाले तथा महेश्वर की भक्ति में परायण थे ॥४८॥ प्रजापति रुद्र के भावामृत से उत्पट सुख वाले थे ॥४९॥



भारतवर्ष वर्णन

आग्नीध्रं ज्येष्ठदायाद काम्यपुत्रं महाबलम् ।
प्रियव्रतोऽभ्यपिचद्वै जबूद्धीपेश्वरं नृप ॥१॥
सोतीव भवभक्तश्च तपस्यो तरुणः सदा ।
भवार्चनरतः श्रीमान्गोमान्घीमान्द्विजर्षभाः ॥२॥
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव ।
सर्वे माहेश्वराश्चैव महादेवपरायणाः ॥३॥
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः ।
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थो वै त्विलावृतः ॥४॥
रम्यस्तु पञ्चमस्तत्र हिरण्मान् पष्ठ उच्यते ।
कुहस्तु सप्तमस्तेषा भद्राश्वस्त्वष्टमः स्मृतः ॥५॥
नवमः केतुमालस्तु तेषा देशाग्निबोधत ।
नाभेस्तु दक्षिण वर्षं हमाख्यं तु पिता ददौ ॥६॥

हेमकूट तु यद्वर्षं ददौ किंपुरुषाय सः ।

नैपथ यत्स्मृत वर्षं हरये तत्पिता ददौ ॥७॥

इस अध्याय में जम्बू वर्ष के भाग और भारतान्त आग्नीध्र वंश का निरूपण किया गया है । सूतजी ने कहा—राजा प्रिय व्रत ने परम प्रिय और महान् बलशाली अपने ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र को जम्बू-द्वीप का स्वामी अभिषिक्त किया था ॥१॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! वह आग्नीध्र अत्यन्त शिव का भक्त था तथा परम तपस्वी और सदा तरुण था । यह भव के यजनार्चन में अनुराग रखने वाला श्रीमान्, धीमान् और गोमान् था ॥२॥ इसके प्रजापतियों के समान नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे । ये सभी महेश्वर के परम भक्त थे और महादेव की पूजा में परायण रहने वाले थे ॥३॥ उन नौ पुत्रों में जो सबसे बड़ा पुत्र था वह नाभि, इस नाम से प्रसिद्ध था और उसका छोटा भाई किम्पुरुष था । हारि वर्ष तीसरा पुत्र था, चौथा इलावृत्त, पाँचवाँ रम्य और हिरण्मन् छटा एव कुरु, भद्राश्व और केतुमाल सानवाँ, आठवाँ तथा क्रम से नवम पुत्र हुये थे । अब उनके देशों का भी जान लो । नाभि का दक्षिण हेमाख्य वर्ष था जोकि उसके पिता ने दिया था ॥४॥५॥६॥ उस पिता ने हेमकूट वर्ष किम्पुरुष को दिया था और हरि के लिये नैपथ नाम वाला वर्ष दिया था ॥७॥

इलावृताय प्रददौ मेरुयंत्रं तु मध्यम ।

नीलाचलाश्रित वर्षं रम्याय प्रददौ पिता ॥८॥

श्वेत यदुत्तरं तस्मात्पित्रा दत्तं हिरण्मते ।

यदुत्तरं शृङ्गवर्षं पिता तत्कुरवे ददौ ॥९॥

वर्षं मातृवत् चापि भद्राश्वस्य न्यपेक्ष्यत् ।

गधमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान् ॥१०॥

इत्येतानि महान्तीह नव वर्षाणि भागशः ।

आग्नीध्रस्तेषु वर्षेषु पुत्रास्तानभिषिच्य वै ॥११॥

यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ।
 तपसा भावितश्चैव स्वाध्याय निरतस्त्वभूत् ॥१२॥
 स्वाध्यायनिरतः पञ्चाच्छिवध्यानरतस्त्वभूत् ।
 यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि च ॥१३॥
 तेषा स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।
 विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ॥१४॥

जहाँ पर मेरु मध्यम होता है वह देश इलावृत्ता को पिता ने दिया था तथा नीलाचल के आश्रय वाला देश रम्य नामधारी पुत्र को पिता ने दिया था ॥८॥ उससे उत्तर जो श्वेत देश था वह पिता ने हिरण्मान् नामक पुत्र को प्रदान किया था । शृङ्ग वर्ष जो उसके उत्तर में था वह कुरु को दे दिया था ॥९॥ माल्यवान् वर्ष भद्राश्व को और गन्धमादन वर्ष केतुमाल को दिया था ॥१०॥ यहाँ पर ये नौ महाव वर्ष थे उनका भाग करके आग्नीध्र ने उन वर्षों में अपने नौ पुत्रों को अभिषिक्त करके प्रदान कर दिये थे ॥११॥ इस प्रकार से पुत्रों को सब देकर वह धर्मात्मा यथाक्रम तपश्चर्या में आस्थित हो गया था और तप से भावित होते हुए स्वाध्याय में निरत हो गया था ॥१२॥ स्वाध्याय करने में सलग्न होते हुए फिर वह भगवान् शिव के ध्यान में रत हो गया था । जो किंपुरुष आदि आठ वर्ष थे वे परम शुभ थे ॥१३॥ उनकी सिद्धि स्वभाव से ही बिना प्रयत्न के सुख प्राय सिद्धि थी । उनमें कोई भी विपर्यय नहीं था और बुढ़ापे तथा मौत का भी कोई भय नहीं था । ॥१४॥

धर्माधर्मौ न तेष्वस्तां नोत्तमाधममध्यमा ।
 न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वतः ॥१५॥
 रुद्रक्षेत्रे मृताश्चैव जगमा. स्थावरास्तथा ।
 भक्ताः प्रासार्गिकाश्चापि तेषु क्षेत्रेषु याति ते ॥१६॥
 तेषा हिताय रुद्रेण चाष्टक्षेत्रे विनिर्मितम् ।
 तत्र तेषा महादेवः सान्निध्यं कुरुते सदा ॥१७॥

दृष्ट्वा त्वादि महादेवमष्टक्षेत्र निवासिनः ।
 सुखिनः सर्वदा तेषां स एवेह परा गतिः ॥१८॥
 नाभेनिसर्गं वक्ष्यामि हिमांकेऽस्मिन्निबोधत ।
 नाभिस्त्वजनयत्पुत्र मेरुदेव्यां महामतिः ॥१९॥
 ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम् ।
 ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ॥२०॥
 सोभिपिष्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः ।
 ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रियमहोरगान् ॥२१॥

उनमें धर्म और अधर्म नहीं थे तथा उन आठ क्षेत्रों में उत्तम,
 मध्यम और अधम युग की व्यवस्था भी नहीं थी ॥१८॥ स्यावर और
 जगम जो भी रुद्र क्षेत्र में मृत होते थे वे प्रासङ्गिक भक्त उन्हीं क्षेत्रों में
 जाया करते हैं ॥१९॥ उनके हित के लिए भगवान् रुद्र ने अष्टक्षेत्र की
 रचना की थी । वहाँ पर महादेव सर्वदा उनका साक्षिण्य किया करते
 हैं ॥१७॥ महादेव उस अष्ट क्षेत्र के निवास करने वालों को सदा देखा
 करते हैं । वे सर्वदा सुखी रहते हैं । यह ही उनकी परागति है ॥१८॥
 हिम ही जिसका चिन्ह भूत है उस हिमालय में नाभि का वंश है उसे
 मैं अब बतलाऊँगा, उसे आप लोग समझ लो । महामति नाभि ने मेरु-
 देवी में पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ वह समस्त क्षत्रियों से
 पूजित राजाओं में परम श्रेष्ठ ऋषभ नाम वाला था । ऋषभ के सौ
 पुत्रों में सबसे बड़ा महान् वीर भरत नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था ।
 ॥२०॥ पुत्र पर विशेष वात्सल्य रखने वाले ऋषभ ने इन्द्रिय स्वरूप
 महान् उरगों को जीत कर सचा ज्ञान और वैराग्य का आश्रय ग्रहण
 करके भरत को राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥२१॥

सर्वात्मनात्मनि स्थाप्य परमात्मानमीश्वरम् ।
 नमो जटी निराहारो चीरो ज्वांतगतो हि सः ॥२२॥
 निराशस्त्यक्तसंदेहः शैवमाप परं पदम् ।
 हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ॥२३॥

तस्मात्तु भरतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।

भरतस्यात्मजो विद्वान्मुमतिर्नाम धार्मिकः ॥२४॥

वभूव तस्मिंस्तत्तज्ज्य भरतः संन्यवेशयत् ।

पुत्रसक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥२५॥

इसके अनन्तर उसने पूर्णतया अपने अन्दर परमात्मा ईश्वर को स्थापित करके स्वयं नव, जटाधारी, बिना आहार वाला तथा चीर धारी होकर वह वन में प्रविष्ट हो गया था ॥२२॥ एक दम आका से रहित होकर सन्देह का त्याग करते हुए शिव के परम पद की उसने प्राप्ति की थी और हिमाचल का दक्षिण वर्ष जो था वह भरत को दे दिया था ॥२३॥ इसी कारण से बुध लोग उसको उसके नाम से 'भारत वर्ष' कहा करते हैं । भरत का पुत्र मुमति नाम वाला अत्यन्त विद्वान् एवं परम धार्मिक था ॥२४॥ भरत ने उस राज्य में उस अपने पुत्र को सन्निवेशित कर दिया था और पुत्र को सम्पूर्ण राज्यश्री प्रदान कर स्वयं राजा भरत वन में प्रविष्ट हो गया था ॥२५॥



ज्योतिष चक्र और सूर्यगति कथन

ज्योतिर्गणप्रचार वै सक्षिप्याडे ब्रवीम्यहम् ।

देवक्षेत्राणि चालोवय ग्रहचारप्रसिद्धये ॥१॥

मानसोपरि माहेन्द्रो प्राच्या मेरोः पुरी स्थिताः ।

दक्षिणो भानुपुत्रस्य वरुणस्य च वारुणी ॥२॥

सौम्ये सोमस्य विपुला तामु दिग्देवताः स्थिताः ।

अमरावती सयमनी सुखा चैव विभा क्रमात् ॥३॥

लोकपालोपरिष्ठात् सर्वतो दक्षिणायने ।

काष्ठा गतस्य सूर्यस्य गतिर्या ता निबोधत ॥४॥

दक्षिणप्रक्रमे भानुः क्षिप्तेपुरिव घावति ।
 ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥५॥
 पुरांतगो यदा भानुः शक्रस्य भवति प्रभुः ।
 सर्वैः सायमनः सोरो ह्यृदयो दृश्यते द्विजाः ॥६॥
 स एव सुखवत्यां तु निशांतस्थः प्रदृश्यते ।
 अस्तमेति पुनः सूर्यो विभार्या विश्वहृन्विभुः ॥७॥

इस अध्याय में सूर्य की उत्तम गति और ध्रुव तथा अभ्रमेणों की विशेषताएँ निरूपित की जाती हैं । सूतजी ने कहा—अब मैं ग्रहचार प्रसिद्धि के लिये देव क्षेत्रों का आलोकन करके और ग्रन्थ में ज्योति-गण प्रचार का संक्षेप करके बताता हूँ ॥१॥ मानस के ऊपर के भाग में प्राची दिशा में माहेन्द्री नाम वाली मेरु की पुरी स्थित है और दक्षिण दिशा में भानु के पुत्र यम की और वरुण की वाहणी पुरी है ॥२॥ सौम्य दिशा में सोम की विपुला पुरी है उनमें दिशाओं के देवता स्थित हैं । फिर अमरावती, समयनी, सुखा और विभा क्रम से हैं ॥३॥ लोकपालों के ऊपर के भाग में दक्षिणायन में दक्षिण दिशा में गये हुए सूर्य की जो गति है अब उसे समझ लो ॥४॥ दक्षिण दिशा की ओर जब सूर्य जिस समय प्रक्रमण करता है तो वह फँके हुये बाण की भाँति अत्यन्त त्वरित गति से दौड़ता है । वह निरन्तर ज्योतिषों के चक्र को लेकर परिगमन किया करता है । हे द्विजगण ! जिस समय भानु प्रभु इन्द्र के पुर के अन्त में गमन करने वाला होता है तब सौर उदय समस्त सायमनों के साथ दिखलाई देता है ॥५॥६॥ वह ही संयमनीस्य सुखवती में निशांतस्थ अर्थात् प्रातःकाल में दिखलाई दिया करता है । फिर विश्व को देखने वाला विभु सूर्य विभा में अस्त को प्राप्त होता है ॥७॥

मया प्रोक्तोमरावत्यां यथासौ वारितस्करः ।
 तथा संयमनी प्राप्य सुखां चैव विभां खगः ॥८॥

यदापराह्ण त्वाग्नेय्या पूर्वाह्णे नैऋते द्विजाः ।

तदा त्वपररात्रश्च वायुभागे सुदारुणः ॥६॥

ईशान्या पूर्वरात्रस्तु गतिरेषा च सर्वतः ।

एव पुष्करमध्ये तु यदा सर्पति वारिषः ॥१०॥

त्रिंशदशकं तु मेदिन्या मृहूर्तेनैव गच्छति ।

योजनानां मृहूर्तस्य इमां सख्या निबोधत ॥११॥

पूर्णां शतसहस्राणामेकत्रिंशत् सा स्मृता ।

पञ्चाशच्च तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥१२॥

मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा भास्करस्य महात्मनः ।

एतेन गतियोगेन यदा काष्ठां तु दण्डिणाम् ॥१३॥

पर्यपृच्छेत् पतंगोपि सोम्याशा चोत्तरेऽहनि ।

मध्ये तु पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने ॥१४॥

मैंने अमरावती में जिस तरह से इसकी बारि का हरण करने वाला तस्कर बताया है उसी तरह समयनी, सुखा और विभा को प्राप्त होकर यह खग अर्थात् आकाश चारी होता है ॥६॥ हे द्विजो ! जब यह सूर्य आग्नेयी दिशा में रहता है तो अपराह्ण होता है और नैऋत दिशा में रहने पर पूर्वाह्ण अर्थात् दिन का पूर्वार्द्ध होता है । जब यह वायव्य कोण में सुदारुण रहता है तो अपररात्र होता है ॥६॥ ईशानी उपदिशा में रहता है तो रात्रि का पूर्व भाग होता है । यही सब प्रकार से इसकी गति है । इस प्रकार से जब बारि का पान करने वाला यह सूर्य आकाश के मध्य में गमन करता है तो मेदिनी के तीस अश तक एव मृहूर्त में ही गमन किया करता है । उस समय के गमन के योजनो की इस सख्या को भी प्रायः लोग समझ लें ॥१०॥११॥ वह सख्या इक्कीस लाख पचास सदस्य है ॥१२॥ महान् आत्मा वाले भगवान् भास्कर की यह एव मृहूर्त में होने वाली गति है । इस गति के योग से दक्षिण दिशा को जाया करता है और यह पतङ्ग उत्तर दिक्क में सोम्य

दिशा को जाता है । दक्षिणायन में आकाश के मध्य में भ्रमण किया करता है ॥१३॥१४॥

मानसोत्तरशैले तु महातेजा विभावसुः ।
मडलाना शत पूर्णं तदशीत्यधिकं विभुः ॥१५॥
बाह्यं चाभ्यन्तरं योक्तमुत्तरायणदक्षिणे ।
प्रत्यहं चरते तानि सूर्यो वै मडलानि तु ॥१६॥
कुलालचक्रपथं यथा शीघ्रं प्रवर्तते ।
दक्षिणप्रक्रमे देवस्तथा शीघ्रं प्रवर्तते ॥१७॥
तस्मात्प्रकृष्टा भूमि तु कालेनाल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने ॥१८॥
त्रयोदशार्धमृक्षाणामह्ना तु चरते रविः ।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्षत्रादशीश्चरन् ॥१९॥
कुलालचक्रमध्यं तु यथा मन्दं प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रम ॥२०॥
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पा तु गच्छति ।
स रथो धिष्ठितो भानोरादित्यं मुनिभिस्तथा ॥२१॥

मानसोत्तर शैल में महान् तेज वाला विभावसु, एक सौ प्रससी पूर्ण मण्डल हैं जिनको उत्तरायण दक्षिण में बाह्य और आभ्यन्तर कहा गया है, उन मण्डलों में यह विभु सूर्य प्रतिदिन विचरण किया करता है ॥१५॥१६॥ कुम्हार के बरतन बनाने का चाक चारों ओर जिस प्रकार शीघ्रता से चक्कर बाटता है उसी भाँति दक्षिण प्रक्रम में सूर्यदेव भी बड़ी शीघ्रता के साथ प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥१७॥ इस कारण से इस प्रवृष्ट भूमि को बहुत थोड़े ही समय में गमन करता है । दक्षिणायन में तो यह सूर्य द्वादश मुहूर्तों में ही शीघ्रता से जाया करता है ॥१८॥ नक्षत्रों व त्रयोदश के अर्धभाग को एक दिन में रवि चरण किया करता है । रात्रि में अठारह मुहूर्तों में उनसे नक्षत्रों का चरण करता है ॥१९॥ कुलाल के चक्र का मध्य जिस तरह मन्द गति से प्रसर्पण किया करता

है उसी प्रकार से उदगमन में सूर्य भी मन्द विक्रम वाला होता हुआ गमन करता है ॥२०॥ इस कारण से दीर्घ काल में बहुत छोड़ी भूमि का गमन करता है । मानु का वह रथ आदित्य तथा मुनियों के द्वारा अधिष्ठित है ॥२१॥

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीः सर्पराक्षसैः ।
प्रदीपयन् सहस्रांशुरग्रतः पृष्ठतोप्यधः ॥२२॥
ऊर्ध्वतश्च करं त्यक्त्वा सभां ब्राह्मीमनुत्तमाम् ।
अभोभिमुनिभिस्त्यक्तैः संख्यायां तु निशाचरान् ॥२३॥
हत्वा हत्वा तु संप्राप्तान्ब्राह्मणैश्चरते रविः ।
अष्टादश मुहूर्तं तु उत्तरायणपश्चिमम् ॥२४॥
अहर्भवंति तच्चापि चरते मदविक्रमः ।
त्रयोदशार्धमृक्षाणि नक्तं द्वादशभी रविः ।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि दिवाष्टादशभिश्चरन् ॥२५॥
ततो मंदतरं नाम्नां चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा ॥२६॥
त्रिंशन्मुहूर्तरेवाहुरहोरात्र पुराविदः ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मंडलानि तु ॥२७॥
कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते ।
ओत्तानपादो भ्रमति ग्रहैः सार्धं ग्रहाग्रणीः ॥२८॥

यह ग्रामणी अर्थात् सबका निर्देशक नामक तथा उपभोग के योग्य सहस्रांशु गन्धर्व, अप्सरा, सर्प तथा राक्षसों से युक्त घिरा हुआ रहता है और आगे-पीछे, नीचे-ऊपर अपने कर (किरणों को) के द्वारा प्रदीप्त करता हुआ उत्तम ब्राह्मी सभा का त्याग कर सन्ध्या में मुनिगणों के द्वारा छोड़े हुये जलों के अर्थात् अर्घ्य के जलाजलियों के द्वारा सम्प्राप्त निशाचरों का हनन कर करके ब्राह्मणों के द्वारा ही चरण किया करता है और उत्तरायण पश्चिम में अठारह मुहूर्तों में गमन करता है ॥२२॥२३॥२४॥ वह भी दिन होता है जिसमें मन्द गति वाला रवि

गमन किया करता है । वारह मुहूर्तों में त्रयोदशार्ध नक्षत्र रात्रि को और उतने ही नक्षत्रों को दिन में गठारह मुहूर्तों में रवि गमन किया करता है । ग्रीष्म में दिन बहुत बड़ा और रात छोटी होती है । यह सूर्य की गति के कारण से ऐसा होता है ॥२५॥ उससे भी मन्दार अर्थात् अधिक धीमा चक्र जैसे नाभि में भ्रमण करता है उसी तरह से मध्य में स्थित मिट्टी के पिंड की भांति ध्रुव भ्रमण करता है ॥२६॥ पुरावेत्ता मनीषोगण ग्रहोरात्र (रात-दिन) को तीस मुहूर्तों से युक्त कहते हैं । दोनों काष्ठाग्रों के मध्य में मङ्गल का भ्रमण रवि करता है । उस भ्रमण में भी कुलास के चक्र की नाभि जिस तरह से घड़ी पर रहती है उसी भांति ग्रहों का मनुमा ध्रुव (चरतानपाद का पुत्र) ग्रहों के साथ ही भ्रमण किया करता है ॥२७॥२८॥

गणो मुनिज्योतिषां तु मनसा तस्य सर्पति ।
 अधिष्ठितः पुनस्तेन भानुस्त्वादाय तिष्ठति ॥२९॥
 किरणैः सर्वतस्तोयं देवो वै ससमीरणः ।
 औत्तानपादस्य सदा ध्रुवत्वं वै प्रसादतः ॥३०॥
 विष्णोरीत्तानपादेन चाप्तं तातस्य हेतुना ।
 आपः पीतास्तु सूर्येण क्रमन्ते शशिनः क्रमात् ॥३१॥
 निशाकराग्निलवन्ते जीमूतान्प्रत्यपः क्रमात् ।
 वृन्दं जलमुचां चैव श्वसनेनाभिताडितम् ॥३२॥
 क्षमार्थां सृष्टिं विसृजतेऽभासयत्तेन भास्करः ।
 तोयस्य नास्ति वै नाशः तदेव परिवर्तते ॥३३॥
 हिताय सर्वजंतूनां गतिः सर्वेण निमिता ।
 भूर्भुवः स्वस्तथा ह्यापो ह्यन्नं चामृतमेव च ॥३४॥
 प्राणां वै जगतामापो भूतानि भुवनानि च ।
 बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत् ॥३५॥

मुनि और ज्योतिषों का गण उस ध्रुव की इच्छा से गमन किया करता है । वायु के सहित देव भानु किरणों के द्वारा सब ओर

से जल का ग्रहण करके उस ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित अर्थात् ध्रुव में ही स्थित रहता है ॥२६॥ अपने पिता के हेतु होने के कारण भगवान् विष्णु के प्रसाद से ही ध्रुव अर्थात् राजा उत्तानपाद के पुत्र ने ध्रुवत्व को प्राप्त किया था । सूर्य के द्वारा पीये हुए जल क्षी के क्रम से क्रमण किया करते हैं ॥३०॥॥३१॥ मेघों का समूह वायु से अभिताडित होकर उन पीत किये जलों को क्रम से जीमूतों का स्रवण निशाकर से होता है ॥३२॥ पृथ्वी पर सृष्टि का त्रिमृजन करता है और इस जगत् को दीप्त किया करता है इसीलिये इस रवि का नाम भास्कर कहा गया है । जल का कभी नाश नहीं होता है क्योंकि वही परिवर्तित हो जाया करता है । जो जल किरणों द्वारा पी लिया जाता है वही पुनः वृष्टि के रूप में जल होकर आ जाता है ॥३३॥ भगवान् शर्व (शम्भु) ने यह गति समस्त जीवों के हित-सम्पादन के लिये ही बनाई है । भूभुवः स्व तथा जल, अन्न और अमृत इन सबकी रचना की है ॥३४॥ जल जगत् के प्राण हैं जिसमें समस्त भूत और भुवन है । बहुत अधिक क्या कहा जावे यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् जल के आधार पर स्थित है ॥३५॥

अपां शिवस्य भगवानाधिपत्ये व्यवस्थितः ।

अपा त्वधिपतिर्देवो भव इत्येव कीर्तितः ॥३६॥

भवात्मक जगत्सर्वमिति किं चेह चाद्भुतम् ।

नारायणत्वं देवस्य हरेश्चाद्भिः कृतं विभोः ।

जगतामालयो विष्णुस्तत्रापस्तस्यालयानि तु ॥३७॥

दन्दह्यमानेषु चराचरेषु गोधूमभूतास्त्वथ निष्क्रमति ।

या या ऊर्ध्वं मास्तेनेरिता वै तास्तास्त्वभ्राण्यग्निना वायुना च ॥३८॥

अतो धूमाग्निवाताना सयोगस्त्वभ्रमुच्यते ।

वारीणि वर्षंतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्रदृक् ॥३९॥

यज्ञधूमोद्भवं चापि द्विजाना हितवृत्सदा ।

दावाग्निधूमसंभूतमभ्रं वनहित स्मृतम् ॥४०॥

मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति ।
 अभिचाराग्निधूमोत्थ भूतनाशाय वै द्विजा. ॥४१॥
 एवं धूमविशेषेण जगता वै हिताहितम् ।
 तस्मादाच्छादयेद्धूममभिचारकृत नरः ॥४२॥

जलो का भगवान् शिव के ही प्राधिपत्य अर्थात् स्वामित्व में व्यवस्थित है । जलो का स्वामी देव भव (शिव), ही कहे गये हैं ॥३६॥ यह सम्पूर्ण जगत् भव के ही स्वरूप वाला है, इसमें यहाँ अदभुत कोई वस्तु नहीं है । देव हरि विभु का नारायणत्व जलो के द्वारा ही किया गया है । समस्त जगतो का आधार भगवान् विष्णु हैं किन्तु उन विष्णु का निवास स्थान जल हैं ॥३७॥ सम्पूर्ण चर और भ्रवर के दह्यमान हो जाने पर पृथिवी से सम्बन्धित धूम के रूप वाली जो-जो भी ऊपर आकाश में निष्क्रमण किया करती हैं वे-वे सब माधन के द्वारा प्रेरित होकर अग्नि और वायु के सहित अन्न (मेर) हो जाया करते हैं । इसी-लिये धूम, अग्नि और वायु के संयोग को ही मेघ कहा जाता है । यह अन्न जलो की वृद्धि किया करता है तथा इस अन्न का स्वामी सहस्र नेत्रो वाला इन्द्र होता है ॥३८॥३९॥ यज्ञो में उत्पन्न होने वाला जो धूम है उससे उद्भव प्राप्त करने वाला अन्न सदा द्विजो का हितकारी होता है । दावानल की धूँआ से समुत्पन्न मेघ वनो के हित करने वाला कहा गया है ॥४०॥ मृत के शव के दाह से उत्पन्न धूँआ से उद्भुत अन्न अशुभ होता है । हे द्विजगण ! अभिचार की अग्नि से अर्थात् अन्याय पूर्वक जो अग्नि उत्पन्न की गई उससे जो धूँआ होता है उससे समुत्पन्न अन्न मृतो के नाश करने वाला होता है ॥४१॥ इस तरह से धूमो की विशेषता होती है जिसके कारण जगत् का हित और अहित होता है । अतएव मनुष्य को अभिचार द्वारा किये गये धूम का आच्छादन करना चाहिए ॥४२॥

अनाच्छाद्य द्विज. धुर्याद्धूमं यश्चाभिचारिकम् ।

एवमुद्दिश्य लोकस्य क्षयवृद्ध भविष्यति ॥४३॥

अपां निधानं जीमूताः पण्मासानिह सुव्रताः ।
 चर्पयंत्येव जगतां हिताय पवनाज्ञया ॥४४॥
 स्तनित चेह वायव्य वैद्युत पाव कोद्भवम् ।
 त्रिधा तेषामिहोत्पत्तिरभ्राणा मुनिपुङ्गवाः ॥४५॥
 न भ्रश्यति यतोभ्राणि मेहनान्मेघ उच्यते ।
 काष्ठा बाह्याश्च वैरिच्याः पक्षा इत्थेव पृथग्विधाः ॥४६॥
 क्षाज्याना काष्ठसयोगादग्नेर्धूमः प्रवर्तितः ।
 द्वितीयाणा च संभूतिर्विरिचोच्छ्वासवायुना ॥४७॥
 भूभृतां त्वथ पक्षस्तु मघवच्छेदितस्ततः ।
 बाह्वेयास्त्वथ जीमूतास्त्वावहस्थानगाः शुभाः ॥४८॥
 विरिचोच्छ्वासजाः सर्व प्रवहस्कधजास्ततः ।
 पक्षजाः पुष्कराद्याश्च वर्पति च यदा जलम् ॥४९॥

जो द्विज प्राच्यादन न करने ही आभिचारिक अर्थात् मारणादि
 कर्म से सम्बन्धित धूम किया करता है । इस प्रकार से उद्देश्य करके वह
 धूम लोक पा क्षय करने वाला ही होगा ॥४३॥ हे सुव्रत वालो ! यहाँ
 भारत सण्ड से छै मास तक जलो के स्थान जीमून पवन की आज्ञा से
 ही जगत् के हित के लिए वर्षा किया करते हैं ॥४४॥ हे मुनिश्रेष्ठो !
 इस मेघ ने जो गर्जन है वह वायु से उत्पन्न होने वाली है और जो
 बिजली की घमघगाहट इसमें होनी है वह अग्नि से उत्पन्न होनी है ।
 इस तरह से उन धम्री की तीन प्रकार से उत्पत्ति होती है ॥४५॥
 जिनका नीचे की ओर भ्रजन नहीं होना है अतएव उन्हें प्रध्र कहा
 जाता है । वे जन्म के द्वारा मेहन अर्थात् भूमि का सेवन किया करते
 हैं इसीलिये उन वादलों को मेघ इस नाम से कहा जाता है । इनमें
 तीन प्रकार के पक्ष होते हैं जो कि भिन्न हैं । काष्ठ, बाह्य और वैरिच्य,
 ये तीन भेद होने हैं ॥४६॥ धूम की पाण्ड के संयोग से जो धूम प्रवृत्त
 होता है वह पाण्ड पक्ष है । विरिच की उच्छ्वास वायु से उत्पन्न होने
 वाले वैरिच्य पक्षे जाते हैं ॥४७॥ शब्द के द्वारा पर्वतो के वन्य से

पक्षों के छेदन से जो उत्पन्न हुए हैं ये वाह्येय कहे गये हैं ये जीमूत आबह संज्ञा वाले वायु के स्कन्ध वर्ती शुभ होते हैं ॥४८॥ विरश्चि के उच्छ्वास से उत्पन्न होने वाले सब प्रबह स्कन्धज होते हैं । इनके ऊपर के भाग में पुष्कर आदि संज्ञा वाले पक्षज जलद जन्म की वृष्टि किया करते हैं ॥४९॥

मूकाः सशब्ददुष्टाशास्त्वेतैः कृत्यं यथाक्रमम् ।
क्षामवृष्टिप्रदा दीर्घकालं शीतसमीरिणः ॥५०॥
जीवकाश्च तथा क्षीणा विद्युद्गुणिविवर्जिताः ।
तिष्ठन्त्याक्रोशमात्रे तु धरापृष्ठादितस्ततः ॥५१॥
अर्धक्रोशे तु सर्वे वै जीमूता गिरिवासिनः ।
मेघा योजनमात्रं तु साध्यत्वाद्वहसोयदाः ॥५२॥
धरापृष्ठाद्द्विजः क्षमायां विद्युद्गुणसमन्विताः ।
तेषां तेषां वृष्टिसर्गं त्रेधा कथितमत्र तु ॥५३॥
पक्षजाः कल्पजाः सर्वे पर्वतानां महत्तमाः ।
कल्पान्ते ते च वर्षन्ति राश्री नाशाय क्षारदाः ॥५४॥
पक्षजाः पुष्कराद्याश्च वर्षति च यदा जलम् ।
तदार्णवमभृत्सर्वं तत्र शेते निशीश्वरः ॥५५॥
आग्नेयानां श्वासजानां पक्षजानां द्विजपंभाः ।
जलदानां सदा घूमो ह्याप्या यन इति स्मृतः ॥५६॥

ये तीन प्रकार के मेघों के भिन्न-भिन्न कृत्य होते हैं । इनमें कुछ तो मूक अर्थात् शब्द या ध्वनि से रहित होते हैं, कुछ गर्जित से युक्त होते हैं और कुछ दुष्ट आशा वाले अर्थात् प्रलयकारी होते हैं । अब इनके यथा क्रम कार्य होते हैं । जो वाह्य जीमूत होते हैं वे बहुत समय में क्षीण वृष्टि के करने वाले होते हैं और ठण्डी हवा से युक्त होते हैं ॥५०॥ क्षीण शक्ति वाले जीवक जो श्वास से समुत्पन्न होते हैं वे बिजली की ध्वनि से रहित होते हैं और धरा के पृष्ठ से इधर-उधर एक कोश तक की सीमा में रहा करते हैं ॥५१॥ आधे कोश तक तो

सभी गिरि वामी जीमूत रहते हैं । जो विद्युत् की ध्वनि आदि से समन्वित होते हैं वे मेघ अधिक जल की वृष्टि करने वाले योजन मात्र स्थान में रहते हैं ॥५२॥ हे द्विजगण ! ये मेघ घरा के पृष्ठ से पृथ्वी से योजन मात्र रहने हैं । उन प्रथम और द्वितीय मेघों की वृष्टि का सर्ग तीन प्रकार का कहा गया है ॥५३॥ अब तृतीय वृष्टि सर्ग को बताते हैं, जो पक्षज एव कलज मेघ हैं वे सब पर्वतों से भी अधिक बड़े होते हैं वे वर्ष के अन्त में क्षारद रात्रि में नाश के लिये वर्षा किया करते हैं । ॥५४॥ पक्षज पुष्करादि नामधारी मेघ जब जल की वृष्टि करते हैं तब सब मर्याद हो जाता था और वहाँ निष्ठा में ईश्वर क्षयन किया करते हैं ॥५५॥ हे द्विजों में परमश्रेष्ठ गण ! आग्नेय, आसज और पक्षज जलदों का धूम सदा वृद्धि करने वाला होता है ऐसा कहा गया है ॥५६॥

पीण्डास्तु वृष्टयः सर्वा वैद्युता. क्षीतसस्यदाः ।

पुण्ड्रदेशेषु पतिता नागानां क्षीकरा हिमाः ॥५७॥

गाङ्गा गङ्गाम्बु सभूता पर्जन्येन परावहैः ।

नगानां च नदीनां च दिग्गजानां समाकुलम् ॥५८॥

मेघानां च पृथग्भूत जल प्रायादगादगम् ।

परावहो यः श्वसनश्चानयत्पम्त्रिकागुरुम् ॥५९॥

मेनापतिमतिक्रम्य वृष्टिशेष द्विजा परम् ।

अभ्येति भारते वर्षे त्वपरान्तविवृद्धये ॥६०॥

वृष्टयः कथिता ह्यद्य द्विधा वस्तु विवृद्धये ।

सस्यद्वयस्य सक्षेपात्प्रवोमि यथामति ॥६१॥

स्रष्टा भानुमंहातेजा वृष्टीना विश्वदृग्विभुः ।

सापि साक्षाद्दिवजश्रेष्ठाश्नेशान परम. शिवः ॥६२॥

स एव तेजस्त्वोजस्तु वल विप्रा यशः स्वयम् ।

चधुः धीम मनो मृत्युरात्मा मन्यु विदिग्दिश ॥६३॥

सत्यं ऋतं तथा वायुरंबरं खचरश्च सः ।

लोकपालो हरिर्ब्रह्मा रुद्रः साक्षान्महेश्वरः ॥६४॥

विद्युत् से विशिष्ट पीण्ड अर्थात् प्रण्ड देशीय सम्पूर्ण वृष्टि शीत की विशेषता वाले देश में शीत सस्य के देने वाली होती है । तोयदो के हिमकण जब पुण्ड देशों में पतित होते हैं तभी वहाँ शीत सस्य की उत्पत्ति हुआ करती है ॥५७॥ गङ्गा के जल से होने वाली वृष्टि गाङ्ग कही जाती है । परावह सज्ञा वाली वायुधो से पर्वतों का और नदियों का पृथग्भूत जल पञ्च-य से समा कुल होता हुआ पर्वत से पर्वत पर आता है । परावह वायु अम्बिका के पिता हिमालय में ले आता है । ॥५८॥५९॥ हे द्विजगण ! समुद्र के मध्य देशीय विशेष वृद्धि के लिये मेना के पति हिमालय का अनिक्कमण करके परम वृद्धि का शेष भारत-वर्ष में आता है ॥६०॥ आज आप लोगो को सस्य द्वय की विशेष वृद्धि के लिये दो प्रकार की वृष्टि संक्षेप से ययामनि कह दी है और सब बतलाता हूँ ॥६१॥ महान् तेज से समन्वित, विश्व का द्रष्टा और विभु भानुदेव वृष्टियों के सृजन करने वाले हैं । हे द्विजश्रेष्ठो ! वह भी साक्षात् ईशान परम शिव हैं ॥६२॥ वह ही स्वयं तेज, प्रोज, बल, धन, चक्षु, श्रोत्र, मन, मृत्यु, आत्मा, मग्न्य दिशा और विदिशा हैं ॥६३॥ वह महेश्वर ही साक्षात् सत्य, ऋत, वायु, अम्बर, खचर, लोकपाल, हरि, ब्रह्मा और रुद्र हैं ॥६४॥

सहस्रकिरण श्रीमा नष्टहस्त. सुमङ्गलः ।

अर्धनारीवपुः साक्षात्रिनेत्रस्त्रिदशाधिपः ॥६५॥

अस्यैवेह प्रसादात्तु वृष्टिर्नानाभवद्द्विजा. ।

सहस्रगुणमुत्सष्टु मादत्ते किरणैर्जलम् ॥६६॥

जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारत. ।

ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुवृष्टिं सहरते पुनः ॥६७॥

ग्रहान्निस्सृज्य सूर्यात्तु वृत्तस्ते नक्षत्रमण्डले ।

आरस्यान्ते विशत्यक् ध्रुवेण समधिष्ठिता ॥६८॥

सहस्र किरणो मे सयुत, शोभा सम्पन्न, भाठ हाथो वाला, सुन्दर मङ्गल स्वरूप से युक्त, अर्घनारी वपु वाले, साक्षात् तीन तेत्रो के धारण करने वाले और यह समस्त देवो के स्वामी हैं ॥६५॥ हे द्विज-गण ! इनकी ही कृपा से यहाँ लोक मे अनेक प्रकार की वृष्टि होती थी । सहस्र गुण का उत्सव करने के लिये यह अपनी किरणो के द्वारा जल को ग्रहण किया करते हैं ॥६६॥ इसके विचार से जल का कभी नाश या वृद्धि नहीं होती है । ध्रुव के द्वारा अविच्छिन्न वायु देव इस वृष्टि का पुनः सहार किया करते हैं ॥६७॥ सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्रो के मण्डप मे अर्थात् चन्द्र मण्डप मे पहुँच कर निक्षेपण करती है । वृष्टि के प्रकार के समाप्त हो जाने पर ध्रुव के द्वारा प्लाक्षित होती हुई मूय मे प्रवेश किया करती है ॥६८॥



द्वादश मासो मे सूर्य गति वर्णन

सौर सप्तमसो वदये रथ शशिन एव च ।
ग्रहाणामितरेषा च यथा गच्छति चावुप ॥१॥
सौरस्तु ग्रहाणा सृष्टो रथस्त्वर्थवशेन स ।
सवत्सरस्यावयवं कल्पितश्च द्विजर्पमा ॥२॥
त्रिणाभिना तु चक्रेण पञ्चारेण समन्वित ।
सौवर्णं सर्वदेवानामावासो भास्वरस्य तु ॥३॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारायामत स्मृत ।
द्विगुणोपि रथोपस्थादीपादण्ड प्रमाणत ॥४॥
असर्गस्तु हर्म्युक्तो यतश्चक्र तत स्थित ।
चाजिनस्तस्य वै सप्त छन्दोभिर्निर्मितास्तु ते ॥५॥
चमपक्षो निवद्धास्तु ध्रुवे चाक्ष समर्पित ।
सहाश्रचक्रो भ्रमने सहाशो भ्रमते ध्रुवः ॥६॥

इस अध्याय में भव स्वरूपी सूर्य का मधु आदि मातों के क्रम से पृथक् गणों का निरूपण किया जाता है । श्री मूत जी ने कहा — सौर रथ का तथा चन्द्र का संक्षेप में वर्णन करूँगा । यह जल का पान करने वाला जिस रीति से ग्रन्थ ग्रहों के निकट जाता है ॥१॥ हे द्विजों मे परम श्रेष्ठगण ! ब्रह्मा के द्वारा सृजन किया हुआ वह सौर रथ भव के वश से सम्भवतार के अवयवों से कल्पित किया गया है ॥२॥ तीन नाभि वाले चक्र तथा पाँच धारों से युक्त समस्त देवों के भास्कर का आवास सुवर्ण का है ॥३॥ इस रथ का आयाम और विस्तार तीसहस्र योजन है, ऐसा कहा गया है । रथोत्स्य से ईषादण्ड प्रमाण मे द्विगुण है ॥४॥ उस चक्र मे स्थित वह असङ्ग अर्थात् असमान अश्वों से युक्त है । उस रथ के अश्व सात हैं जो कि गायत्री, बृहती, उष्णिग् आदि छन्दों के द्वारा निर्मित होने वाले हैं ॥५॥ चक्र पक्ष में वे अश्व निबद्ध हैं और पक्ष ध्रुव मे समर्पित होता है । अश्व चक्र से युत रथ भ्रमण करता है और पक्ष के सहित ध्रुव भ्रमण किया करता है ॥६॥

अक्षः सहैकचक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः ।
 प्रेरको ज्योतिषां धोमान् ध्रुवो वै वातरश्मिभिः ॥७॥
 युगाक्षकोटिसंबद्धो द्वौ रश्मी स्पन्दनस्य तु ।
 ध्रुवेण भ्रमते रश्मि निबद्धः स युगाक्षयोः ॥८॥
 भ्रमतो मंडलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ।
 युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्पन्दनस्य हि ॥९॥
 ध्रुवेण प्रगृहीते वै विचक्राश्वे च रज्जुभिः ।
 भ्रमंतमनुगच्छन्ति ध्रुवं रश्मी च तावुभौ ॥१०॥
 युगाक्षकोटिस्त्वेतस्य वातोर्मिस्थन्दनस्य तु ।
 कीले सक्ता यथा रज्जुभ्रमते सर्वतोदिशम् ॥११॥

आम्यतस्तस्य रश्मी तु मण्डलेपूत्तरा गणे ।
 वर्धते दक्षिणे चैव भ्रमता मण्डलानि तु ॥१२॥
 आकृष्येते यदा ते वै ध्रुवेणाधिष्ठिते तदा ।
 आम्यन्तरस्यः सूर्योऽथ भ्रमते मण्डलानि तु ॥१३॥
 अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः ।
 ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ॥१४॥
 तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
 उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥१५॥

युग रथपू और प्रक्ष का भ्रमणमान इन दोनों में निबद्ध रथ की दो रश्मियाँ हैं । उन युगाक्षों में रश्मि से निबद्ध वह सौर रथ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करता है । यह एक चक्र के साथ प्रक्ष ध्रुव से प्रेरित होता हुआ हुआ भ्रमण करता है । वायु की रश्मियों के द्वारा भीमान् ध्रुव ज्योतिषों को प्रेरणा देने वाला है ॥७॥८॥ वह आकाश में विचरण करने वाला रथ मण्डलों में भ्रमण करता है और उस रथ की युगाक्ष कोटि में निबद्ध दो रश्मियाँ हैं । दक्षिण भाग में ध्रुव के द्वारा प्रगृहीत अरण, चक्र और प्रक्ष की वे दोनों रश्मियाँ रज्जुओं के सहित वे दोनों रश्मियाँ भ्रमण करते हुए ध्रुव का अनुगमन करती हैं । ॥९॥१०॥ इस रथ की वायु की लहर रूप वाली युगाक्ष कोटि जिस तरह कील में सक्त रज्जु होती है उसके ही समान सब दिशाओं में भ्रमण करती हैं ॥११॥ सूर्य की उत्तरायण, दक्षिणायन गति बतलाते हुए कहते हैं कि मण्डलों भ्रमण करते हुए उस रथ की रश्मि उत्तरायण और दक्षिणायन में वर्तित होती है ॥१२॥ ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित वे जब आकृष्ट की जाती हैं तो उस समय में अन्दर में अवस्थित सूर्य मण्डलों का भ्रमण किया करते हैं ॥१३॥ दोनों काष्ठाओं के अन्तर में अस्सी मण्डल शत हैं । पुनः ध्रुव के द्वारा मुच्यमान रश्मियों से उसी भाँति यह सूर्य मण्डलों के बाहिर भ्रमण किया करता है । वह वेग के साथ उद्वेष्टन करता हुआ मण्डलों के निकट जाता है ॥१४॥१५॥

देवाश्चैव तथा नित्यं मुनयश्च दिवानिशम् ।
 यजति सततं देवं भास्कर भवमोश्चरम् ॥१६॥
 स रथोधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मुनिभिस्तथा ।
 गन्धर्वैरप्सरोगैश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥१७॥
 एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ दौ मासौ क्रमेण तु ।
 आप्याययति चादित्य तेजोभिर्भास्करं शिवम् ॥१८॥
 ग्रन्थितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवंति मुनयो रविम् ।
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते ॥१९॥
 ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वन्तेऽभीपुसंग्रहम् ।
 सर्वा वहति वै सूर्यं यातुघानानुयाति च ॥२०॥
 बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ।
 द्द्यते ते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२१॥

सम्पूर्ण देवगण तथा समस्त मुनि मण्डल नित्य ही रात-दिन
 निरन्तर ईश्वर महादेव भास्कर भगवान् का यजन किया करते हैं ॥१६॥
 वह सबका नायक रथ में अधिष्ठित रहता है और देव, दैत्य, मुनि,
 गन्धर्व, अप्सरागण, सर्प और राक्षस इन सबके द्वारा समुपासित हुमा
 करते हैं ॥१७॥ ये सब सूर्य में दो-दो मास तक क्रम से निवास किया
 करते हैं और आदित्य भास्कर शिव को तेजो के द्वारा आप्यापित अर्थात्
 सन्तुष्ट किया करते हैं ॥१८॥ अपने वचनो से ग्रन्थित स्तवो के द्वारा
 मुनिगण भगवान् रविदेव का स्तवन किया करते हैं । गन्धर्व और
 अप्सरागण नृत्य और गानो के द्वारा रवि देव की उपासना करते हैं ।
 ॥१९॥ ग्रामणी, यक्ष और भूत अभिष्टुन का संग्रह किया करते हैं ।
 सर्प सूर्यदेव का बहन करते हैं और यातुघान अनुगमन करते हैं ॥२०॥
 बालखिल्य ऋषिगण उदय काल से आरम्भ करके रवि का परिवारण
 कर अस्तावल को प्राप्त कराते हैं । ये सब यहाँ पर दो-दो मास तक
 दिवाकर में निवास करते हैं ॥२१॥

मधुश्च माघवश्चैव शुक्रश्च शुचिरेव च ।
 नभोनभस्यो विप्रेन्द्रा इषश्चोर्जस्तथैव च ॥२२॥
 सहः सहस्यो च तथा तपस्यश्च तपः पुनः ।
 एते द्वादश मासास्तु वर्षं वै मानुषं द्विजाः ॥२३॥
 वासतिकस्तथा ग्रैष्मः शुभो वै वार्षिकस्तथा ।
 शारदश्च हिमश्चैव दैशिरो ऋतवः स्मृताः ॥२४॥
 घाताज्यंमास्य मित्रश्च वरुणश्चेन्द्र एव च ।
 विवस्वाश्चैव पूषा च पर्जन्योऽशुभं गस्तथा ॥२५॥
 त्वष्टा विष्णुः पुलस्त्यश्च पुलहश्चात्रिरेव च ।
 वसिष्ठश्चाङ्गिराश्चैव भृगुर्बुद्धिमता वरः ॥२६॥
 भारद्वाजो गौतमश्च वश्यपश्च ऋतुस्तथा ।
 जमदग्निः कौशिकश्च वासुकिः कंकणी करः ॥२७॥
 तक्षकश्च तथा नाग एलापश्चस्तथा द्विजाः ।
 दह्यपालस्तथा चान्यस्त्वेरावत इति स्मृतः ॥२८॥

हे विप्रेन्द्रगण ! मधुघोर माघव, शुक्रघोर शुचिनभ घोर नभस्य, इषघोर ऊर्ज, सहघोर सहस्य तथा तप तपस्य ये मानुष वर्ष के द्वादश मास होते हैं ॥२२॥२३॥ वासतिक, ग्रैष्म, शुभ वार्षिक, शारद, हिम घोर दैशिर ये ऋतवें बही गई हैं ॥२४॥ अब द्वादश आदित्यों को नुन के नामों को कह कर बताने हैं । घाता, अयंमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अशु, भग, त्वष्टा घोर विष्णु ये शारद आदित्य हैं । अब ऋषियों को बताते हैं—पुनर्वसु, पुनरु, अग्नि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, बुद्धिमानों में खेच्छ भृगु, भारद्वाज, गौतम, वश्यप, क्रतु, जमदग्नि घोर कौशिक ये ऋषियों के नाम हैं जो हि मूर्ख का मजन किया करते हैं । अब मर्षों के नाम, वचन करते हुए उन्हें बताने हैं—वासुकि, कंकणीकर, तक्षक, नाग, एलाप, दह्यपाल, अन्य ऐरावत बड़े मर्षे हैं ॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥

धनंजयो महापद्मस्तथा कर्कोटकः स्मृतः ।
 यमलोऽश्वतरश्चैव तुंगुर्नारदस्तथा ॥२९॥
 हाहा हूहमुनिश्रेष्ठा विश्वावसुरनुत्तमः ।
 उग्र सेनोऽथ सुरुचिरन्यश्चैव परावसुः ॥३०॥
 चित्रसेनो महातेजाश्रोणिपुश्चैव सुव्रताः ।
 धृतराष्ट्रः सूर्यवर्चा देवी साक्षात्कृतस्थला ॥३१॥
 शुभानना शुभश्रोणिर्दिव्या वं पुंजिकस्थला ।
 मेनका सहजग्या च प्रम्लोचाऽथ शुचिस्मिता ॥३२॥
 अनुम्लोचा घृताची च विश्वाची चोर्वंशी तथा ।
 पूर्वचित्तिरिति रयाता देवी साक्षात्तिलोत्तमा ॥३३॥
 रंभा चांभोजवदना रथकृद्गामणीः शुभः ।
 रथोजा रथचित्रश्च सुबाहुर्वै रथस्वनः ॥३४॥
 वरुणश्च तथैवान्यः सुपेणः सेनजिच्छुभः ।
 ताक्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च क्षतजित्सत्यजित्था ॥३५॥

धनञ्जय, महापद्म, कर्कोटक, कम्बल और अश्वतर ये भी सप्तों के विशिष्ट नाम तथा जातिर्गण हैं । तुम्बरु, नारद, हा हा, हू हू ये मुनि-श्रेष्ठा गण्यर्ण हैं । सर्वोत्तम विश्वावसु, उग्रसेन, सुरुचि, परावसु, चित्र-सेन, महानेजा, उर्णामु, धृतराष्ट्र और सूर्य वर्चा ये ही गन्धर्वों के नाम हैं जो सूर्य के साथ रहते हैं । अब अप्सरा गण के नामों को बताया जाता है—देवी, साक्षात्कृत स्थलाशुमानना, शुभश्रोणि, दिव्या, पुञ्जिक स्थला, मेनका, सहजग्या, प्रम्लोचा, शुचिस्मिता, अनुम्लोचा, घृताची, विश्वाची, उर्वंशी, पूर्ववित्ती साक्षात् देवी तिलोत्तमा, रंभा, अम्भोजवदना ये अप्सराएँ हैं । अब सारविणों के नाम बताते हैं—रथ-कृत्, ग्रामणी, शुभ, रथोजा, रथचित्र, सुबाहु और रथस्वन, वरुण, सुपेण, शुभ सेनजित्, ताक्ष्य, अरिष्टनेमि, क्षतजित् और सत्यजित् ये नाम हैं ॥२९॥३०॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥

रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा ।
 सर्पो व्याघ्रः पुनश्चापो वातो विद्युद्विवाकरः ॥३६॥
 ब्रह्मोपेतश्च रक्षेन्द्रो यज्ञोपेतस्तथैव च ।
 एते देवादयः सर्वे वसंत्यर्के क्रमेण तु ॥३७॥
 स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ।
 घात्रादिविष्णुपर्यन्ता देवा द्वादश कीर्तिताः ॥३८॥
 आदित्यं परमं भानुं भाभिराप्याययन्ति ते ।
 पुलस्त्याद्याः कौशिकांता मुनयो मुनिसत्तमाः ॥३९॥
 द्वादशैव स्तवैर्भानुं स्तुवन्ति च यथाक्रमम् ।
 नागाश्चाश्वतरान्तास्तु वासुकीप्रमुखाः शुभाः ॥४०॥
 द्वादशैव महादेवं वहंत्येवं यथाक्रमम् ।
 क्रमेण सूर्यवर्चान्तास्तु बुध प्रमुखांबुपम् ॥४१॥
 गीर्तरेनमुपासन्ते गंधर्वा द्वादशोत्तमाः ।
 कृतस्थलाद्या रंभांता दिव्याश्चाप्सरसो रविम् ॥४२॥
 ताडवै सरसैः सर्वाश्रोपासन्ते यथाक्रमम् ।
 दिव्याः सत्यजिदन्ताश्च ग्रामण्यो रथकृन्मुखाः ॥४३॥
 द्वादशास्य क्रमेणैव कुर्वन्तेभीषुसंग्रहम् ।
 प्रयाति यज्ञोपेतांता रक्षोहेतिमुखाः सहः ॥४४॥
 सामुधा द्वादशैवैते राक्षसाश्च यथाक्रमम् ।
 धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥४५॥

अब राक्षसों के नामों का उल्लेख किया जाता है—हेनिरक्ष, प्रहेति, पौरुषेय, वध, सर्प, व्याघ्र, घायः (जन), द्वात, विद्युत्, दिवा-
 कर, ब्रह्मोपेत, रक्षेन्द्र और यज्ञोपेत ये समस्त देव आदि क्रम से अर्क
 (सूर्य) में पात किया करते हैं ॥३६॥३७॥ ये द्वादश सप्तक गण हैं जो
 स्थान के अभिमानों हैं अर्थात् स्थान पर रहने के गरं याते हैं । घात्रा
 से आदि लेकर विष्णु पर्यन्त बारह देव बहने गये हैं ॥३८॥ ये सब परम
 भानु आदित्य की अपनी भा के द्वारा सन्तुष्ट किया करते हैं । मुनियों में

परम श्रेष्ठ पुलस्त्य से लेकर वीशिव पर्यन्त मुनिगण द्वादश अपने स्तवों के द्वारा यथाक्रम भानु की स्तुति किया करते हैं । अश्वतर के अन्त तब नाग हैं जिनमें वासुकि परम प्रमुख एवं शुभ हैं ॥३६॥४०॥ ये भी द्वादश ही हैं जो महान् देव की यथाक्रम वहन किया करते हैं । क्रम से सूर्ययज्ञ के अन्त तक जिनमें तुम्बरू प्रमुख अम्बुय हैं ॥४१॥ ये उत्तम द्वादश गन्धर्व अपने गीतों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं । कृतस्थला जिनमें पहिला नाम है ऐसी रम्भा के नाम तब दिव्य अप्सराएँ अपने सरस ताण्डवों के द्वारा ये सब रवि की यथाक्रम उपासना करती हैं । सत्यजित् जिनमें अन्तिम हैं ऐसे ये दिव्य ग्रामणी हैं, जिनमें रथवृत् प्रमुख है । ये भी द्वादश ही हैं जो क्रम से ही इस रवि-देव के अभीष्ट (अभिष्टुत) का समर्थ किया करते हैं । यज्ञोपनान्त पर्यन्त जिनमें रक्षोहति प्रमुख हैं । ये अपने आयुध के सहित द्वादश राक्षस हैं जो यथाक्रम साथ रहते हैं । धाता और भर्षना दो प्रादित्य हैं । पुलस्त्य और पुलह ये दो प्रजापति हैं ॥४२॥४३॥४४॥४५॥

उरगो वासुकिश्चैव ककुलीकश्च तावुभौ ।

तु बुरुर्नारदश्चैव राघवौ गायता वरौ ॥४६॥

कृतस्थलाप्सराश्चैव तथा वै पुजिकस्थला ।

ग्रामणी रथकृन्वैव रथोजाश्चैव तावुभौ ॥४७॥

रक्षो हेति प्रहेतिश्च यातुधानाबुदाहृतौ ।

मधुमाघवयोरेप गणौ वसति भास्करे ॥४८॥

वसति ग्रीष्मवो मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।

ऋषिरत्रिंशसिष्ठश्च तक्षको नाग एव च ॥४९॥

प्रत्येक गण में से दो दो प्रमुख अधिकारियों को बताते हैं, उरग वासुकि और ककुलीक ये दो हैं । गायन करने वालों में परम श्रेष्ठ तुम्बरू, और नारद ये दो प्रमुख अधिकारी गन्धर्व हैं ॥४६॥ अप्सराओं में कृतस्थला और पुजिकस्थला दो हैं । रथवृत् और रथोजा ये दो

ग्रामणी हैं । राक्षस हेति और प्रहेति ये दो यातुधान प्रमुख अधिकारी हैं । मधु और माधव इन दो नोकागण भास्कर में निवास करता है । ॥४७॥४८॥ मित्र और वरुण ये दो ग्रीष्म ऋतु के मास वास किया करते हैं । अग्नि और वसिष्ठ ऋषि और तक्षक नाग धुवि और युक्र नाम वाले मासो में सूर्य में निवास करते हैं ॥४९॥

मेनका सहजन्त्या च गंधर्वो च हहाहुहः ।
 सुवाहुनामा ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ ॥५०॥
 पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानाबुदात्तौ ।
 एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुविशुक्रयोः ॥५१॥
 ततः सूर्ये पुनश्चाया नीवसंतोह देवताः ।
 इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अंगिरा भृगुरेव च ॥५२॥
 एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ ।
 विश्वावसूप्रसेनौ च वरुणश्च रथस्वनः ॥५३॥
 प्रम्लोचा चैव विख्याता अनुम्लोचा च ते उभे ।
 यातुधानास्तथा सर्पो व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ ॥५४॥
 नभोनभस्ययोरप गणो वसति भास्करे ।
 पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥५५॥
 धनंजय इरावांश्च सुरचिः सपरावसुः ।
 घृताची चाप्सरः श्रेष्ठा विश्वाची चातिशोभना ॥५६॥

मेनका और सह जन्त्या अप्सरा, हा हा और हू हू गन्धर्व, सुवाहु और रथचित्र ये दो ग्रामणी, पौरुषेय और वध ये दो उदाहृत यातुधान ये सब भी धुवि एवं युक्र मासो में सूर्य में निवास करते हैं ॥५०॥५१॥ इसके अनन्तर सूर्य में अन्य देवता भी निवास किया करते हैं । उनके नाम इन्द्र, विवस्वान, अङ्गिरा और भृगु ये दो देवता और दो ऋषि एवं एलापत्र और शङ्खपाल ये दो सर्प, विश्वा वसु और उग्रसेन, वरुण और रथस्वन, विख्यात, प्रम्लोचा और अनुम्लोचा ये दोनों, यातुधान तथा सर्प

और व्याघ्र ये दो, नभ और नभस्यगून दोनों का गण भास्कर मे निवास किया करते हैं । पञ्चन्य और पूषा, भरद्वाज और गौतम, धनञ्जय और इरावान्, सुरुचि और परावसु, अप्सराप्रो मे श्रेष्ठ घृताची, विश्वाची और अतिशोभना ये ऊर्ज तथा इष मासो मे सूर्य मे निवास करते हैं ।
॥५२॥५३॥५४॥५५॥५॥

सेनाजिच्च सुपेणश्च सेनानीग्रामणीश्च तौ ।
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानाबुभौ स्मृतौ ॥५७॥
वसंत्येते तु वै सूर्ये मास ऊर्ज इषे च ह ।
हैमतिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति च दिवाकरे ॥५८॥
अंशुभंगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुः सह ।
भुजंगश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा ॥५९॥
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णयिर्ध्वं च तावुभौ ।
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च तथं वप्सरसाबुभे ॥६०॥
तादृश्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामणीश्च तौ ।
विद्युद्दिवाकरश्चोभौ यातुधानाबुदाहृतौ ॥६१॥
सहै चैव सहस्ये च वसंत्येते दिवाकरे ।
ततः शीशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ॥६२॥
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ।
काद्रवेयौ तथा नागौ कंबलाश्चतराबुभौ ॥६३॥

सेनाजित् और सुपेण, सेनानी और ग्रामणी ये दो, आप और वात ये दो यातुधान कहे गये हैं, ये सब सूर्य मे ऊर्ज तथा इष मास मे घसते हैं । दो हैमतिक मास दिवाकर मे निवास करने हैं ॥५७॥५८॥ अंशु और भग ये दोनो, कश्यप और ऋतु, भुजङ्ग, तथा महापद्म और कर्कोटक सर्प, चित्रसेन और ऊर्णयि ये दो गन्धर्व, उर्वशी और पूर्व चित्ति ये दो अप्सराएँ, तादृश्य तथा अरिष्टनेमि एवं सेनानी और ग्रामणी ये दो, विद्युत् और दिवाकर ये उदाहृत दो यातुधान सह और सहस्य मासों मे दिवाकर मे ये सब निवास किया करते हैं । इसके अनन्तर

शेशिर ऋतु के दो मासों में भी निवास करते हैं ॥५६॥६०॥६१॥६२॥
त्वष्टा, विष्णु, जमदग्नि तथा विश्वामित्र, काद्रवेय दो नाग, कम्बलाश्वतर
ये दोनो ॥६३॥

धृतराष्ट्रः सगंधर्वः सूर्यवर्चास्तथैव च ।
तिलोत्तमाप्तराश्चैव देवी रंभा मनोहरा ॥६४॥
रथजित्सत्यजिञ्चैव ग्रामणी लोकाविश्रुता ।
ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षो यज्ञोपेतश्च यः स्मृतः ॥६५॥
एते देवा वसत्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ॥६६॥
सूर्यमाप्पाययत्येते तेजसा तेज उत्तमम् ।
अथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवति मुनयो रविम् ॥६७॥
गंधर्वाप्तरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते ।
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेभीषुसंग्रहम् ॥६८॥
सर्पा बहति वै सूर्यं यातु घानानुयाति वै ।
बालखिल्या नयत्यस्त परिवार्योदयाद्रविम् ॥६९॥
एतेषामेव देवानां यथा तेजो यथा तपः ।
यथा योग यथा मन्त्र यथा धर्म यथा बलम् ॥७०॥

सगंधर्व, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, तिलोत्तमा अप्सरा, देवी रंभा,
मनोहरा, लोक में प्रसिद्ध रथजित् और सत्यजित् ग्रामणी, ब्रह्मोपेत
राक्षस और जो यज्ञोपेत कहा गया है । ये समस्त देव क्रम से प्रारंभ में
दो-दो मास तक वास किया करते हैं । ये द्वादश सप्तक गण सब स्था-
नाभिमानि हैं ॥६४॥६५॥६६॥ ये सब तेज के द्वारा उत्तम तेज सूर्य का
आप्यायन अर्थात् सन्तुष्टि किया करते हैं । मुनिगण अपने पवनो के
द्वारा अथित अर्थात् विरचिन स्तवों से रवि की स्तुति किया करते हैं ।
॥६७॥ गन्धर्वगण तथा अप्सराओं के समुदाय अपने गायनो तथा नृत्यो के
द्वारा सूर्य की उपासना करते हैं । ग्रामणी, यक्ष और भूत उसने अभीष्ट
का संग्रह करते हैं ॥६८॥ सर्प सूर्य का बहना किया करते हैं और यातु-

धान अनुमान करते हैं। बालखिल्य मुनिगण उदयाचल से पारिवारित कर रवि को अस्ताचल ले जाते हैं ॥६६॥ इन देवों का जिम प्रकार का तेज, तप, योग, मन्त्र, धर्म और बल होता है ॥७०॥

तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषामिद्वस्तु तेजसा ।
 इत्येते चै वसंतीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥७१॥
 ऋषयो देवगर्ध्वपन्नगाप्सरसां गणाः ।
 ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यतः ॥७२॥
 एते तपन्ति वर्षंति भांति वांति सृजति च ।
 भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ॥७३॥
 मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति च दुरात्मनाम् ।
 दुरितं सुप्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥७४॥
 विमाने च स्थिता दिव्ये कामगे वातरंहसि ।
 एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ॥७५॥
 वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै द्विजाः ।
 गोपायन्तीह भूतानि सर्वाणि ह्यामनुक्षयात् ॥७६॥
 स्थानाभिमानिनामेतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।
 अतीतानागतानां च वतते सांप्रतं च ये ॥७७॥

उनके तेज से समिद्ध होकर यह सूर्य वैसा ही तपता है ।
 ये सब दो-दो मास तक दिवाकर में निवास किया करते हैं ॥७१॥
 ऋषिगण, देव, गर्ध्व पन्नग, अप्सराओं के समूह, ग्रामणी, यक्षा और
 यातुधान मुख्य रूप से ये सब सारते हैं, वरसने हैं, प्रकाश देने हैं, बहन
 करते हैं तथा वायु संचार करते हैं और सृजन करते हैं । ये कीर्तित
 होने पर प्राणियों के अशुभ कर्म का नाश किया करते हैं ॥७२॥७३॥
 ये मानवों के शुभ कर्म का हरण किया करते हैं और कहीं-कहीं पर
 सुप्रचार वाले दुरात्माओं के दुरित का नाश करते हैं ॥७४॥ इच्छा के
 अनुसार गमन करने वाले, परम दिव्य तथा वायु के तुल्य वेग वाले
 वेमान में स्थित ये सब दिवस के अनुगमन करने वाले होते हुए सूर्य

के साथ ही भ्रमण किया करते हैं ॥७५॥ हे द्विजगण ! ये वर्पते हुए, सपते हुए, ह्लादयित होते हुए, इस ससार में मनु के क्षय पर्यंत समस्त भूतो की रक्षा करते हैं ॥७६॥ मन्वन्तरो में यह स्थान स्थानाभिमानियो का है । जो घटीत हो चुके हैं या भागे जाने वाले हैं तथा अब वर्तमान हैं ॥७७॥

एते वसति चै सूर्ये सप्तमास्ते चतुर्दश ।
चतुर्दशसु सर्वेषु गणा मन्वन्तरेष्विह ॥७८॥
सक्षेपाद्विस्तराच्च व यथावृत्ता यथाश्रुतम् ।
कथित मुनिशार्दूला देवदेवस्य धीमतः ॥७९॥
एते देवा वसत्यर्के द्वौद्वौ मासी क्रमेण तु ।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ॥८०॥
इत्येष एकनक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु ।
हरितैरक्षरैरश्वैः सर्पतेऽमौ दिवाकरः ॥८१॥
अहोरात्र रथेनासावेक चक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रा गा सप्तभिः सर्पते दिवि ॥८२॥

ये चतुर्दश सप्तक हैं जो कि सूर्य में वास करते हैं । यही पर चतुर्दश समस्त मन्वन्तरों में ये गण होने हैं ॥७८॥ हे मुनियो मे शार्दूलो ! सक्षेप से और विस्तार से जैसा भी हुआ और जो भी कुछ श्रवण किया है वह धीमान् देवों के देव का सभी कुछ हाल मैंने कह दिया है ॥७९॥ ये देवता दो दो मास पर्यन्त क्रम से सूर्य में निवास किया करते हैं । ये द्वादश सप्तर गण स्थानाभिमानि होते हैं ॥८०॥ इस प्रकार से यह सूर्यदेव एक पहिए वाहन रथ के द्वारा क्रम में घटार (नाश रहित) हरित प्रभ हैं, बड़ी शीघ्रता से दिवाकर गमन किया करता है ॥८१॥ यह सूर्य रातदिन एक चक्र बाने रथ से भ्रमण करता हुआ दिन लोका में सात पञ्चा स मातङ्गीर और सात समुद्र वाली भूमि में तेजी से गमन किया करता है ॥८२॥

सोम के रथ का निरूपण

वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि निशाकरः ।
 त्रिचक्रोभयतोश्च विज्ञेयस्तस्य वै रथः ॥१॥
 शतारंश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ।
 दशभिस्त्वकुशैर्दिव्यैरसगेस्तैर्मनोजवैः ॥२॥
 रथेनानेन देवैश्च पितृभिश्चैव गच्छति ।
 सोमो ह्यम्बुमयं गोभिः शुक्लैः शुक्लगमस्तिमान् ॥३॥
 क्रमते शुक्लपक्षादौ भास्करात्परमास्थितः ।
 आपूर्यते परस्यातः सततं दिवसक्रमात् ॥४॥
 देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यशः ।
 पीत पञ्चदशाहं तु रश्मिर्नकेन भास्करः ॥५॥
 आपूरयन् सुपुम्नेन भागंभागमनुक्रमात् ।
 इत्येपा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥६॥
 स पीर्णमास्यां दृश्येत शुक्लः संपूर्णमण्डलः ।
 एवमाप्यायितं सोमं शुक्लपक्षे दिनक्रमात् ॥७॥

इस अध्याय में सोम के उत्तम रथ का निरूपण किया जाता है । अमृत कलाश्रो के पान से उसका हास होता है और सूर्य से इसका पोषण हुआ करता है, इसका वर्णन किया गया है । सूतजी ने कहा — अश्विनी आदि नक्षत्र अपने मार्ग में गमन करने वाले हैं और चन्द्रमा अनुक्रम से गमन किया करता है । दक्षिण और उत्तर के भाग में इसके अश्व रूपा करते हैं ऐसा इस चन्द्र का रथ जानना चाहिए ॥१॥ चन्द्रमा के रथ में शत अश्व हैं और तीन चक्र (पहिए) हैं । उस रथ में अति श्रेष्ठ और शुक्ल वर्ण के दश अश्व होते हैं जो हृष्ट, पुष्ट, परम दिव्य, असङ्ग और मन के तुल्य वेग वाले होते हैं ॥२॥ इस प्रकार के अति सुन्दर रथ के द्वारा जलमय शुक्ल किरणों से शुक्ल किरणों से शुक्ल गमस्ति (किरण) वाला है ॥३॥ शुक्ल पक्ष के आदि प्रति पक्ष

मे अग्र मार्ग मे आस्थित होता हुआ यह चन्द्रमा क्रमण किया करता है । दिनों मे क्रम से निरन्तर शुक्ल पक्ष का अन्त पूर्ण होता है ॥४॥ कृष्ण पक्ष मे पन्द्रह दिन तक अमावस्या पर्यन्त, नित्य देवों के द्वारा रीत पीन सोम क्षय को प्राप्त होता है फिर सुपुष्प नामक एक रश्मि से एक-एक भाग अनुक्रम से आपूरित करता हुआ भास्कर आप्यायित करता है । इस रीति से चन्द्रमा का यह कलेवर सूर्य के वीर्य से आप्यायित हुआ करता है ॥५॥६॥ शुक्ल पक्ष मे दिनों के क्रम से यह सोम ऐसा आप्यायित (सन्तृप्त) हो जाता है कि वह पूर्णमासी मे शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल वाला हो जाता है ॥७॥

ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशीम् ।
पिवन्त्यम्बुमय देवा मधु सौम्यं सुधामृतम् ॥८॥
सभृत त्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा ।
पानार्थममृतं सोम पीर्णमास्यामुपासते ॥९॥
एकरात्रि सुराः सर्वे पितृभिस्त्वृषिभिः सह ।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥१०॥
प्रक्षीयते परस्यातः पीयमानाः कलाः क्रमात् ।
प्रयस्त्रिंशच्छताश्वेष त्रयस्त्रिंशत्तथैव च ॥११॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि देवाः सोमं पिवन्ति वै ।
एव दिनक्रमात्पीते विवुर्धस्तु निशाकरे ॥१२॥
पीत्वार्धमास गच्छन्ति अमावास्या सुरोत्तमाः ।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्या निशाकरम् ॥१३॥
ततः पंचदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्णे पितृगणा जघन्य पर्युपासते ॥१४॥

पुनः कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशी तक चन्द्र सम्बन्धी मधुर जलमय अतिस्वच्छ अमृत को इन्द्रादि देव पान किया करते हैं ॥८॥ सूर्य के तेज से प्राये भास मे सभृत (परिपूर्ण) अमृत होता

है । उस अमृत स्वरूप सोम को पान करने के लिये पूर्णमासी की एक ही रात्रि में इन्द्र आदि देवगण पितरों और ऋषियों के साथ सेवन किया करते हैं जो कि कृष्ण पक्ष के आदि में सोम भास्कर के अभिमुख रहता है ॥६॥१०॥ शुक्ल पक्ष के अन्त में पीयमान (पीत हुई) कलायें क्रम से क्षीण हो जाया करती हैं, जो कि तैत्तीसवीं तैत्तीस होती हैं ॥११॥ देवों के पुत्र एवं पौत्र स्वरूप में रहने वाले तैत्तीस सहस्र देव गए सोम का पान किया करते हैं । इस प्रकार से देवों के द्वारा निशाकर का पान करने लेने पर फिर वे मुरध्वंष्ट आर्घ्य मास तक पान करके अमावस्या में चले जाते हैं । अमावस्या में पितृगण निशाकर के समीप उपस्थित हो जाया करते हैं ॥१२॥१३॥ इस के अनन्तर पन्द्रहवें भाग में कलात्मक के कुछ शेष रहने पर अपराह्ण में पितर उस जगन्मयी की पर्युपासना किया करते हैं ॥१४॥

पिबति द्विकल काल शिष्टा तस्य कला तु या ।

निस्सृत तदमावास्या गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ॥१५॥

मासतृप्तिमवाप्याग्रधा पीत्वा गच्छति तैःमृतम् ।

पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्या कला तु या ॥१६॥

यावत्तु क्षीयते तस्य भागः पञ्चदशस्तु सः ।

अमावास्यां ततस्तस्या अतरा पूर्यते पुनः ॥१७॥

वृद्धिक्षयी वै पक्षादौ षोडश्या शशिनः स्मृतौ ।

एव सूर्यनिमित्तीषा पक्षवृद्धिर्निशाकरे ॥१८॥

उसकी जो कला शेष रहती है उसको दो घड़ी के समय तक पान किया करते हैं । वह स्वधामृत अमावस्या में उसकी गभस्तिभ्यो (किरणों) से निःसृत हुआ करता है । ॥१५॥ वे अमृत का पान करके पूर्णमास की तृप्ति को प्राप्त करते हैं । पञ्चदशी में पितृगणों के द्वारा पीयमान की जो कला है जब तक उसका पन्द्रहवां भाग क्षीण होता है फिर अमावस्या के मध्य में पूर्णमासी में वह पूर्ण हो जाया करता है ।

॥१६॥१७॥ पक्ष के आदि में प्रतिपदा में चन्द्रमा के वृद्धि और क्षय
 चहे गये चन्द्रमा में यह पक्ष वृद्धि भूयं के ही निमित्त बाची हुमा करती
 है ॥१८॥



ज्योतिष्यके ग्रहचार कथनं

अष्टभिश्च हयैर्युक्तः सोमपुत्रस्य वै रथः ।
 चारितेजोमयश्चाथ पिशङ्गश्चैव शोभनः ॥१॥
 दशभिश्चाकशैरश्वैर्नानावर्णै रथः स्मृतः ।
 शुक्रस्य इमामयैर्युक्तो दैत्याचार्यस्य धीमतः ॥२॥
 अष्टाश्वश्चाथ भौमस्य रथो हैमः सुशोभनः ।
 जीवस्य हैमश्चाष्टाश्वो मरस्यायसनिमित्तः ॥३॥
 रथ आपोमयरश्वैर्दशभिस्तु सितेतरैः ।
 स्वर्भानोर्भास्विरारेश्च तथा चाष्टहयः स्मृतः ॥४॥
 सर्वे ध्रुवनिबद्धा च ग्रहास्ते वातरश्मिभिः ।
 एतेन भ्राम्यमाणाश्च यथायोगं व्रजन्ति वै ॥५॥
 यावत्तयश्चैव ताराश्च तावन्तश्चैव रश्मयः ।
 सर्वे ध्रुवनिबद्धाश्च भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम् ॥६॥
 अलातचक्रवद्याति वातचक्रैरितानि तु ।
 यस्माद्ब्रह्मति ज्योतीषि प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥७॥

इस अध्याय में बुध आदि के वृषक रथ, ग्रह मण्डलों के नाम
 और उनकी गतियों का कीर्तन किया गया है । सूत जी ने ब्रह्मा-चन्द्रमा
 के पुत्र बुध का रथ आठ घोड़ों से युक्त होना है । यह रथ जल और तेज
 से पूर्ण होता है और इसके अश्व पिशङ्ग वर्ण वाते, अश्वत्थ, नाना वर्ण
 वाते, शोभन और संख्या में दश होते हैं । दैत्यो के आचार्य परम

बुद्धिमान् युक्त वा रथ पार्थिव अश्वों से युक्त होता है ॥१॥२॥ मङ्गल जो भूमि का पुत्र है । इसीलिये इसका नाम भौम होता है । इसका रथ आठ अश्वों वाला, अत्यन्त शोभा से युक्त और सुवर्ण का है । गुरु (बृहस्पति) का रथ भी आठ अश्वों वाला होता है । शनि जिसकी गति बहुत धीमी होती है अतएव इसका नाम मन्द होता है । इसका रथ लोहे का निर्मित हुआ है । इसका रथ कृष्ण वर्ण वाले जलमय दश अश्वों से युक्त होता है । सूर्य के शत्रु स्वर्भानु का रथ आठ अश्वों से युक्त होता है ॥३॥४॥ ये समस्त ग्रह ध्रुव से बात रूपी रश्मियों के द्वारा निबद्ध होते हैं । इसके द्वारा ये भ्राम्यमाण होते हुए मयायोग चला करते हैं ॥५॥ जितने तारा हैं उतनी रश्मियाँ होती हैं । ये सभी ध्रुव के साथ निबद्ध हैं । ये भ्रमण करते हुए उसको भ्रमण कराते हैं ॥६॥ ये वायु के चक्र से प्रेरित होते हुए अलात (जलती हुई लकड़ी) के चक्र की भाँति चला करते हैं । जिस कारण से ये ज्योतिर्माँ बहती हैं इसीसे यह प्रवह कहा गया है ॥७॥

नक्षत्रमूर्याश्च तथा ग्रहतारागणैः सह ।
 उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूताः श्रिता दिवि ॥८॥
 ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ।
 प्रयाति चेश्वर द्रष्टुं मेढीभूतं ध्रुव दिवि ॥९॥
 नवयोजनसाहस्रो विष्कभः सवितुः स्मृतः ।
 त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ॥१०॥
 द्विगुणः सूर्यविस्तारोद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
 तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाघस्तात्प्रसर्पति ॥११॥
 उद्घृत्य पृथिवीच्छाया निर्मिता मंडलाकृतिम् ।
 स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीय यत्तमोमयम् ॥१२॥
 चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ।
 विष्कभान्मंडलाच्चैव योजनाच्च प्रमाणतः ॥१३॥

भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।

पादहीनो वक्रसौरी तथाऽऽयामप्रमाणतः ॥१४॥

सूर्य और नक्षत्र समस्त तारा गणों के सहित उन्मुख और अभिमुख होते हुए अन्तरिक्ष में सब चक्र भूत होकर अर्थात् एक वस्तु ल आकार में रहने वाले होकर आश्रित हैं ॥८॥ ये सब ध्रुव के द्वारा आश्रित होते हुए ध्रुव की ही प्रदक्षिणा कर दिवि लोक में मेढीभूत स्वामी ध्रुव की देखने के लिये जाया करते हैं अर्थात् घूमा करते हैं । ॥९॥ सूर्य का मध्य भाग नौ हजार योजन जाला कहा गया है । मण्डल के प्रमाण से उसका विस्तार त्रिगुना बताया गया है ॥१०॥ सूर्य के विस्तार से दुगुना चन्द्र का विस्तार बताया गया है । इन दोनों के विस्तार के समान ही स्वर्भानु है जो नीचे होकर प्रसर्पण किया करता है ॥११॥ मण्डल की आकृति वाली विरचित पृथिवी की छाया को लेकर स्वर्भानु का जीमरा तम पूरा वृत्त स्थाव होता है ॥१२॥ चन्द्रमा का सोहनवां भाग भार्गव का मध्य से, मण्डल से, योजन से और प्रमाण से होता है ॥१३॥ भार्गव (ध्रुव) से आयाम और प्रमाण में बृहस्पति पाद हीन होता है । उसी भाँति बृहस्पति के आयाम और प्रमाण से भीम और गृध्र का पुत्र क्षनि ये दोनों भी पाद हीन अर्थात् अनुर्ध्व भाग कम होते हैं ॥१४॥

विस्तारान्मण्डलान्चैव पादहीनस्तयोर्ध्रुवः ।

तारा नक्षत्ररूपाणि ध्रुवमतीह यानि वै ॥१५॥

अधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलादपि ।

प्रायसाश्च द्रव्योमीनि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित् ॥१६॥

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परम्परम् ।

दातानि पश्य चत्वारि त्रीणि द्वचैव याजने ॥१७॥

सर्वोपरि निरुष्टानि ताररामडलानि तु ।

योऽनद्वयमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥१८॥

उपरिष्ठात्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः ।
 सौरोद्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मंदविचारिणाः ॥१६॥
 तेभ्योऽधस्तात् चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः ।
 सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥२०॥
 तावन्त्यस्तारकाः कोट्यो यावन्त्यक्षणि सर्वशः ।
 ध्रुवात्तु नियमाच्चैषामृक्षमार्गे व्यवस्थितिः ॥२१॥

इन दोनों भौम और शनि से विस्तार और मंडल की दृष्टि से बुध पादहीन होता है । वपु वाले चन्द्र योगी मन्त्रिणी आदि नक्षत्र जो भी हैं वे सब बुध से विस्तार और मंडल में प्रायः तत्पर वंता की समान ही जानने चाहिये ॥१५॥१६॥ परस्पर में हीन ये संकड़ी तारा नक्षत्र रूप वाले पाँच, चार, तीन और दो योजन दूरा करते हैं ॥१७॥ सबसे ऊपर निकृष्ट तारा मंडल दो योजन मात्र ही होते हैं और इनसे छोटे नहीं दूरा करते हैं ॥१८॥ इनसे ऊपर के भाग में दूर में सर्पण (गमन) करने वाले तथा मन्दगति से चलने वाले शनि, अङ्गिरा और भौम ये तीन ग्रह ही होते हैं ॥१९॥ उनसे नीचे के भाग में चार अन्य महाग्रह होते हैं जिनके नाम सूर्य, सोम, बुध और भार्गव (शुक्र) हैं । ये शीघ्र गमन करने वाले भी होते हैं ॥२०॥ जितने करोड़ नक्षत्र हैं उतने ही सूक्ष्म तारका हैं । इन नक्षत्रों के ऋक्ष मार्ग में व्यवस्थिति निश्चल होती है ॥२१॥

सप्तार्धस्यैव सूर्यस्य नीचोच्चत्वमनुक्रमात् ।
 उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः ॥२२॥
 उच्चत्वादृश्यते शीघ्रं नातिव्यवर्तर्गमस्तिभिः ।
 तदा दक्षिणमार्गस्थो नीचां वीथिमुपाश्रितः ॥२३॥
 भूमिरेखावृतः सूर्यः पौर्णिमावास्ययोस्तदा ।
 ददृशे च यथाकालं शीघ्रमस्तमुपेति च ॥२४॥
 तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यो निशाकरः ।
 ददृशे दक्षिणे मार्गे नियमादृश्यते न च ॥२५॥

ज्योतिषां गतियोगेन सूर्यस्य तमसा वृतः ।
 समानकालास्तमयो विपुवत्सु समोदयो ॥२६॥
 उत्तरासु च वीथीषु व्यंतरास्तमनोदयो ।
 पूर्णिमावास्ययोर्ज्ञेयो ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनो ॥२७॥
 दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिवान् ।
 ग्रहाणां चैव सर्वेषां सूर्योऽघस्तात्प्रसर्पति ॥२८॥

सात अश्वो वाले सूर्य के ही अनुक्रम से नीच और उच्च वर्ती होना जानना चाहिये । जब उत्तरायण मार्ग में स्थित रहने वाला अश्विमा पर्वो (पूर्णिमासिधो) में उच्च होने से शीघ्र ही दिखलाई दिया करता है जिसकी किरणें अत्यन्त व्यक्त नहीं होती हैं । उस समय में जब कि दक्षिणायन में स्थित नीच वीथि का उपाश्रय लेने वाला सूर्य होता है तो पूर्णिमासी और अमावस्या में भूमि रेखावृत दिखाई देता है और यथा समय शीघ्र ही अस्त हो जाया करता है ॥२२॥॥२३॥॥२४॥ अमावस्या में उत्तम मार्ग में स्थित निशाकर दिखाई दिया करता है । दक्षिण मार्ग में सूर्य की ज्योतिषो के गति-योग से अन्धकारावृत होता हुआ नियम से नहीं दिखलाई देता है । विपुवत् अर्थात् मेघ की सङ्क्रान्ति के दिनों में सूर्य और अश्वि ये दोनों समान बाल में अस्त और उदय वाले होते हैं ॥२५॥॥२६॥ उत्तर वीथियों में जबकि विषम काल में इनका उदय और अस्तमन होता है तब पूर्णिमासी और अमावस्या इन दोनों में इनको ज्योतिश्चक्र के अनुवर्ती जानना चाहिए ॥२७॥ जिस समय में सूर्य दक्षिणायन मार्ग में अवस्थित होता है और गमन किया करता है तब समस्त ग्रहों के नीचे भाग में ही सूर्य प्रसर्पण किया करता है ॥२८॥

विस्तीर्णं मंडलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशो ।
 नक्षत्रमंडलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ॥२९॥
 नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः ।
 चक्रस्तुः भार्गवादूर्ध्वं चक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः ॥३०॥

प्रजापतीनां दक्षं च मरुतां शक्रमेव च ।
 दैत्यानां दानवानां च ब्रह्माद दैत्यपुंगवम् ॥४॥
 धर्मं पितृणामधिपं निऋतिं पिशिताशिनाम् ।
 रुद्रं पशूनां भूतानां नदिनां गणनायकम् ॥५॥
 वीराणां वीरभद्रं च पिशाचानां भयंकरम् ।
 मातृणां चैव चामुण्डां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥६॥
 रुद्राणां देवदेवेशं नीललोहितमश्वरम् ।
 विघ्नानां व्योमजं देवं गजास्य तु विनायकम् ॥७॥

ऋषियो ने कहा—सबको आत्मा प्रजापति ब्रह्मा ने देव और दैत्यो मे प्रमुख सबको किस प्रकार से अभिषिक्त किया था, यह अब आप हमको बताइये ॥१॥ सूतजी ने कहा— प्रजापति ब्रह्मा भगवान् ने ब्रह्मो के स्वामित्व के पद पर दिवाकर को अभिषिक्त किया था तथा ऋक्षों के और औषधियो के आधिपत्य पर सोम को अभिषिक्त किया था ॥२॥ जलो के स्वामी के पद पर वरुण को, घनो के आधिपत्य पर कुवेर को, आदित्यो का स्वामी विष्णु को और वसुधो के आधिपत्य पर पावक को अभिषिक्त किया था ॥३॥ प्रजापतियो का स्वामी दक्ष को और मरुतो का अधिपति इन्द्र को तथा दैत्यो और दानवो का स्वामी दैत्यो मे परम श्रेष्ठ ब्रह्माद को अभिषिक्त किया था ॥४॥ पितृगणो का अधिप धर्मराज को और माताशियो का स्वामी निऋति को एव पशुभो का रुद्र और भूतो एव नन्दियो का स्वामी गणनायक शीलादिक को बनाया था ॥५॥ वीरो का स्वामी वीर भद्र को तथा पिशाचो का भय-
 झुर एव माताभो का आधिपत्य समस्त देवो के द्वारा नमस्कृत चामुण्डा को अभिषिक्त किया था ॥६॥ रुद्रो का अधिपति देवदेवेश नील लोहित ईश्वर को और विघ्नो का स्वामी शिव के आत्मज गज के समान मुख वाले विनायक गणेश को अभिषिक्त किया था ॥७॥

स्त्रीणां देवीमुमादेवी वचसां च सरस्वतीम् ।

विष्णुं मायाविना चैव स्वात्मानं जगता तथा ॥८॥

हिमवंतं गिरीणां तु नदीनां चैव जाह्नवीम् ।
 समुद्राणां च सर्वेषामधिपं पयसां निधिम् ॥६॥
 वृक्षाणां चैव चाश्वत्थं पूक्षं च प्रपितामहः ॥१०॥
 गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ।
 नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमुग्रवीर्यम् ॥११॥
 दिग्धारणानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावतमुग्रवीर्यम् ।
 सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैः श्रवसं चकार ॥१२॥
 सिंह मृगाणां वृषभं गवां च
 मृगाधिपानां शरभं चकार ।

सेनाधिपानां गुह्यमप्रमेयं
 श्रुतिस्मृतीनां लकुलोशमीशम् ॥१३॥
 अन्यपिचत्सुधर्माणां तथा शखपद दिशाम् ।
 केतुमंतं क्रमेणैव हेमरोमाणमेव च ॥१४॥

स्त्रियो की स्वामिनी उमादेवी और वाणियो की अधिप सर-
 स्वती तथा मायावियो का अधिपति विष्णु की और जगतो का स्वामी
 अपने आपको (ब्रह्मा की) अभिपिक्त किया था ॥६॥ पर्वतो का अधिपति
 हिमालय की बनाया था और नदियों के अधिपत्य पर गङ्गा की अभि-
 पित्त किया था । समस्त समुद्रों का स्वामी पयोनिधि की बनाया था ।
 ॥६॥ सब वृक्षों के अधिपत्य पद पर वीपत के वृक्ष की प्रपितामह ने
 अभिपित्त किया था ॥१०॥ गन्धर्व, विद्याधर और चित्ररथ का अधिपति
 चित्ररथ की बनाया था । नागों का स्वामी उग्रवीर्य वाले वासुकि की
 तथा सर्पों के अधिपति उग्रवीर्य वाले तक्षक की बनाया था ॥११॥
 दिशाओं में स्थित गजों के स्वामी गज उग्रवीर्य वाले गजेन्द्र ऐरावत की
 बनाया था तथा पक्षियों का अधिपति सुपर्ण की और अश्वों का स्वामी
 उच्चैः श्रवण की अभिपित्त किया था ॥१२॥ मृगों का अधिपति सिंह
 की, गोमों का स्वामी वृषभ की और मृगाधियो का अधिप शरभ की
 बनाया था । सेनाधियों का स्वामी अप्रमेय स्वन्द की और धूनियो तथा

स्मृतियों का स्वामी लकुलोश नामधारी शिव के अवतारी को बनाया था ॥१३॥ दिशाओं के स्वामी सुषर्मा तथा शङ्खपद, केतुमान् एव क्रम से हेमरोमा को अभिषिक्त किया था ॥१४॥

पृथिव्या पृथुमोक्षान सर्वेषां तु महेश्वरम् ।
चतुर्भूर्तिषु सर्वज्ञं शङ्करवृषभध्वजम् ॥१५॥
प्रसादाद्भगवाञ्छम्भोश्चाभ्यर्पिचयथाक्रमम् ।
पुराभिषिच्य पुण्यात्मा रराज भुवनेश्वरः ॥१६॥
एतद्वो विस्तरेणैव कथितं मुनिपुंगवाः ।
अभिषिक्तास्ततस्त्वेते विशिष्टा विश्वयोनिना ॥१७॥

पृथ्वी में पृथु को और समस्त वस्तुओं का महेश्वर को जो विश्व प्राप्त तैजस तुरीय रूप वाली चार प्रसार की मूर्तियों में सुख कारक और सर्व विषयक ज्ञान से विशिष्ट तथा धर्म की ध्वजा वाले हैं भगवान् ने शम्भु के प्रसाद से यथाक्रम अभिषिक्त किया था । पहिले अभिषिक्त करके फिर पुण्यात्मा भुवने के ईश्वर दीप्तिमान् हुए तथा शोभित हुए थे ॥१५॥१६॥ हे मुनियों में श्रेष्ठतमो ! विश्व की योनि ब्रह्मा ने ये सब श्रेष्ठ अभिषिक्त किये थे । मैंने यह सब विस्तार के साथ आप लोगों के सामने बता दिया है ॥१७॥

सूर्यरश्मि स्वरूप कथनं

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्त सशयान्विताः ।
पप्रच्छुत्तरं भूयस्तदा ते रोमहर्षणम् ॥१॥
यदेतदुक्तं भवता सूतेह वदता वर ।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि ज्योतिषा च विनिर्णयम् ॥२॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाक्षितः ।
उवाच परमं वाक्यं तेषां संशयनिर्णये ॥३॥

अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं शांतबुद्धिभिः ।
 एतद्वोहं प्रवक्ष्यामि सूर्यचन्द्रमसोर्गतिम् ॥४॥
 यथा देवगृहाणोह सूर्यचन्द्रादयो ग्रहाः ।
 अतः परं तु त्रिविधमग्नेर्वक्ष्ये समुद्भवम् ॥५॥
 दिव्यस्य भौतिक स्याग्नेरथोग्नेः पार्थिवस्य च ।
 व्युष्टायां तु रजन्यां च ब्रह्माणोऽव्यक्तजन्मनः ॥६॥
 अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसा वृतम् ।
 चतुर्भागा वशिष्टेऽस्मिन् लोके नष्टे विशेषतः ॥७॥

इस अध्याय में तीन प्रकार की ब्रह्मि का निष्काण किया जाता है तथा सूर्य की सहस्र रश्मियों कायं और सख्या बताई जाती है । सूतजी ने कहा—यह श्रवण करके सशय से युक्त उन मुनियों ने उन रोम हर्षण से उस समय में पुनः उत्तर पूछा था ॥१॥ ऋषियों ने कहा—हे प्रवचन करने वाले में परम श्रेष्ठ ! हे सूत ! यहाँ आपने जो यह सब कुछ कहा है इस ज्योतियों के विशेष निर्णय को फिर विस्तार पूर्वक बताइये ॥२॥ सूतजी ने उनके इस वचन को सुना और उस समय में समाहित हुए थे । उनके सहाय का विशेष निर्णय करने के लिए परम श्रेष्ठ वाक्य बोले ॥३॥ सूतजी ने कहा कि इस विषय में पान्त बुद्धि वाले महा मनीषियों ने जो कुछ भी कहा है वही मैं आपको सूर्य और चन्द्रमा की गति बतलाऊँगा ॥४॥ सूर्य, चन्द्र आदि वह उसी प्रकार से है जिस प्रकार से यहाँ देवों के स्थान होते हैं । इससे भागे मैं तीन प्रकार की अग्नि उत्पत्ति बताऊँगा ॥५॥ वह अग्नि तीन प्रकार की होती है, एक दिव्य अग्नि है, दूसरी भौतिक अग्नि है और तीसरी पार्थिव अग्नि होती है । अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा की रात्रि जिस समय में समाप्त प्राय थी उस समय में यह ब्रह्माण्ड अम्यष्ट था और निरा के अन्धकार में घातृ था । विशेष रूप से इस लोक के नष्ट होने पर जबकि केवल चतुर्भाग ही इसका अवशिष्ट रह गया था ॥६॥७॥

स्वयंभूर्भगवांस्तत्र लोकसर्वार्थसाधकः ।
 खद्योतवत्स व्यचरदाविर्भावचिकीर्षया ॥८॥
 सोऽग्निं सृष्ट्वाथ लोकादौ पृथिवीजलसंश्रितः ।
 संतृप्त्य तत्प्रकाशार्थं त्रिधा व्यभजदीश्वरः ॥९॥
 पवनो यस्तु लोकेस्मिन्पार्थिवो वह्निरुच्यते ।
 यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः ॥१०॥
 वैद्युतोऽजस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्ये तु लक्षणम् ।
 वैद्युतो जाठरः सौरो वारिगर्भास्त्रयोऽग्नयः ॥११॥
 तस्मादपि पिबन्मूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ विभुः ।
 जले चाब्जः समाविष्टो नाद्भिरग्निः प्रशाम्यति ॥१२॥
 मानवानां च कुक्षिस्थो नाग्निः शाम्यति पावकः ।
 अविष्मान्पवनः सोऽग्निर्निष्प्रभो जाठरः स्मृतः ॥१३॥
 यश्चायं मडलो शुक्लो निरूष्मा सप्रजायते ।
 प्रभा सौरी तु पादेन ह्यस्त याते दिवाकरे ॥१४॥

लोको के सम्पूर्ण भयों के साधक भगवान् स्वयंभू वहाँ पर
 भाविर्भाव भर्षात् जगत् के सृजन के करने की इच्छा से सद्योत की
 भाँति विचरण कर रहे थे ॥८॥ इसके अनन्तर लोक के आदि में
 पृथ्वी और जल में संश्रित उसने अग्नि का सृजन किया था फिर उसका
 सहरण करके ईश्वर ने उसके प्रकाश के लिये तीन प्रकार से भर्षात्
 तीन तरह की अग्नि विभक्त किया था ॥९॥ इस लोक में जो पवन है
 वह पार्थिव वह्नि कहा जाता है । और जो यह सूर्य तपता है वह शुचि
 अग्नि कहा गया है ॥१०॥ जन से उत्पन्न होने वाला वैद्युत अग्नि
 जानना चाहिये अब उनके अंश बताता है । वैद्युत अग्नि जाठर,
 सौर और वारिगर्भ इस तरह सींग हैं ॥११॥ इससे यह विभु सूर्य
 किरणों के द्वारा जलो वा पान करता हुआ दिप्यमान होता है । जल से
 उत्पन्न अज्ज जल में ही समाविष्ट (प्रवेश किया हुआ) रहता है और
 वह जल से प्रशान्त नहीं होता है ॥१२॥ मनुष्यों की कुक्षि (उदर) में

अवस्थित अग्नि पावक कभी प्रशान्त नहीं हुमा करता है । वह अचि-
त्मान् पार्थिव अग्नि प्रभा से रहित होता है और जाठर कहा गया है
॥१३॥ जो यह अग्नि है वह मण्डली, शुक्लो और ऊष्मा से रहित ही
उत्पन्न हुमा करता है । दिवाकर के अस्त हो जाने पर सौरी प्रभा एक
पाद रह जाती है ॥१४॥

अग्निमाविशने रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते ।

उद्येत च पुनः सूर्यमौष्ण्यमग्नेः समाविशेत् ॥१५॥

पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ।

प्रकाशोष्णस्वरूपे च सौराग्नेये तु तेजसी ॥१६॥

परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते परस्परम् ।

उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यग्निश्च दक्षिणे ॥१७॥

उत्तिष्ठति पुनः सूर्यः पुनर्व प्रविशत्यपः ।

तस्मात्ताम्रा भवत्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥१८॥

अस्त याति पुनः सूर्यो अहर्व प्रविशत्यपः ।

तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपो दृश्यति भास्वराः ॥१९॥

एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे ।

उदयास्तमने नित्यमहोरात्र विशत्यपः ॥२०॥

यश्चासौ तपते सूर्यः पिबन्नभो गभस्तिभिः ।

पार्थिवाग्निविमिश्रोऽमो दिव्यः घुचिरिति स्मृतः ॥२१॥

रात्रि में वह अग्नि में आविष्ट हो जाता है इसलिए दूर से
प्रकाश दिया करती है । जब फिर सूर्य उदित होता है तो अग्नि की
उष्णता सूर्य में समाविष्ट हो जाती है ॥१५॥ इसमें पार्थिव अग्नि के
पाद से यह अग्नि तपता है । सौर अग्नि के तेज प्रकाश और उष्ण
स्वरूप बाले हैं ॥१६॥ ये दोनों परस्पर में अनुप्रवेश से अग्नौष्ण्य को
आप्यायित करने हैं । भूमि के पूर्व भाग उत्तर में तथा दक्षिण में अग्नि
रहता है ॥१७॥ सूर्य पुनः उठता है अर्धरात्रि उदित होता है और पुनः
अन में प्रवेश कर जाता है । इस कारण से दिन और रात्रि में प्रवेश न

होने से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाया करते हैं ॥१८॥ सूर्य पुन अस्ता-
 चल को गमन करता है। ग्रह जल में प्रवेश कर जाता है। इसी कारण
 से रात्रि में जल शुक्ल वर्ण वाले तथा भास्वर दिखाई दिया करते हैं।
 ॥१९॥ इस क्रम के योग से भूमि के दक्षिणोत्तर अर्ध भाग में उदय एक
 अस्तमन नित्य होते हैं और ग्रहोरात्र जल में प्रवेश किया करते हैं ॥२०॥
 जो यह सूर्य अपनी गमस्त्रियो (किरणों) से जल को पीता दृष्टा तपता
 रहता है यह पार्थिवाम्नि से विभिन्न दिव्य शुचि कहा गया है ॥२१॥

सहस्रपादसो वह्निर्वृत्तकुम्भनिभः स्मृतः ।
 आदत्तो स तु नाड्योना सहस्रेण समततः ॥२२॥
 नादेयीश्चैव सामुद्रीः कूपाश्चैव तथा घनाः ।
 स्थावरा जगमाश्चैव वापीकुल्यादिका अपः ॥२३॥
 तस्य रश्मिसहस्रं तच्छीतवर्षोष्ण निस्स्रवम् ।
 तासां चतुशता नाड्यो वर्षते चित्रमूर्तयः ॥२४॥
 भजनाश्चैव माल्याश्च केतनाः पतनास्तथा ।
 अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥२५॥
 हिमोद्बहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
 रेशा मेघाश्च वात्स्याश्च ह्लादिन्यो हिमसजनाः ॥२६॥
 चद्रभा नामतः सर्वाः पीताभाश्च भस्मस्तयः ।
 शुक्ताश्च ककुभाश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥२७॥
 शुक्तास्ता नामतः सर्वास्त्रिशतीर्धर्मसर्जनाः ।
 सोमो विभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ॥२८॥
 मनुष्यानीषधेनेह स्वधया च पितृनपि ।
 अमृतेन सुरान्सर्वास्तिष्ठन्ति सृभिस्तर्पयत्यसौ ॥२९॥

सहस्र पाद यह वह्नि वृत्त कुम्भ के तुल्य होता है, ऐसा बताया
 गया है। वह चारों ओर से एक सहस्र नाड्यों से ग्रहण किया करता है
 ॥२२॥ जल नादेयी, सामुद्री, कूप, घन और वापी कुल्या आदि स्थावद

और जड़म होते हैं ॥२३॥ उसकी एक सहस्र रश्मियाँ हैं जो शीत, उष्ण और पर्वा के निस्स्रव हैं । उनमें चार सौ विप्रभूति नाडियाँ दर्पा किया करती हैं ॥२४॥ भजना, माल्या, वेत्ता, पनना तथा धमृना नाम वाली सन्नूरण रश्मियाँ वृष्टि के सर्जन करने वाली होती हैं ॥२५॥ हिम के उद्घटन करने वाली जो नाडिया है वे तीन सौ रश्मियाँ होती हैं जिनके नाम रेखा, मेघा, वात्स्या और ह्लादिनी हैं जो हिम का सर्जन करने वाली हैं ॥२६॥ वे सप्त नाम से चन्द्रमा होनी हैं और पीनाभा विरले हैं । दुबना, ककुभा, गाव, तथा विश्वभृता ये नाम से दुबना हैं और सब तीन सौ हैं तथा धर्म का सर्जन करने वाली होनी हैं । उनसे सोम मनुष्य, देवता और त्रिभूत का भरण किया करता है ॥२७॥१९॥ यहा मनुष्यो को औषध के द्वारा, पितृगण को स्वधा के द्वारा और रामस्त सूरों को धमृन के द्वारा इस तरह तीनों से इन सबको यह सत्त्व दिया करता है ॥२८॥

वसन्ते चैव श्रोष्मे च क्षते. स तपते त्रिभिः ।

वर्षास्वथो क्षरदि च चतुर्भिः सप्रवर्पति ॥३०॥

हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजते त्रिभिः ।

इन्द्रो घाता भग पूषा मित्रोथ वरुणोर्यमा ॥३१॥

अ शुक्रिवस्वास्त्यष्टा च पर्जन्यो विष्णुरेव च ।

यदणो माघमासे तु सूर्य एव तु फाल्गुने ॥३२॥

श्वेते मामि भवेदनुर्धाता वैशाखतापन. ।

उपेष्टे मासि भवेदिन्द्र आपाडे चार्यमा रविः ॥३३॥

विवस्वान् थावणो मासि प्रोष्ठपादे भगः स्मृतः ।

पर्जन्याश्मगुजे मासि त्यष्टा वै कार्तिजे रविः ॥३४॥

पर्जन्य और विष्णु ये माघादि मासों के क्रम से बारह आदित्य और उनकी रश्मियाँ हैं । माघ मास में वरुण तथा फाल्गुन में सूर्य होता है ॥३०॥३१॥३२॥ चैत्र मास में अशु और वैशाख मास में तपन करने वाले का नाम घाता है । ज्येष्ठ में इन्द्र तथा आषाढ में अयंमा नाम का रवि होता है ॥३३॥ आषाढ के महिने में विवस्वान् तथा भाद्रपद में भग नामधारी सूर्य कहा गया है । माश्विन में पर्जन्य और कार्तिक में स्वष्टा नाम वाला रवि हुमा करता है ॥३४॥

मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः ।

पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्याकंकर्मणि ॥३५॥

१) षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोशुः सप्तभिस्तथा ।

घाताष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः ॥३६॥

विवस्वान् दशभिर्याति यात्येकादशभिर्भगः ।

सप्तमस्तपिते मित्रस्त्वष्टा चोवाष्टभिः स्मृतः ॥३७॥

अयंमा दशभिर्याति पर्जन्यो नवभिस्तथा ।

षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति मेदिनीम् ॥३८॥

वसते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काचनसप्रभः ।

श्वेतो वर्षासु वर्णैर्न पांडुः शरदि भास्करः ॥३९॥

हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशरे लोहितो रविः ।

इति वर्णाः समाख्याता मया सूर्यसमुद्भवाः ॥४०॥

ओषधीषु बलं घृतो स्वधया च पितृष्वपि ।

सूर्योऽमरेष्वप्यमृतं त्रयं त्रिषु नियच्छति ॥४१॥

एवं रश्मिसहस्रं तत्सौरं लोकार्थसाधकम् ।

भिद्यते लोकमासाद्य जलशीतोष्णनिस्त्रवम् ॥४२॥

मार्गशीर्ष में मित्र नाम वाला तथा पौष में सनातन विष्णु नामधारी सूर्य होता है । सूर्य के कर्म में वरुण की पाँच सहस्र रश्मियाँ हुमा करती हैं ॥३५॥ ऋतुओं के भेद से वर्ण तथा मासों के भेद से सूर्य की रश्मियों की संख्या को बताते हुए कहते हैं कि पूषा नामक रवि छँ

सहस्र रश्मियो से कार्य करता है । अंशु सात सहस्र से, घाता आठ हजार से और दत्त क्रतु नौ सहस्र रश्मियो से सूर्य का कर्म सम्पादन किया करता है ॥३५॥३६॥ विवस्वान् दश हजार रश्मियो से जाता है और नग ग्यारह हजार से जाता है । मित्र सात हजार रश्मियों से तपता है और त्वष्टा आठ सहस्र से बहा गया है ॥३७॥ अयंमा दश तथा पर्जन्य नौ से और विष्णु छै सहस्र रश्मियो से इस भेदिनी को तपता है ॥३८॥ वसन्त ऋतु मे सूर्य का कपिल वर्ण होता है और ग्रीष्म मे का-वन की प्रभा से युक्त होता है । वर्षा ऋतु में सूर्य श्वेत वर्ण वाला होता है तथा शरद ऋतु भास्कर पाण्डु वर्ण वाला हुमा करता है । ॥३९॥ हेमन्त ऋतु मे ताम्र के समान वर्ण वाला और शिशिर ऋतु मे रवि लोहित वर्ण का हुमा करता है । इस प्रकार से देने ये सूर्य ने होने वाले चारों वा वर्णों कर दिया है ॥४०॥ यह सूर्य औषधियो मे चल धारण कराता है और पितरो मे स्वधा के द्वारा तथा अमरगण मे अमृत ये तीन वस्तुएँ तीनों मे प्रदान करता है ॥४१॥ इस रीति से सूर्य की यह सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती हैं । लोक को प्राप्त होकर जल-शीत और उष्णता का निस्सर्ग करने वाली भिन्न होती हैं ॥४२॥

इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं सूर्यसञ्ज्ञितम् ।

नक्षत्रग्रहसोमाना प्रतिष्ठायोनिरेव च ॥४३॥

चन्द्रश्चक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः ।

नक्षत्राधिपतिः सोमो नयनं वाममीशितुः ॥४४॥

नयनं च वाममीशस्य दक्षिणं भास्करः स्वयम् ।

तेषां जनानां लोकेस्मिन्मन्यते नयते यतः ॥४५॥

यह शुक्ल वर्ण वाला और देदीप्यमान सूर्य की सत्ता वाला मण्डल है । यह नक्षत्र, ग्रह और सोम की प्रतिष्ठा का कारण स्वरूप होता है ॥४३॥ चन्द्र, नक्षत्र और समस्त ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न

होने वाले जानने चाहिए । नक्षत्रों का अधिपति सोम होना है जो कि शिव का वाम नेत्र है ॥४४॥ ईश का दक्षिण नेत्र भास्कर ही स्वयं होता है । शिव का नेत्र होने से देव, पितृ और मनुष्यों के नयन को प्राप्त कराता है ॥४५॥



ग्रह प्रकृति वर्णन

शेषाः पंच ग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामचारिणः ।
 पठ्यते चाग्निरादित्य उदकं चन्द्रमाः स्मृतः ॥१॥
 शेषाणां प्रकृति सम्यग्ब्रह्ममाणां निबोधत ।
 सुरसेनापतिः स्कंदः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ॥२॥
 नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो जनाः ।
 सर्वलोकप्रभुः साक्षाद्यमो लोकप्रभुः स्वयम् ॥३॥
 महाग्रहो द्विजश्रेष्ठा मंदगामी सनैश्वरः ।
 देवासुरगुरु द्वौ तु भानुमतौ महाग्रहौ ॥४॥
 प्रजापतिसुतायुक्ती ततः शुक्रवृहस्पती ।
 आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः ॥५॥
 भवत्यस्माज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ।
 रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राग्निदिवोकसाम् ॥६॥
 द्युतिद्युतिमता कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम् ।
 सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः ॥७॥

इस अध्याय में ग्रहों की प्रकृतियों का स्फुटतया वर्णन किया जाता है तथा सूर्य की रश्मियाँ साथ मुख्य हैं उस की महिमा का निरूपण दिया गया है । सूतजी ने कहा—सूर्य और चन्द्र के प्रतिरिक्त शेष भीमादि पाँच ग्रह ईश्वर और काम चारी जानने के योग्य होते

हैं । आदित्य पतिन पड़ा जाया करता है और चन्द्रमा उदक कहा गया है ॥१॥ येष ग्रहो वी प्रकृति में भली भाँति बतलाता है उसे आप सींग समझ लेंव । देवताओं का सेनापति स्कन्द अङ्गारक अर्थात् भीम ग्रह पड़ा जाता है ॥२॥ ज्ञान के वेत्ता विद्वज्जन नारायण देव को बुध बताते हैं । समस्त सोमों का स्वामी तथा स्वयं सोम प्रभु साक्षात् यमराज हरि मन्द गगन बरने वाला महान् ग्रह, है द्विजों में श्रेष्ठों । यह शनैश्चर होता है । देवगण के और ग्रहों के गुण दो भागुमान् महान् ग्रह हैं । इनके पश्चात् इन दोनों सुक्र तथा बृहस्पति को प्रजापति के पुत्र कहा गया है । यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य आदित्य के ही मूल वाला होता है इसमें कोई भी सक्षय नहीं है ॥३॥४॥५॥ इसी से यह सम्पूर्ण देव, असुर तथा मनुष्यों के सहित जगत् होता है । रुद्र, इन्द्र, उषेन्द्र, चन्द्र, विप्रेन्द्र, अग्नि और देवगण जो श्रुति वाले हैं इनकी श्रुति और सम्पूर्ण सार्व-लौकिक नेज है उस सबकी आत्मा एव सम्पूर्ण लोकों के स्वामी महान् देव प्रजापति हैं ॥६॥७॥

सूर्य एव त्रिलोकेशो मूल परमदेवतम् ।

ततः सजायते सर्वं सन्नैव प्रविलीयते ॥८॥

भावाभावौ हि लोकानामादित्याग्निस्तृतीयो पुरा ।

अविज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान्सुप्रभो रवि ॥९॥

अत्र गच्छन्ति निधनं जायते च पुनः पुनः ।

क्षणा मूर्ध्नि दिवसा निशा पक्षाश्च कृत्स्नशः ॥१०॥

मासाः सवत्सराश्चैव ऋतवोऽप्ययुगानि च ।

सदादित्या दृते ह्येषा बालसख्या न विद्यते ॥११॥

बालादृते न नियमो न दीक्षा नाह्निककर्म ।

ऋतूनां च विभागश्च पुष्पं मूलं फलं वृत्तं ॥१२॥

कुतः सस्यविनिष्पत्तिस्तृणोपधिगणोपि च ।

अभावो व्यवहाराणां बन्तूनां दिवि चेह च ॥१३॥

जगत्प्रतापनमृते भास्करं रुद्ररूपिणम् ।

स एष कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः ॥१४॥

यह सूर्य ही तीनों लोकों का स्वामी, मूल और परम देवता है । इसकी सभी कुछ की उत्पत्ति होती है और सब उसी में प्रविलीन हो जाया करते हैं ॥८॥ लोकों के भाव और अभाव पहिले आदित्य से ही निकले थे । हे विप्रगण ! यह सुन्दर प्रभा से युक्त दीप्ति वाला रवि अविलम्ब अर्थात् विशेष रूप से न जानने के योग्य ग्रह है ॥९॥ इसी में क्षण, मूहूर्त, दिवस, निशा, यक्ष तथा सम्पूर्ण मास, सम्बत्सर, ऋतु और युग उत्पन्न होते हैं और इसी में बार-बार उत्पन्न होकर निधन को प्राप्त हुआ करते हैं । इसलिये आदित्य को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार से काल की सख्या ही नहीं होती है ॥१०॥११॥ काल के बिना तो कोई निष्पन्न ही नहीं हो सकता है और न कोई दीक्षा तथा दैनिक क्रम ही बनता है । ऋतुओं का विभाग, पुष्प, फल और मूल इसके बिना कैसे होंगे ॥१२॥ काल के घटाने वाले सूर्य देव के बिना सस्यो की निष्पत्ति, तृण और औषधियों का समुदाय भी कैसे होगा । दिवि लोक में और यहाँ जन्तुओं के समस्त व्यवहारों का ही एकदम अभाव हो जायगा ॥१३॥ जगत् के प्रतापन रुद्र रूप वाले भगवान् भास्कर के बिना किसी की भी निष्पत्ति का होना सम्भव नहीं होता है । वह यह ही काल, अग्नि और द्वादश स्वरूप वाला प्रजापति है ॥१४॥

तपत्येष द्विजश्रेष्ठाश्चैलोक्त्यं सचराचरम् ।

स एष तेजसा राशिः समस्तः सार्वलौकिकः ॥१५॥

उत्तमं मार्गमास्याय राश्वहोभिरिदं जगत् ।

पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ॥१६॥

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्येऽवलबितः ।

पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम् ॥१७॥

तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्प्रभुः ।

सूर्यो गोभिर्जगत्सर्वं मादीपयति सर्वतः ॥१८॥

रवे रश्मिसहस्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम् ।

तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥१९॥

सुपुम्नो हरि वेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।

विश्वव्याघ्राः पुनश्चाद्यः सप्तद्वयश्च ततः परः ॥२०॥

सर्वाविशुः पुनश्चान्यः स्वराड्यः प्रकीर्तितः ।

सुपुम्नः सूर्य रश्मिस्तु दक्षिणां राशिर्मधयत् ॥२१॥

हे द्विज श्रेष्ठ गण ! इस चर एवं अचर से समुत्पन्न प्रतीत्य में तपता है । यह यह ही तेजो का समग्र है जो सम्पूर्ण स्वरूप वाला एवं सार्वभौमिक है ॥१८॥ उत्तम मार्ग में आस्थित होकर यह इस जगत् को रात्रि तथा दिनों के द्वारा पार्श्वभाग में, ऊर्ध्व भाग में और अग्री भाग में सब ओर से तपाता है ॥१९॥ जिस तरह प्रभा के करने वाला दीप घर के मध्य में आधारित होना हुआ पार्श्व भाग में, ऊपर और नीचे समान रूप से अन्धकार का नाश किया करता है ॥२०॥ ठीक उसी की भाँति सहस्र किरणों वाला, ग्रहों का राजा तथा जगत् का प्रभु सूर्य भी अग्री किरणों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को सभी ओर से आदीपित कर दिया करता है ॥२१॥ रवि की एक सहस्र रश्मियाँ मीने पहिने बतलाई है उन सबमें मात रश्मियाँ अग्री की वागिनी होती हैं । ॥२२॥ सुपुम्न, हरि वेश तथा विश्व कर्मा, विश्वव्याघ्रा, फिर आद्य सप्तद्वय और इनके पश्चात् अन्य सर्वाविशु और फिर अन्य स्वराट् बताया गई है । सुपुम्न सूर्य रश्मि ने दक्षिण राशि की अर्धान् चन्द्रमा की वृद्धि की थी ॥२०॥२१॥

न्यगूर्ध्वाधः प्रचारोऽस्य सुपुम्नः परिकीर्तितः ।

हरिवेशः पुरस्ताद्यो ऋक्षयोनिः प्रतीक्ष्यते ॥२२॥

दक्षिणो विद्वज्जर्मा च रश्मिवर्धयते बुधम् ।

विश्वव्याघ्रास्तु यः पश्चाच्छुनयोनिः स्मृतो बुधः ॥२३॥

सन्नद्धश्च तु यो रश्मिः स योनि लोहितस्य तु ।
 पञ्च सर्वावसू रश्मिः स योनिस्तु बृहस्पते ॥२४॥
 शनैश्चर पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ।
 एव सूर्यप्रभावेन नक्षत्रग्रह तारका ॥२५॥
 दृश्यन्ते दिवि ता सर्वा विश्व चेद पुनजगत् ।
 न क्षीयते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥२६॥

इसका ऊपर और नीचे सभी ओर प्रचार है इसे सुपुम्न कहा गया है । पहिले जो हरिकेश है वह ऋषो की योनि अर्थात् नक्षत्रा का प्रकाशक कहा जाती है ॥२२॥ दक्षिण म विश्वकर्मा नाम वाली रश्मि बुध का वर्णन किया करती है । जो विश्व व्यापक जो रश्मि है वह पीछे बुधो के द्वारा शुक्र की योनि कही गई है । छटी सर्वावसु नाम वाली रश्मि है वह बृहस्पति की योनि है । जो सन्नद्ध नामक रश्मि है वह लोहित की योनि होती है ॥२३॥२४॥ पुन स्वराट् नामक रश्मि शनश्चर को आप्यायित किया करती है । इस प्रकार से सूर्य के प्रभाव से अर्थात् तज से समस्त नक्षत्र, ग्रह और तारक अन्तरिक्ष में दिसलाई दिया करते हैं और यह विश्व तथा जगत् दिखाई देना है । जो क्षीण नहीं हुआ करते हैं इसीलिये उन सब को नक्षत्र कहा गया है ॥२५॥२६॥



गृह सख्या वर्णन

क्षेत्राण्येतानि सर्वाणि आतपति गमस्तिभि ।
 तथा क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्र तारका ॥१॥
 धीर्णैः सुवृत्तेनेह सुवृत्ताते ग्रहाश्चया ।
 तारणात्तारका ह्येता शुक्लत्वाच्चैव तारका ॥२॥
 दिव्याना पार्थिवाना च नेशाना चैव सर्वश ।
 आदानान्नित्यमात्यस्तेजसा तमसामपि ॥३॥

सवने स्यंदनेऽर्थे च धातुरप विभाष्यते ।
 सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः ॥४॥
 बहुलश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते ।
 शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५॥
 सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
 जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥६॥
 घनतोयात्मक तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।
 घनतेजोमयं शुक्लं मंडलं भास्करस्य तु ॥७॥

इस अध्याय में ग्रहों के स्थानाभिमानी बताये गये हैं और स्थानों के रश्मि रूप ग्रह ऋक्ष आदि का निरूपण है । सूत जी ने कहा— ये रात्रि में दृश्यमान क्षेत्र अर्थात् स्थान सूर्य की किरणों से प्रकाशित होते हैं । भारत में आचरित सुकृत से उन पुष्प करने वालों के स्थान होते हैं । सुकृत के अन्त में ग्रह वर्त्ती नक्षत्र तारकों को सूर्य ग्रहण कर लेता है । तारण से ये तारक होते हैं और शुक्ल होने से भी तारक कहे जाते हैं ॥१॥२॥ अब आदित्य शब्द को व्युत्पत्ति बताते हैं, दिव्य, पार्थिव और निशा में होने वाले सब और के तेजोतमों के आदान करने से आदित्य यह नाम हुआ है ॥३॥ सवन और स्यन्दन अर्थ में यह धातु पड़ी जाती है इसलिये तेज और जलों के सवन करने से इसका सविता यह नाम माना गया है ॥४॥ चन्द्र शब्द जिस धातु से निष्पन्न होता है उसका मूल रूप चदि धातु है यह ह्लादन के अर्थ में है और बहुत से अर्थों का प्रतिपादक कहा जाता है । अतएव चन्द्र, यह शब्द ह्लादन के अतिरिक्त शुक्लत्व, अमृतत्व और शीतत्व को भी प्रकट करता है ॥५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य, आकाशगामी भास्वर मण्डल जल और तेज से परिपूर्ण, शुक्ल, शुभ और वृत्त कुम्भ के तुल्य हैं ॥६॥ वहाँ पर शशी का मण्डल घने जल के स्वरूप वाला है, ऐसा बताया गया है और भास्कर का मण्डल घन तेज से परिपूर्ण एवं शुक्ल होता है ॥७॥

वसन्ति सर्वदेवाश्च स्थानान्येतानि सर्वशः ।
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्चराः ॥८॥
 तेन ग्रहागृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
 सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥९॥
 शीक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशाक्षिः प्रतापवान् ।
 बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लोहितम् ॥१०॥
 शनैश्चरं तथा स्थानं देवश्चापि शनैश्चरः ।
 बौधं बुधस्तु स्वर्भानुः स्वर्भानुस्थानमाश्रितः ॥११॥
 नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशति च ।
 गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतीषि सुकृतात्मनाम् ॥१२॥
 कल्पादौ संप्रवृत्तानि निमित्तानि स्वयंभुवा ।
 स्थानान्येतानि तिष्ठति याव दाभूतसंभवम् ॥१३॥
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै ।
 अभिमानिनोऽवतिष्ठते देवाः स्थानं पुनः पुनः ॥१४॥

समस्त मन्वन्तरो मे नक्षत्र, सूर्य और ग्रह प्राण्य होते हैं और इन स्थानों में सभी और समस्त देवगण निवास किया करते हैं ॥८॥ इसी से गृहों को ही ग्रह कहते हैं और इसीनिसे ये ग्रह, इस नाम वाले हुए हैं । सूर्य सौर में प्रवेश कर गया तथा उसी प्रकार से सोम सौम्य में प्रविष्ट हो गया था ॥९॥ षोडश अक्षियों वाला प्रतापी शुक्र शीक्र स्थान में प्रविष्ट हो गया था । बृहस्पति और लोहित लोहित स्थान में प्रवेश कर गये थे ॥१०॥ शनैश्चर जो स्थान है उसमें देव शनैश्चर ने प्रवेश किया । बौध नामक स्थान में बुध ने तथा स्वर्भानु के स्थान में स्वर्भानु ने प्रवेश किया था ॥११॥ ममस्त नक्षत्र अपने-अपने नक्षत्रों के स्थानों में प्रवेश किया करते हैं । ये समस्त ज्योतियाँ जो हैं वे सब सुकृतात्माओं के घर ही होते हैं ॥१२॥ ये सब कल्प के आदि में प्रवृत्त हुए हैं और स्वयंभू के द्वारा निमित्त किये गये हैं । इन स्थानों में सुकृती गण जब तक

सम्पूर्ण भूतो का संभव प्रलय होता है नव तक निवास करते हुए अवस्थित रहा करते हैं ॥१३॥ समस्त मन्वन्तरो मे वे देवों के स्थान हुआ करते हैं और स्थानभिमानी देवगण बार-बार उस स्थान मे आकर अवस्थित हुआ करते हैं ॥१४॥

अतीतस्तु सहैतानि भाव्याभाव्यः सुरैः सह ।
वर्तते वर्तमानैश्च स्थानिभिस्तैः सुरैः सह ॥१५॥
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैधानिकाः स्मृताः ।
विवस्वानदितेः पुनः सूर्यो वैवस्वतंतरे ॥१६॥
द्युतिमानृषिपुत्रस्तु सोमो देवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः ॥१७॥
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरासुतः ।
बुधो मनोहरश्चैव ऋषिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥१८॥
शनैश्चरो विरूपस्तु संज्ञापुत्रो विवस्वतः ।
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवाऽसौ लोहितार्चिषः ॥१९॥
नक्षत्रक्षनामिन्यो दाक्षायण्यस्तु ताः स्मृताः ।
स्वर्भानुः सिहिकापुत्रो भूतसं तापनोऽसुरः ॥२०॥
सोमर्क्षग्रहसूर्येषु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ।
स्थानान्येतान्तथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ॥२१॥

भाव्य और अभाव्य अतीत सुरों के साथ और वर्तमान स्थानों वाले उन सुरों के साथ मे रहा करते हैं ॥१५॥ इस वर्तमान मन्वन्तर अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर मे विमानों मे विचरण करने वाले ग्रह कहे गये हैं । वैवस्वत मन्वन्तर में देवमाता अदिति का पुत्र विवस्वान सूर्य है ॥१६॥ ऋषि का पुत्र द्युतिमान वसुदेव सोम कहा गया है । असुरों का याजक भार्गव देव शुक्र जानने के योग्य है ॥१७॥ अङ्गिरा का पुत्र बृहत्तेजा देव देवों का आचार्य बृहस्पति बताया गया है । ऋषि का पुत्र मनोहर बुध कहा गया है ॥१८॥ विरुज स्वरूप वाता विवस्वान् का

छाया का पुत्र शनैश्चर है । नोहिा अचियो वाता रुद्र के सकाश से
विकेशी में अग्नि उत्पन्न हुआ था और यह युवा कुमार भीम है । भीम
अग्नि स्वरूप है ॥१६॥ नक्षत्र और ऋक्ष नाम वाली वे टाक्षायणी कही
गई हैं । स्वर्मानु सिहिका का पुत्र है और यह भूनों को सन्ताप देने
वाला अमुर है चन्द्र, ऋक्ष, यह और सूर्य मे ये अभिमानी कहे गये हैं ये
यथोक्त स्थान हैं और इनके स्थानी देवता होते हैं ॥२०॥२१॥

सौरमग्नि मयं स्थानं सहस्रांशोविवस्वतः ।

हिमांशोस्तु स्मृत स्थानमम्मयं शुक्लमेव च ॥२२॥

आप्यं श्यामं मनोज्ञं च बुधरश्मिगृह स्मृतम् ।

शुक्लस्याप्यम्मयं शुक्लं पदं षोडशरश्मिवत् ॥२३॥

नवरश्मि ते भीमस्य लोहित स्थानमुत्तमम् ।

हरिद्राभं बृहच्चापि षोडशाचिबृहस्पतेः ॥२४॥

अष्टरश्मिगृहं चापि प्रोक्तं कृष्णं शनैश्चरे ।

स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसन्तापनालयम् ॥२५॥

विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वृषयस्त्वेकरश्मयः ।

आश्रयाः पुण्यकीर्तिनां शुक्लाश्चापि स्ववर्णतः ॥२६॥

घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादावेव निर्मिताः ।

आदित्य रश्मिसंयोगात्संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः ॥२७॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कंभः सवितुः स्मृतः ।

त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मंडलस्य प्रमाणतः ॥२८॥

सहस्रांशु विवस्वान् का अग्निमय सौर स्थान है । और हिमाशु
चन्द्र का जल से परिपूर्ण शुक्ल स्थान कहा गया है ॥२२॥ आप्य (जल
मय), श्याम और सुन्दर बुध का रश्मि ग्रह बताया गया है । शुक्ल का
आप्य, शुक्ल और सोलह रश्मियों वाला स्थान होता है ॥२३॥ भीम
का उत्तम स्थान नौ रश्मियों से युक्त लोहित वर्ण वाला है । हरिद्रा
(हल्दी) के समान आभा वाला, बहुत बड़ा और षोडश अचियों वाला

देवाचार्य वृहस्पति का स्थान होता है ॥२४॥ आठ रश्मियों से समुत्पन्न और कृष्ण वर्ण वाला अर्धश्चर का स्थान कहा गया है । भूतो को सन्तापन करने वाला स्थान जो एकदम अन्धकार से परिपूर्ण है ऐसा आलय स्वर्भानु का है ॥२५॥ सम्पूर्ण तारक एक रश्मि से युक्त, स्थान वाले ऋषिगण होते हैं । ये पुण्य कीर्ति वालों के आश्रय हैं जो वर्ण से युक्त हैं ॥२६॥ ये घन तोय के स्वरूप वाले जानने चाहिए जोकि कल्प के आदि में ही निमित्त किए हुये होते हैं । सूर्य की किरणों के संयोग से अक्षरे प्रकाश के स्वरूप से युक्त बताये गये हैं ॥२७॥ सविता (सूर्य) का विष्कम्भ भी सहस्र योजन वाला कहा गया है । मण्डन के प्रमाण से उसका विस्तार त्रिगुना होता है ॥२८॥

द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाघस्तात्प्रसर्पति ॥२९॥
उद्धृत्य पृथिवीक्षायां निर्मिता मंडलाकृतिम् ।
स्वर्भानोस्तु वृहत्स्थानं तृतीय यत्तमोमयम् ॥३०॥
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सम गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ॥३१॥
स्वर्भानुं नुदते यस्मात्तस्मात्स्वर्भानुश्च्यते ।
चन्द्रस्य षोडशो भागो भागवस्य विधीयते ॥३२॥
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात्प्रमाणतः ।
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै वृहस्पतिः ॥३३॥
वृहस्पतेः पादहीनो वक्रसौरो उभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥३४॥
तारानक्षत्ररूपाणि यपुष्मंतीह यानि वै ।
युधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलाच्च वै ॥३५॥

सूर्य के विस्तार से चन्द्रमा का विस्तार दुगुना कहा गया है । उन दोनों के समान विस्तार वाला इनके नीचे होकर प्रसर्पण (गमन) किया करता है ॥२९॥ मण्डन के आधार वाली पृथिवी की निमित्त

छाया को उद्घृत करके स्वर्भानु का तमोमय सीसरा एक बहुत बड़ा स्थान होता है ॥३०॥ वह सूर्य से निकल कर पर्वों में साथ जाया करता है । फिर सोम से सीर पर्वों में आदित्य के समीप जाता है ॥३१॥ स्व-भानु को नुदित (प्रेरित) किया करता है इसी कारण से इसका नाम 'स्वर्भानु'—यह कहा जाता है । चन्द्रमा का सोचट्वा भाग भार्गव (शुक्र) का होता है ॥३२॥ जो कि विष्कम्म मण्डल और योजनाय के प्रमाण से हुआ करता है । एक चतुर्धातु भाग भार्गव से कम बृहस्पति को समझना चाहिये ॥३३॥ देवों के आचार्य बृहस्पति के प्रमाण से एक पाद अर्थात् चतुर्थ भाग कम वाले षष्ठ और तीसरे इन दोनों को बताया गया है । विस्तार तथा मण्डल से इन दोनों से एक पाद कम घुष होता है ॥३४॥ तारा और नक्षत्र के स्वरूप वाले जो बपुष्मान् हैं वे सब मण्डल तथा विस्तार में बुध के ही समान होते हैं ॥३५॥

प्रायश्चन्द्रयोगिनी विद्यादृक्षाणि तत्स्ववित् ।

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥३६॥

शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।

सर्वोपरि निकृष्टानि तारका मङ्गलानि तु ॥३७॥

योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ।

उपरिष्ठात्रयस्तेषां ग्रहास्ते दूरसर्पिणः ॥३८॥

सौरोज्ज्वराश्च वक्रश्च ज्ञेया मदविचारिणः ।

पूर्वमेव समाख्याता गतिस्तेषां यथाक्रमम् ॥३९॥

एतेष्वेव ग्रहाः सर्वे नक्षत्रेषु समुत्थिताः ।

विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै मुनिसत्तमाः ॥४०॥

विशालासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः ।

त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो देवो वसुस्तु सः ॥४१॥

शोतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ।

पोडशाचिभृङ्गो पुत्रः शुक्र सूर्यादनंतरम् ॥४२॥

तत्त्व वेत्ताओं को प्रायः ऋशों को चन्द्र के योग वाले जानने चाहिये । तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर में हीन होते हैं ॥३६॥ दो, तीन, चार और पाँच सौ योजन सबके ऊपर निकृष्ट तारको के मंडल हुआ करते हैं ॥३७॥ उनमें एक अर्ध योजन से कम दूरी कोई भी नहीं होता है । उनके ऊपर वे दूर सर्वेषु करने वाले तीन गृह होते हैं ॥३८॥ सौर, वक्र और अङ्गिरा ये मन्द गमन करने वाले होते हैं । हमने इनकी गति क्रमानुसार पूर्व में ही बतला दी है ॥३९॥ सम्पूर्ण ग्रह इन ही नक्षत्रों में समुत्पन्न हुये हैं । हे मुनिश्रेष्ठो ! अदिति देवमाता का पुत्र विवस्वान् सूर्य है ॥४०॥ ग्रहों में यह प्रथम ग्रह विशालामो में समुत्पन्न हुआ है । त्विषिमान् धर्म का पुत्र सोमदेव वसु है ॥४१॥ क्षीतल रश्मियों (किरणों) वाला निषाकर (चन्द्र) कृत्तिकाओं में समुत्पन्न हुआ है । वोदश प्रचियों वाला भृगु ऋषि का आत्मज शुक्र सूर्य के अनन्तर समुत्पन्न हुआ है ॥४२॥

ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्ये क्षेत्रे समुत्पितः ।
 ग्रहश्चां गिरसः पुत्रो द्वादशाचिबृहस्पतिः ॥४३॥
 फाल्गुनीषु समुत्पन्नः पूर्वाष्यासु जगद्गुरुः ।
 नवाचिलोहिताग्रश्च प्रजापतिमुतो ग्रहः ॥४४॥
 आपाडास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति स्मृतः ।
 रेवतीष्वेव सप्ताचिस्थाने सौरिः शनैश्चरः ॥४५॥
 सौम्यो बुधो धनिष्ठासु पञ्चाचिर्हृदितो ग्रहः ।
 तमोमयो मृत्युमुतः प्रजाशयकरः सिखी ॥४६॥
 आश्लेषासु समुत्पन्नः सर्वहारि महाग्रहः ।
 तथा स्वनामधेयेषु दाक्षायण्यः समुत्पिताः ॥४७॥
 तमोवीर्यमयो राहुः प्रकृत्या कृष्णमङ्गलः ।
 भरणीषु समुत्पन्नो ग्रहश्चन्द्रार्कमर्दनः ॥४८॥
 एते तारा ग्रहाश्चापि वोदश्या भार्गवादयः ।
 जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतां यतः ॥४९॥

यह सम्पूर्ण तारा ग्रहों में श्रेष्ठतम शुक्रतिष्य क्षेत्र में समुत्पन्न होने वाला बताया गया है । अङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति नाम वाला जो ग्रह है वह बारह अर्चियों वाला है ॥४३॥ यह जगद्गुरु पूर्वा फाल्गुनी समुत्पन्न हुआ है । नौ अर्चियों से संयुक्त प्रजापति का पुत्र लोहित अङ्ग वाला ग्रह अर्थात् भीम जो है वह पूर्वा आषाढाग्रो में उत्पन्न होने वाला कहा गया है । सूर्य का पुत्र शनैश्चर जो सात अर्चियों से युक्त होता है रेवतीयो में समुत्पन्न हुआ है ॥४४॥४५॥ अग्नि सौम्य एव सोम का पुत्र बुध जो पाँच अर्चियों से संयुक्त है यह ग्रह धनिष्ठाग्रो में उदित हुआ है । अश्विनार से परिपूर्ण, प्रजा के लय करने वाला, मृत्यु का पुत्र शिरनी आश्लेषाग्रो में समुत्पन्न हुआ है । यह सबका हरण करने वाला महाद् ग्रह है । अपने नामधेयो में दाक्षायणी समुत्पन्न हुई है ॥४६॥४७॥ राहु, तम और वीर्य से परिपूर्ण है तथा प्रकृति से कृष्ण मण्डल वाला है । यह चन्द्र और सूर्य का मदन करने वाला शत्रु ग्रह भरणीयो में समुत्पन्न हुआ है ॥४८॥ ये समस्त तारा और भागर्व आदि ग्रह अपने-अपने जन्म के नक्षत्रों में उत्पन्न पीढाग्रो में अनिष्ट स्थान वर्त्ती हो जायद करते हैं ॥४९॥

मुच्यते तेन दोषेण ततस्तद्ग्रहभक्तिः ।

सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ॥५०॥

ताराग्रहणा शुक्रस्तु केतूनां चापि धूमवान् ।

ध्रुवः क्लृप्तग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ॥५१॥

नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ।

वर्षाणां चैव पश्चानामाद्यः सवत्सरः स्मृतः ॥५२॥

श्रुतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ उच्यते ।

पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तया ॥५३॥

अहोरात्रविभागानामहश्चादिः प्रकीर्तितः ।

भूहृत्पत्तां तथैवादिमुहूर्तो रुद्रदैवतः ॥५४॥

दणश्चापि निमेषादिः कालः कालविदां वराः ।

श्रवणात् घनिष्ठादि युगं स्यात्पञ्चत्रयिकम् ॥ ५५॥

मानोर्गतिविशेषेण चक्रवत्परिवर्तते ।

दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालकृद्भिर्भुरोश्चरः ॥ ५६॥

इमं पूर्वोक्त वारण से घनिष्ठ स्थान मे रहने वाले ग्रह के सेवन से उतारे उत ग्रह दोष से मुक्त हो जाया करता है । इन समयस्त ग्रहो के घाति मे होने वाला घादित्य कदा जाता है ॥५०॥ सारा ग्रहो मे शुक्र धोर केतुधो मे धूमशब् तथा विभक्त ग्रहो के चारो दिशाओ मे ध्रुव होता है ॥५१॥ यक्षओ मे धनिष्ठा घादि है धोर भयनो मे उत्तराशरण है । पाच वर्षो मे सम्बन्धर घादि मे होने वाला कहा गया है ॥५२॥ छै ऋतुओ मे सबसे पहिले होने वाला तिसिर ऋतु है तथा मासो मे माघ माग सबसे घादि वाला है । पक्षो मे शुवन पक्ष तथा त्रिविधो मे प्रतिपदा तिथि घादि है ॥५३॥ ग्रहोरात्र के ओ विभाग होते हैं उनमें ग्रह घादि मे होने वाला है । गृहो मे द्वाद दैवत मन्त्रे घादि मे होने वाला गृहो होता है ॥५४॥ धनो मे हे काच विदो मे परम धैर्यो । निमेष घादि बाल है । धनिष्ठा से घादि तेकर श्रवण के भक्त पर्यंत पानि पर्यं का युग होता है ॥५५॥ मानु की मनि की विशेषता से दिवा-कर पक्ष की भानि परिवर्तित होता है । इमो वारण से गृह बाल की रचना करन वाला व्यास धोर ईश्वर कहा गया है ॥५६॥

चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्तननियतः ।

तस्मापि भगवान् रूद्र मातादेवः प्रवर्तनः ॥ ५७॥

इत्येव ज्योतिषामेव मन्त्रिवेदोर्ध्वनिश्रयः ।

लोकात्म्यवत्तार्थ मतादेवेन निर्मिताः ॥ ५८॥

बुद्धिपूर्व भगवता यस्यादौ र्गप्रवर्तितः ।

॥ आर्योभिमानो च सर्वस्य ज्योतिरात्मनः ॥ ५९॥

एकरूपप्रधानस्य परिणामोयमद्भुतः ।
 नैव शक्यः प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् ॥६०॥
 गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मासचक्षुषा ।
 आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ॥६१॥
 परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ।
 चक्षुः शस्त्रं जलं लेख्यं गणितं मुनिसरामाः ॥६२॥
 पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्मानविनिर्णये ॥६३॥

यह दिवाकर चारों प्रकार के भूतों के प्रवृत्त करने वाला तथा
 निर्वर्तक होता है किन्तु उस दिवाकर का भी प्रवर्तक साक्षात् देव भग-
 वान् रुद्र होते हैं ॥५७॥ इस प्रकार से यह ज्योतिषों का अर्थ निश्चय
 वाला सन्निवेश लोक के भली-भाँति व्यवहार के लिये महादेव ने निर्मित
 किया है ॥५८॥ भगवान् ने बुद्धि पूर्वक यह कल्प के आदि में ही भली-
 भाँति प्रवृत्त किया है । वह सबका ज्योति स्वरूप वाला अभिमानी आश्रय
 है ॥५९॥ एक रूप वाले प्रधान का यह परम अद्भुत परिणाम होता
 है । यह यथार्थ रूप से प्रसंख्यान करना किसी के द्वारा भी नहीं हो
 सकता है ॥६०॥ मास की चक्षु वाले विद्वान् मनु को महादि का सम
 तथा वक्र गमन के विषय में आगम आदि के द्वारा भली-भाँति परीक्षण
 करके तथा अनुमान और प्रत्यक्ष उपपत्ति से जानकर ही श्रद्धा करनी
 चाहिये । हे मुनिसरामो ! शस्त्र, जल, लेख्य और गणित तथा चक्षु हेतु
 हैं ॥६१॥६२॥ ज्योतिषों के भान के निर्णय चक्षु आदि उपयुक्त पाँच
 हेतु होते हैं ॥६३॥



ध्रुव आख्यान

कथं विष्णोः प्रसादाद् ध्रुवो बुद्धिमतां वरः ।
 मेढीभूतो ग्रहाणां वै वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥१॥
 एतमर्थं मया पृष्टो नानाशास्त्रविशारदः ।
 मार्कण्डेयः पुरा प्राह मह्यं शुश्रूषवे द्विजाः ॥२॥
 सावंभौमो महातेजाः सर्वंशस्त्रभृतां वरः ।
 उत्तानपादो राजा वै पालयामास मेदिनीम् ॥३॥
 तस्य भार्याद्वयमभूत्सुनोतिः सुसुचिस्तथा ।
 अग्रजायामभूत्पुत्रः सुनोत्यां तु महायशाः ॥४॥
 ध्रुवो नाम महाप्राज्ञः कुलदीपो महामतिः ।
 कदाचित्सप्तवर्षोऽपि पितुरङ्गमुपाविशत् ॥५॥
 सुसुचिस्तं विनिर्धूय स्वपुत्रं प्रीतिमानसा ।
 न्यवेशयत् विप्रेन्द्रा ह्यङ्गं रूपेण मानिता ॥६॥
 अलब्ध्वा स पितुर्धीमानङ्गं दुःखितमानसः ।
 मातुः समीपमागम्य हरोद स पुनः पुनः ॥७॥

इस अध्याय में उस चरित का वर्णन किया जाता है जिसमें ध्रुव ने तपस्या के द्वारा केशव की आराधना करके परम पद की प्राप्ति की थी । ऋषियो ने कहा—बुद्धमानो मे परम श्रेष्ठ ध्रुव ने किस प्रकार से भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त की थी और उस प्रसाद से वह कैसे ग्रहों के मध्य में मेढीभूत अर्थात् मध्योपरिस्थ प्रधान हो गया था—अब इसे कृपा कर आप कहने के योग्य हैं ॥१॥ सूत्र जी ने कहा—मैंने पहिले इसी बात को अनेक शास्त्रों के महा पण्डित मार्कण्डेय से पूछा था । हे द्विजगण ! उन मार्कण्डेय महर्षि ने श्रवण की इच्छा रखने वाले मुझसे यह चरित कहा था ॥२॥ मार्कण्डेय ने कहा—सब प्रकार के शास्त्र धारण करने वालों में अति श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी चक्रवर्ती राजा उत्तानपाद इस पृथ्वी का पालन करता था ॥३॥ उस राजा के दो

पत्नियों थी । एक का नाम सुनीति था और दूसरी भार्या का नाम सुरचि था । बड़ी रानी सुनीति ने महान् यश वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥४॥ उस पुत्र का नाम ध्रुव था । वह महान् पण्डित, कुल का दीपक और तीव्र बुद्धि वाला था । किसी समय में जब यह सात वर्ष की ही अवस्था वाला था, अपने पिता की गोद में जाकर बैठ गया था । ॥५॥ हे विप्रेन्द्रो ! सुरचि अत्यन्त अपने सौन्दर्य के कारण गर्व वाली थी । उसने उस ध्रुव सुनीति के पुत्र को हाथ से खींच कर गोद से उतार दिया था और वहाँ राजा की गोद में अपने पुत्र को बिठा दिया था और मन में अत्यधिक प्रसन्न हुई थी ॥६॥ वह ध्रुव अपने पिता की गोद को न प्राप्त कर बुद्धिमान् के हृदय में बड़ा दुःख हुआ था और अपनी माता सुनीति के समीप में आकर वह बारम्बार रुदन करने लगा था ॥७॥

रुदन्तं पुत्रमाहेदं माता शोकपरिप्लुता ।

सुरचिर्दायता भर्तुस्तस्याः पुत्रोपि तादृशः ॥८॥

मम त्वं मन्दभाग्याया जातः पुत्रोप्यभाग्यवान् ।

किं शोचसि किमर्थं त्वं रोदमानः पुनः पुनः ॥९॥

सन्तप्तहृदयो भूत्वा मम शोकं करिष्यसि ।

स्वस्थस्थानं ध्रुव पुत्र स्वशक्त्या त्वं समाप्नुयाः ॥१०॥

इत्युक्तः ॥ तु मात्रा वै निर्जगाम तदा वनम् ।

विश्वामित्रं ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि ॥११॥

उवाच प्रांवल्लिभूत्वा भगवन् वक्तुमर्हसि ।

सर्वेषामुपरिस्थानं केन प्राप्स्यामि सत्तम ॥१२॥

पितुरङ्गे समासीनं माता मां सुरचि मुने ।

व्यधूनयत्स तां राजा पिता नोवाच किंचन ॥१३॥

एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मं अस्तौहं मातरं गतः ।

सुनीतिराह मे माता माकृत्याः शोकमुत्तमम् ॥१४॥

माता सुनीति भी रुदन करते हुए अपने पुत्र को देखकर शोक से परिप्लुत हो गई थी और अपने पुत्र ध्रुव से कहा—वेटा, मुझसे स्वामी की प्रत्यक्ष प्यारी पत्नी है और उसका पुत्र भी उसी प्रकार का परम प्रिय है ॥८॥ मेरे मद भाग्य वाली के तू पुत्र पैदा हुआ है अतः तू भी अभाग्य ही है । तू क्या चिन्ता करता है और बार-बार क्यों रुदन कर रहा है ॥९॥ तू जब सतृप्त हृदय वाला होगा तो मुझे भी महान् शोक होगा हे पुत्र । तू स्वस्थ होता हुआ अपनी ही शक्ति के द्वारा अटल स्थान को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न कर ॥१०॥ माता के द्वारा इस तरह से कहने पर वह उसी समय वन में वहाँ से निवृत्त हो चला गया था । इससे पश्चात् उसने मार्ग में विश्वामित्र ऋषि को देखा था और विधि पूर्वक ध्रुव ने उनका प्रणाम किया था ॥११॥ ऋषि के समक्ष में ध्रुव हाथ जोड़ कर सहा हो गया और उनसे कहा—हे भगवन् ! हे श्रेष्ठ ! आप मुझे यह बतान की कृपा करें कि मैं राघव के ऊपर में स्थित स्थान की किस प्रकार से प्राप्त करूँगा ॥१२॥ हे मुने ! माता मुझसे मुझे अपने पिता की गोद में स्थित की कृपा कर नीचे उतार दिया है और मेरे पिता राजा उत्तान वाद ने उससे कुछ भी नहीं कहा ॥१३॥ हे ब्रह्मन् ! इस कारण से डरा हुआ मैं अपनी माता के समीप में पहुँचा था । मेरी माता सुनीति ने मुझ से कहा था कि शोक मत करो ॥१४॥

स्वयमर्णा पर स्थान प्राप्तुमर्हसि पुत्रम् ।
तस्मा हि वचनं श्रुत्वा स्थानं तव महामुने ॥१५॥
प्राप्तो यन्मिदं ब्रह्मन्मया त्वा दृष्टवान्प्रभो ।
तव प्रसादात्प्राप्स्येह स्थानमुत्तममुत्तमम् ॥१६॥
इत्युक्तं तं मुनिं श्रीमान्ब्रह्मसन्निदमब्रवीत् ।
राजपुत्रं शृणुष्वेदं स्थानमुत्तममाप्स्यसि ॥१७॥
आराध्य जगतामोशं वेशय वलेशनाशनम् ।
दक्षिणागमय शम्भोर्महादेवस्य धीमतः ॥१८॥

जप नित्यं महाप्राज्ञ सर्वपाप विनाशनम् ।
 इष्टदं परमं शुद्ध पवित्रममलं परम् ॥१६॥
 ब्रूहि मन्त्रमिमं दिव्यं प्रणवेन समन्वितम् ।
 नमोस्तु वासुदेवाय इत्येवं नियतेन्द्रियः ॥२०॥
 ध्यायन्सनातनं विष्णुं जपहोमपरायणः ।
 इत्युक्तः प्रणयत्यैनं विश्वामित्रं महायशाः ॥२१॥

मेरी माता ने फिर कहा था—हे पुत्र ! तू अपने ही कर्म से परम स्थान को प्राप्त करने के योग्य है । उसके इस वचन का श्रवण कर मैं हे महामुने ! आपके इस स्थान में प्राप्त हो गया हूँ । हे प्रभो ! हे ब्रह्मान् ! इस वन में आकर मैंने अब आपका दर्शन प्राप्त कर लिया है । अब मैं आपकी कृपा से वह परम अद्भुत एवं सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करूँगा ॥१५॥१६॥ इस तरह से ध्रुव के द्वारा कहे गये उस महा मुनि ने हँसते हुए यह कहा था—हे राजपुत्र ! तुम यह सुनो, तुम अवश्य ही उत्तम स्थान प्राप्त करोगे ॥१७॥ धीमान् महादेव शम्भु के दक्षिण भङ्ग से उद्भव प्राप्त करने वाले जगतो के स्वामी और वनेशो के नाश करने वाले भगवान् केशव की आराधना करो ॥१८॥ हे महा प्राज्ञ ! समस्त पापों के विनाश करने वाले, अभीष्ट वस्तु के प्रदान करने वाले, परम शुद्ध, पवित्र और परम अमल मन्त्र का नित्य जप करो ॥१९॥ नियत इन्द्रियो वाला होकर अर्थात् नितान्त एकाग्र मन वाला होकर प्रणव के (ओम्, इससे युक्त) सहित "नमो भगवते वासुदेवाय" अर्थात् भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है । इस मन्त्र को जोकि अत्यन्त दिव्य है बोलो अर्थात् जपो ॥२०॥ और सनातन विष्णु भगवान् का ध्यान बराबर करते हुए अनवरत मन्त्र का जाप, होम में तत्पर रहो । इस तरह से जब विश्वामित्र ने कहा तो ऐसा कहते हुए ध्रुव ने जो कि महान् यश वाला है विश्वामित्र महर्षि को प्रणाम किया था ॥२१॥

श्राद्धमुखो नियतो भूत्वा जज्ञाथ प्रीतमानसः ।

शाकमूलफलाहारः

सर्वत्सरमतन्द्रितः ॥२२॥

जजाप मन्त्रमनिशमजस्र स पुनः पुन ।
 वेताला राक्षसा घोराः सिंहाद्याश्च महामृगाः ॥२३॥
 तमभ्ययुर्महात्माना बुद्धिमोहाय भीषणा ।
 जपन् स वासुदेवेति न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ॥२४॥
 सुनीति रस्य या माता तस्या रूपेण सवृता ।
 पिशाची समनुप्राप्ता कुरोद भृशदु खिता ॥२५॥
 मम त्वमेकः पुत्रोसि किमर्थं क्लिश्यते भवान् ।
 मामनाथामपहाय तप आस्थितवानसि ॥२६॥
 एवमादीनि वाक्यानि भाषमाणा महातपा ।
 अनिरीक्ष्यैव दृष्टात्मा हरेर्नाम जजाप सः ॥२७॥
 ततः प्रक्षेपु सर्वत्र विघ्नरूपाणि तत्र वै ।
 ततो गरुडमारुह्य कालमेधममद्युतिः ॥२८॥

ध्रुव मन में अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ पूर्व की ओर मुख करके
 नियत हो गया था और मन्त्र का जाप करने लग गया था । एक वर्ष
 पर्यन्त अतन्द्रित होते हुए उसने इस प्रकार की तपस्या की तथा दाक,
 मूल और फला का आहार किया ॥२२॥ उसने निरन्तर लगातार
 बार-बार इस पवित्र मन्त्र का जप किया था । उस समय उस महान्
 आत्मा वाले ध्रुव की बुद्धि की मोहिता करने के लिए बहुत भीषण
 घेताङ्ग, राक्षस, घोर सिंह आदि महा मृग उसके समीप में आये थे ।
 किन्तु वह वासुदेव के द्वादशाक्षर मन्त्र का जप बराबर करता ही रहा
 था और उग कुछ भी भय आदि नहीं हुआ था ॥२३॥२४॥ उसकी
 सुनीति जो माता थी उगने के रूप की प्राप्त होने वाली पिशाची वहा प्राप्त
 हुई और अत्यन्त दुःखित होकर उदा करने लगी थी ॥२५॥ मेरा तू
 एव ही पुत्र है । तू इस तरह क्लिप्तिये ऐसा बेशर भोग रहा है । मुझ
 आत्मा का त्याग करके तू यहाँ तपस्या करने के लिये आस्थित हो गया
 है ॥२६॥ इस प्रकार के आश्चर्याओं को धोतते वाली उसकी उग
 महान् परम दृढ़ तात्परी ने विस्मृत देगा भी नहीं था और प्रसन्न चित्त

वाले उसने बराबर हरि के नाम का जाप किया था ॥२७॥ इसके अनन्तर के समस्त विघ्नों के स्वरूप वहाँ पर सर्वत्र प्रशान्त हो गये थे । इसके पश्चात् काल मेघ के तुल्य छुति वाले भगवान् गरुड़ पर सवार होकर वहाँ आये थे ॥२८॥

सर्वदेवैः परिवृतः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
 आययौ भगवान्विष्णुः ध्रुवांतिकमरातिहा ॥२९॥
 समागतं विलोक्याथ कोसावित्येव चिंतयन् ।
 पिबन्निव तृपोकेश नय नाम्भ्यां जगत्पतिम् ॥३०॥
 जपन् स वासुदेवेति ध्रुवस्तस्थौ महाद्युतिः ।
 शङ्खप्रांतेन गोविंदः पस्पर्शास्यं हि तस्य वै ॥३१॥
 ततः स परमं ज्ञानमवाप्य पुरुषोत्तमम् ।
 तुष्टाव प्रांजलिभूर्त्वा सर्वलोकेश्वरं हरिम् ॥३२॥
 प्रसीद देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ।
 लोकात्मन् वेदगुह्यात्मन् त्वां प्रपन्नोस्मि केशव ॥३३॥
 न विदुस्त्वा महात्मानं सनकाद्या महर्षयः ।
 तत्कथं त्वामहं विद्यां नमस्ते भुवनेश्वर ॥३४॥
 तमाह प्रहसन्विष्णुरेहि वत्स ध्रुवो भवान् ।
 स्थानं ध्रुव समासाद्य ज्योतिषामग्रभुग्भव ॥३५॥

भगवान् विष्णु उस समय समस्त देवों से परिवृत थे अर्थात् उनके चारों ओर देवगण साथ में थे और महर्षि गणों के द्वारा स्तूयमान हो रहे थे । भगवान् इस प्रकार से ध्रुव के समीप में आकर उपस्थित हो गये थे जोकि अपने समस्त शत्रुओं का सर्वदा हनन करने वाले हैं ॥२९॥ समस्त में समागत भगवान् विष्णु को देखकर ध्रुव ने मन में विचार किया था कि यह कौन है । उन जगत् के स्वामी हृषीकेश के रूप माधुर्य का अपने नेत्रों से पान करते हुए वह ध्रुव 'ओ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्र का बराबर जाप करते हुए वैसे ही अपनी तपस्या में यह महान् छुति वाला समास्थित बना रहा था । तब गोविन्द ने उसके

मुख को घपने पाञ्चजन्य शङ्ख के एक भाग से स्पर्श कराया था ।
॥३८॥॥३९॥ उससे फिर उस ध्रुव ने परम ज्ञान की प्राप्ति कर ली थी
और फिर समस्त लोको के ईश्वर पुरुषोत्तम हरि के सामने हाथ जोड़
कर उनका स्तवन ध्रुव ने किया था ॥३९॥ हे देवो के भी देवेश !
आप प्रसन्न होइये । आप शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले
हैं । आप तो इन सम्पूर्ण लोको की आत्मा हैं और आपके स्वरूप को
वेद भी नहीं जानते हैं । तात्पर्य यह है कि मैं एक अज्ञान बालक आपके
उस स्वरूप को क्या जान सकता हूँ जोकि वेदों में भी गुह्य है । हे
देवाव ! मैं आपकी धारण में प्राप्त हुआ हूँ ॥३९॥ हे भुवनेश्वर ! महान्
आत्मा वाले आपको सनकादि महर्षिगण भी नहीं जान सके हैं तो फिर
मैं एक अज्ञान छोटा सा बालक आपको कैसे जान सकता हूँ । मैं आपको
प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ भगवान् विष्णु ने हंसते हुए उस ध्रुव से
कहा—हे वरु ! आओ, तुम ध्रुव हो और ध्रुव स्थान को प्राप्त कर
समस्त ज्योतिर्मण्डल में सबसे आगे रहने वाले हो जाओ ॥३९॥

मात्रा त्व सहितस्तत्र ज्योतिषां स्थानमाप्नुहि ।
मत्स्थानमेतत्परमं ध्रुवं नित्यं सुशोभनम् ॥३९॥
तपसाराध्य देवेशं पुरा लब्ध हि शक्यात् ।
वासुदेवेति यो नित्यं प्रणवेन समन्वितम् ॥३९॥
नमस्कारसमायुक्तं भगवच्छब्दसुयुतम् ।
जपेदेव हि यो विद्वान्ध्रुव स्थानं प्रपद्यते ॥३९॥
ततो देवाः सग घर्वाः सिद्धाश्च परमपंथः ।
मात्रा सह ध्रुव सर्वं तस्मिन् स्थाने न्यवेशयन् ॥३९॥
विष्णोराजा पुरस्कृत्य ज्योतिषा स्थानमाप्तवान् ।
एव ध्रुवो महातेजा द्वादशाक्षरविद्यया ॥४०॥
अवाप महतीं सिद्धिमेतत्ते कथितं मया ॥४१॥
तस्माद्यो वासुदेवाय प्रणामं कुरुते नरः ।
॥ याति ध्रुवसालोक्यं ध्रुवत्वं तस्य तत्ताया ॥४२॥

तुम अपनी माता के सहित वहाँ पर ज्योतियो के मध्य में स्थान प्राप्त करो । यह मेरा बहुत ही अच्छो ध्रुव (निश्चल) एवं नित्य स्थान है ॥३६॥ पहिले तप के द्वारा देवेश की आराधना करके भगवान् वाङ्मर से इसे प्राप्त किया था । प्रणव से युक्त और नमस्कार से समुत्त तथा भगवत्, इस शब्द से समन्वित वासुदेव, इस मन्त्र को जो निरर्थ ही जप किया करता है अर्थात् 'ओ नमो भगवने वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र वा जो विद्वान् जप करता है वह ध्रुव स्थान को प्राप्त हो जाता है ॥३७॥३८॥ इसके अनन्तर गन्धर्वों के सहित देवगण ने, सिद्धों ने और परमपियो ने सभी ने माता के सहित ध्रुव को उस स्थान पर निवेदित किया था ॥३९॥ इस प्रकार से विष्णु की आज्ञा को शिरोधार्य करके महा तेजस्वी ध्रुव ने द्वादशाक्षर विद्या के द्वारा ज्योतियो के उस स्थान को प्राप्त किया था ॥४०॥ इस तरह उसने महती सिद्धि प्राप्त की थी, यह मैंने तुम्हारे समक्ष में सब बता दिया है ॥४१॥ सूतजी ने कहा— इसलिये जो मनुष्य भगवान् वासुदेव को प्रणाम किया करता है वह ध्रुव के लोक को प्राप्त हो जाता है और उसको भी उसी प्रकार का ध्रुवत्व प्राप्त होता है ॥४२॥



दक्ष द्वारा देवादि सृष्टि वर्णन

देवाना दानवाना च गघर्वोरगरक्षसाम् ।
 उत्पत्तिं ब्रूहि सूताद्य यथाक्रममनुत्तमम् ॥१॥
 संकल्पादर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ।
 दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिमथुनसंभवा ॥२॥
 यदा तु सृजतस्तस्य देवपिङ्गणं पद्मगान् ।
 न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः ॥३॥

दक्षः पुत्रसहस्राणि पञ्च सूत्यामजीजनत् ।
 तास्तु दृष्ट्वा महाभागान् सिंसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥४॥
 नारदः प्राह हर्यश्चान्दक्षपुत्रान्समागताम् ।
 भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वोर्ध्वमथ एव च ॥५॥
 ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुष्वं मुनिसत्तमाः ।
 ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥६॥
 अद्यापि न नियतंते समुद्रादिव तिष्ठतः ।
 हर्यंश्वेषु च नष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः ॥७॥
 सूत्यामेव च पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।
 शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः ॥८॥

इस अध्याय में दक्ष के द्वारा देवादि की वातिष्ठान्त सृष्टि का वर्णन किया जाता है । ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! अब आप देव, दानव, गन्धर्व, उरग और राक्षसों की यथाक्रम उत्पत्ति का वर्णन करिये ॥१॥ सूतजी ने कहा—पूर्व पुरुषों की (ब्रह्मादिकी) सृष्टि मन के सङ्कल्प से, दर्शन से और स्पर्श से बही जाती है । प्राचेतस दक्ष से लेकर यह स्त्री, पुरुष के संयोग से उत्पन्न होने वाली सृष्टि हुई है ॥२॥ देव, ऋषि और पद्मगो का मृजन करने वाले उसका लोक जब सृष्टि को प्राप्त नहीं हुआ था तो उस समय में मैथुन के योग से दक्ष ने मूली नाम वाली अपनी भार्या में पाँच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे । उन महान् भाग्य वालों को देखकर अनेक प्रकार की प्रजा के मृजन करने की इच्छा जाता वह हो गया था ॥३॥४॥ सत्तार के शेष भूत विष्णु शरीर का विस्तार या भूत और अवसान सबको जानकर नारद ने तमु-राम दक्ष के पुत्र हर्यंशु से कहा—हे मुनियेष्ठो ! आप लोग अब विशेष रूप से सृष्टि की रचना करो किन्तु ये सब समझे हुए वचन को सुनकर सब दिशामें में भगे गये थे जोकि समुद्र में जाकर मिल जाने वाली नदियों की भाँति अभी तक भी वापिस नहीं पीटे हैं । हर्यंशु के इस तरह नष्ट हो जाने पर फिर प्रजापति दक्ष ने मूली भार्या में एक

सहस्र पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । शबल नाम वाले वे सृष्टि करने के लिए एकत्रित हुए थे ॥१॥६॥७॥८॥

नारदोऽनुगतान्प्राह पुनस्तान्सूर्यवर्चसः ।
 भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वा भ्रातृन् पुनः पुनः ॥६॥
 आगत्य वाथ सृष्टिं वै करिष्यथ विशेषतः ।
 तेपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृगतिं तथा ॥१०॥
 ततस्तेष्वपि नष्टेषु पष्टिकन्याः प्रजापतिः ।
 वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तदा ॥११॥
 प्रादात्स दशकं घमं कश्यपाय त्रयोदश ।
 विशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥१२॥
 द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।
 द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासा नामानि विस्तरात् ॥१३॥

नारद ने सूर्य के समान वर्चस वाले अनुगत उनसे भू का संपूर्ण प्रमाण को जानकर समस्त भाइयों से बार-बार कहा था कि आप सब यहाँ आकर विशेष सृष्टि की रचना करोगे किन्तु वे सब भी उसी मार्ग के द्वारा गमन कर गये थे जिसमें कि उनके बड़े भाई हयंश्च गये थे । ॥६॥१०॥ इसके अनन्तर उनके भी नष्ट हो जाने पर प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी नाम वाली अपनी भार्या में उस समय साठ कन्याएँ समुत्पन्न की थी ॥११॥ उन कन्याओं में से दक्ष प्रजापति ने दश तो घमं को दी थी और तेरह कश्यप को दी और सत्ताईस सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो भृगु के पुत्र को, दो धीमान् कृशाश्व को और दो आङ्गिरस को दी थी । अब उन सबके नामों को विस्तार पूर्वक श्रवण करो ॥१२॥१३॥

भृगुध्वं देवमातृणां प्रजाविस्तारमादितः ।
 भरुत्वती वसूर्यामिलत्वा भानुरक्षन्तौ ॥१४॥
 सकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनो ।
 घर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्वदामि वः ॥१५॥

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् ।

मरुत्वत्या मरुत्वतो वसोस्तु वसवस्तथा ॥१६॥

भानोस्तु भानवः प्रोक्ता मृहूर्ताया मृहूर्तकाः ।

लंवाया घोपनामानो नागवीथिस्तु यामिजः ॥१७॥

सकल्पायास्तु संकल्पो वसुसर्गं वदामि वः ।

ज्योतिष्मत्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतोदिशम् ॥१८॥

वसवस्ते समाख्याताः सर्वभूतहितं पिणः ।

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्च वानिलोनलः ॥१९॥

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।

अजंकपादहिवुंघ्न्यो विरूपाक्षः सभरवः ॥२०॥

उन देव माताओं के छुम नाम और फिर आरम्भ से ही उनकी प्रजा के विस्तार को सुनो । उन धर्म पत्नियों के नाम ये हैं—मरुत्वती, वसू, यामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सकल्पा, मृहूर्ता, साध्या, विश्वा और भामिनी । ये सब धर्म पत्नी समाख्यात हुई थी । अब मैं आपके समक्ष उनके पुत्रों को बताता हूँ ॥१४॥१५॥ विश्वा के विश्वदेवा पुत्र हुए ये और साध्या साध्यों को जन्म दिया था । मरुत्वती ने मरुत्वान् देव तथा वसू से वसुगण समुत्पन्न हुए थे ॥१६॥ भानु नाम वाली से भानु-गण तथा मृहूर्ता से मृहूर्तक पुत्र पैदा हुये थे । लम्बा से घोप नाम वाल और यामि से नाग वीथि समुत्पन्न हुये थे ॥१७॥ सकल्पा से सकल्व हुमा । अब आपके वसुओं का सर्ग बताता हूँ । ज्योतिष्मन्त जो देवगण ये वे सब दिशाओं में व्यापक हो गये थे ॥१८॥ समस्त भूतों के हित चाहने वाले ये वसुगण, इस नाम से प्रसिद्ध हुये थे । आप (जल), ध्रुव, सोम (चन्द्र), धर, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसुगण बहे गये हैं । अब एवादना रुद्रों को बताते हैं ॥१९॥२०॥

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ।

सावित्रश्च जयन्तश्च पिनावी चापराजितः ॥२१॥

एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः ।
 कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकम् ॥२२॥
 अदितिश्च दितिश्चैव अरिष्टा सुरसा मुनिः ।
 सुरभिर्विनता ताम्रा तद्वत् क्रोधवशा इला ॥२३॥
 कद्रूस्त्वषा दनुस्तद्वत्तासा पुत्रान्वदामि वः ।
 तुपिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः ॥२४॥
 वैवस्वतातरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ।
 इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोथ वरुणोर्यमा ॥२५॥
 विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च ।
 एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥२६॥
 दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।
 हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च ॥२७॥
 दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद्वलदपितम् ।
 विप्रचित्तिः प्रधानोभूत्तेषां मध्ये द्विजोत्तमाः ॥२८॥

अजैक पाद, अहिबुध्न्य, विरूपोक्ष, सभैरव, हर, बहुरूप,
 श्यम्बक, सुरेश्वर, सावित्र, जयन्त, पितामी, अपराजित ये गणेश्वर ग्या-
 रह रुद्र समाख्यात हुये हैं । अब कश्यप ऋषि की पत्नियों से जो पुत्र एवं
 पौत्र समुत्पन्न हुये थे उनको बतलाऊंगा ॥२१॥२२॥ कश्यप की पत्नियों
 के नाम ये थे—अदिति, दिति, अरिष्टा, सुरसा, मुनि, सुरभि,
 विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला, कद्रू, त्वषा, दनु । अब इन पत्नियों
 से जो पुत्र उत्पन्न हुए थे उनको तुम्हें बताता हूँ । त्वषा से चाक्षुष
 मन्वन्तर में तुपित नाम वाले देव हुये थे ॥२३॥२४॥ वैवस्वत मन्वन्तर
 में द्वादश आदित्य कहे गये हैं । इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण,
 अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु ये सहस्र किरणों
 वाले बारह आदित्य कहे गये हैं ॥२५॥२६॥ दिति नाम वाली कश्यप
 की पत्नी ने कश्यप से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ये दो ही पुत्र प्राप्त
 किये थे, ऐसा हमने सुना है ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! दनु नाम धारिणी

पत्नी ने कश्यप से ब्रह्म के दर्प वाले सौ पुत्र प्राप्त किये थे । उन सबके मध्य में विप्रचित्ति प्रधान था ॥२८॥

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुंगवाः ।

शुकी श्येनी च भासी च मुग्रीवी गृध्रिकां शुचिम् ॥२९॥

शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः ।

श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुरंगांश्च व्यजीजनत् ॥३०॥

गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहगमान् ।

हससारसकारंडप्लवाञ्छुचिरजीजनत् ॥३१॥

अजाश्वमेपोष्ट्रखरान् मुग्रीवी चाप्यजीजनत् ।

विनता जनयामास गरुडं चारुणं शुभा ॥३२॥

सौदामिनी तथा कन्यां सर्वलोकभयंरुरीम् ।

सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणामभवत्पुरा ॥३३॥

कद्रूः सहस्रशिरसां सहस्रं प्राप सुव्रता ।

प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिरनुत्तमाः ॥३४॥

दोषवासुनिकर्कोटशखंरावतकंबलाः ।

घनजयमहानीलपद्माश्चतरतक्षकाः ॥३५॥

हे द्विजश्रेष्ठो ! ताम्रा नाम वाली पत्नी ने छह कन्याएँ उत्पन्न की थी । उनके नाम शुकी, श्येनी, भासी, मुग्रीवी, गृध्रिका और शुचि ये थे ॥२९॥ शुकी ने धर्म से शुक और उनूको को उत्पन्न किया था । श्येनी ने श्येनी को जन्म ग्रहण कराया था और भासी ने कुरङ्गों को उत्पन्न किया था ॥३०॥ गृध्री ने गृध्रो को तथा कपोतो (पतंगों) को पैदा किया था और शुचि ने पारावत पक्षी तथा हग, सारस एवं वारण्डप्लवों को उत्पन्न किया था ॥३१॥ मुग्रीवी ने बकरी, अश्व, मेघ, ऊँट और गधों को जन्म दिया था शुभा विनता ने गरुड और अरुण को तथा समस्त लोक को भय देने वाली सौदामिनी नाम वाली कन्या को उत्पन्न किया था । सुरसा के पहिले एक सहस्र सर्प हुए थे ॥३२॥३३॥ सुव्रता कद्रू ने एक

सहस्र सहस्र शिरों वाले समुत्पन्न बिये थे । उनमें सर्वोत्तम छद्म्वीस प्रधान विख्यात हुये थे ॥३४॥ उन छद्म्वीसों के नाम—रोष, वामुकि, कर्कोटि, शर, ऐरावत, कम्बल, घनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक ये हैं ॥३५॥

एलापन्नमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ।
 शंखपालमहाशंखपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः ॥३६॥
 शाखलोमा च नहुषो वामनः फणितस्तथा ।
 कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृतः ॥३७॥
 रक्षोगणं क्रोधवशा महामायं व्यजीजनत् ।
 रुद्राणां च गणं तद्वदगोमहिष्यो वराङ्गना ॥३८॥
 सुरभिर्जनयामीस कश्यपादिति न श्रुतम् ।
 मुनिर्मुनीनां च गणं गणभप्सरसां तथा ॥३९॥
 तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाजनयद्वहून् ।
 तृणवृक्षलतागुल्ममिला सर्वमजीजनत् ॥४०॥
 त्विषा तु यक्षरक्षासि जनयामास कोटिशः ।
 एते तु काश्यपेयाश्च संक्षेपात्परिकीर्तिताः ॥४१॥
 एतेषां पुत्रपौत्रादिवशाश्च बहवः स्मृताः ।
 एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना ॥४२॥

एलापन्न, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंखलोमा, नहुष, वामन, फणित, कपिल दुर्मुख और पतञ्जलि ये कुल छद्म्वीस कहे गये हैं ॥३६॥३७॥ क्रोधवशा ने महामाया वाले रक्षोगण को समुत्पन्न किया था । वराङ्गना ने रुद्रों के गण तथा गौ एवं महिषी को उत्पन्न किया था ॥३८॥ सुरभि ने कश्यप से उत्पन्न किया था, यह हमने सुना है । इस तरह कश्यप मुनि ने मुनियों के गण, भप्सरसों के समूह को उत्पन्न किया था ॥३९॥ तथा अरिष्टा ने बहुत से किन्नर एवं गन्धर्वों को उत्पन्न किया था । इला ने तृण, वृक्ष, लता और गुल्मों को सबको पैदा किया था ॥४०॥ त्विषा ने करोड़ों ही यक्ष और

राक्षसों को जन्म दिया था । ये सब काश्यपेय अर्थात् कश्यप ऋषि की सन्तति हैं जिनको मैंने तक्षेप से बनना दिया है ॥४१॥ इनके पुत्र एवं पौत्र आदि के वद्धत से वंश बनाये गये हैं । इस रीति से महात्मा कश्यप के द्वारा प्रजा का मृजन किया गया है ॥४२॥

प्रतिष्ठितासु सर्वासु चरासु स्थावरामु च ।

अभिपिच्यधिपत्येषु तेषां मुह्यान्प्रजापतिः ॥४३॥

सतो मनुष्याधिपतिं चक्रे यैवस्वतं मनुम् ।

स्वायम्भुवेन्तरे पूर्वं ब्रह्मणा येऽभिपेक्षिताः ॥४४॥

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ।

यथोपदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥४५॥

स्वायम्भुवेन्तरे पूर्वं ब्रह्मणा येऽभिपेक्षिताः ।

ते ह्यंते चाभिपिच्यन्ते मनवश्च भवन्ति ते ॥४६॥

मन्वतरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः ।

एवमन्येभिपिच्यन्ते प्राप्ते मन्वतरे सतः ॥४७॥

अनीतानागताः सर्वे नृपा मन्वन्तरे स्मृताः ।

एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासतानकारणात् ॥४८॥

पश्यस्यो गोत्रकामस्तु चचार स पुनस्तपः ।

पुत्रो गात्रकरो मह्यं भवतादिति चितयन् ॥४९॥

अब और स्थावर इन सबके प्रतिष्ठित हो जाने पर उनमें मुम्बों की प्रजापति ने उनके अधिपत्य पद पर अभिषिक्त किया था ॥४३॥ इसके अनन्तर मनुष्यों का अधिपति वैवस्वत मनु को बनाया था । स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले ब्रह्मा के द्वारा जो अभिपेक्षित किये गए थे उनसे सात द्वीपों वाली और पर्वतों से युक्त यह सम्पूर्ण पृथ्वी उपदेश के अनुसार इस समय भी प्रणिपालित की जानी है ॥४४॥४५॥ पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्मा के द्वारा जो अभिपेक्षित हुये थे वे वे अभिषिक्त यहाँ पर किए जाने हैं और वे मनु होते हैं ॥४६॥ इन मन्वन्तरों के अनीत हो जाने पर पार्थिव भी चले गए फिर इनके पश्चात् इस प्रकार से मन्व-

स्तर के प्राप्त होने पर अन्य अभिषिक्त किये जाते हैं ॥४७॥ अतीत तथा अनागत अर्थात् भविष्य में आने वाले समस्त नृप मन्वन्तर में कहे गये हैं । प्रजा के सन्तान के कारण से इन पुत्रों की उत्पत्ति की थी ॥४८॥ अपने गोत्र अर्थात् वंश की कामना रखने वाले कश्यप ने इन सबको उत्पन्न करने के पश्चात् पुनः तपस्या थी क्योंकि उनके मन में यह विचार था कि मेरे गोत्र को चत्ताने कोई पुत्र पैदा होवे ॥४९॥

तस्यैवं ध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः ।

ब्रह्मयोगात्सुतो पश्चात्प्रदुर्भूतो महौजसौ ॥५०॥

वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।

वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रंभ्यश्च सुमहायशाः ॥५१॥

रंभ्यस्य रंभ्या विज्ञेया नैध्रुवस्य वदामि वः ।

च्यवनस्य तु कन्यायां सुमेधाः समपद्यत ॥५२॥

नैध्रुवस्य तु सा पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् ।

असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यतः ॥५३॥

शांडिल्यानां वरः श्रीमान्देवलः सुमहातपाः ।

शांडिल्या नैध्रुवा रंभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः ॥५४॥

नव प्रकृतयो देवाः पुलस्त्यस्य वदामि वः ।

चतुर्युगे ह्यतिक्रांते मनोरेकादशे प्रभोः ॥५५॥

अर्धाविशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तिते ।

मानवस्य नरिष्यन्तः पुत्र आसीद्दमः किल ॥५६॥

इस रीति से ध्यान करके तप करने वाले महारमा कश्यप के ब्रह्म के योग से फिर महान् भोज वाले दो पुत्र प्रादुर्भूत हुये थे ॥५०॥ उन दोनों के नाम वत्सर और आसित थे वे दोनों ही ब्रह्मवादी पुत्र थे । वत्सर से नैध्रुव उत्पन्न हुआ था और महान् यज्ञ वाला रंभ्य पैदा हुआ था ॥५१॥ रंभ्य के रंभ्या इस नाम से जानने चाहिए । नैध्रुव के विषय में मैं आपको बताता हूँ । च्यवन ऋषि की कन्या में सुमेधा उत्पन्न हुई थी ॥५२॥ वह नैध्रुव की पत्नी थी और कुण्डपायिणों की माता थी ।

आसित के एकवर्णी मे ग्रहिष्ठ उत्पन्न हुआ था ॥५३॥ शाण्डिल्यो में श्रेष्ठ श्रीमान् देवल महान् तपस्वी था ; इस तरह शाण्डिल्य, रम्य धीर नैध्रुव ये तीन पक्ष कश्यप हुये थे ॥५४॥ नौ प्रकृति वाले देव पुलस्त्य के आपको बतलाता हूँ । मनु प्रभु के एकादश चतुर्थुगो के प्रति क्रान्त होने पर उसके अर्ध अवशिष्ट रहने पर जबकि द्वापर युग मे संप्रवर्तित हो गया था उस समय में मानव का नारिष्यन्त दम पुत्र था ॥५५॥ ॥५६॥

दमस्य तस्य दायादर तृणविदुरिति स्मृतः ।

त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सवभूव ह ॥५७॥

तस्य कन्या त्विलविला रूपेणाप्रतिमाभवत् ।

पुलस्त्याय स राजपिस्ता कन्या प्रत्यपादयत् ॥५८॥

अपिरैरविलो यस्या विश्रवा समपद्यत ।

तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धनाः ॥५९॥

बृहस्पते शुभा कन्या नाम्ना वै देववर्णिनी ।

पुष्पो त्रकटा वलाका च सुते मात्यवतः स्मृते ॥६०॥

कैकसी मालिनः कन्या तासा वै शृणुत प्रजाः ।

ज्येष्ठ वैश्रवण तस्मात्सुपुत्रे देव वर्णिनो ॥६१॥

कैकसी चाप्यजनयद्रावण राक्षसाधिपम् ।

कु भकर्णं दूर्पनखा धीमन्त च विभीषणम् ॥६२॥

पुष्पोत्कटा ह्यजन यत्पुत्रास्तस्माद्भिजोत्तमा ।

महोदर प्रहस्त च महापाशवै खर तथा ॥६३॥

उस दम का पुत्र तृणविन्दु नाम वाला कहा गया है । तृतीय त्रेतायुग के आरम्भ मे राजा हुआ था ॥५७॥ उसकी कन्या इलाविला थी जो परम सुन्दरी थी कि रूप मे अप्रतिम हुई थी । उस राजपि ने उस अपनी कन्या को पुलस्त्य को दी थी ॥५८॥ जिसमें ऐरविल अर्पि विश्रवा समुत्पन्न हुआ था । उसके पौलस्त्य कुल की बढ़ाने वाली चार पत्नियाँ थी ॥५९॥ उनमे एक तो परम शुभ बृहस्पति की कन्या थी

जिसका नाम देवर्षिणी थी । दो माल्यवान् की कन्याएँ थी जिनके नाम पुष्पोत्कटा और बलाका था ॥६०॥ एक माली की कन्या थी जिसका नाम कैकसी था । अब उनकी प्रजा जो हुई थी उनके विषय में श्रवण करो । देव र्षिणी नाम वाली पत्नी ने सबसे बड़ा पुत्र उस विध्रुवा से वैश्रवण उत्पन्न किया था ॥६१॥ कैकसी नाम वाली विध्रुवा की पत्नी ने राक्षसों के अधिप रावण, कुम्भकर्ण, धीमान्, विभीषण और शूर्पनखा को उत्पन्न किया था ॥६२॥ हे द्विजोत्तमो ! पुष्पोत्कटा ने उस विध्रुवा से महोदर, प्रहस्त, महापाश्र्व और खर ये दो पुत्र उत्पन्न किये थे ॥६३॥

कुंभीनसी तथा कन्यां बलायाः श्रेष्ठतुत प्रजाः ।
 त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः ॥६४॥
 कन्या वै मालिका चापि बलायाः प्रसवः स्मृतः ।
 इत्येते करकर्मणिः पौलस्त्या राक्षसा नव ॥६५॥
 विभीषणीतिशुद्धात्मा धर्मज्ञः परिकीर्तितः ।
 पुलस्त्यस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्याघ्राश्च दंष्ट्रिणः ॥६६॥
 भूताः पिशाचाः सर्पाश्च सूकरा हस्तिनस्तथा ।
 वानराः किनराश्चैव ये च किपुरुषास्तथा ॥६७॥
 अतपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैव स्वतेन्तरे ।
 अत्रेः पत्न्यो दशैवासन् सुन्दर्यश्च पतिव्रताः ॥६८॥
 भद्राश्चस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ।
 भद्राभद्रा च जलदा मन्दा नन्दा तयैव च ॥६९॥
 बलाबला च विप्रेन्द्रा या च गोपाबला स्मृता ।
 तथा तामरसा चैव वरक्रीडा च वै दश ॥७०॥

इन चार पुत्रों के अतिरिक्त कुम्भीनसी नाम की एक कन्या भी पुष्पोत्कटा ने प्रसूत की थी । अब बला की जो सप्तति समुत्पन्न हुई थी उसको सुनो । बला ने त्रिशिरा, दूषण और विद्युज्जिह्व राक्षस और मालिका नाम वाली एक कन्या को प्रसूत किया था । इतने ये नौ

पौलस्त्य प्रयात् पुलस्त्य ऋषि की सन्तान क्रूर कर्म करने वाली थीं ।
॥६४॥६५॥ इन सबमे विभीषण अत्यन्त बुद्ध आत्मा वाला और धर्म
का जाता था । पुलस्त्य के पुत्र मृग, व्याघ्र और सब दृष्टाओं वाले हुए
थे ॥६६॥ भूत, पिशाच, सर्प, शूकर, हाथी, वानर, किन्नर और
किम्पुल्य ये भी सब पुत्र हुए थे ॥६७॥ वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु बिना
सन्तति वाला कहा गया है । अत्रि मुनि की दक्ष पत्नियों थीं किन्तु वे
सब परम सुन्दरी और पतिव्रता थीं ॥६८॥ भद्राश्व के पुताकी गणसरा में
दक्ष पुत्री हुई थी । भद्राभद्रा, जलदा, मन्दा, नन्दा, धलाबला, गोपाबला,
तामरसा और वरक्रीडा ये उनके नाम थे ॥६९॥ ये आग्नेय वंश में
उत्पन्न होने वाली थी । उन सबका स्वामी प्रभाकर था ॥७०॥

आग्नेयवंशप्रभवा स्तासां भर्ता प्रभाकरः ।

स्वर्भानुपिहिते सूर्ये पतितेस्मिन्दिवो महीम् ॥७१॥

तमोऽभिभूते लोकेस्मिन्प्रभा येन प्रवर्तिता ।

स्वस्त्यस्तु हि तवेत्युक्ते पतन्निह दिवाकरः ॥७२॥

ब्रह्मर्षेर्वचनात्तास्य पपात न विभुदिवः ।

ततः प्रभाकरेत्युक्तः प्रभुरत्रिमहर्षिभिः ॥७३॥

भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम् ।

स तामु जनयामास पुनः पुत्रांस्तपोधनः ॥७४॥

स्वस्त्याग्नेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ।

तेषां द्वौ ख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ च महोजसौ ॥७५॥

दत्तो ह्यत्रिवरो ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः ।

यवीयसी स्वसा तेषाममला ब्रह्मवादिनी ॥७६॥

तस्य गोत्रद्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि ।

श्यावश्च प्रत्वसरचं च ववल्गुश्चाथ गह्वरः ॥७७॥

आग्नेयाणां च चत्वारः स्मृताः पक्षा महात्मनाम् ।

काश्यपो नारदश्चैव पर्वतोनुदतस्तथा ॥७८॥

। जिस समय स्वर्भानु ने सूर्य को पिहित कर लिया था तो वह दिव से मही में गिरने को था । इस लोह के ग्रन्थकार से अभिभूत होने पर इसने प्रभा को प्रवर्तित किया था । तेरा कल्याण हो, ऐसे ब्रह्मर्षि के वचन से उस समय गिरता हुआ दिवाकर दिवलोक से भूमि पर नहीं गिरा था । तब से महर्षियों के द्वारा प्रभु अग्नि 'प्रभाकर' ऐसा कहा गया है ॥७१॥७२॥७३॥ भद्रा में परम यशस्वी सोम पुत्र को उत्पन्न किया था । उस तपोधन ने पुनः उनमें पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥७४॥ वे सब वेद के पारगामी ऋषि स्वस्त्या, इस नाम से ख्यात हुए थे । उनमें दो प्रसिद्ध यश वाले और बलिष्ठ एव महान् भोज वाले हुए थे ॥७५॥ उनमें अत्रिवर दत्त ज्येष्ठ था तथा दुर्वासा उसका छोटा भाई था । उनकी छोटी भगिता ब्रह्मवाहिनी भगिनी थी ॥७६॥ उसके दो गोत्रों में चार उत्पन्न हुए थे जो कि इस भूतल में प्रसिद्ध हुए हैं । उनके नाम श्याव, प्रतप्त, ववत्सु और गह्वर थे ॥७७॥ महान् आत्मा वाले आग्नेयों के चार पक्ष बहे गये हैं । काश्यप, नारद, पर्यंत और अनुद्धत ॥७८॥

जज्ञिरे मानसा ह्येते अरुंधत्या निबोधत ।
 नारदस्तु वसिष्ठायास्त्वती प्रत्यपादयत् ॥७९॥
 ऊर्ध्वरेता महातेजा दक्षशापात् नारदः ।
 पुरा देवासुरे युद्धे घोरे वै तारकामये ॥८०॥
 अनावृष्ट्या हते लोके ह्यग्रे लोवेश्वरैः सह ।
 वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजाः ॥८१॥
 अन्नोदकं मूलफलमोपधीश्र प्रवर्तयन् ।
 तानेतास्त्रिवयामास कारुण्यादोपधेन च ॥८२॥
 अरुंधत्यां वसिष्ठस्तु सुतानुत्पादयच्छतम् ।
 ज्यायसोजनयच्छवतेरहृदयंती पराशरम् ॥८३॥
 रक्षसा भक्षिते शक्ती रुधिरेण तु ये तदा ।
 फाली पराशराब्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ॥८४॥

ये ऋषयश्चादि चार ब्रह्मा के मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे । अरुन्धती के समझलो । नारद ने वसिष्ठा में अरुन्धती को प्रतिपादित किया था । दक्ष के शाप से नारद ऊर्ध्वरेता महातेजा हो गये थे । पहिले तारकामय घोर देवासुर सग्राम में अनावृष्टि से हत लोनेश्वरो के साथ लोक के उग्र हो जाने पर परम धीमान् वसिष्ठ ने तपोबल से प्रजा को धारण किया था ॥७६॥८०॥८१॥ अन्न, जल, मूल, फल और ओषधियों का प्रवर्तन करते हुए काश्यप और अश्वि से इन सब को जीवित किया था ॥८२॥ वसिष्ठ ने अरुन्धती में सो पुत्र उत्पन्न किये थे । अश्वि शक्ति से महद्गन्ती ने पराशर को समुत्पन्न किया था ॥८३॥ राक्षस के द्वारा शक्ति के भक्षित करने पर उस समय खरि से काली ने पराशर से कृष्णद्वैपायन प्रभु को जन्म ग्रहण कराया था ॥८४॥

द्वैपायनो ह्यरण्या च शुक्रमुत्पादयत्सुतम् ।
उपमन्यु च पीवर्या विद्वोमे दुरसूनवः ॥८५॥
भूरिश्वा प्रभु शम्भुः कृष्णो गौरस्तु पञ्चमः ।
पत्या कीर्ति मती चैव योगमाता धृतप्रता ॥८६॥
जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सा त्वनुदस्य च ।
देवतः कृष्णश्च गौरश्च श्यामो धूम्रस्तथारुणः ॥८७॥
नीलो यादरिवैव सर्वे चैते पराशराः ।
पराशराणामष्टौ ते वक्ता प्रोक्ता महात्मनाम् ॥८८॥
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वमिन्द्रप्रमितिसम्भवम् ।
वसिष्ठस्य वर्षिजल्यो पृताच्यामुदपद्यत ॥८९॥
त्रिमूर्तियं समारयान् इन्द्रप्रमितिरच्यते ।
पृथोः सुतायाः सभूतो भद्रस्तस्या भवद्वमु ॥९०॥

द्वैपायन मुनि न अरणी में शुक्र मुनि को पुत्र रूप में समुत्पन्न किया था और पीवरी में उपमन्यु को प्रसूत किया था । अथ हा शुक्र के पुत्रों को समझो । शुक्र के पुत्रों के नाम भूरिश्वा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण और पञ्चम गौर ये हैं तथा योगमाता, धृतप्रता कीर्तिमती एवं

बन्धा हुई थी ॥८५॥८६॥ यह ब्रह्मादह्य की माता थी और अनुह की पत्नी हुई थी । श्वेत, कृष्ण, गौर, श्याम, धूम्र, अरुण, नील और वादरिक ये सब पराशर थे । महात्मा पराशरों के आठ पक्ष कहे गये हैं ॥८७॥८८॥ इससे आगे इन्द्र प्रमिति सम्भव के विषय में समझ लेना चाहिए । वसिष्ठ का कपिञ्जल्य घृताची में समुत्पन्न हुआ था ॥८९॥ जो त्रिमूर्ति, इस नाम से समाख्यात था वह इन्द्र प्रमिति कहा जाता है । पृथु की पुत्री मे भद्र उत्पन्न हुआ था उसका भद्र वसु हुआ था ॥९०॥

उपमन्युः सुतस्तस्य बहवो ह्यौपमन्यवः ।

मित्रावरुणयोश्चैव कौण्डिन्या ये विश्रुताः ॥९१॥

एकार्षेयास्तथा चान्ये वासिष्ठा नाम विश्रुताः ।

एते पक्षा वसिष्ठानां रमृता दश महात्मनाम् ॥९२॥

इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा विश्रुता भुवि ।

भर्तारश्च महाभागा एषां वंशाः प्रकीर्तिताः ॥९३॥

त्रिलोकधारणो शक्ता देवर्षिकुलसंभवाः ।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥९४॥

यैस्तु व्याप्तास्त्रयो लोकाः सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥९५॥

उसका पुत्र उपमन्यु हुआ था । ऐसे बहुत से औपमन्यव हैं । मित्रावरुण के जो हैं वे कौण्डिन्य परिश्रुत हुए थे ॥९१॥ तथा अन्य एकार्षेय हैं और वासिष्ठ नाम से विश्रुत हुए थे । महात्मा वसिष्ठों के ये दश पक्ष बहे गये हैं । ये सब इस भूलोक में ब्रह्मा के मानस पुत्र प्रसिद्ध हैं । ये महाभाग सब भर्ता हैं । हमने इनके वंश कीर्तित कर दिये हैं । ॥९२॥९३॥ देव और ऋषियों को कुन में समुत्पन्न होने वाले ये सब त्रिलोकी को धारण करने में समर्थ थे । उनके पुत्र और पौत्र संकड़ो तथा सहस्रो थे ॥९४॥ जिनके द्वारा सूर्य की किरणों के समान तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं ॥९५॥

रवि तथा ययाति वंश वर्णन

त्रिधन्वा देवदेवस्य प्रसादात्तडिनस्तथा ।
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य प्रयत्नतः ॥१॥
 गाणपत्यं दृढ प्राप्तः सर्वदेवनमस्कृतः ।
 आसीन्निधन्वनश्चापि विद्वान्प्रय्यारुणो नृपः ॥२॥
 तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभ्यन्महाबलः ।
 तेन भार्या विदभंस्य दृढता हत्वामितीजसम् ॥३॥
 पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठामप्रापितेष्विह ।
 तेनाधर्मेण सयुक्त राजा प्रय्यारुणोऽयजत् ॥४॥
 पितर सोमवीक्ष्यक्तः क गच्छामीति वं द्विजाः ।
 पिता त्वेनमथोवाच इवपाकैः सह वर्तय ॥५॥
 इत्युक्तः स विचक्राम नगराद्वचनात् पितुः ।
 स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसयान्तिके ॥६॥
 पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वन ययौ ।
 सवलोकेषु विख्यातस्त्रिशकुरिति वीर्यवान् ॥७॥

इस अध्याय में रवि के वंश में होने वाले त्रिधन्वादि नृप तथा ययाति के पर्यन्त सोम के वंश वाले नृपों का वर्णन किया गया है । सूत जी ने कहा—देवों के भी देव तण्डी के प्रसाद से त्रिधन्वा ने एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों का फल प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करके समस्त देवों के द्वारा नमस्कृत होता हुआ गाणपत्य परम दृढ पद को प्राप्त हो गया था । त्रिधन्वा के अति विद्वान् प्रय्यारुण नृप हुआ था ॥१॥२॥ उसका पुत्र सत्यव्रत नाम वाला महान् बलवान् हुआ था । उसने (सत्यव्रत ने) अभितीजस नाम वाले विदर्भ देश का हनन करके उसकी भार्या को पाणिग्रहण के मन्त्रों के समाप्त होने पर हरण कर लिया था । इस भारत राष्ट्र में इस तरह के अधर्म से युक्त उसकी राजा प्रय्यारुण उसने पिता ने

त्याग दिया था ॥३॥४॥ हे द्विज गण ! पिता के द्वारा त्यागे हुए उसने पिता से कहा था कि मैं कहाँ जाऊँ । उसके पिता ने उससे कहा था कि श्रपाको (मेहतरो) के साथ रहो या व्यवहार रखो ॥५॥ इस प्रकार से पिता के द्वारा कहा गया वह धीमान् सत्यव्रत पिता के वचन से नगर से निकल गया था और श्रपाको के निवास स्थान के समीप में पहुँच गया था ॥६॥ पिता के द्वारा त्यक्त वह वीर वहाँ पर ही बस गया था और इसका पिता वन को चला गया था । वह समस्त लोको में वीर्यवान् त्रिशङ्क, इस नाम से विख्यात हो गया था ॥७॥

वसिष्ठकोपात्पुण्यात्मा राजा सत्यव्रतः पुरा ।
 विश्वामित्रो महातेजा वरं दत्त्वा त्रिशङ्कवे ॥८॥
 राज्येऽभिषिच्य तं पित्र्ये याजयामास तं मुनिः ।
 मिपतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ॥९॥
 तशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयद्विभुः ।
 तस्य सत्यव्रता नाम भयं कैकयवंशजा ॥१०॥
 कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ।
 हरिश्चन्द्रस्य च सुतो रोहितो नाम वीर्यवान् ॥११॥
 हरितो रोहितस्याथ धुन्धुर्हारित उच्यते ।
 विजयश्च सुतेजाश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः ॥१२॥
 जेता क्षत्रस्य सर्वत्र विजयस्तेन स स्मृतः ।
 रुचकस्तस्य तनयो राजा परमधार्मिकः ॥१३॥
 रुचकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद्वाहुश्च जज्ञिवान् ।
 सगरस्तस्य पुत्रोभूद्राजा परम धार्मिकः ॥१४॥

जो पहिले पुण्यात्मा सत्यव्रत राजा था वह वसिष्ठ के कोप से महातेजस्वी विश्वामित्र हुए और उन्होने उस त्रिशङ्क को वरदान देकर मुनि ने उसका पिता राज्यासन पर अभिषेक करके उससे यजन कराया था । देवताओं और वसिष्ठ के स्वीकृत न बनने पर विभु कौशिक ने उस समय में इसी शरीर के सहित उसको स्वर्ग में आरोपित कर दिया

पा । उसकी भार्या कंकष वंश मे उत्पन्न होने वाली सत्य प्रता नाम वाली थी ॥८॥९॥१०॥ उसने निष्पाय हरिश्चन्द्र नाम वाले कुमार को उत्पन्न किया था । हरिश्चन्द्र का पुत्र वीर्यमान् रोहित नाम वाला प्रसूत हुआ था ॥११॥ रोहित के हरित नामधारी पुत्र हुआ था जो धुन्धुहारी, इस नाम से कहा जाता है । विजय और सुतेजा ये दो धुन्धु के पुत्र हुए थे ॥१२॥ वह समस्त क्षत्रियो का जीतने वाला था इसलिये उसका सर्वत्र विजय कहा गया है । उसकी तनय रुचक परम धार्मिक राजा हुआ था ॥१३॥ रुचक के पुत्र वृष हुआ था और उससे बाहु समुत्पन्न हुआ था । इगवा पुत्र सगर नाम वाला हुआ था जो कि अत्यन्त धार्मिक हुआ था ॥१४॥

द्व भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा ।
ताम्यामाराधितः पूर्वमोर्वोग्निः पुत्रकाम्यया ॥१५॥
ओर्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्ययेष्टं वरमुत्तमम् ।
एका पट्टिसहस्राणि सुतमेकं परा तथा ॥१६॥
अगृह्णद्बलवर्तार प्रभागृह्णात्सुतान्बहून् ।
एक भानुमतिः पुत्र मगृह्णादममंजसम् ॥१७॥
तत पट्टिसहस्राणि सुपुत्रे सा तु वै प्रभा ।
रानतः पृथिवी दग्धा विष्णुहृकारमार्गसः ॥१८॥
असमजस्य तनयः सोऽनुमाप्तम विश्रुतः ।
तस्य पुत्री दितपिस्तु दितीपात् भगीरथः ॥१९॥
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वाऽन्यतरिता ।
भगीरथ सुतश्चापि श्रुतो नाम यभूव ह ॥२०॥
नाभागस्तस्य दायादो भवभवनः प्रतापवान् ।
अचरीषः सतस्तस्य सिपदीपस्ततोभवत् ॥२१॥

पथेष्ट उत्तम वरदान दिया था । उनमें से एक ने साठ हजार पुत्र प्राप्त किये थे और दूसरी ने वंश के करने वाला पुत्र प्राप्त किया था । प्रभा ने बहुत से पुत्रों की प्राप्ति की थी । भानुमती ने एक असमञ्जस पुत्र को ग्रहण किया था ॥१६॥१७॥ इसके अनन्तर प्रभा ने साठ सहस्र पुत्रों का प्रसव किया था । वे सब साठ सहस्र पृथ्वी का स्नान करते हुए विष्णु के हुक्मरूपी वाणों से दग्ध हो गये थे ॥१८॥ असमञ्जस के पुत्र का नाम अशुमान्, इस शुभ नाम से विश्रुत हुआ था । उनका पुत्र दिलीप हुआ था और दिलीप से भगीरथ उत्पन्न हुआ था ॥१९॥ जिस भगीरथ ने उग्र तपस्या करके भागीरथी गङ्गा का अवतारण किया था । भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम वाला हुआ था । ॥२०॥ इसके पुत्र का नाम नाभाग था जो भगवान् शिव का परम-भक्त एवं महाद् प्रताप वाला हुआ था । उसका पुत्र अम्बरीष राजा हुआ था । उसके पश्चात् सिन्धुद्वीप हुआ था ॥२१॥

नाभागेनावरीपेण भुजाभ्यां परिपालिता ।

बभूव वसुधात्ययं तापत्रयविवर्जिता ॥२२॥

अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ।

पुत्रीऽयुतायुषी धीमानृतुपर्णो महायशः ॥२३॥

दिग्माक्षदृढयज्ञो वै राजा नलसखो बली ।

नली द्वावेव विख्याती पुराणेषु दृढव्रती ॥२४॥

वीरसेनसुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः ।

ऋतुपर्णस्य पुत्रीभूत्सार्वभौमः प्रजेश्वरः ॥२५॥

सुदासस्तस्य तनयो राजा तिवन्द्रसमोभवत् ।

सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥२६॥

ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसंश्च सः ।

वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ॥२७॥

अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवर्धनम् ।

अश्मकस्योत्तरायां तु मूलकस्तु सुतोभवत् ॥२८॥

नाभाग्र और अम्बरीष के द्वारा भुजाग्रो से परिपालित भूमि
तापत्रय से अत्यन्त रहित हो गई थी ॥२२॥ सिन्धु द्वीप का पुत्र भयु-
तायु नामक हुआ था जो बहुत ही पराक्रमी था । भयुतायु का पुत्र परम
युद्धिमान् और महान् यश वाला ऋणुपर्ण हुआ था ॥२३॥ दिव्याक्ष हृदयज्ञ
राजा बलवान् और नल का सखा था । पुराणो मे दृढव्रत वाले दो ही
नल विख्यात हैं ॥२४॥ प्रण्य वीरसेन का पुत्र है जो कि इक्ष्वाकु के कुल
मे उद्भव प्राप्त करने वाला है । ऋणुवर्ण का पुत्र सार्व भौम (चक्रवर्ती)
प्रजेश्वर हुआ था ॥२५॥ सुदास उसका पुत्र था जो राजा इन्द्र के
समान ही हुआ था । सुदान का पुत्र सौदास नाम वाला राजा हुआ था
॥२६॥ वह नाम से तो मित्र सह था किन्तु कल्माषपाद ख्यात हुआ था ।
कल्माषपादक के क्षेत्र मे महान् तेजस्वी वसिष्ठ हुआ था ॥२७॥ उसने
इक्ष्वाकु के कुल के बढ़ाने वाले अश्वमेध को जन्म ग्रहण कराया था ।
अश्वमेध के उत्तरा मे मूलक नाम धारी पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२८॥

स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतो वने ।
विभर्ति प्राणमिच्छन्वं नारीकवचमुत्तमम् ॥२९॥
मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः सुनः ।
तस्माच्छतरथाज्ज्ञे राजा त्विलविलो वली ॥३०॥
आसीत्त्वैलविलिः श्रीमान्वृद्धशर्मा प्रतापवान् ।
पुत्रो विश्वसहस्तस्य पितृकन्या व्यजीजनत् ॥३१॥
दिलीपस्तस्य पुत्रोभूत्खट्वाग इति विश्रुतः ।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥३२॥
त्रयोऽनयस्त्रयो लोका बुद्ध्या सत्येन वं जिताः ।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ॥३३॥
अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्ज्ञे च वीर्यवान् ।
राजा दशरथस्तस्माच्छ्रीमानिक्ष्वाकुवशट् ॥३४॥
रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।
भरतो सप्तमण्डचं व दानुघ्नश्च महायतः ॥३५॥

यथेष्ट उत्तम वरदान दिया था । उनमें से एक ने साठ हजार पुत्र प्राप्त किये थे और दूसरी ने वंश के करने वाला पुत्र प्राप्त किया था । प्रभा ने बहुत से पुत्रों की प्राप्ति की थी । भानुमती ने एक असमञ्जस पुत्र को ग्रहण किया था ॥१६॥१७॥ इसके अनन्तर प्रभा ने साठ सहस्र पुत्रों का प्रसव किया था । वे सब साठ सहस्र पृथ्वी का खनन करते हुए विष्णु के हुक्मारे लगी बाणों से दण्ड हो गये थे ॥१८॥ असमञ्जस के पुत्र का नाम अशुमान्, इस शुभ नाम से विश्रुत हुआ था । उनका पुत्र दिलीप हुआ था और दिलीप से भगीरथ उत्पन्न हुआ था ॥१९॥ जिस भगीरथ ने उग्र तपस्या करके भागीरथी गङ्गा का अवतारण किया था । भगीरथ का पुत्र ध्रुत नाम वाला हुआ था । ॥२०॥ इसके पुत्र का नाम नाभाग था जो भगवान् शिव का परम-भक्त एवं महान् प्रताप वाला हुआ था । उसका पुत्र अम्बरीष राजा हुआ था । उसके पश्चात् सिन्धुद्वीप हुआ था ॥२१॥

नाभागेनावरीपेण भुजाम्बा परिपालिता ।
 बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥२२॥
 अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ।
 पुत्रोऽयुतायुषो धीमानृतुपर्णो महायशः ॥२३॥
 दिव्याक्षः हृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ।
 नलो द्वावेव विख्यातो पुराणेषु दृढव्रती ॥२४॥
 वीरसेनसुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः ।
 ऋतुपर्णस्य पुत्रोभूत्सावंभौमः प्रजेश्वरः ॥२५॥
 सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसमोभवत् ।
 सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥२६॥
 ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसः च सः ।
 वसिष्ठस्तु महातेजा क्षेत्रे कल्माषपादके ॥२७॥
 अश्मक जनयामास इक्ष्वाकुकुलवर्धनम् ।
 अश्मकस्योत्तराया तु मूलकस्तु सुतोभवत् ॥२८॥

नाभाग और अम्बरीष के द्वारा भुजाघो से परिपालित भूमि
 तापत्रय से अत्यन्त रहित हो गई थी ॥२२॥ सिन्धु दीप का पुत्र अयु-
 तायु नामक हुआ था जो बहुत ही पराक्रमी था । अयुतायु का पुत्र परम
 बुद्धिमान् और महान् यश वाला ऋतुपर्ण हुआ था ॥२३॥ दिव्याक्ष हृदयज्ञ
 राजा बलवान् और नल का सखा था । पुराणो मे दृढ व्रत वाले दो ही
 नल विख्यात हैं ॥२४॥ अन्य वीरसेन का पुत्र है जो कि इक्ष्वाकु के कुल
 मे उद्भव प्राप्त करने वाला है । ऋतुवर्ण का पुत्र सार्व भीम (चक्रवर्ती)
 प्रजेश्वर हुआ था ॥२५॥ सुदास उसका पुत्र था जो राजा इन्द्र के
 समान ही हुआ था । सुदास का पुत्र सौदास नाम वाला राजा हुआ था
 ॥२६॥ वह नाम से तो मित्र सह था किन्तु कल्माषपाद ख्यात हुआ था ।
 कल्माषपादक के क्षेत्र में महान् तेजस्वी बसिष्ठ हुआ था ॥२७॥ उसने
 इक्ष्वाकु के कुल के बढ़ाने वाले अश्वक को जन्म ग्रहण कराया था ।
 अश्वक के उत्तरा मे मूलक नाम धारी पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२८॥

स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतो बने ।

विभर्ति त्राणमिच्छन्वे नारीकवचमुत्तमम् ॥२९॥

मूलकस्यार्प घर्मात्मा राजा शतरथः सुतः ।

तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा त्विलविलो बली ॥३०॥

आसीत्स्वलविलिः श्रीमान्वृद्धशर्मा प्रतापवान् ।

पुत्रो विश्वसहस्तस्य पितृकन्या व्यजीजनत् ॥३१॥

दिलीपस्तस्य पुत्रोभूत्खट्वांग इति विश्रुतः ।

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥३२॥

त्रयोऽग्नयस्त्रयो लोका बुद्ध्या सत्येन वै जिताः ।

दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ॥३३॥

अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे च वीर्यवान् ।

राजा दशरथस्तस्माच्छ्रीमानिक्ष्वाकुवंशकृत् ॥३४॥

रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ॥३५॥

यह राम के भय से तीनों से परिवृत्त होना हुआ वन में अपनी रक्षा को चाहता हुआ उत्तम नारी के वचन को धारण करता था ॥२६॥ मूलक का पुत्र परम धार्मिक राजा दशरथ और उस दशरथ से बलवान् इलविल राजा समुत्पन्न हुआ था ॥३०॥ इलविल का पुत्र ऐनविलि श्रीमान् प्रताप वाला वृद्ध क्षमा था । उसका पुत्र विश्वमह था जिसको पितृ कन्या ने जन्म दिया था ॥३१॥ उसका पुत्र दिलीप हुआ जो सद्वाङ्ग इस नाम से विद्युत् हुआ था । जिसने स्वर्ग से यहाँ मात्र एक मुहूर्त तक जीवित प्राप्त करके तीन लोभ, तीन घनि बुद्धि और सत्य से जीत लिये थे । इसका पुत्र दीर्घबाहु हुआ और उससे रघु उत्पन्न हुआ था ॥३२॥३३॥ महाराज रघु का पुत्र भरत हुआ था और उस भरत से वीर्य वाला राजा दशरथ उत्पन्न हुए जो श्री से सम्पन्न और महाराज इक्ष्वाकु के वंश के चलाने वाले थे ॥३४॥ महाराज दशरथ के प्रतिशय वीर, परम धर्मज्ञ तथा लोक में प्रसिद्ध श्रीराम तथा मठान् बलवान् भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न पुत्र हुए थे ॥३५॥

तेषां श्रेष्ठो महातेजा रामः परमवीर्यवान् ।

रावणं समरे हत्वा यज्ञंरिष्ट्वा च धर्मवित् ॥३६॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यं चकार सः ।

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥३७॥

लवश्च सुमहाभागः सत्यवानभवत्सुधीः ।

अतिथिस्तु कुशाञ्जने निपद्यस्तस्य चात्मजः ॥३८॥

नलस्तु निषघाञ्जातो नभस्तस्मादजायत ।

नभसः पुण्डरीकाक्ष्यः क्षेमघन्वा ततः स्मृतः ॥३९॥

तस्य पुत्रोभवद्वीरो देवानोक्तः प्रतापवान् ।

अहीनरः सुतस्तस्य सहस्राश्वस्ततः परः ॥४०॥

धुमश्चन्द्रावलोकश्च तारापीडस्ततोभवत् ।

तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुचन्द्रस्ततोभवत् ॥४१॥

श्रुतायुरभवत्तस्माद्वृहद्वल इति स्मृतः ।

भारते यो महातेजाः सौभद्रेण निपातितः ॥४२॥

उन सब में महान् तेजस्वी राम परम पराक्रमी थे । उस धर्म-
प्रेता श्री राम ने समराङ्गण में रावण राक्षस का घब करके तथा
यज्ञों के द्वारा यजन करके दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था ।
श्री राम ने एक पुत्र को जन्म दिया था जो कुश, इस नाम से प्रसिद्ध
हुआ था और सब सुन्दर महान् भाग्य वाला, सुधी और सत्य वाला
था । कुश से अतिथि ने जन्म प्राप्त किया था और उसका पुत्र निषध
हुआ था ॥३६॥३७॥३८॥ निषध से नल पैदा हुआ था और उस नल
से नम उत्पन्न हुआ था । नम से पुण्डरीकाक्ष की उत्पत्ति हुई थी और
फिर इसका पुत्र शेषश्यामा हुआ था ॥३९॥ उसका परम वीर एवं
प्रतापी देवानीक पुत्र हुआ था । देवानीक का महीनर पुत्र और इसका
पुत्र फिर फिर सहस्राक्ष पैदा हुआ था ॥४०॥ फिर शुभ, चन्द्राधलोक
और तारावीर हुए थे । उसका पुत्र चन्द्रगिरि और फिर भानुचन्द्र हुआ
था ॥४१॥ उससे श्रुतायु हुआ जो वृहद्वन कहा जाता है । जो महा-
तेजस्वी भारत में सौभद्र के द्वारा मार गिराया गया था ॥४२॥

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः ।

धंदो प्रधाना एतस्मिन्प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥४३॥

सर्वे पानुपते ज्ञानमधीत्य परमेश्वरम् ।

समभ्यर्च्य यथाज्ञानमिष्टा यज्ञं यथाविधि ॥४४॥

दिवं गता महात्मानः केचिन्मुक्तात्मयोगिनः ।

नृगो ब्राह्मणशापेन कूकलासखमागतः ॥४५॥

धृष्टश्च धृष्टकेतुश्च यमबालश्च वीर्यवान् ।

रणधृष्टश्च ते पुत्राख्यः परमधार्मिकः ॥४६॥

आनर्तो नाम शरतिः मुकुन्दा नाम दारिका ।

धानतंस्यामवत् पुत्रो रोचमानः प्रतापवान् ॥४७॥

रोचमानस्य रेवोभूद्रैवाद्रैवत एव च ।
 ककुद्घो चापरो ज्येष्ठपुत्रः पुत्रशतस्य तु ॥४८॥
 रेवती यस्य सा कन्या पत्नी रामस्य विश्रुता ।
 नरिष्यन्तस्य पुत्रोभूजितात्मा तु महाबली ॥४९॥

ये इक्ष्वाकु महाराज के दायाद राजा प्रायः कहे गये हैं । इस वंश में जो प्रधान हुए हैं वे प्रधानता से कहे गये हैं ॥४३॥ ये सभी नृप पाशुपति के ज्ञान का अध्ययन करके परमेश्वर का अर्चन कर यथा ज्ञान विधि पूर्वक यज्ञों के द्वारा यजन करके दिव लोक को चले गये थे । इनमें कुछ महात्मा मुक्तात्म योगी थे । राजा नृग ने ब्राह्मण के क्षाप से कृकलास का देह प्राप्त किया था ॥४४॥४५॥ धृष्ट, धृष्टकेतु, दीर्घवान् यम बाल और रणधृष्ट ये पुत्र हुए थे । उन में तीन परम धार्मिक थे ॥४६॥ राजा शर्याति की सुकन्या नाम वाली पुत्री और अनर्त्त नाम वाला पुत्र था । अनर्त्त का रोचमान प्रतापी पुत्र हुआ था ॥४७॥ रोचमान का रेख हुआ और रेव से रैवत हुआ । दूसरा ती पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र ककुद्घो था ॥४८॥ रेवती जिसकी एक कन्या थी जो बलराम की परम विश्रुत पत्नी थी । नरिष्यन्त का महान् बलवान् जितात्मा पुत्र हुआ था ॥४९॥

नामागादंवरीषस्तु विष्णुभक्तः प्रतापवान् ।
 ऋतस्तस्य सुतः श्रीमान्सर्वधर्मविदांबरः ॥५०॥
 कृतस्तस्य सुधर्माभूत्पृषितो नाम विश्रुतः ।
 करुषस्य तु कारुषाः सर्वे प्रख्यातकीर्तयः ॥५१॥
 पृषितो हिंसयित्वा गां गुरोः प्राप सुकल्मषम् ।
 क्षापान्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवन स्योति विश्रुतः ॥५२॥
 दिष्टपुत्रस्तु नाभागस्तस्मादपि भलंदनः ।
 भलंदनस्य विक्रान्तो राजासोदजवाहनः ॥५३॥
 एते समासतः प्रोक्ता मनुपुत्रा महाभुजाः ।
 इक्ष्वाकोः पुत्रपौत्राद्या ऐलस्याथ वदामि वः ॥५४॥

ऐलः पुरुरवा नाम रुद्रभक्तः प्रतापवान् ।

चक्रे त्वक्कण्टकं राज्यं देशे पुण्यतमे द्विजाः ॥५५॥

उत्तरे यमुनातीरे प्रयागे मुनिसेविते ।

प्रतिष्ठानाधिपः श्रीमान्प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठितः ॥५६॥

नाभाग से अम्बरीष हुआ जो बड़ा प्रताप वाला विष्णु का परम भक्त था । उसका आत्मज मृत था श्री से सम्पन्न और समस्त धर्म के वेत्ताओं में अग्नि श्रेष्ठ था ॥५०॥ उसका कृत हुआ और सुधर्म से विश्रुत पृथित हुआ था । कर्ष के कारण हुए । ये सब प्रख्यात कीर्ति वाले थे ॥५१॥ पृथित ने गौ का हनन करके गुरु से सुवल्गु प्राप्त किया था और अश्विन के क्षाप से युद्धत्व को प्राप्त हो गया था—यह विश्रुत है ॥५२॥ दिष्ट का पुत्र नाभाय हुआ और उस नाभाग से भलन्दन हुआ तथा भलन्दन का अज दाहन राजा हुआ था ॥५३॥ ये सब सद्योप से महान् भुजाओं वाले मनु के पुत्र बड़े गये हैं । ये इन्द्राकु के पुत्र और पौत्र आदि थे । इसके अनन्तर आप लोगों के ऐल के सब अतलाता हू ॥५४॥ मून जी ने कहा—ऐल पुरुरवा नाम वाला बड़ा ही प्रताप युक्त रुद्र का भक्त था । हे द्विजगण ! उसने इस परम पुण्यतम देश में त्वक्कण्टक राज्य का शासन किया था ॥५५॥ मुनिगण के द्वारा सेवित प्रयाग में यमुना के तट पर उत्तर दिशा में प्रतिष्ठान में प्रतिष्ठित श्री सम्पन्न प्रतिष्ठानों का अधिप था ॥५६॥

तस्य पुत्राः सप्त भवन्सर्वे वितततेजसः ।

गधर्वलोकादिदिता भवभक्ता महावलाः ॥५७॥

आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्चैव वीर्यवान् ।

श्रुतायुश्च सतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः ॥५८॥

आयुषस्तनया वीराः पर्ववासन्महोजसः ।

स्वर्भानुतनयायां ते प्रभाया जज्ञिरे नृपाः ॥५९॥

नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकाविश्रुतः ।

नहुषस्य तु दायादाः पटिन्द्रोपमतेजसः ॥६०॥

उत्पन्नाः 'पितृकन्यायां विरजायां महोजसः ।
 यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पंचमोऽन्धकः ॥६१॥
 विजातिश्चेति षडिमे सर्वे प्रस्थातकीर्तयः ।
 यतिर्ज्येष्ठश्च तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः ॥६२॥
 ज्येष्ठस्तु यतिर्मोक्षार्थी ब्रह्मभूतोऽभवत्प्रभुः ।
 तेषां ययातिः पञ्चाना महाबलपराक्रमः ॥६३॥
 देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः ।
 शर्मिष्ठाभासुरी चैव तनयां वृषपर्वणः ॥६४॥

उसके सात पुत्र हुए थे जो कि सभी विस्तृत तेज वाले थे । ये सब गन्धर्व लोक में प्रसिद्ध, महान् बलशाली और शिव के भक्त हुए थे ॥६७॥ आयु, मायु, अमायु, विश्वायु, वीर्यवान्, श्रुतायु और धनायु ये परम दिव्य उर्वशी के सुत थे ॥६८॥ आयु के पुत्र अत्यन्त वीर और महान् श्रोज वाले पाच ही हुए थे । वे नृप स्वर्मानु की पुत्री प्रभा में उत्पन्न हुए थे ॥६९॥ उन में नहुष प्रथम था जो बड़ा ही धर्म का ज्ञाता और लोक में परम प्रसिद्ध हुआ है । राजा नहुष के इन्द्र के तुल्य तेजस्वी छै पुन हुए थे ॥७०॥ ये महान् श्रोज वाले पितृ कन्या विरजा में समुत्पन्न हुए थे । इन छैप्री के नाम यति, ययाति, संयाति, आयाति, पाँचवाँ अन्धक और विजाति थे । ये सभी छै बड़े ही प्रस्थात कीर्ति वाले हुए हैं । इन सब में यति सबसे बड़ा था और उससे छोटा ययाति था ॥६१॥६२॥ ज्येष्ठ जो यति नामधारी पुत्र था वह मोक्ष का इच्छुक ब्रह्म भूत हो गया था । उन शेष पाँचों में ययाति महान् बलवान् तथा पराक्रमी था ॥६३॥ इस ययाति उशना की पुत्री देवयानी को भार्या के रूप में प्राप्त किया था । तथा वृष पर्व की पुत्री आसुरी शर्मिष्ठा भी इसकी पत्नी थी ॥६४॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजा यत ।
 तावुभौ शुभकर्माणी स्तुतो विद्याविशारदौ ॥६५॥

द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा चापंपर्वणी ।
यतातये रथं तस्मै ददौ शुक्रः प्रतापवान् ॥६६॥
तोषितस्तेन विप्रेन्द्रः प्रीतः परमभास्वरम् ।
सुसंगं कांचनं दिव्यमक्षये च महेषुधौ ॥६७॥
युवत मनोजवैरश्वर्येन कन्या समुद्रहन् ।
स तेन रथमुख्येन पण्मासेनाजयन्महीम् ॥६८॥
ययातियुधि दुर्धर्षो देवदानवमानुषः ।
भवभवतस्तु पुण्यात्मा धर्मं निष्ठः समञ्जसः ॥६९॥
यज्ञयाजी जितक्रोधः सर्वभूतानुकंपनः ।
कौरवाणां य सर्वेषां स भवद्रथ उत्तमः ॥७०॥

देवयानी ने यदु भीरु सुवंसु को समुद्राग्न किया था । ये दोनों
महत ही शुभ कर्म करने वाले, परम स्तुत एवं विद्या के विस्तारद थे
॥६५॥ वृष पर्व की पुत्री शर्मिष्ठा ने द्रुह्य, चानु और पूरु को जन्म
ग्रहण कराया था । परम प्रतापी शुक्र ने ययाति को रथ प्रदान किया
था ॥६६॥ विप्रेन्द्र उत्तम परम प्रतापी एवं अत्यन्त सन्तुष्ट था । यह रथ
महत ही भास्वर (दीप्ति युक्त), सुन्दरता पूर्वक निर्मित, दिव्य एवं
सुगुण भव था । मन के सुख वेग वाले अश्वों से युक्त था । प्रताप
महेषुधी ने जिस रथ के साथ कन्या का समुद्राह किया था उग मुख्य
रथ से उत्तम एवं कामो में ही समग्र भूमि को जीत लिया था ॥६७॥६८॥
राजा ययाति युद्ध स्थल में देव भीरु दानवों के तथा मानवों के द्वारा
दुर्धन था । यह शिव का परम भक्त, पुण्यात्मा, धर्म में निष्ठा रहने
वाला, समञ्जस (समृद्धि) था ॥६९॥ यह राजा ययाति यज्ञों के
यज्ञन करने वाला, क्रोध को जीत देने वाला और समस्त प्राणी
मान पर दया करने वाला था । मनस्त औरों में वह उत्तम भवद्रथ
हूया ॥७०॥

यापन्नरेन्द्रप्रवरः भीरवी जनमेजयः ।

पूरोयंतस्य राजन्पु गज पारीतितस्य तु ॥७१॥

जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः ।
 गर्गस्य हि सुत बाल स राजा जनमेजयः ॥७२॥
 अक्रूर हिंसयामास ब्रह्माहृत्यामवाप स ।
 स लोहगधी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ॥७३॥
 पौरजानपदस्त्यक्तो न लेभे क्षमं कर्हिचित् ।
 ततः स दुःखसतप्तो न लेभे सविद वर्वाचित् ॥७४॥
 जगाम शौनकमृषिं शरण्य व्यथितस्तदा ।
 इन्द्रेतिर्नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधीः ॥७५॥
 याजयामास चेद्रेतिस्त नृप जनमेजयम् ।
 अश्वमेधेन राजान पावनार्थं द्विजोत्तमाः ॥७६॥
 स लोहगधान्निर्मुक्त एतसा च महायशाः ।
 यज्ञस्यावभृथे मध्ये यातो दिव्यो रथ शुभः ॥७७॥

राजा पुरु के वंश का परीक्षित राजा का पुत्र जनमेजय राजा
 था, जोकि राजाओं में परम श्रेष्ठ कौरव नृप हुआ है, वह रथ धीमान्
 गर्ग के शाप से नाश को प्राप्त हो गया था । शाप देने का कारण यह
 था कि उस राजा जनमेजय ने गर्ग के बालक पुत्र अक्रूर को मारा
 था और इस हनन के कारण उसे ब्रह्मा हत्या लग गई थी । वह रथिर
 की गन्ध वाला राजर्षि उधर-इधर सर्वत्र दौड़ता-भागता रहा था
 ॥७२॥७३॥७४॥ समस्त पुरवासी और देशवासी लोगो ने उस राजा
 का त्याग कर साथ देना छोड़ दिया था और इस तरह से सर्वव्यक्त होते
 हुये उसने कहीं भी सुख, शान्ति प्राप्त नहीं की थी । इसके अनन्तर वह
 इस दुःख से बहुत ही अधिक सतप्त होते हुये घूमता रहा और किसी भी
 स्थान पर भली प्रकार का कर्तव्य ज्ञान प्राप्त न हो सका था ॥७४॥ तब
 व्यथा से युक्त वह शरणागत वत्सल शौनक ऋषि के समीप में पहुँचा था
 वह उदार बुद्धि वाला मुनि इन्द्रेति इस शुभ नाम से विख्यात था ॥७५॥
 उस इन्द्रेति ऋषि ने उस जनमेजय राजा से यज्ञ का यजन कराया था । हे
 द्विजश्रेष्ठो ! उस राजा के पावन करने के लिये अश्वमेध यज्ञ का यजन

बराया था ॥७६॥ उससे बह राजा महावृ पक्ष बाला उत्त रुधिर की
गन्ध से फुटकारा वा गया था घोर ब्रह्म हत्या के पाप से भी विमुक्त हो
गया था । उस यज्ञ के स्रवभृष के मध्य में वह शुभ एव दिव्य रय दिव-
न्तोष की चला गया था ॥७७॥

तस्माद्वंशात्परिघ्नष्टो वसोश्चेदिपतेः पुनः ।
दत्तः क्षमेण तुष्टेन लेभे तस्माद्वृहद्वयः ॥७८॥
ततो हत्वा जरासथ भीमस्त रयमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या वीरवनदनः ॥७९॥
अभ्यर्पिचत्पुहं पुत्रं गयातिर्नाद्विपः प्रभुः ।
वृत्तोपवारस्तेनैव पुरुणा द्विजसत्तामाः ॥८०॥
अभिषेयतु कर्म च नृप पुहं पुत्र वनीयसम् ।
ग्राह्याणाममुता वरुणा इद वचनमश्रुवन् ॥८१॥
वयं शुभस्य नम्रार देवयान्याः सुत प्रभो ।
ज्येष्ठं मदुमतिप्रम्य वनीयानाज्यमर्हति ॥८२॥
एते सवोधयामस्त्वा धर्मं च अनुपालय ॥८३॥

ही है क्योंकि वह सबसे ज्येष्ठ है ॥८२॥ ये सब हम आपको समझाते हैं कि आप धर्म का अनुपालन करें ॥८३॥



ययाति चरित्र वर्णन

ब्राह्मणाप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः ।
 ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथंचन ॥१॥
 मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालित ।
 प्रतिकूलमतिश्चैव न स पुत्रः सता मतः ॥२॥
 मातापित्रोर्वचनकृत्सद्भिः पुत्रः प्रशस्यते ।
 स पुत्रः पुत्रवद्यस्तु वर्तते मातृपितृषु ॥३॥
 यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुवंसुनापि च ।
 द्रुह्येन चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥४॥
 पुष्ट्या च कृत वाक्यं मानितश्च विशेषतः ।
 कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम ॥५॥
 शुक्रेण मे समादिष्टा देवयान्याः कृते जरा ।
 प्रार्थितेन पुनस्तेन जरा संचारिणी कृता ॥६॥
 शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्दयम् ।
 पुत्रो यस्त्वानुवर्तत स ते राज्यघरस्त्विति ॥७॥

इस अध्याय में राजा ययाति का परम पवित्र चरित्र तथा सब बोध कराने वाली भाषा वा वर्णन किया जाता है । ब्राह्मणों के कहने पर ययाति ने कहा—हे ब्राह्मण प्रमुख वर्णों वा नौ ! आप मेरी बात कृपा करके श्रवण करें । मुझे अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को किसी भी प्रकार से राज्यासन नहीं देना है ॥१॥ मेरे ज्येष्ठ पुत्र होते हुए भी यदु ने मेरे आदेश का पालन नहीं किया था । जो पिता के प्रतिभूत मति वाला पुत्र होता है वह सत्पुरुषों के द्वारा कभी पुत्र नहीं माना गया है ॥२॥

म ता-पिता के बचनो के प्रतिपालन पूर्णतया करने पर ही सत्पुरुषो के द्वारा पुत्र की प्रशंसा की जाती है । वही वास्तव मे पुत्र है जो अपने माता पिता के साथ पुत्र के तुल्य व्यवहार किया करता है ॥३॥ यदु ने मेरी श्रवज्ञा की थी और उसी भाँति तुवंसु ने भी मेरे बचनो का अपमान कर दिया था । द्रुह्य तथा चानु ने भी बहुत ही अधिक मेरे विषय मे अवमानना की थी ॥४॥ केवल एक पुरु ने ही मेरे वाक्य का पालन किया था और विशेष रूप से मेरा सम्मान किया है । मेरा यह सबसे छोटा पुत्र है जिसने मेरी वृद्धता को अपने ऊपर लेना स्वीकार करके धारण किया था ॥५॥ शुक्र ने देवयानि के लिए मुझे जरावस्था प्राप्त होने की आज्ञा दी थी । जब मैंने पुनः प्रार्थना उनसे की थी तो उनने उस जरा को सञ्चार कर जाने वाली बनादी थी ॥६॥ शुक्र ने जो वाक्य और उक्तना नामधारी हैं, स्वयं ही मुझे वरदान दिया था कि जो भी पुत्र तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करे वही तुम्हारे राज्य का अधिकारी होगा ॥७॥

भवतोऽप्यनुजानतु पूरु राज्येऽभिपिच्यते ।
यः पुत्रो गुणसपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ॥८॥
सर्वमर्हति कल्याण वनीया नपि स प्रभुः ।
अर्हः पूरुरिदं राज्यं यः सुतो वाक्यकृत्तव ॥९॥
वरदानेन शुक्रस्य न क्षम्य कर्तुं मन्यथा ।
एव जान पदंस्तुष्टेरित्युक्तो नाहुपस्तदा ॥१०॥
अभिपिच्य ततो राज्ये पूरु स सुतमात्मनः ।
दिक्षि दक्षिणपूर्वस्या तुवंसु पुत्रमादिशत् ॥११॥
दक्षिणायामथो राजा यदु ज्येष्ठं न्ययोजयेत् ।
प्रतोच्यामुत्तरस्या तु द्रुह्यं चानु च तावुभौ ॥१२॥
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ।
व्यभजच्च त्रिधा राज्यं पुत्रेभ्यो नाहुपस्तदा ॥१३॥

पुत्रसकामितश्चीस्तु
प्रीतिमानभवद्राजा

हर्षनिर्भरमानसः ।
भारमावेष्ट बंधुषु ॥१४॥

अब आप सब भी मुझे आज्ञा देवें कि यह पुरु राज्य मे अभि-
षिक्त किया जावे । प्रकृतिगण ने कहा—जो पुत्र गुणो से सम्पन्न होता
है और सदा माता-पिता का हित चाहने वाला होता है वह चाहे छोटा
ही क्यों न हो किन्तु वह ही सब प्रकार के कल्याण के पाने का अधिकारी
तथा प्रभु है । यह पुरु राज्य पाने के योग्य है जोकि ऐसा आपका
आज्ञाकारी पुत्र है ॥१५॥१६॥ शुक्र के वरदान से भी अन्यथा अर्थात् उसके
विपरीत किया नहीं जा सकता है । सूतजी ने कहा—इस प्रकार से
परम सन्तुष्ट जनपद के निवासियों के द्वारा इस तरह कहे हुए नहुष के
पुत्र ने उसी समय मे अपने पुत्र पूष को राज्य पर अभिषिक्त कर दिया
था और तुर्वसु पुत्र को दक्षिण दिशा मे रहने की आज्ञा दे दी थी ।
॥१०॥११॥ इसके अनन्तर दक्षिण दिशा मे ज्येष्ठ यदु को नियोजित
कर दिया था । पश्चिम और उत्तर मे द्रुह्य और चानु इन दोनों को
नियोजित किया था ॥१२॥ राजा ययाति ने सात द्वीप और सात सागर
पर्यन्त समग्र भूमण्डल को जीतकर फिर नहुष ने पुत्री के लिए राज्य
को तीन भागो मे विभक्त कर दिया था ॥१३॥ अपने पुत्री मे राज्य
श्री को सक्रामित कर देने वाला राजा हर्ष से परिपूर्ण हृदय वाला परम
प्रीतिमान हो गया था क्योंकि सारा भार बन्धुगो पर छोड़ दिया था
॥१४॥

अत्र गाथा महाराजा पुरा गीता ययातिना ।

याभिः प्रत्याहरेत्कामान्सर्वतोऽङ्गानि क्लृप्तं वत् ॥१५॥

ताभिरेव नरः श्रीमाघान्यथा कर्मकोटिकृत् ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥१६॥

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ।

यत्पृथिव्यां श्रीह्रियं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥१७॥

नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शर्म व्रजेत् ।

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ॥१८॥

कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ।

यदा पराश्रय विभेति परे चास्मान्न विभ्यति ॥१९॥

यदा न निन्देन्न द्वेष्टि घ्नत्य संपद्यते तदा ।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यन्ति जीर्यतः ॥२०॥

योसौ प्राणान्तिनो रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ॥२१॥

चक्षुः श्रोत्रे च जीर्यते तृष्णीका निरुपद्रवा ।

जीर्यन्ति देहिनः सर्वे स्वभावादेव नान्यथा ॥२२॥

इस विषय में महाराज ययाति ने पहिले इस गाथा की गाथा या जिनसे प्रपने शरीरावयवों को पूर्व की भाँति कामनाओं को हटाता है उन्हीं से ही मानव श्रीमान् होता है अन्यथा करोड़ों कर्मों के करने वाला ही रहा परता है कामनाओं की पूर्ति करते रहने से कभी भी कामनाएँ शान्त नहीं हुआ करती हैं । ये तो त्याग से ही उपशम को प्राप्त होती हैं । कामों के उपभोग से तो हवि से अग्नि के समान और अधिक उन की वृद्धि हुआ करती है । इस पृथ्वी मण्डल में जो भी श्रीहि, यय, सुवर्ण, पद्म, खी आदि हैं वे सब एत के लिये भी पर्याप्त नहीं हैं । अतः यह सभी कुछ हमारा ही है, ऐसा समझकर क्षय को प्राप्त होना चाहिये । जब समस्त प्राणियों में कर्म, मन और बाली से पाप बुद्धि या पापारमक भाव नहीं करता है तभी मानव ब्रह्म की प्राप्ति करता है । जब दूसरे भय नहीं पाता है और जब दूसरे इंसाने भयभीत नहीं होते हैं ॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥ जब न रिगों की निन्दा करता है और न किसी से द्वेष ही करता है तभी ब्रह्म के भाव को प्राप्त किया करता है । जो दुष्ट मणि बानों के द्वारा दुःखत्र है और जो जीर्ण हो जाने पर स्वयं जीर्ण नहीं होती है तथा जो प्राण के गर्मोंप रहने वाला रोग है उग गृष्ठा का त्याग कर देने वाले मानव की ही मुक्ति हुआ करता है ।

जीर्णं भ्रष्टात् वृद्ध के वेश भी जीर्ण हो जाते हैं तथा जीर्णता पाने पर दाँत भी जीर्ण हो जाया करते हैं एव चक्षु तथा वान भी जीर्ण हो जाया करते हैं भ्रष्टात् ये सब ठीक-ठीक अपना काम नहीं किया करते हैं केवल बुढ़ापे में एक तृष्णा ही तरुण रूप में रहा करती है । और इसको कोई भी उपद्रव नहीं होता है । देहधारी के ये सब स्वभाव से ही जीर्ण हुआ करते हैं अन्यथा नहीं होते ॥२०॥२१॥२२॥

जीविताशा घनाशा च जीयतोपि न जीयंते ।

यच्च कामसुख लोके यच्च दिव्य महत्सुखम् ॥२३॥

तृष्णाक्षयसुखस्यंतकला नाहंति पोडशीम् ।

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् ॥२४॥

भृगुर्गुणे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः ।

साधयित्वा त्वनशन सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥२५॥

तस्य वशास्तु पचंते पुण्या देवपिसत्कृताः ।

यैर्ग्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव भरोचिभिः ॥२६॥

घनी प्रजावानायुष्मा न्कीर्तिमाश्च भवेन्नरः ।

ययातिचरित पुण्य पठञ्छण्वश्च बुद्धिमान् ॥२७॥

सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥२८॥

प्राणी के जीवित रहने की आशा और घन के प्राप्त करने की आशा स्वयं जीर्ण हो जाने पर भी जीर्ण नहीं हुआ करती हैं । सासारिक काम के उपभोग से जो सुख प्राप्त होता वह और दिव्य महान् सुख भ्रष्टात् स्वर्गादि प्राप्त करने से होने वाला सुख ये दोनों ही सुख तृष्णा के क्षय हो जाने के सुख का सोलहवाँ भाग भी नहीं हो सकता है । इस प्रकार से कहकर राजर्षि स्त्री के सहित वन में प्रवेश कर गया था ॥२३॥२४॥ भृगु के तुङ्ग पर तपस्या करके धर्मा पर ही महान् यशस्वी अनशन को साधकर पत्नी के सहित स्वर्ग को प्राप्त हो गया था ॥२५॥ उसके ये पाँच वक्ष हैं जो परम पुण्य भ्रष्टात् पवित्र हैं और देवपियों के द्वारा सम्मानित हैं जिनसे यह समस्त भूमण्डल सूर्य की विरणों के

समान व्याप्त है ॥२६॥ वह मनुष्य धनवाना, प्रजा वाला, आयुष्मान् और कीर्ति वाला हो जाता है जो बुद्धिमान् इस परम पवित्र पुण्यमय ययाति के चरित्र को पढ़ता है या श्रवण किया करता है ॥२७॥ इसके चरित्र को पढ़ने वाला मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पाकर शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२८॥



ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश वर्णन

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः ।
 संक्षेपेणानुपूर्व्याच्च गदतो मे निबोधत ॥१॥
 यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देव सुतोपमाः ।
 सहस्रजित्सुतो ज्येष्ठः क्रीडुर्नीलोजको लघुः ॥२॥
 सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्ताम पार्थिवः ।
 सुताः शतजितः श्यातास्त्रयः परमकीर्तयः ॥३॥
 हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः ।
 हैहयस्य तु दायादो घर्म इत्यभिविश्रुतः ॥४॥
 तस्य पुत्रोभवद्विप्रा घर्म नेत्र इति श्रुतः ।
 घर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु सजयस्तस्य चात्मजः ॥५॥
 सञ्चयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम धार्मिकः ।
 आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥६॥
 भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः ।
 दुर्दमस्य सुतो धीमान्धनको नाम विश्रुतः ॥७॥

इस अध्याय में ज्येष्ठ यदु का वंश श्रीकृष्ण के अवतार का हेतु होने से सार्वभौमों के अन्त तक निरूपित किया जाता है । सूतजी ने कहा— ययाति राजा के सबसे बड़े पुत्र यदु के वंश को बताता हूँ जो कि उत्तम

तेज वाला हुआ था । मैं इसके चरित को संक्षेप तथा आनुपूर्वी से कहूँगा । आप लोग मुझसे समझ लें ॥१॥ यदु के पाँच पुत्र हुये थे जो देव पुत्रों के समान थे । उनमें सहस्रजित् सबसे ज्येष्ठ था और क्रोष्टु तथा नीलोजक लघु थे ॥२॥ उसी की भाँति सहस्रजित् का पुत्र शतजित् नाम वाला राजा हुआ था । शतजित् के परम कीर्ति युक्त तीन पुत्र प्रसिद्ध हुये थे । उनके नाम हैहय, हय और वेणुहय ये थे । हैहय का दायाद (पुत्र) धर्म, इम नाम से अभिभूत हुआ था ॥३॥४॥ हे विप्रो ! उस धर्म का धर्मनेत्र नामक आत्मज हुआ था । धर्मनेत्र का कीर्ति और इसका पुत्र सजय हुआ था ॥५॥ सजय का पुत्र महिष्मान नाम वाला परम धार्मिक हुआ था महिष्मान् का सनय बड़ा प्रतापी भद्रश्रेष्ठ था ॥६॥ भद्रश्रेष्ठ का पुत्र दुर्दम नामधारी राजा हुआ था और इसका पुत्र धीमान् धनका था ॥७॥

धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसंमताः ।

कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च ॥८॥

कृतौजाश्च चतुर्थोभूत्कार्तवीर्यस्ततोर्जुनः ।

जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोत्तमः ॥९॥

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युर्नारायणात्मकः ।

तस्य पुत्रशतान्यासन्पञ्च तत्र महारथाः ॥१०॥

कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः ।

शूरश्च शूरसे नश्च घृष्टः कृष्णस्तथैव च ॥११॥

जयध्वजश्च राजासीदावन्तीर्ना विशा पतिः ।

जयध्वजस्य पुत्रोभूत्तालजघो महाबलः ॥१२॥

शतं पुत्रास्तु तस्येह तालजंघाः प्रकीर्तिताः ।

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः ॥१३॥

वृषप्रभृतयश्चान्ये तत्सुताः पुण्यकर्मणः ।

वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोभवन्मधुः ॥१४॥

धनव के कृत वीर्य, कृताग्नि, कृत वर्मा और कृतौजा ये चार लोक के सम्मत पुत्र समुत्पन्न हुए थे । इसवे अनन्तर कृतवीर्य का वार्त्त-वीर्य सहस्राजुंन हुआ था जो अपनी सहस्र बाहुओं के द्वारा सातों द्वीपों का उत्तम स्वामी हुआ था ॥८॥१॥ उसकी मृत्यु के उस समय राम था जो नारायण स्वरूप वाला था । उसके उस समय सौ पुत्र थे उनमें पाच महारथ हुए थे ॥१०॥ ये सब भस्त्रो के जाता, महान् बल वाले, अत्यन्त शूर, घमतिमा और मनस्वी थे । इनके शूर, शरसेन, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज ये नाम थे । जयध्वज भवन्तीयो का विशाम्यति राजा हुआ था । जयध्वज का महान् बल वाला तालजङ्घ पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥११॥१२॥ इसके सौ पुत्र हुए थे जो यहाँ भूमण्डल में तालजङ्घ नाम ने ही प्रकीर्तित किये गये थे । उन सबमें ज्येष्ठ महान् वीर्य वाला वीति होत्र नामक राजा हुआ था ॥१३॥ और अन्य वृष आदि पुण्य कर्म वाले उसके पुत्र हुए थे । उनमें वंश चलाने वाला वृष ही था । इसका पुत्र मधु हुआ था ॥१४॥

मधो. पुत्रशत चासौद्वृष्णिस्तस्य तु वंशभाक् ।
 वृष्णेस्तु वृष्णयः सर्वे मधोर्वे माधवा स्मृताः ।
 यादवा यदुवशेन निरुच्यन्ते तु हैहया. ॥१५॥
 तेषा पञ्च गणा ह्येते हैहयाना महात्मनाम् ॥१६॥
 वीतिहोत्राश्च हर्याता भोजाश्चा वन्तयस्तथा ।
 शूरसेनास्तु विख्यातास्तालजधास्तथैव च ॥१७॥
 शूरश्च शूरसेनश्च वृष कृष्णस्तथैव च ।
 जयध्वजः पञ्चमस्तु विख्याता हैहयोत्तमाः ॥१८॥
 शूरश्च शूरवीरश्च शूरसेनस्य चानघा ।
 शूरसेना इति ख्याता देशास्तेषा महात्मनाम् ॥१९॥
 वीतिहोत्रमुतश्चापि विश्रुतोऽनर्त इत्युत ।
 दुजय कृष्णपुत्रस्तु बभूवामिनवर्शन. ॥२०॥

क्रोष्टुश्च शृणु राजप वंशमुत्तमपौरुषम् ।

यस्यान्वये तु संभूतो विष्णुर्बृष्णि कुलोद्बहः ॥२१॥

मधु के सौ पुत्र हुए थे । उसका वंश भाक् वृष्णि या, वृष्णि के सब वृष्णि हुए और मधु के माधव कहे गये है । यादव गदु के वंश से हैहय कहे जाया करते हैं ॥१५॥ उन महान् आत्मा वालों के ये पाँच गए थे । जिनके नाम वीनिहोत्र, हर्यात, भोज, भवन्ति और शूरसेन थे और वे इन नामों से विख्यात हुए थे तथा तालजङ्घ भी थे ॥१६॥१७॥ शूर, शूरसेन, वृष, कृष्ण और पाँचवाँ जयध्वज ये हैहयोत्तम विख्यात हुए थे ॥१८॥ शूर, शूरवीर शूरसेन के ये अनघ अर्थात् निष्पाय शूरसेन थे जिन महात्माओं के देश भी शूरसेन नाम से विख्यात हुए थे ॥१९॥ वीतिहोत्र का पुत्र भी भ्रानर्त्त नाम से विश्रुत हुआ । कृष्ण का पुत्र दुर्जय शत्रुघ्नो का नाशक हुआ या ॥२०॥ हे राजर्षे ! अब क्रोष्टु के उत्तम पौरुष वाले वंश का श्रवण करो जिसके वंश में वृष्णि कुल का उद्बहन करने वाला विष्णु हुए थे ॥२१॥

क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवाग्महायशाः ।

तस्य पुत्रोभवत्स्वाती कुशंकुस्तत्सुतोभवत् ॥२२॥

अथ प्रसूतिमिच्छन्वै कुशंकुः सुमहाबलः ।

महाक्रतुभिरीजेसौ विविधैराप्तदक्षिणैः ॥२३॥

जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ।

अथ चित्ररथो वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥२४॥

शशविदुस्तु वै राजा अन्वयाद्ब्रतमुत्तमम् ।

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजाः ॥२५॥

शशविदोस्तु पुत्राणां सहस्राणामभूच्छतम् ।

शंसन्ति तस्य पुत्राणामनंतकमनुत्तमम् ॥२६॥

अनंतकात्सुतो यज्ञो यज्ञस्य तनयो घृतिः ।

उशनास्तस्या तनयः संप्राप्य तु महीमिमाम् ॥२७॥

आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः ।

स्मृतश्चोशनसः पुत्रः सितेपुर्नाम पाथिवः ॥२८॥

चृजिनीवान् महायशस्वी क्रोष्टु वा एक पुत्र हुआ था । उसका पुत्र स्वानी कुशकु पुत्र हुआ था ॥२२॥ इसके अनन्तर महा बलवान् कुशकु ने सन्तान की इच्छा रखते हुए अनेक प्राप्तदक्षिणा पाले महा क्रतुमो से इसने यजन दिया था ॥२३॥ उसके कर्मों से समन्वित चित्ररथ नामक पुत्र हुआ था । इससे अनन्तर वीर चित्ररथ विपुल दक्षिणा देने वाला याजक हुआ है ॥२४॥ इस वय से उत्तम व्रत वाला, महान् सत्य से संमग्न, महावीर्य वाला, बहुत प्रजा से युक्त चक्रवर्ती राजा दशविन्दु हुआ था ॥२५॥ दशविन्दु के सहस्र पुत्रों का दत्त हुआ था और उसके पुत्रों की अत्युत्तम अनन्त सजा वाले कहने हैं ॥२६॥ अनन्त तक के सुत यज्ञ और इसका पुत्र धृति तथा धृति का भात्मज उसना हुआ था जिसने इस मही को प्राप्त कर एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे । यह अत्यन्त श्रेष्ठ धार्मिक कहा गया था उसना का पुत्र सितेपु नामक नृपति हुआ था ॥२७॥२८॥

महत्तस्तस्य तनयो राजर्षिर्वंशवर्धनः ।

वीरः कबलवर्हिस्तु महत्तस्यात्मजः स्मृतः ॥२९॥

पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्बलबहिः ।

निहत्य रुक्मकवचो धीरान्कवचिनो रणे ॥३०॥

घन्विनो निगितैर्वाणैरेवाप श्रियमुत्तमाम् ।

अश्वमेधे तु धर्मात्मा श्रुतिवर्ग्यः पृथिवी ददौ ॥३१॥

जने तु रुक्मकवचात्परावृत्परवीरहा ।

जजिरे पच पुत्रास्तु महासत्त्वाः परावृतः ॥३२॥

रक्मेपुः पृथुस्त्रमश्च ज्यामघः परिषं हरिः ।

परिष च हरि चैव विदेष्टेपु पिता न्यसत् ॥३३॥

रक्मेपुरभवद्राजा पृथुर्रुक्मगताश्रयान् ।

तेभ्यु प्रप्राजितो राजा ज्या मघोऽन्यसदाश्रमे ॥३४॥

प्रशांत स वनस्थोपि ब्राह्मणैरेव बोधित ।

जगाम धनुराशय देशमन्य ष्वजी रथी ॥३५॥

वधवा वधन करने वाला राजपि मरुत उसना पुत्र हुआ था
 और परम वीर बम्बलबहि मरुत का पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२६॥
 बम्बलबहि का भनि विद्वान् स्वमन्त्रवच पुत्र हुआ था । स्वमन्त्रवच ने
 रणस्थल में धनुष धारी, कवच पहिने याने वीरो को अपने पने बाणों
 द्वारा मारकर उत्तम श्री की प्राप्त किया था । इस धर्मिणा ने अपने
 दिये हुए भ्रममेघ नामक याग म समस्त पृथ्वी ऋत्विजों को दे दी थी
 ॥३०॥३१॥ स्वमन्त्रवच नृप से पराये वीरो का हनन करने वाला
 परावृत् उत्पन्न हुआ था । परावृत् के महान् सत्त्व वाले पाँच पुत्र समुत्पन्न
 हुए थे ॥३२॥ स्वमेघ, पृथुस्वम, ज्यामघ, परिघ और हरि ये उनके नाम
 थे । पिता ने परिघ और हरि को विदेह देशों में व्यस्त किया था ॥३३॥
 स्वमो ने उसके आश्रय से पृथुस्वम राजा हुआ था । उन्होंने राजा को
 प्रसन्न कर दिया था और वह ज्यामघ आश्रम में वास करता था ।
 ॥३४॥ वह वन में स्थित भी प्रशान्त तथा ब्राह्मणों के द्वारा बोधित
 किया था । वह ष्वजी और रथी धनुष लेकर अन्य देश में चला गया
 था ॥३५॥

नर्मदातीरमेकाकीकेवल भार्यया युत ।

ऋक्षवत गिरि गत्वा त्यक्तमन्यैरुवास स ॥३६॥

ज्यामघस्याभवद्भार्या शैल्या शीलवतो सती ।

सा च व तपसोभ्रेण शन्या च सप्रसूयत ॥३७॥

सुत विदर्भ सुभगा वय परिणता सती ।

राजपुत्रसुताया तु विद्वत्सो क्रथकैशिकी ॥३८॥

पुत्री विदर्भ राजस्य शूरो रणविशारदौ ।

रोमपादस्तृतीयश्च बभ्रुस्तस्यात्मज स्मृत ॥३९॥

सुधृतिस्तनयस्तस्य विद्वान्परमधामिक ।

क्रोशिकस्तन यस्तस्मात्तस्माच्च चान्वय स्मृत ॥४०॥

क्रयो विदर्भस्य सुतः कुंतिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।

कुन्तेवृत्तस्ततो जज्ञे रणघृष्टः प्रतापवान् ॥४१॥

रणघृष्टस्य च सुतो निघृतिः परवीरहा ।

दशार्हो नैधृतो नाम्ना महारिगणसूदनः ॥४२॥

नर्मदा नदी के तट पर अकेला अपनी भार्या के साथ था फिर
 अक्षयान् पर्वत पर चला गया था और वहाँ अग्न्यो के द्वारा त्यक्त वास
 करने लगा था ॥३६॥ जगमघ की भार्या दैव्या बड़ी क्षीतवती और सती
 थी और उस दैव्या ने उस तप से विदर्भ सुत को प्रसूत किया था । यह
 दैव्या सुभगा, वय से परिणत और मनी हुई थी । विदर्भ राजा के परम
 पुर और रण विद्या के महान् पण्डित तथा अत्यन्त विद्वान् क्रय और
 पौनिक दो राजपुत्र पुत्र की पुत्री में हुए थे और तृतीय रोगपाद था ।
 उसका पुत्र वधू कहा गया है ॥३७॥३८॥३९॥ उसका पुत्र सुघृति जो
 परम धर्मिण और बहुत विद्वान् था । उससे बौधिव पुत्र हुआ और उससे
 चंचान्वय कहा गया है ॥४०॥ विदर्भ का पुत्र क्रय हुआ और उमरा पुत्र
 घृति हुआ था । घृति से वृत्त ममुत्त हुआ था जो बहुत ही अधिक
 रण घृष्ट तथा प्रताप वाता हुआ था ॥४१॥ रणघृष्ट का पुत्र निघृति
 हुआ था जो शत्रु के वीरों का हनन करने वाला था । निघृति का पुत्र
 दशार्ह नामपारी नैधृत हुआ था जो बड़े-बड़े शत्रुओं के समुदाय का
 सहार करने वाला था ॥४२॥

दशाहस्य सुतो व्यानो जीमून इति तत्पुतः ।

जीमूनपुत्रो विहृतिस्तस्य भीमरयः सुतः ॥४३॥

अथ भीमरयस्यानोत्पुत्रो नररयः क्रिल ।

दानधर्मरता नित्य सत्यशीलपरायणः ॥४४॥

तस्य चाग्रीहृत्तरयः शत्रुनिस्तस्य चात्मजः ।

तरगात्तरुम. मंभूतो देवराताऽभवत्ततः ॥४५॥

देवराताऽभूद्राजा देवरातिमंहायनाः ।

देवगर्भोऽमो जज्ञे यो देवरात्रनामकः ॥४६॥

देवक्षत्रसुतः श्रीमान् मधुर्नाम महायशः ।
 मधूनां वंशकृद्राजा मधोस्तु कुरुवंशकः ॥४७॥
 कुरुवंशादनुस्तस्मात्पुरुत्वान्पुरुषोत्तमः ।
 अंशुर्जज्ञे च वीदम्यां भद्रवत्यां पुरुत्वतः ॥४८॥
 ऐक्ष्वाकीमवहच्छांशुः सत्त्वस्तस्मादजा यत ।
 सत्त्वात्सर्गगुणोपेतः सात्त्वतः कुलवर्धनः ॥४९॥
 ज्यामघस्य मया प्रोक्ता सृष्टिर्न विस्तरेण वः ।
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि निसृष्टि ज्यामघस्य तु ॥५०॥
 प्रजीवरयेति वै स्वर्गं राज्यं सौख्यं च विदति ॥५१॥

दशार्ह का पुत्र व्यास और इसका सुत जीमूत या जीमूत का
 आत्मज विकृति और इसका पुत्र भीमरथ हुमा था ॥४३॥ इसके अनन्तर
 भीमरथ का पुत्र नवरथ नामक उत्पन्न हुमा था जो दान और धर्म में रति
 रखने वाला तथा निरथ ही क्षील में परायण रहने वाला था ॥४४॥ उसके
 दृढरथ हुमा था और दृढरथ का पुत्र का शकुनि उदरन्न हुमा था । उस
 शकुनि से करम्म हुमा और करम्म से देवरात पुत्र उत्पन्न हुमा था
 ॥४५॥ देवरात का देवराति महान् यशस्वी राजा हुमा था जिसने देव-
 क्षत्र नाम वाला देवगर्भ की उपमा वाला उत्पन्न किया था ॥४६॥
 देवक्षत्र का श्री सम्पन्न और महान् यशस्वी मधु नाम वाला पुत्र पैदा
 हुमा था । मधुओं के वंश को करने वाला राजा मधुवा कुरुवंशक हुमा
 था ॥४७॥ कुरुवंश से अनु और इससे पुरुत्वान् पुरुषोत्तम हुमा था ।
 पुरुत्वान् से भद्रवती में, जो वीदभी थी, अंशु ने जन्म ग्रहण किया था
 ॥४८॥ अंशु ने ऐक्ष्वाकी के साथ विवाह किया था और उससे सत्त्व
 उत्पन्न हुमा था । सत्त्व से कुल के बढाने वाला सात्त्वत समुत्पन्न हुमा
 था ॥४९॥ इस तरह से मैंने विस्तार से आपको ज्यामघ की सृष्टि
 वर्णित करदी है । इस ज्यामघ की निसृष्टि को जो भी कोई पढता है
 या श्रवण करता है वह बहुत समय तक जीवित रहता है और स्वर्ग
 राज्य तथा सौख्य को प्राप्त किया करता है ॥५०॥५१॥



यदु वंश मे कृष्ण भगवान् का आर्विर्भावि और चरित्र] [४२१

यदु वंश में कृष्ण भगवान् का आर्विर्भावि और चरित्र

सात्वतः सत्यसपन्नः प्रजज्ञे चतुरः सुतम् ।

भजन आजमान च दिव्य देवावृध नृपम् ॥१॥

अ धक च महाभाग वृष्णि च यदुनन्दनम् ।

तेषा निसर्गाश्चतुरः शृणुष्व विस्तरेण वै ॥२॥

सजय्या भजनाच्चैव आजमानाद्विजज्ञिरे ।

अयुतायुः सतायुश्च बलवान् हर्षकृत्स्मृतः ॥३॥

तेषा देवावृधो राजा चचार परम तपः ।

पुत्रः सद्यंगुणोपेतो मम भूयादिति स्मरन् ॥४॥

तस्य बभ्रुरिति रयातः पुण्यश्लोको नृपोत्तमः ।

अनुवशपुराणज्ञा गायंतीति परिश्रुतम् ॥५॥

गुणान्देवावृधस्याय कीर्तयतो महात्मनः ।

तथैव शृणुमो दूरात् सपश्यामस्तथातिकात् ॥६॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवदेवावृधः समः ।

पुरुषाः पञ्चपटिस्तु पट् सहस्राणि चाष्ट च ॥७॥

येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ।

यज्या दानमतिर्वीरो ब्रह्मण्यस्तु दृढव्रतः ॥८॥

पीतिमाश्च महातेजा सात्वताना महारथः ।

तस्यान्वयाये सभूता भोजा वै देवतोपमाः ॥९॥

इस अध्याय से परमात्मा कृष्ण का यदुवंश में अवतरण तथा चरित्र वर्णन किया जाता है । सूतजी बोले—सत्य से सर्गिक सात्वत ने पार पुत्रों को समुत्पन्न किया था । आजमान भजन, दिव्य देवावृध नृप, महाभाग धन्यव और यदुनन्दन वृष्णि उनका नाम थे । जब उनके चार नितानों को विस्तार से श्रवण करो ॥१॥२॥ आजमान भजन से तद्देवीय राजा बनाया गृजयी में अयुतायु और सतायु उत्पन्न हुए थे । हर्षकृत बलवान् कहा गया है ॥३॥ जामे देवावृध राजा ने परम

उत्पन्न तप किया था कि मेरे समस्त सद्गुणों से समवित पुत्र उत्पन्न हो, ऐसा उस तपस्या क करने से उसने ध्यान लगा रक्खा था ॥४॥ उसका वध्रु इस नाम से स्यात् पुण्य यश वाला नृपोत्तम हुआ था । अनुवश वे पुराण जानने वाले यह गाया करते हैं, ऐसा सुना है ॥५॥ इसके अनन्तर महान् आत्मा वाले देवावृष के गुणों का कीर्तन करते हुए जो भी कुछ दूर से सुनते हैं वना ही समीप से देखते हैं ॥६॥ मनुष्या ने श्रेष्ठ वध्रु दशों के समान देवावृष था । छै सहस्र पैमठ और आठ पुरुष जो देवावृष वध्रु से अमृतत्व को अनुप्राप्त हुये थे । महा यजन करने वाला, दान की बुद्धि वाला, ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला, दृढ व्रत ॥ युक्त, कीर्ति वाला, महान् तेजस्वी और सात्त्विकों में महारथ था । उसने वश में दैवत के समान भोज समुत्पन्न हुये थे ॥७॥८॥९॥

गाधारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतु ।
 गाधारो जनयामास सुमित्र मित्रनदनम् ॥१०॥
 माद्री लेभे च त पुत्र तत सा देवमीदुपम् ।
 अनमित्र शिनि चैव तावुभौ पुरुषात्तमौ ॥११॥
 अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतु ।
 प्रसेनश्च महाभाग सत्राजिच्च सुतावुभौ ॥१२॥
 तस्य सत्राजित सूर्यं सखा प्राणसमोऽभवत् ।
 स्यमनको नाम मणिर्दत्तस्तस्मै विवस्वता ॥१३॥
 पृथिव्या सर्वरत्नानामसौ राजाऽभवन्मणि ।
 कदाचिन्मृगया यात प्रसेनेन सहैव स ॥१४॥

गान्धारी और माद्री वृष्णि भार्यायें हुई थी । गान्धारी ने मित्रो को आनन्द देने वाले सुमित्र को जन्म दिया था । माद्री ने देव मीदुप पुत्र को प्राप्त किया था और फिर अनमित्र शिनि की प्राप्ति की थी । वे दोनों उत्तम पुरुष थे ॥१०॥११॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ था तथा निघ्न के प्रसेन और महाभाग सत्राजित् ये दो पुत्र समुत्पन्न हुए

यदु वंश में कृष्ण भगवान् का आविर्भाव और चरित्र] [४२३

ये ॥१२॥ उस सत्रजित् का सूर्य प्राण के समान सखा हुआ था । उसको विवस्वान् ने स्वमन्तक नाम वाली मणि प्रदान की थी ॥१३॥ पृथिवी मण्डल में जितने भी रत्न हैं उन सबसे यह स्वमन्तक मणि राजा थी । किसी समय में वह प्रमेन के साथ ही शिकास खेलने के लिए गया था ॥१४॥

वध प्राप्नो सहायश्च सिंहादेव सुदारुणात् ।
अथ पुत्रः शिनेजंज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥१५॥
सत्यवाक् सत्यसपन्नः सत्यकस्तस्य चात्मजः ।
सात्यकियुं युधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान् ॥१६॥
असौ युधानस्य कुलिस्तस्य सुतोऽभवत् ।
कुल्युं गधरः पुत्रः दोनेया इति कीर्तिताः ॥१७॥
मादयाः सुनत्य संजज्ञे सुतो वाष्णिग्युं धाजितः ।
श्वफल्क इति विख्यातस्त्रैलोक्यहितकारकः ॥१८॥
श्वफल्कश्च महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते ।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावृष्टिभयमप्युत ॥१९॥
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामवाप सः ।
गाधिनी नाम काश्यो हि ददौ तस्मै स्वकन्यकाम् ॥२०॥
सा मातुर्दरस्तथा चै बहून्यर्पणान्किल ।
वसती न च संजज्ञे गर्भस्था ता पिताऽभवोत् ॥२१॥

वह प्रमेनजित् उस मणि के साथ ही जिधो सुदारुण सिंह से वध को प्राप्त हो गया था । इसके अनन्तर कनिष्ठ वृष्णि नन्दन दिनि से पुत्र उत्पन्न हुआ था । सत्य वाणी वाला और सत्य से सम्पन्न सत्यक उसका पुत्र हुआ था । सात्यकि युयुधान प्रतापी दिनि का नप्ता था ॥१५॥॥१६॥ युयुधान का असङ्ग और उसका कुलि पुत्र हुआ था । कुलि या गुणधर पुत्र हुआ था । ये सब दोनेय बड़े गये थे ॥१७॥ माद्री के पुन से वाष्णि युधाजित् पुत्र उत्पन्न हुआ था । यह श्वफल्क इस नाम से त्रिनोरी का हित करने वाला विद्वान् हुआ था ॥१८॥ और श्वफल्क

महाराज परमात्मा जहाँ पर भी विद्यमान रहा करते हैं वही पर विसी भी ध्यापि का भय नहीं होता है और अवृष्टि होने का भय भी नहीं रहा करता है ॥१६॥ उस श्वफल्क ने काशिराज की मुता को अपनी भार्या के रूप में प्राप्त किया था । वास्य धर्षात् काशिराज ने गाँदिनी नाम वाली अपनी पुत्री को श्वफल्क के लिए दिया था ॥२०॥ वह अपनी माता के उदर में स्थित बहुत वर्षों तक रही थी और उसने वहाँ पर थाता करते हुए जन्म नहीं ग्रहण किया था और गर्भ में ही स्थित रही थी तब उसके पिता ने उसे कहा था ॥२१॥

जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं चाभितिष्ठसि ।
 प्रोवाच चैनं गर्भस्था सा कन्या गाँदिनी तदा ॥२२॥
 वर्षत्रयं प्रतिदिनं गामेकां ब्राह्मणाय तु ।
 यदि दद्यास्ततः कुक्षेनिगमिष्याम्यहं पितः ॥२३॥
 तथेत्युवाच तस्या वै पिता काममपूरयत् ।
 दाता दूरश्च यज्वा च श्रुतवानतिथिं प्रियः ॥२४॥
 तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्कादभूरिवक्षिणः ।
 रत्ना कन्या च शीवस्य ह्यक्रूरस्तामवाप्तवान् ॥२५॥
 अस्यामुत्पादयामास तनयांस्तान्निबोधत ।
 उपमन्युस्तथा मागुवृ तस्तु जनमेजयः ॥२६॥
 गिरिरक्षस्तथोपेक्षः क्षत्रुघ्नोः योरिमदनः ।
 धर्मभृदृष्टधर्मा च गोघ्नोऽप्य वरस्तदा ॥२७॥
 आवाहप्रतिवाहौ च सुधारा च वरांगता ।
 अक्रूरस्योग्रसेन्यां तु पुत्री द्वौ कुलनंदनी ॥२८॥

हे भद्रे ! तुम शीघ्र जन्म ग्रहण करो, तुम्हारा कल्याण होगा । गर्भ में ही तुम क्यों अवस्थित हो रही हो ? उस समय मे गर्भ में स्थित उस कन्या मादिनी ने इस (अपने पिता) से कहा था ॥२२॥ हे पिताजी ! यदि आप तीन वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन ब्राह्मण को एक गौ का दान करोगे

तो मैं अपनी माता की कुक्षि से बाहिर निकल कर आऊँगी ॥२३॥
 उसके पिता ने "ऐसा ही किया जायगा"— यह कहा था और पिता ने
 उसकी इच्छा को परिपूर्ण किया था । वह दाता, शूर, यजन करने
 वाला, श्रुतवान् और अतिथि का प्रिय था ॥२४॥ उसका पुत्र श्वफल्क
 से भूरि दक्षिणा वाला अक्रूर नाम वाला हुआ था । शैव की रत्ना
 नामधारिणी कन्या थी उसको अक्रूर ने प्राप्त किया था ॥२५॥ इस
 रत्ना मे उसने जो पुत्र उत्पन्न किये थे उनको तुम अब जान लो । उनके
 नाम, उपमन्यु, मागु, वृत्त, जनमेजय, गिरिरक्ष, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरि-
 मर्दन, धर्मभृत्, इष्टधर्मा, गोघन, वर, आयाह, प्रतिवाह और वराङ्गना
 सुधारा ये थे । अक्रूर के उपसेनी भार्या मे दो कुल को आनन्द देने वाले
 पुत्र हुए थे ॥२६॥२७॥२८॥

देवानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंमती ।
 सुमित्रस्य सुतो जज्ञे चित्रकश्च महायशाः ॥२९॥
 चित्रकस्याभवन्पुत्रा विपृथुः पृथुरेव च ।
 अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधासूकगवेक्षणी ॥३०॥
 अरिष्टनेमिरश्वश्च धर्मो धर्मभृदेव च ।
 सुभूमिर्वहूभूमिश्च श्रविष्ठाश्वरणे स्त्रियो ॥३१॥
 अधकारकाश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान् ।
 कुकुरं भजमानं च शुचिं कवलवहिपम् ॥३२॥
 कुकुरस्य सुतो वृष्णिवृष्णोः दूरस्ततोऽभवत् ।
 कपोतरोमातिवलस्तस्य पुत्रो विलोमकः ॥३३॥
 तस्यासीत्तु वुरुसप्तो विद्वान्पुत्रो नलः क्रिल ।
 ह्यायते ॥ सुनाम्ना तु चंदनानकदुंदुभिः ॥३४॥
 तस्मादप्यभिजित्पुत्र उत्पन्नोऽस्य पुनर्वसुः ।
 अश्वमेध स पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः ॥३५॥
 तस्य मध्येतिरात्रस्य सदोमघ्यात्समुत्थितः ।
 ततस्तु विद्वान् सर्वज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसुः ॥३६॥

उन दो पुत्रों के नाम देववान् और उपदेव थे । ये दोनों देव संमत समुत्पन्न हुये थे । सुमित्र के महान् यश वाला चित्रक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२९॥ चित्रक के विपृथु, पृथु, मन्त्रग्रीव, सुबाहु, सुपासूत्र, गवेक्षण, परिष्टनेमि, मन्त्र, धर्म, धर्मभृत्, सुभूमि, बहुभूमि पुत्र हुये थे भविष्य और श्रवणा ये दो कन्यायें हुई थी ॥३०॥३१॥ काश्य दुहिता ने ने मन्त्रक से चार पुत्रों की प्राप्ति की थी । उनके नाम कुकुर, भजमान, पुचि और कम्बल बहिय थे ॥३२॥ कुकुर का पुत्र वृष्णि हुआ था और फिर वृष्णि का पुत्र दूर हुआ था । उस दूर के कपोतरोमा मति बलवान् पैदा हुआ था । उसका मातमज विलोमक नाम वाला था ॥३३॥ उसका तुम्बरु सखा वाला बृहत विद्वान् नल नामक पुत्र हुआ था । वह चन्दनानक पुत्र दुभि इस सुन्दर नाम से ख्यात हुआ था । ३४॥ उससे भी अभिजित् पुत्र हुआ था और इसका पुत्र पुनर्वसु हुआ । उस नरो ने उत्तम ने पुन के लिए मन्त्रमेघ यज्ञ किया था ॥३५॥ मध्येतिरान उसका सद्यो मध्य मे समुत्थित हुआ था । इसके पश्चात् परम विद्वान्, सभी कुछ का ज्ञाता, दाता और यज्ञ करने वाला पुनर्वसु हुआ था ॥३६॥

तस्यापि पुत्रमिथुन बभूवाभाजितः किल ।
 आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ कीर्तिमता वरौ ॥३७॥
 आहुकात्काश्यदुहितुद्वौ पुत्रौ सबभूवतुः ।
 देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ ॥३८॥
 देवकस्य सुता राज्ञो जज्ञिरे त्रिदशोपमा ।
 देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ॥३९॥
 तेपा स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ ।
 वृषदेवोपदेवा च तथा न्या देवरक्षिता ॥४०॥
 श्रीदेवा शांतिदेवा च सहदेवा तथापरा ।
 देवकी चापि तासां च वारिष्ठाऽभूत्सुमध्यमा ॥४१॥
 नवोग्रसेनस्य सुतास्तेपा कसस्तु पूर्वजः ।
 तेपा पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽहस्रशः ॥४२॥

यदु वंश मे कृष्ण भगवान् का आविर्भाव और चरित्र] [४२७

उसके भी पुत्र मिथुन अभिजित के हुआ था । कीर्तिमानो में श्रेष्ठ ब्राह्मक और ब्राह्मनी नाम से ख्यात हुये थे ॥३७॥ ब्राह्मक से काश्यपी दुहित के दो पुत्र हुये थे । उनके नाम देवक और उग्रसेन थे जो दोनों देव गर्भ के तुल्य थे ॥३८॥ राजा देवक की सुता ने देवो के समान समुत्पन्न किये थे । उन पुत्रो के नाम देववान्, उपदेव, सुदेव और देव रक्षित ये थे ॥३९॥ उनकी सात बहिनें थी वे वसुदेव के लिए दे दी थी । उनके नाम वृषदेवा, उदेवा, देवरक्षिता, श्रेदेवा, शान्तिदेवा, सह देवा और देवकी थे । इन सबमे सबसे अच्छी एवं बड़ी सुमध्यमा देवकी ही थी ॥४०॥४१॥ उग्रसेन के नौ पुत्रियाँ थी । कस इनका पूर्वज था । उनके पुत्र और पीग सैकड़ो तथा सहस्रो थे ॥४२॥

देवकस्य सुता पत्नी वसुदेवस्य धीमतः ।

वभूव वंशा पूज्या च देवैरपि पतिव्रता ॥४३॥

रोहिणी च महाभागा पत्नी चानकदुन्दुभेः ।

पौरवी चाह्लिकसुता संपूज्यासीत्सुरैरपि ॥४४॥

असूत रोहिणी रामं बलश्रेष्ठं हलामुधम् ।

आश्रित कंसभीत्या च स्वात्मानं शान्ततेजसम् ॥४५॥

जाते रामेऽथ निहते पङ्कभे चातिदक्षिणे ।

वसुदेवो हरिं धीमान्देववयामुदपादयत् ॥४६॥

एव परमात्मासी देवदेवो जनार्दनः ।

हलामुधश्च भगवाननंतो रजतप्रभः ॥४७॥

भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषी तनुम् ।

वभूव तस्या देवक्या वसुदेवो जनार्दनः ॥४८॥

उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कीशिकी ।

नियोगाद्देवदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत् ॥४९॥

देवक की पुत्री जो धीमान् वसुदेव की पत्नी थी वह देवो के द्वारा भी पूज्य और श्रेष्ठमात्र थी तथा पूर्ण पतिव्रता हुई थी ॥४३॥ महान् भाग्य वाली रोहिणी चानक दुन्दुभि की पत्नी हुई थी । पौरवी

जो बाल्हिक की पुत्री थी सुरो के द्वारा भी सपूज्य थी ॥४४॥ रोहिणी ने हल के आयुध रखने वाले और बल-पराक्रम में सबसे श्रेष्ठ राम को उत्पन्न किया था जोकि कन के द्वारा हनन के भय से शान्त तेज वाले अपने आपको देवकी के गर्भ से निकल कर रोहिणी के उदर का आश्रय करने वाले थे ॥४५॥ अतन्त सुन्दर छै गर्भों के हत हो जाने पर अर्थात् कस के द्वारा वध किये जाने पर और राम के रोहिणी के गर्भ से समुत्पन्न होने पर घीमान् वसुदेव ने देवकी में श्रीकृष्ण को समुत्पादित किया था ॥४६॥ वह ही यह देवों के भी देव जनार्दन साक्षात् परमात्मा हैं । भगवान् हलायुध अर्थात् बलराम रजत के समान प्रभा वाले साक्षात् प्रन्न (शेव) भगवान् हैं ॥४७॥ भृगु ऋषि के शाप के बहाने से मानवीय शरीर को धारण करते हुए वासुदेव जनार्दन उस देवकी में समुत्पन्न हुये थे ॥४८॥ जगदम्बिका उमा के देह से समुद्भूत कौशिकी योग निद्रा देवों के देव भगवान् की आज्ञा से ही यशोदा की पुत्री हुई थी ॥४९॥

सा चैव प्रकृतिः साक्षात्सर्वदेवनमस्कृता ।

पुरुषो भगवान्कृष्णो धर्ममोक्षफलप्रदः ॥५०॥

तां कन्यां जगृहे रक्षकंसात्स्वस्यात्मजं तदा ।

चतुर्भुज विशालाक्ष श्रीवत्सकृतलांछनम् ॥५१॥

शंखचक्रगदापद्मं धारयंतं जनार्दनम् ।

यशोशयं प्रदत्त्वा तु वसुदेवश्च बुद्धिमान् ॥५२॥

दत्त्वेनं नंदगोपस्य रक्षतामिति चाब्रवीत् ।

रक्षकं जगतां विष्णुं स्वेच्छया घृतविग्रहम् ॥५३॥

प्रसादाच्चैव देवस्य शिवस्यामिततेजसः ।

रामेण सार्धं तं दत्त्वा वरद परमेश्वरम् ॥५४॥

भूभारनिग्रहार्थं च ह्यवतीर्णं जगद्गुरुम् ।

अतो वै सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति ॥५५॥

यदु वंश मे कृष्ण भगवान् का आविर्भाव और चरित्र] [४२६

अयं स गर्भो देवक्या यो नः क्लेश्यान्हरिष्यति ।

उग्रसेनात्मजायाथ कसायानकदुर्दुभिः ॥५६॥

और वह साक्षात् प्रकृति थी जो कि समस्त देशों के द्वारा नमस्कार की गई थी और श्री कृष्ण भगवान् पुरुष थे जो धर्म और मोक्ष के फल को प्रदान करने वाले थे ॥५०॥ उस समय में बुद्धिमान वसुदेव ने अपने आत्मज की कस से रक्षा करते हुये उसे यशोदा को देकर उस कन्या को ग्रहण कर लिया था । उस समय में श्रीकृष्ण जोकि वसुदेव के पुत्र रूप में समुत्पन्न हुये थे चार भुजाओं से युक्त थे, उनके विशाल नेत्र थे, श्री वत्स का चिन्ह वाले, शस्त्र, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये हुए साक्षात् जनादन के पूर्ण स्वरूप वाले थे ॥५१॥५२॥ वसुदेव ने श्रीकृष्ण बालक को नन्द को देकर कहा था कि इसकी आप पूर्णतया रक्षा करें । वसुदेव ने नन्द से स्पष्ट कह दिया था कि इसको आप साधारण बालक न समझें । यह जगतों की रक्षा करने वाले साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं । इन्होंने अपनी ही इच्छा से यह मानव बाल स्वरूप धारण किया है ॥५३॥ यह अमित तेज वाले देव शिव की कृपा से राम के सहित वरदान प्रदान करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति उन्हें हुई है ॥५४॥ यह स्वयं इस भूमि के मार को दूर करने के लिए ही जगत् के गुरु भगवान् इस समय में अवतीर्ण हुए हैं । इसलिए इनसे अब यादवों का सब प्रकार का कल्याण होगा ॥५५॥ यह देवकी का वही गर्भ है जो हमारे सम्पूर्ण क्लेशों का हरण करेगा अथवा हमको बर्षा देने वालों को मार देगा । इसने अनन्तर मानव दुर्दुभि वसुदेव से उग्रसेन के पुत्र वत्स से आपर निवेदन कर दिया था ॥५६॥

निवेदयामास तदा जाता कन्या सुलक्षणाम् ।

अस्यास्त वाष्टमो गर्भो देवक्या. वत्स सुव्रत ॥५७॥

मृत्युरेव न संदेह इति वाणी पुरातनी ।

ततस्ता हतुगारेभे वत्सः सोल्लघ्य चावरम् ॥५८॥

उवाचाष्टभुजा देवी भेषगंभीरया गिरा ।
 रक्षस्व तत्स्वकं देहमायातो मृत्युरेव ते ॥५६॥
 रक्षमाणस्य देहस्य मायावी कंसरूपिणः ।
 किं कृतं दुष्कृतं मूर्ख जातः खलु तवांतकृत् ॥५७॥
 देवक्याः स भयात्कंसो जघानवाष्टमं त्विति ।
 स्मरति विहितो मृत्युर्देवक्यास्तनयोऽष्टमः ॥५८॥
 यस्तत्प्रतिकृतौ यत्नो भोजस्यासीद्वृथा हरेः ।
 प्रभावान्मुनिशार्दूलास्तया चैव जडोक्तः ॥५९॥
 कसोपि निहतस्तेन कृष्णेनावलिष्ट कर्मणा ।
 निहता बहवश्चान्ये देवब्राह्मणघातिनः ॥६०॥

बसुदेव ने कंस से उस उत्पन्न हुई कन्या को बतलाया था जो सुन्दर लक्षणों वाली थी। बसुदेव ने कंस से कहा था—हे सुन्न ! हे कंस ! इस देवकी का तुम्हारा यही आठवाँ गर्भ है ॥५७॥ यह आठवाँ गर्भ मृत्यु ही है, ऐसी पुरानी बाणी है अतः इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसलिए कंस ने उसे आकाश की ओर उछाल कर मारना आरम्भ किया था ॥५८॥ वह आठ भुजाएँ धारण करने वाली देवी भेष के समान गम्भीर बाणी के द्वारा कंस से बोली थी, अब तू अपने देह की रक्षा कर लेना क्योंकि तेरी मौत तो आ ही गया है अर्थात् संसार में उत्पन्न होकर आ गया है ॥५९॥ मायावी कंस के स्वरूप में रहने वाले इस देह की तू रक्षा करने में सफल था किन्तु हे मूर्ख ! तूने यह क्या दुष्कृत किया है ? तेरे अन्त करने वाला तो समुत्पन्न हो ही गया है। ॥६०॥ उस कंस ने भय से यह देवकी का आठवाँ गर्भ है, इसलिये उसे मार डाला था क्योंकि उसने यही स्मरण में रखा था कि देवकी का आठवाँ पुत्र उसकी मृत्यु कर देने वाला होगा ॥६१॥ उसके प्रतिकार करने में कंस का जो यत्न था वह सब व्यर्थ हो गया था। हे मुनि-शार्दूलो ? हरि के प्रभाव से उस कन्या की बाणी के द्वारा वह कंस और भी जड़ हो गया था ॥६२॥ उन अलिकष्ट कर्म वाले श्रीकृष्ण ने कंस को

यदु वंश मे कृष्ण भगवान् का आर्विर्भात्र और चरित्र] [४३१

भी मार डाला था । इसके प्रतिरिक्त अन्य भी बहुत से देव तथा ब्राह्मणों के घान करने वालों को श्रीकृष्ण ने मार दिया था ॥६३॥

तस्य कृष्णस्य तनयाः प्रद्युम्नप्रमुखास्तथा ।
बहवः परिसंख्याताः सर्वे युद्ध विशारदाः ॥६४॥
कृष्णपुत्राः समाख्याताः कृष्णेन सदृशाः सुताः ।
पुत्रैस्त्वेतेषु सर्वेषु चारुदेष्णादयो हरे ॥६५॥
विशिष्टा बलवतश्च रौक्मिण्यारिसूदनाः ।
पोडशस्त्रीसहस्राणि शतमेक तथाधिकम् ॥६६॥
कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मणी ।
तया द्वादशवर्षाणि कृष्णेनावलिष्टकर्मणा ॥६७॥
उष्यता वायुभक्षेण पुत्रार्थं पूजितो हरः ।
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेपो यशोधरः ॥६८॥
चारुश्चवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः साव एव च ।
एते लब्धास्तु कृष्णेन शूलपाणिप्रसादतः ॥६९॥
तान् दृष्ट्वा तनयान्वीरान् रौक्मिण्येश्च रुक्मिणीम् ।
जावदव्यग्रवीत्कृष्ण भार्या कृष्णस्य धीमतः ॥७०॥

उन श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न आदि बहुत से पुत्र परिसंख्यात किये गये हैं जो कि सभी युद्ध-विद्या के महान् पण्डित हुये थे ॥६४॥ श्रीकृष्ण के सभी पुत्र कृष्ण के ही समान कहे गये हैं । इन समस्त कृष्ण के पुत्रों ने चारुदेष्ण आदि विशिष्ट बलवान् थे और रुक्मिणी के पुत्र शत्रुओं के सूदन करने वाले हुये थे । श्रीकृष्ण की पत्नियाँ सोलह सहस्र एक सौ आठ थी ॥६५॥६६॥ उन समस्त पत्नियों में श्रीकृष्ण की सबसे बड़ी रुक्मिणी अधिक प्रिय हुई थी । उस रुक्मिणी के साथ अवलिष्ट कर्म वाले कृष्ण ने बारह वर्ष तक केवल वायु का भक्षण करके उपवास करते हुए पुत्रों के लिए भगवान् शिव का पूजन किया था । तब चारु देष्ण, सुचारु, चारुवेप, यशोधर, चारुश्वा, चारुयशा, प्रद्युम्न और गाम्भ ये पुत्र कृष्ण

ने शूलनाल के प्रसाद से प्राप्त किये थे ॥६७॥६८॥६९॥ उन रुक्मिणी के महान् वीर पुत्रों को तथा रुक्मिणी को देखकर धीमान् कृष्ण की भार्या जाम्बवती श्रीकृष्ण से बोली थी ॥७०॥

मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तरम् ।
 सुरेशसंमित पुत्रं प्रसन्नो दातुमर्हसि ॥७१॥
 जांबवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथस्ततो हरिः ।
 तपस्तप्तुं समारेभे तपोनिधिरनिदितः ॥७२॥
 सोऽथ नारायणः कृष्णः शंखचक्रगदाधरः ।
 व्याघ्रपादस्य च मुनेर्गत्वा 'चंवाश्रमोत्तमम् ॥७३॥
 ऋषिं दृष्ट्वा त्वंगिरसं प्रणिपत्य जनार्दनः ।
 दिव्यं पाशुपत योगं लब्ध्वास्तस्य चाक्षया ॥७४॥
 प्रलुप्तश्मश्रुकेशश्च घृताक्तो मुञ्जमेखली ।
 दीक्षितो भगवान्कृष्णस्तताप च परंतपः ॥७५॥
 ऊर्ध्वं बाहुनिरालवः पादांगुष्ठाग्रविधितः ।
 फलाम्बुवन्तिलभोजी च शत्रुत्रयमघोक्षजः ॥७६॥
 तपसा तस्य संतुष्टो ददौ रुद्रो बहून् वरान् ।
 सांबंजांबवतीपुत्रं कृष्णाय च महात्मने ॥७७॥

जाम्बवती ने कृष्ण से कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! आप परम प्रसन्न होकर मुझे भी विशेष गुणों से युक्त इन्द्र के सहस्र पुत्र प्रदान करने के योग्य होते हैं ॥७१॥ जगत् के स्वामी हरि ने जाम्बवती के इस वचन का श्रवण करके अनिन्दित तप के निधि ने तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया था ॥७२॥ इसके अनन्तर शङ्ख, चक्र और गदा को धारण करने वाले नारायण कृष्ण व्याघ्रपाद मुनि के उत्तम आश्रम में जाकर जनार्दन ने ऋषिरस ऋषि के दर्शन किये और उन्हें प्रणाम किया था । उस मुनि की आज्ञा से कृष्ण ने दिव्य पाशुपत योग को प्राप्त किया था ॥७३॥७४॥ अपने श्मश्रू और माथे के केशों को साफ करने वाले, घृत

यदुवंश मे कृष्ण भगवान् का आविर्भाव और चरित्र] [४३३

से प्रकट और मूज की मेखला धारण करने वाले कृष्ण ने दीक्षित होकर वहाँ पर परन्तप ने घोर तप किया था ॥७५॥ ऊपर की घोर बाहुओं को उठाकर बिना किसी अवलम्ब के पैर के घँगूठे के प्रत्येक भाग पर पवित्रित होते हुए फल, धान्य और देवल जल का आहार करके अघो-क्षम ने तीनो ऋतुओं मे तपस्या की थी ॥७६॥ इस उग्रवी तपस्या से भगवान् रुद्र बहुत सन्तुष्ट हुये थे और बहुत बरदान उन्होंने कृष्ण को प्रदान किए थे । महारमा कृष्ण के लिए जाम्बवती का साम्ब पुत्र प्रदान किया था ॥७७॥

तथा जाम्बवती चैव सप्त भार्या हरेः सुतम् ।
 ग्रहपमतुल लेभे लब्ध्वादित्य मयादिति ॥७८॥
 जायस्म च तदा तेन छेदित मुनिपुंगवाः ।
 भुजाना चैव साहस्र क्षापाद्रुद्रस्य धीमतः ॥७९॥
 अथ दंत्यवध चक्रे हलायुधसहायवान् ।
 तथा दुष्टक्षितीशाना लीलयव रणाजिरे ॥८०॥
 स हत्वा देवसभूत नरक दंत्यपुंगवम् ।
 ब्राह्मणस्योध्वचक्रस्य च दानान्महात्मनः ॥८१॥
 स्वोपभोग्यानि कन्याना पौडशातुलविक्रमः ।
 शताधिकानि जग्राह सहस्राणि महाबल ॥८२॥
 क्षापध्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान् कुलम् ।
 सादृत्य सत्कुल चैव प्रभासेऽतिष्ठदच्युत ॥८३॥
 तदा तस्यैव तु गत वर्षाणामधिक शतम् ।
 कृष्णस्य द्वारकाया वै जराबले क्षापहारिणः ॥८४॥

भगवान् की भार्या जाम्बवती ने साम्ब पुत्र की प्राप्ति करके पादित्य की प्राप्ति कर अदिति के समान परम हर्षित हुई थी । उस साम्ब ने हे मुनियो मे यथेष्टो । उस समय मे वीरमान् रुद्र के क्षाप से बाणामुर के एव सहस्र मुजाधो का छेदन कर दिया था ॥७८॥७९॥ इसके अनन्तर हलायुध थी बलराम की सहायता वाला हो दंत्यो का

वध किया था और रणक्षेत्र दुष्ट नृपों का वध लीला ही से कर दिया था ॥८०॥ महान् आत्मा वाले ऊर्ध्व चक्र ब्राह्मण के वरदान से उसने देव से समूत नरक नामक दैत्यो मे श्रेष्ठ का हनन किया था ॥८१॥ महान् बलवान् श्रीकृष्ण ने, जिनका कि अतुल विक्रम था, वहाँ से अपने उपभोग करने के योग्य सोलह हजार एक सौ कन्याओं को ग्रहण कर लिया था ॥८२॥ भगवान् अच्युत ने विप्रों के शाप के बहाने से अपने समग्र कुल का उत्तराहार किया था और उस सम्पूर्ण कुल को सहृत करके स्वर्ग प्रभास क्षेत्र मे स्थित हो गए थे ॥८३॥ उस समय मे द्वारकापुरी मे जरा के वलेश को अपहरण करने वाले श्रीकृष्ण को सौ वर्ष से अधिक अग्रणी ही चुके थे ॥८४॥

विश्वामित्रस्य कण्वस्य नारदस्य च धीमतः ।

शापं पिंडारकेऽरक्षद्वचो दुर्वाससस्तदा ॥८५॥

त्यक्त्वा च मानुषं रूपं जरकास्त्रच्छलेन तु ।

अनुगृह्य च कृष्णोऽपि लुब्धक प्रययौ दिवम् ॥८६॥

अष्टावक्रस्य शापेन भार्याः कृष्णस्य धीमतः ।

चौरेश्चापहताः सर्वास्तस्य मायाबलेन च ॥८७॥

बलभद्रोऽपि सत्यज्य नागो भूत्वा जगाम च ।

महिष्यस्तस्य कृष्णस्य रुक्मिणीप्रमुखाः शुभाः ॥८८॥

सहार्गिः विविशुः सर्वाः कृष्णेनाविलष्टकर्मणा ।

रैवती च तथा देवी बलभद्रेण धीमता ॥८९॥

प्रविष्टा पावकं विप्राः सा च भर्तृपथं गता ।

प्रेतकार्यं हरेः कृत्वा पार्थः परमवीर्यवान् ॥९०॥

रामस्य च तथान्येषा वृष्णीनामपि सुव्रतः ।

कंलमूलफलेस्तस्य बलिकार्यं चकार सः ॥९१॥

द्रव्याभावात्स्वयं पार्थो भ्रातृभिश्च दिवं गतः ।

एवं संक्षेपतः प्रोषतः कृष्णस्याविलष्टकर्मणः ॥९२॥

यदु वंश में कृष्ण भगवान् का आविर्भाव और चरित्र] [४३३]

प्रभावो विलयश्चैव स्वेच्छयैव महात्मनः ।

इत्येतत्सोमवशाना नृपाणा चरित द्विजाः ॥६३॥

य पठेच्छृणुयाद्वापि ब्राह्मणान् श्रावयेदपि ।

स याति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा ॥६४॥

उस समय में श्रीकृष्ण ने विश्वामित्र, कण्व, धीमान्, नारद और दुर्वासा के वचनों का अर्थात् शाप के वचन की पिण्डारक में रक्षा की थी अर्थात् शाप को पूरा किया था ॥६१॥ जरक नामक व्याघ्र के प्रक्षिप्त मूत्र के बहाने स श्रीकृष्ण ने इस मानवीय शरीरात्मक स्वरूप का त्याग करके तथा उस लुब्धक पर भी पूर्ण अनुग्रह करके दिवलोक को प्रस्थान किया था ॥६६॥ परम बुद्धिमान् कृष्ण की समस्त भार्या अष्टावक्र के शाप से चोरो के द्वारा अपहृत हुई थी और यह सब कुछ उनकी ही माया के बल से हुआ था ॥६७॥ फिर बलभद्र भी अपना स्वरूप का त्याग करके नाग हाकर चले गये थे । कृष्ण की रुक्मिणी आदि प्रमुख जो दुःख मर्तिणी थी वे सब अविलम्ब कर्म वाले कृष्ण के साथ प्रणिम म प्रविष्ट हो गई थी । हे विप्रगण ! रेवती देवी धीमान् बलभद्र के साथ पावक में प्रवेश कर गई थी और बड़ अपने स्वामी के ही मार्ग में प्राप्ता हो गई थी । परम वीर्य वाले सुव्रत पार्श्व (अर्जुन) ने हरि का प्रेत काम्य सम्पन्न किया था तथा बनराम का और अग्न्य वृत्तियां या भी प्रेत काम्य किया था । उसने बन्द, मूल और फलो के द्वारा सम्पूर्ण बलि देने का कर्म सम्पादित किया था क्योंकि उस समय द्रव्य का अभाव था । फिर वह पार्श्व भी अपने भाइयो के साथ दिवलोक को चला गया था । इस प्रकार से यह अविलम्ब कर्म वाले श्रीकृष्ण का चरित्र अरपन्न सन्नेप म बह दिया है जिसमें महान् आत्मा वाले श्रीकृष्ण का प्रभाव और विनय उनकी अपनी ही इच्छा के अनुसार हुए थे । हे द्विजगण ! यह सोम वन में होने वाले नृपा का चरित हुआ है । ॥६८॥६९॥७०॥७१॥७२॥७३॥ जो इसका पाठ करता है तथा श्रवण

करता है या ब्राह्मणों को श्रवण करता है वह निश्चय ही बंशव लोक में चला जाता है, इसमें विचार करने की कोई भी बात नहीं है। अर्थात् इसमें बिल्कुल भी सन्देह नहीं करना चाहिए ॥६४॥



भगवान् शिव से समस्त सृष्टि का विस्तार

आदिसर्गस्त्वया सूत सूचितो न प्रकाशितः ।
 सांप्रतं विस्तरैर्णव वक्तुमहंसि सुव्रत ॥१॥
 महेश्वरो महादेवः प्रकृतेः पुरुषस्य च ।
 परत्वे संस्थितो देवः परमात्मा मुनीश्वराः ॥२॥
 अव्यक्तं चेश्वरात्तस्मादभवत्कारणं परम् ।
 प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचितकाः ॥३॥
 गंधर्वगणैरसंहीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
 अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥४॥
 जगद्योनिं महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
 विग्रहः सर्वभूतानामीश्वराणां प्रचोदितम् ॥५॥
 अनाद्यंतमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाम्ययम् ।
 अप्रकाशमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥६॥
 अस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तं त्वासीच्छि वेच्छया ।
 गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नाविभागे तमोमये ॥७॥

इस अध्याय में शिव से ही यथातथ रूप में आदि सर्ग का निरूपण किया जाता है। ऋषियो ने कहा—हे सुव्रत ! आपने हे सूत जी ! आदि सर्ग सूचित तो किया था किन्तु उसे पूर्णतया प्रकट नहीं किया था। अब हम उसे सुनना चाहते हैं अतः विस्तार पूर्वक आप कहने के योग्य हैं ॥१॥ सूत जी ने कहा—हे मुनीश्वरो ! महेश्वर

महादेव प्रकृति और पुरुष इन दोनों के परत्व में संस्थित परमात्मा देव है ॥२॥ और अव्यक्त उस ईश्वर से परम कारण हुआ था जिसको तत्त्वों के चिन्तन करने वाले विद्वान् लोग प्रधान और प्रकृति कहते हैं ॥३॥ गन्ध, वर्ण और रसों से हीन तथा शब्द और स्पर्श से वर्जित बिना जरा वाला, ध्रुव (निरपेक्ष प्रचल) अव से रहित, निरपेक्ष और अपनी आत्मा में स्थित है ॥४॥ जगत् की योनि अर्थात् इस जगत् की उत्पत्ति करने वाला, महाभूत परम ब्रह्म सनातन अर्थात् सदा रहने वाला है । वह ईश्वर की आज्ञा से प्रेरित होता हुआ समस्त भूतों का विग्रह होता है ॥५॥ आदि अन्त से शून्य, अज्ञ (जन्म न लेने वाला), सूक्ष्म, तीन सत्त्व, रज और तम गुणों वाला, अभयव्यय, अप्रकाश और अभिज्ञेय अर्थात् विदेष ज्ञान के अयोग्य ब्रह्म के आये रहता था ॥६॥ भगवान् शिव की इच्छा से इसकी ही आत्मा एवं स्वरूप से यह सम्पूर्ण व्याप्त था । उस समय इन विभाग से रहित तमोमय में गुणों का साम्य स्वरूप था ॥७॥

सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य च ।
गुणभावाद्बध्यमानो महान्प्रादुर्ब भूवह ॥८॥
सूक्ष्मेण महता चाय अव्ययतेन समावृतम् ।
सत्त्वोद्विक्तो महानग्रे सत्तामात्रप्रकाशकः ॥९॥
मनो महास्तु विशेषमेक तात्कारण स्मृतम् ।
समुत्पन्नं लिङ्गमात्र क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं हि तत् ॥१०॥
धर्मादीनि च रूपाणि सौख्यतत्त्वायंहेतवः ।
महान् सृष्टिं विकुस्ते पोष्यमानः सिगृह्यता ॥११॥
मनो महान्मतिग्रंथं पूर्बुद्धिः स्यात्तिरोश्वरः ।
प्रज्ञा चित्तिः स्मृतिः सविद्धि द्येयदयेति त स्मृतः ॥१२॥
मनुते सर्वभूताना यस्माद्येष्टा पन्त ततः ।
सौदम्यात्तेन विभवतं तु येन तन्मन उच्यते ॥१३॥

तत्त्वानां मयजो यस्मान्महंश्च परिमाणतः ।

विशेषेभ्यो गुणेभ्योपि महानिति ततः स्मृतः ॥१४॥

सर्ग के अर्थात् रचना के समय में क्षेत्रज्ञ से अविष्टित प्रधान का गुण भाव से व्यक्त होने वाला महान् प्रादुर्भूत हुआ था ॥८॥ यह परम सूक्ष्म एवं अव्यक्त महान् से समावृत था फिर आगे चलकर सत्त्व से उद्भूत अर्थात् सत्त्व के उद्भेक वाला महान् केवल सत्ता मात्र का प्रकाश करने वाला था ॥९॥ यह महान् अर्थात् महत्तत्त्व ही एक समष्टि रूप मन सर्वोत्कृष्ट कारण कहा गया है । वह लिङ्ग मात्र समुत्पन्न क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित है ॥१०॥ सृजन करने की इच्छा से ईश्वर के द्वारा प्रेरित वह महान् लोको के तत्त्वार्थ के हेतु स्वरूप धर्म आदि रूपों को और वेदों को सृष्टि किया करता है ॥११॥ वह महेश्वर ही मन, महान्, मति, ब्रह्म, पूर्वुडि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संविद् और विश्वेश इन त्रयोदश नामों वाला कहा गया है ॥१२॥ समस्त जीवों के कर्म फल का अवबोधन किया जाना है । मनु अवबोध ने, यह धातु है । इसी से मन शब्द रचित होता है । अत्यन्त सूक्ष्म होने से मन के द्वारा उक्त कर्म फल से उत्पद्यमान यह जगत् विभक्त है इसलिये यह मन कहा जाता है ॥१३॥ तत्त्वों अर्थात् महच्छूरादि का यह मयज है अर्थात् इन सभी तत्त्वों से पहिले उत्पन्न होने वाला है और परिमाण से भी महान् है तथा विशेष सत्त्वादि गुणों से यह पूरा है अतएव इसे 'महान्'-यह कहा गया है ॥१४॥

विमर्ति मान मनुते विभाग मन्यतेपि च ।

पुरुषो भोगसवधात्त न चासौ मतिः स्मृतः ॥१५॥

बृहत्त्वात्बृहत्त्वाच्च भावानां सकलाश्रयात् ।

यस्माद्धारयते भावान्ब्रह्म तेन निरुच्यते ॥१६॥

यः पूरयति यस्माच्च कृत्स्नान्देवाननुग्रहैः ।

नयते तत्त्वभावं च तेन पूरिति चोच्यते ॥१७॥

बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान् हितं तथा ।
 यस्माद्वोध्यते चैव बुद्धिस्तेन निरुच्यते ॥१८॥
 ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात्संवर्तते ततः ।
 भोगस्य ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः ॥१९॥
 ख्यायते तद्गुणैर्वर्षि ज्ञानादिभि रनेकशः ।
 तस्माच्च महतः सज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते ॥२०॥
 साक्षात्सर्वं विजानाति महारमा तेन चेश्वरः ।
 यस्माज्ज्ञानानुगम्यैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥२१॥

ईश्वर भोग सम्बन्ध मे सबका पोषण करता है । सबल प्रमाण को भीर सबब भेद को मानता है । इसी हेतु से यह महेश्वर है भीर भति इस सज्ञा वाला कहा है । भति महत्त्व होने से भीर उत्पद्यमान भावो के पोषण से, सबका भाग्य होने से भावो को धारण करता है इस हेतु से प्रह्लाद कहा जाता है ॥१३॥१६॥ जो समस्त देवो को अनुग्रहो के द्वारा पूरित करता है भीर समग्र तत्त्व समूह को सत्ता को प्राप्त कराता है । इसी कारण से पू - यह कहा जाता है ॥१७॥ ईश्वर इस महापण्ड नाम वाला पुरी मे सम्पूर्ण भावो को भीर धर्म को जीवो के लिये घोष करता है इसी हेतु से इसे बुद्धि नाम से कहा जाता है ॥१८॥ धारम शानायधि होत स वैषयिक सुख को प्रदत्ता भीर भोग प्राप्ति जिससे होती है इसी हेतु से स्थिति कहा गया है ॥१९॥ गगनादि के वायुादि गुणो से भयया भगवत् वायु वायु आदि पञ्चगुणो में अनेक प्रकार से सारपुरषो न द्वारा जो प्रसस्य मात्र होता है इसलिये उस महान् पूज्य को स्थिति ऐसा कहा जाता है ॥२०॥ सम्पूर्ण विश्व को जो प्रसस्य रूप से जानता है जो इन्द्रिया न अनधीन है उस देवता है यह सर्व व्यापक रूप महारमा ईश्वर है । ज्ञानरूप वा है इसलिये प्रज्ञा यह परमेश्वर कहा जाता है ॥२१॥

ज्ञानादीनि च स्थाणि यद्गुणमंपनानि च ।
 विनोति यस्माद्गोणार्थं मेनामी विनिश्चये ॥२२॥

वर्तमानव्य तीतानि तथैवानागतान्यपि ।
 स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥२३॥
 कृत्स्नं च विदते ज्ञानं यस्मान्माहात्म्यमुत्तमम् ।
 तस्माद्विदेविदेशे च संविदित्यभिधीयते ॥२४॥
 विद्यतेपि च सर्वत्र तस्मिन्सर्वं च विदति ।
 तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महद्भिर्मुनिसत्तमाः ॥२५॥
 जानातेर्ज्ञानमित्याहुर्मगवान् ज्ञानसंनिधिः ।
 बधनादिपरीभावादीश्वरः प्रोच्यते बुधैः ॥२६॥
 पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्व माद्यमनुत्तमम् ।
 व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैर्देवसद्भावचितकैः ॥२७॥
 महान्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ।
 संकल्पोध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ॥२८॥

यह परमेश्वर जीवो के अनेक प्रकार के भोगों की प्राप्ति के लिये ज्ञान, ऐश्वर्य, यश प्रभृति रूप वाले अनेक प्रकार के कर्म फलों को विस्तृत किया करता है इस हेतु से उसे चिति कहा गया है ॥२२॥ वर्तमान, अतीत और अनागत समस्त कार्यों को यह स्मरण किया करता है इसलिये उसे स्मृति कहा जाता है ॥२३॥ सम्पूर्ण ज्ञान और सर्वश्रेष्ठ माहात्म्य का लाभ करता या ज्ञान रखता है इसलिये 'विदलू-लाभे' तथा 'विदज्ञाने' इन दोनों से ही सविद् शब्द की निष्पत्ति होने से दोनों ही अर्थ वाला वह होता है । अतएव उसे सविद् कहा जाता है ॥२४॥ समस्त देश और सम्पूर्ण जगत् में वह विद्यमान रहता है और जाना जाता है हे मुनि सत्तमगण ! इस हेतु से महान् पुरुषों के द्वारा वह सवित् कहा जाता है । साधारण का ज्ञान अर्थ कहते हैं और भगवान् पदंश्वर्यं विशिष्ट शिव ज्ञान के समुद्र हैं । बन्धन आदि की तिरिनकतया से बुधों के द्वारा वह ईश्वर कहा जाता है । ॥२५॥॥२६॥ एकार्थ के प्रतिपादक शब्दों के द्वारा सकल के आदि भूत अनुत्तम तत्त्व शिवाख्य को यह सब शिव के ही स्त्रीइनक है, ऐसा विचार

करने वाले तत्त्व वेत्ताओं के द्वारा व्याख्या की गई है ॥२७॥ सृजन करने की इच्छा से प्रेरित होता हुआ महान् इस मूर्ति को विदोष रूप से किया करता है । सद्गुण और मध्यवसाय ये दो वृत्ति बताई जाती हैं ॥२८॥

त्रिगुणाद्रजसोद्विक्तादहकारस्ततोऽभवत् ।
महता च घृणः सर्गो भूतादिर्ग्राह्यस्तु सः ॥२९॥
तस्मादेव तमोद्विक्तादहकारादजायत ।
भूततन्मात्रमगन्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥३०॥
भूतादिस्तु विकुर्वाणः तस्माच्च समजं ह ।
आरात गुणिर तस्मादुत्पन्न तस्मिन्क्षणम् ॥३१॥
आरात तस्माच्च तु स्वप्नमात्रं समावृणोत् ।
यामुध्रापि त्रिगुर्वाणो रूपमात्रं समजं ह ॥३२॥
उपोत्तिरत्यन्ते चापोऽनद्रूपं गुणमुच्यते ।
स्वप्नमात्रम् तु यै चायं रूपमात्रं समावृणोत् ॥३३॥
उपोत्तिरपि त्रिगुर्वाणो रसमात्रं समजं ह ।
तमपि ततो ह्यापस्मा यं तथैरमात्मिणः ॥३४॥
रसमात्रादनु ता ह्यापो मममात्रोभिरावृणोत् ।
भावभावि त्रिगुर्वन्तो गन्धमात्रं समजिरे ॥३५॥

को समावृत कर लिया था । विकृति युक्त ज्योति ने रस तन्मात्रा का सृजन किया था । इसके अनन्तर जल समुत्पन्न होते हैं जो कि सब रसों वाले हुआ करते हैं । वे जल रस मात्रा हैं और रूपमात्रा वाले अग्नि ने उसको समावृत कर लिया था । आप अर्थात् जल विकृति प्राप्त करके गन्ध तन्मात्रा का सृजन किया करते हैं ॥३३॥३४॥३५॥

सघातो जायते तस्मात्तस्य गघो गुणो मतः ।

तस्मिस्तस्मिश्च तन्मात्र तेन तन्मात्रता स्मृता ॥३६॥

अविशेषवाचकत्वादविशेषास्तस्तु ते ।

प्रशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ॥३७॥

भूततन्मात्रसर्गोय विज्ञेयस्तु परस्परम् ।

वैकारिकाः हवारात्सत्त्वोद्भिक्तास्तु सात्त्विकात् ॥३८॥

वैकारिकः ससर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते ।

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥३९॥

साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ।

एकादश मनस्तत्र स्वगुणोन्मत्तमात्मकम् ॥४०॥

श्रोत्र त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।

शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि तानि वै ॥४१॥

पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ।

गतिर्विसर्गो ह्यानदः शिल्प वाक्य च कर्म तत् ॥४२॥

उससे सघन अर्थात् पृथिवी सत्ता वाला उत्पन्न होता है उसका गुण गन्ध है । उस, उसमें उससे उस, उसकी तन्मात्रा कही गई है । वे शब्दादिक अविशेष वाचक अर्थात् तन्मात्र शब्द से प्रतिपादक होने से प्रशान्त, घोर, मूढ अर्थात् सात्त्विक, राजस, तामस होने से अविशेष कहे गये हैं ॥३६॥३७॥ यह परस्पर में भूत तन्मात्राओं का सर्ग जानना चाहिए जो वैकारिक अहङ्कार से और सत्त्वोद्भिक्त सात्त्विक से होता है ॥३८॥ वह वैकारिक सर्ग एक ही साथ संप्रवृत्त होता है । अब सात्त्विक राजस अहङ्कार सर्ग को बताया जाता है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच

कर्मेन्द्रियाँ उनके साधक करण होते हैं । इनके वैकारिक दश नियन्ता देव होते हैं । इन दश इन्द्रियो के प्रतिरिक्त ग्यारहवाँ मन होता है जो अपने गुण की विशेषता के कारण ज्ञान और कर्म दोनों ही प्रकार के स्वरूप वाला होता है ॥३६॥ ४०॥ अब पाँच ज्ञानेन्द्रियो की बतलाते हैं, श्रोत्र, स्पर्श, दोनो नेत्र, जिह्वा और पाँचवी नासिका ये पाँच बुद्धीन्द्रियाँ हैं जो कि क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान प्राप्त करती हैं । इसी प्राप्ति करते के कारण उन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है । ॥४१॥ दोनो पैर, पायु, (मल के त्याग करने वाली अर्थात् गुदा) उपस्थ, (मूत्र का उत्सर्ग करने वाली अर्थात् जननेन्द्रिय) दोनो हाथ और बाएँ दाहिने इन्द्रिय हैं । उक्त पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मिलाकर कुल दश इन्द्रियाँ होती हैं । इन कर्म करने वाली इन्द्रियो का कार्य क्रम से गमन करना, मल का त्याग करना, विषयानन्द लेना, शिल्प कार्य करना और वचन बोलना होता है । ये ही इन पाँचों के कर्म हैं ॥४२॥

आकाश शब्दमात्र च स्पशमत्र समाविशत् ।
 द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥४३॥
 रूपं तथैव विदत्त शब्दस्पर्शं गुणानुभूतौ ।
 त्रिगुणस्तु ततस्त्वग्निः सशब्दस्पर्शरूपवान् ॥४४॥
 सशब्दस्पर्शरूपं च रममात्रं समाविशत् ।
 तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥४५॥
 शब्दस्पर्शं च रूपं च रमो वै गन्धमाविशत् ।
 सगता गन्धमात्रेण आविशतो महीमिमाम् ॥४६॥
 तस्मान्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शस्यते ।
 शाता धोराश्च मूढाश्च विदेपास्तेन ते स्मृताः ॥४७॥
 परस्परानुप्रवेशाद्वारयति परस्परम् ।
 भूमेरन्तस्तिग्द सर्वं लोभानोताचलावृणम् ॥४८॥

विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ।

गुण पूर्वस्य सर्गस्य प्राप्नु वंत्युत्तरोत्तराः ॥४६॥

अब आकाश आदि पाँचों भूतों का क्रम से सक्रमण बताया जाता है, आकाश शब्द मात्रा वाला होता है । उसका स्पर्श मात्रा में समावेश होता है । अतएव वायु दो गुण वाला होता है । आकाश का केवल एक ही शब्द गुण होता है किन्तु वायु के शब्द और स्पर्श दो गुण होते हैं ॥४३॥ शब्द और स्पर्श ये दोनों गुण रूप में प्रवेश करते हैं । इसीलिये अग्नि शब्द, रूप और स्पर्श, इन तीन गुणों वाला होता है ॥४४॥ शब्द, स्पर्श और रूप ये तीनों गुण रस मात्रा में समाविष्ट हुए हैं । इसी कारण से रसात्मक जल चार गुणों से युक्त होता है ॥४५॥ शब्द, रूप, रस और स्पर्श ये चारों गुण गन्ध में आविष्ट हो जाते हैं । गन्ध की मात्रा से सङ्गत होकर इस पृथ्वी में समावेश प्राप्त करते हैं । इसलिये यह भूमि पाँच गुण वाली है और यह स्थूल होकर पाँचों भूतों में प्रशस्त है । वे शब्द आदिक गुण अधिक गुणत्व होने से शान्त, धीरे और मूढ़ एवं विभिन्न कार्य करने वाले विशेष कहे गये हैं ॥४६॥४७॥ परस्पर अनुप्रवेश से ये परस्पर में भूमि के अन्दर लोका लोका चलावृत इस सबको धारण करते हैं ॥४८॥ शब्दादित विशेष तत्तद् इन्द्रियो के द्वारा ग्राह्य होते हैं क्योंकि वे सब नियत हैं । पूर्व सर्ग अर्थात् प्रथम सृजन का स्वरूप जो आकाश आदि हैं उनके गुण को उत्तरोत्तर सर्ग वायु आदि प्राप्त किया करते हैं ॥४९॥

तेषां यावच्च तद्यच्च यच्च तावद्गुणं स्मृतम् ।

उपलभ्याप्सु चैव गन्धं केचिद्ब्रूयुरपां गुणम् ॥५०॥

पृथिव्यामेव तं विद्यादपां वायोश्च संश्रयात् ।

एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात् ॥५१॥

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।

महादयो विशेषांता ह्यण्डभुत्पादयन्ति ते ॥५२॥

एककालसमुत्पन्न जलबुदबुदवच्च तत् ।
 विशेषेभ्योण्डमभवन्महत्तदुदकेशयम् ॥५३॥
 अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोण्ड समावृतम् ।
 आपो दशगुणेनेतास्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥५४॥
 तेजो दशगुणेनेव वायुना बाह्यतो वृतम् ।
 वायुदंशगुणेनेव बाह्यतो नभसा वृतः ॥५५॥
 आकाशेनावृतोः वायुः खं तु भूतादिनावृतम् ।
 भूतादिमंहता चापि अव्यक्तेनावृतो महान् ॥५६॥

उनका जितना और है वह उतना ही गुण कहा गया है । जल में गन्ध की प्राप्ति करके कुछ लोग उस गन्ध को जन का ही गुण बोलते हैं ॥५०॥ गन्ध गुण वस्तुतः पृथिवी का ही होता है जल में तो वायु के सश्रय से प्रतीत होता है । महत्तात्वाहकार शब्दादि ये सात महान् आत्मा वाले हैं क्योंकि इसमें अन्योन्य का सश्रय होता है । वे महदादि विशेषान्त पुरुषाधिष्ठित होने से और अव्यक्त के अनुग्रह से अणु की उत्पत्ति किया करते हैं ॥५१॥५२॥ इस काल में समुत्पन्न जल के बुलबुले के समान वह जल में क्षयन करने वाला विशेषो से महान् अण्ड हो गया था ॥५३॥ वह अण्ड बाहिर के भाग में दश गुने जल से समावृत था और जल से दश गुणित आकाश से आवृत था । इसी प्रकार से आकाश भूतादि वायु से आवृत था । भूतादि महान् से और महान् अव्यक्त से आवृत था ॥५४॥५५॥५६॥

शर्वश्चाडकपालस्थो भवश्चाभसि सुव्रताः ।
 रुद्रोऽग्निमध्ये भगवानुग्रो वायो पुनः स्मृतः ॥५७॥
 भीमश्चावनिमध्यस्थो ह्यहंकारे महेश्वरः ।
 बुद्धी च भगवानीशः सर्वतः परमेश्वरः ॥५८॥
 एतैरावरणैरङ्गं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।
 एता आवृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ॥५९॥

प्रसर्गकाले स्थित्वा तु ग्रसंत्येताः परस्परम् ।
 एवं परस्परोत्पन्ना धारयति परस्परम् ॥६०॥
 आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिण्यु ।
 महेश्वरः परोव्यक्तादहमव्यक्तसंभवम् ॥६१॥
 अंडाज्जज्ञे स एवेशः पुरुषोक्तसमप्रभः ।
 तस्मिन्कार्यस्य करणं ससिद्ध स्वेच्छयैव तु ॥६२॥
 सावै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ।
 तस्य वामाङ्गजो विष्णुः सर्वदेवनमस्कृतः ॥६३॥

ये समस्त अण्डावरण भगवान् शिव की ही माठ मूर्तियां थीं, यह
 बताते हुये कहा जाता है कि हे सुत्र-गो ! अण्ड कपाल में स्थित शर्व ये,
 जल में भव, अग्नि के मध्य में रुद्र भगवान्, वायु में उग्र, अश्वनि के मध्य
 में भीम, अहङ्कार में महेश्वर, बुद्धि में भगवान् ईश और सब
 और परमेश्वर इस प्रकार शिव की माठ मूर्तियां थी ॥५७॥५८॥ इन
 प्रकृति जन्म सात आवरणों से अण्ड आवृत था । ये अण्डो-य का आव-
 रण कर माठ प्रकृति के भेद स्थित थे ॥५९॥ प्रसर्ग के समय में ये
 प्रकृतियां परस्पर में ग्रसती हैं और परस्पर में समुत्पन्न होकर धारण
 किया करती हैं ॥६०॥ वे समस्त विकार विकारियों में आधार, आधेय
 भाव से स्थित थे । पर महेश्वर अव्यक्त है और उस अव्यक्त से अण्ड की
 उत्पत्ति हुई थी ॥६१॥ उस अण्ड से अर्क (सूर्य) के समान प्रभा वाला
 वह ही ईश पुरुष समुत्पन्न हुआ था । उस पुरुष में उत्पद्यमान सर्ग स्व-
 रूप वाले कार्य का करण उत्पादन स्वेच्छा से ही सिद्ध था किसी अन्य
 सामग्री से नहीं था ॥६२॥ वह ही सबसे प्रथम शरीर के धारण करने
 वाला था जोकि पुरुष कहा जाता है । उसके ही वामाङ्ग से समुत्पन्न सब
 देवों के द्वारा वन्दित भगवान् विष्णु हुये हैं ॥६३॥

लक्ष्म्या देव्या ह्यभूद्देव इच्छया परमेश्विनः ।

दक्षिणागभवो ब्रह्मा सरस्वत्या जगद्गुरुः ॥६४॥

तस्मिन्ने इमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ।
 चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥६५॥
 लोकालोकद्वयं किंचिदडे ह्यस्मिन्समर्पितम् ।
 यत्तु सृष्टौ प्रसंख्यातं मया कालान्तरं द्विजाः ॥६६॥
 एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ।
 रात्रिश्चैतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः ॥६७॥
 अहस्तस्य तु या सृष्टिः रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः ।
 नाहस्तु विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत् ॥६८॥
 उपचारस्तु क्रियते लोकानां हितकाम्यया ।
 इन्द्रियाण्येन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ॥६९॥
 तस्मात्सर्वाणि भूतानि बुद्धिश्च सह दैवतैः ।
 अहस्तिष्ठन्ति सर्वाणि परमेशस्य धामतः ॥७०॥

परमेश्वरी के दक्षिण भ्रष्ट से उत्पन्न सरस्वती के जगद्गुरु
 ब्रह्मा है जोकि सक्ष्मी देवी की इच्छा से हुये थे ॥६४॥ उसे प्रण्ड मे
 प्रन्दर ये समस्त लोक, विश्व और जगत् था । चन्द्र और सूर्य जो संपूर्ण
 ग्रह और नक्षत्रों के सहित तथा वायु के साथ थे ॥६५॥ लोका लोक
 द्वय इस प्रण्ड मे समर्पित थे । हे द्विजगण ! जोकि मैंने कालान्तर मे
 सृष्टि मे प्रसङ्गपाठ किये हैं ॥६६॥ यह काल का प्रन्तर परमेश्वर का
 दिन जानना चाहिये और परमेश्वर की इतनी ही रात्रि समझ लेनी चाहिए
 ॥६७॥ उसकी जो सृष्टि है वह तो दिन है और जो प्रलय वाल है वही
 रात्रि है, ऐसा कहा गया है । वैसे उसका दिन और रात्रि कुछ भी
 नहीं है, ऐसा धारण करना चाहिये ॥६८॥ लोको के हित को कामना
 से उपचार किया जाता है । समस्त इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के पंच और पांच
 महाभूत है ये सम्पूर्ण भूत और इनके अधिदैवतों के साथ बुद्धि ये सब
 उस धामान् परमेश के दिन हैं ॥६९॥ ॥७०॥

अहरन्ते प्रलीयते रात्र्यते विश्वसंभवः ।

स्वात्मन्यवस्थिते व्यक्ते विरारे प्रतिसादते ॥७१॥

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ।
 तमःसत्त्वरजोपेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ॥७२॥
 अनुपृक्तावभूतांतावोत्प्रोतौ परस्परम् ।
 गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिव्यये ॥७३॥
 तिले यथा भवेत्तोलं घृतं पयसि वा स्थितम् ।
 तथा तमसि सत्त्वे च रजस्यनुसृतं जगत् ॥७४॥
 उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तथा ।
 अहर्मुखे प्रवृत्तश्च परः प्रकृतिसंभवः ॥७५॥
 क्षोभयामास यागेन परेण परमेश्वरः ।
 प्रधानं पुरुषं चैव प्रविश्य स महेश्वरः ॥७६॥
 महेश्वराश्रयो देवा जज्ञिरे जगदोश्वरात् ।
 शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वतिमानः शरोरिणः ॥७७॥

वे सब दिन के अन्त में अर्थात् परमेश के दिन के प्रवृत्त के समय में प्रलीन हो जाया करते हैं और जब उस परमात्मा की रात्रि का अन्त होता है तब इस विश्व का सम्भव अर्थात् उत्पत्ति हुआ करती है । अपनी आत्मा में विकार के सहित होने पर व्यक्त अवस्थित होता है ॥७१॥ उस समय तम, सत्त्व और रज से युक्त जोकि सत्त्व से वहाँ व्यवस्थित रहते हैं प्रधान और पुरुष ये दोनों साधर्म्य के साथ अवस्थित रहा करते हैं ॥७२॥ ये दोनों ही परस्पर में अनुपृक्त, अभूतान्त और भूत-प्रोत होते हैं । जब तीनों गुणों की अर्थात् सत्त्व, रज और तम इनकी साम्य अवस्था होती है तभी लय हो जाता है और इन गुणों की विषमता होने की ही सृष्टि एवं सृजन कहा जाता है । ७३॥ जिस प्रकार से तिलों में तेल रहा करता है तथा दूध में घृत रहता है और भासमान नहीं होता है उसी प्रकार से इन तीन सत्त्व, रज और तम गुणों में यह समग्र जगत् अनुसृत होता है ॥७४॥ पर तम जो माहेश्वरी समग्र रात्रि है उसकी उपासना करके फिर दिन के आरम्भ में दूसरा प्रकृति का सम्भव प्रवृत्त होता है ॥७५॥ परमेश्वर पर योग से शुद्ध होकर वह

महेश्वर प्रधान और पुष्प में प्रवेश करते हैं तभी महेश्वर से देवगण उत्पन्न हुए हैं और फिर ईश्वर से इन तीनों देवों के उत्पन्न होने के पश्चात् यह जगत् उत्पन्न हुआ है। ये समस्त क्षीरी शश्वत (नित्य) परम गुह्य, और सर्वात्मा है ॥७६॥७७॥

एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः ।

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयोग्नयः ॥७८॥

परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः ।

परस्परेण दत्तंते धारयति परस्परम् ॥७९॥

अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः ।

क्षण वियोगो न ह्येषा न त्यजति परस्परम् ॥८०॥

ईश्वरस्तु परो देवो विष्णुश्च महतः परः ।

ब्रह्मा च रजसा युक्तः सर्गादौ हि प्रवर्तते ॥८१॥

परः स पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिः सा परा स्मृता ॥८२॥

अधिष्ठिता सा हि महेश्वरेण प्रवर्तते चोद्यमाने समंतात् ।

अनुप्रवृत्तस्तु महास्तदेना चिरस्थिरत्वाद्विषय श्रियः स्वयम् ॥८३॥

प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकालः प्रवर्तते ।

ईश्वराधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात् ॥८४॥

ये ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों देवता हैं, ये ही तीन गुण हैं ये ही तीन लोक हैं और ये ही तीन अभिर्या हैं ॥७८॥ ये सब एक दूसरे के परस्पर में आश्रित रहने वाले और परस्पर में अनुव्रत होते हैं। परस्पर में ही रहते हुए एक दूसरे को धारण किया करते हैं ॥७९॥ ये एक दूसरे के मिथुन वाले अर्थात् इनके एक दूसरे से दाम्पत्य भाव रखकर उत्पन्न होने वाले हैं और अन्योन्य के आपस में उपजीवी भी होते हैं। इनका एक क्षण को भी वियोग नहीं होता है और परस्पर में कोई भी विषय का त्याग नहीं किया करते हैं ॥८०॥ ईश्वर अर्थात् महेश्वर तो पर देव है और विष्णु महत् से पर है ब्रह्मा सर्ग के आदि

मे रजगुण से युक्त हुआ करते हैं और तभी इस कार्य में प्रवृत्त होते हैं अर्थात् सृजन का कार्य किया करते हैं। वह पुरुष पर और प्रकृति भी परा जाननी चाहिये ॥८१॥८२॥ वह प्रकृति जिसको परा बताया गया है जिस समय में भगेश्वर से अधिष्ठित होनी है वह सभी ओर से सर्ग रचना के कार्य में प्रवृत्त हो जाया करती है। महान् इसमें अनुप्रवृत्त रहने वाला होता है। इसमें चिरकाल से स्थित होने के कारण स्वयं सृष्टि की श्री का विषय होता है ॥८३॥ प्रधान के तीनों गुणों की विषमता होने पर, सर्ग का समय प्रवृत्त हुआ करता है। जोकि सद् और असत् स्वरूप वाले ईश्वर से अधिष्ठित हुआ करते हैं ॥८४॥

ससिद्धः कार्यकरणे रुद्रश्चाग्रे ह्यवर्तत ।

तेजसाप्रतिमो धीमानव्यक्त सप्रकाशकः ॥८५॥

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ।

ब्रह्मा च भगवास्तस्माच्चतुर्वक्त्रः प्रजापतिः ॥८६॥

ससिद्धः कार्यकरणे तथा वै समवर्तत ।

एक एव महादेवस्त्रिधैव स व्यवस्थितः ॥८७॥

अप्रतीपेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण समन्वितः ।

धर्मेण चाप्रतीपेन वैराग्येण च तेऽन्विताः ॥८८॥

अव्यक्ताज्जायते तेषा मनसा यद्यदीहितम् ।

वशीकृतत्वात्रैगुण्य सापेक्षत्वात्स्वभावतः ॥८९॥

चतुर्मुखस्तु ब्रह्मात्वे कालत्वे चान्तिकः स्मृतः ।

सहस्रमूर्धा पुरुषस्त्रिस्रोऽवस्थाः स्वयंभुवः ॥९०॥

ब्रह्मात्वे सृजते लोकान्कालत्वे सक्षिपत्यपि ।

पुरुषत्वे ह्यदासीनस्त्रिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः ॥९१॥

कार्य के करने में ससिद्ध रुद्र आगे होते हैं। वह तेज से अप्रतिम अर्थात् अनुपम, धीमान्, अव्यक्त और अनि-भीति प्रकाश करने वाले हैं ॥८५॥ वह ही सबसे पहले शरीर धारी हैं और वही पुरुष नाम से कहे जाते हैं। उन्हीं से चार मुखों वाले प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हाथे

हैं ॥८६॥ यह ब्रह्मा सृजन के कार्य करने में संसिद्ध होकर प्रवृत्त होते हैं । केवल एक ही महादेव हैं जोकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस प्रकार से तीन स्वरूपों में भिन्न-भिन्न सृजनादि कार्य करने में व्यवस्थित रहा करते हैं ॥८७॥ ये अप्रतीय ज्ञान, ऐश्वर्य, धर्म और अप्रतीय वैराग्य से समन्वित होते हैं । उनके मन से जो भी कुछ ईद्वित होता है अर्थात् जो भी कुछ वे मन में संचकर करना चाहते हैं वह भगवन से समुत्पन्न हुआ करता है क्योंकि त्रिगुण्य बन्धोक्त होता है तथा स्वभाव से सापेक्ष भी होता है अर्थात् बिना तीन गुणों के कुछ भी नहीं हुआ करता है । ॥८८॥८९॥ स्वयम्भू की तीन अवस्थाएँ होती हैं । जब वह चार मुखों से युक्त होते हैं तो ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं और जब काल के करने वाला उसका स्वरूप होना है तो वही भक्तिक, इस नाम से कहे गये हैं । सहस्र मूर्धा वाले वह पुरुष होते हैं । इस प्रकार से उसी एक की ये भिन्न-भिन्न तीन अवस्थाएँ हुआ करती हैं ॥९०॥ जब ब्रह्मा के स्वरूप में होते हैं तो यह लोको का सृजन किया करते हैं और कालत्व की अवस्था में जब अपना सहारक स्वरूप धारण करते हैं तो सबका संशेप कर देते हैं अर्थात् सहार किया करते हैं । पुरुष के स्वरूप में यह रहकर उदासीन भाव धारण कर लेते हैं । इस तरह प्रजापति की तीन अवस्थाएँ हुआ करती हैं ॥९१॥

ब्रह्मा कमलगर्भाभो रुद्रः कालाग्निसन्निभः ।
 पुरुषः पुण्डरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः ॥९२॥
 एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ।
 महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥९३॥
 नानाकृतिक्रियारूपनामवति स्वलीलया ।
 महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥९४॥
 त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ।
 चतुर्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ॥९५॥

यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानयम् ।
 यच्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ॥६६॥
 ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीरी सोस्य यत्प्रभुः ।
 स्वामित्वमस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ॥६७॥
 भगवान् भगवद्भावाद्भिर्मलत्वाच्छिवः स्मृतः ।
 परमः संप्रकृष्ट त्वादवनादोमिति स्मृतः ॥६८॥

ब्रह्मा कमल के मध्य भाग की आभा के समान आभा वाले होते हैं । रुद्र स्वरूप कालाग्नि के सदृश होना है । पुरुष पुण्डरीक के समान नेत्रों वाला परमात्मा या स्वरूप वाला है ॥६२॥ महेश्वर एक प्रकार का, दो तरह का, तीन प्रकार का और बहुत से तरह के शरीरों को धारण किया करते हैं और बदल कर विकृत करते हैं ॥६३॥ उनकी क्रिया, यत्न, रूप और नाम अनेक होते हैं यह उनकी अपनी ही नीला है । उसी से ऐसा करते हैं । एक ही महेश्वर ऐसा करते और बदलते रहा करते हैं ॥६४॥ यह लोक तीन प्रकार का होता है अतएव त्रिगुण कहा जाता है । चार भागों में चार प्रकार से विभक्त होने से यह चतुर्व्यूहक हो गया है ॥६५॥ जो प्राप्त किया करता है, जो प्रदण करता है और यह जो विषयों का भवन करता है तथा जो इसका सर्वदा भाव रहता है इससे यह 'आत्मा'—इस नाम वाता कहा जाया करता है ॥६६॥ यह सर्वगत है इसलिये ऋषि होता है । इसका प्रभु शरीरी होता है । इसका स्वामित्व होने से यह सब है और सबमें प्रवेश होने से यह विष्णु है ॥६७॥ भगवद् का भाव होने के कारण इसे ही भगवान् कहा जाता है तथा अत्यन्त निर्मल होने से शिव कहा गया है । संप्रकृष्ट होने से यह परम है और अवन के कारण ही से इसे भोम् कहा गया है ॥६८॥

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः ।

त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्यं सप्रवर्तते ॥६९॥

सृजते असते चैव रक्षते च त्रिभिः स्वयम् ।
 आदित्वादादिदेवोसावजातत्वादजः स्मृतः ॥१००॥
 पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ।
 देवेषु च महान्देवो महादेवस्ततः स्मृतः ॥१०१॥
 सर्वंगत्वाच्च देवानामवश्यत्वाच्च ईश्वरः ।
 बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ॥१०२॥
 क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानादेकत्वात्केवलः स्मृतः ।
 यस्मात्पुण्यां स शेते च तस्मात्पूरुष उच्यते ॥१०३॥
 अनादित्वाच्च पूर्वत्वात्स्वयभूरिति सस्मृतः ।
 याज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रांतदर्शनात् ॥१०४॥
 क्रमणः क्रमणीयत्वात्पालकश्चापि पालनात् ।
 आदित्य सज्ञः कपिलो ह्यग्नजोऽग्निरिति स्मृतः ॥१०५॥
 हिरण्यमस्य गर्भोभूद्विरण्यस्यापि गर्भजः ।
 तस्माद्विरण्यगर्भत्वं पुराणोऽस्मिन्निरुच्यते ॥१०६॥
 स्वयभुवोऽपि वृत्तस्य कालो विश्वात्मनस्तु यः ।
 न शक्यः परिसख्यातुमपि वर्षशतैरपि ॥१०७॥

सबका विशेष ज्ञान होने के कारण से वह सर्वज्ञ है । क्योंकि यह सर्वमय होता है अतः इसे सर्व कहा गया है । यह अपने स्वरूप को तीन भागों में विभक्त करके त्रैलोक्य में सम्प्रवृत्त होता है ॥६६॥ यह परम पुरुष ही अपने तीन स्वरूपों के द्वारा इस विश्व का सृजन, रक्षण और अस्तन किया करते हैं । यह सबके आदि में रहने वाले हैं इसलिये आदि देव हैं और अजात होने से ही यह अज कहे गये हैं ॥१००॥ क्योंकि यह समस्त प्रजा का पालन करते हैं इसी कारण से इनका नाम प्रजापति कहा गया है । यह समस्त देवों में महान् देव हैं अतएव इनको महादेव कहा गया है ॥१०१॥ सर्वत्र गमन करने से और देवों अवश्य होने से ईश्वर इनका नाम कहा गया है । बृहत् होने से इनको ब्रह्मा और भूत होने से भूत कहा गया है ॥१०२॥ क्षेत्र के विज्ञान होने से इनको क्षेत्रज्ञ और

एक ही होने के कारण केवल, यह नाम कहा गया है । क्योंकि पुरी में शयन किया करते हैं अतएव 'पुरुष'—इस नाम से कहा जाता है ॥१०३॥ अनादि होने से और सबके पूर्व रहने वाले होने से ही यह 'स्वयम्भू' कहे गये हैं । यजन करने के योग्य होने से यज्ञ तथा विक्रान्त दर्शन होने के कारण कवि कहे गये हैं ॥१०४॥ क्रमण करने के योग्य होने से 'क्रमण' और पालन करने के कारण से इनका नाम पालक कहा गया है । आदित्य संज्ञा वाला, कपिल, अग्न्य, और अग्नि कहा गया है । ॥१०५॥ इसका गर्भ हिरण्य षा और हिरण्य के भी गर्भ से उत्पन्न थे इसी कारण से इस पुराण में हिरण्यगर्भत्व कहा जाता है ॥१०६॥ इस स्वयम्भू का वृत्त और विश्वात्मा का जो काल है वह सैकड़ों भी वर्षों में परिगणना करने के योग्य नहीं हो सकता है ॥१०७॥

कालसख्याविवृत्तस्य परार्धो ब्रह्मणः स्मृतः ।

तावच्छेषोऽस्य कालोन्यस्तस्याते प्रतिसृज्यते ॥१०८॥

कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै ।

समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाः परे तु ये ।

यस्त्वय वर्तन्ते कल्पो वाराहस्त निबोधत ॥१०९॥

प्रथमः साप्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तन्ते द्विजाः ।

यस्मिन्स्वायम्भवाद्यास्तु मनवस्ते चतुर्दश ॥११०॥

अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः ।

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्विषा सपर्वता ॥१११॥

पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या महेश्वरं ।

प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ॥११२॥

मन्वतरेण चैकेन सर्वाण्येवातराणि च ।

कथितानि भविष्यति कल्पः कल्पेन चैव हि ॥११३॥

अतीतानि च कल्पानि सोदर्काणि सहान्वयं ।

अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विज्ञानता ॥११४॥

वर्तमान ब्रह्मा की काल संख्या पराबं बताई गई है । उतने परिमाण वाला इसका काल शेष है । उसके अन्त में अर्थात् द्वितीय परार्धान्त में प्रतिसर्जन अर्थात् इस जगत् का संहार किया जाता है ॥१०८॥ सहस्रो करोड जो ब्रह्मभूत व्यतीत हो गये हैं तथा कल्पों के प्रत्यक्ष कुक्ष शेष हैं । जो यह कल्प इस समय में वर्तमान है उसको बारह कल्प समझ लो ॥१०९॥ उनमें यह इस समय होने वाला प्रथम कल्प है जिसमें कि स्वायम्भु व प्रादि चौदह मनु हुए हैं ॥११०॥ जो व्यतीत हुए वर्तमान काल में विद्यमान और भविष्य काल में घाने वाले हैं उनसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी सात ढोपों वाली और पर्वतों के सहित है ॥१११॥ पूर्ण युग सहस्र पर्यन्त महेश्वरों के द्वारा यह परिपालन करने के योग्य होती है । प्रजामी और तप से उनका विस्तार श्रवण करो ॥११२॥ एक मन्वांतर से समस्त ही अन्तर और बरु से कल्प वगित होंगे ॥११३॥ व्यतीत हो जाने वाले कल्प मन्वकों के सहित योदकं हैं और वसी के समान ज्ञानवान् पुष्प को जो मनागत हैं उनमें तर्क करना चाहिए ॥११४॥

आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टे च पृथिवीतले ।
 आततारंकनीरेस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन ॥११५॥
 एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजगमे ।
 तदा भवति वै ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥११६॥
 सहस्रशीर्षा पुरयो रुक्मवर्णस्त्यतोद्विजः ।
 ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाष सलिले तदा ॥११७॥
 सत्त्वाद्देवात्प्रबुद्धस्तु सूर्यं सौरमुद्देशत ।
 इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥११८॥
 आपो नाराश्च गूढव इत्यर्षा नाम सुश्रुमः ।
 आपूर्यं ताभिरयनं वृत्तयानात्मनो यतः ॥११९॥
 अप्सु दोते यतस्तस्मात्ततो नारायणः स्मृतः ।
 चतुर्गुणसहसस्य नैशं वानमुपास्यतः ॥१२०॥

शर्वयन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ।

ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्वायुभूत्वा समाचरत् ॥१२१॥

इस पृथ्वी तल के नष्ट हो जाने पर सबसे आगे जल हुआ था । जिसमें सम्पूर्ण नक्षत्र नष्ट हो गये हैं ऐसे एक जल वाले ब्रह्माण्ड में कुछ भी नहीं जाना जाता था ॥११५॥ उस समय में समस्त स्यावर और जङ्गम सृष्टि के नष्ट हो जाने पर केवल एक ही अणु व शेष रहा था उसमें उस वक्त सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र पाद वाला तथा सहस्र शिरो से युक्त पुरुष जोकि इन्द्रिय गोचर नहीं था और सुवर्ण के तुल्य वर्ण वाला था नारायण नामक ब्रह्मा उस जल में शयन करता था ॥११६॥ ॥११७॥ जब वह सत्त्व गुण का उद्रेक हुआ तो प्रबुद्ध हुआ था और उसने सम्पूर्ण लोक को दृश्य देखा था । यहाँ पर नारायण के प्रति इस श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥११८॥ आप और नारा अर्थात् नरसूनु ये दो नाम जल के सुनते हैं । उनसे आपूरित करके क्योंकि अपना अयन बनाया था और जिस कारण से जल में शयन किया करते हैं इसीलिये इनका नाम 'नारायण'—यह कहा गया है । एक सहस्र चतुर्गुणी का रात्रि के काल की उपासना करने वाले की रात्रि का जब अन्त हुआ तो उस समय में वह सर्ग के करने के कारण से ब्रह्मत्व को अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप धारण करते हैं । ब्रह्मा के उस जल में वायु होकर समाचरण करता था ॥११६॥१२०॥१२१॥

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्तु सः ।

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायातर्गतां महीम् ॥१२२॥

अनुमानादसं भूढो भूमेरुद्धरणं पुनः ।

अकरोत्स तनूमन्यां कल्पादिषु यथापुरा ॥१२३॥

ततो महात्मा भगवान्दिव्यरूपमचितयत् ।

सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समंततः ॥१२४॥

किन्तु रूपमहं कृत्वा उद्धरेय महीमिमाम् ।

जलकीडानुसदृशं वाराहं रूपमाविशत् ॥१२५॥

अधृष्य सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ।
 पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१२६॥
 अद्भिः संछादितं भूमिं स तामाशु प्रजापतिः ।
 उपगम्योज्जहारेनामापश्चापि समाविशत् ॥१२७॥
 सामुद्रा वै समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च ।
 रसातलतले मग्ना रसातलपुटे गताम् ॥१२८॥
 प्रभुर्लोकहितार्थाय दष्ट्याम्युज्जहार गाम् ।
 ततः स्वस्थानमानीय पृथिवी पृथिवीधरः ॥१२९॥

वर्षाकाल में रात्रि के समय में ख़ोत की भाँति उसने उस सलिल में अन्तर्गत पृथ्वी को अनुमान से जान लिया था और फिर उस भूमि के उद्धार करने वाला पहले कल्याण की भाँति प्रन्थ शरीर उसने धारण किया था ॥१२२॥१२३॥ इसके पश्चात् महान् आत्मा वाले भगवान् ने दिव्य रूप का चिन्तन किया था क्योंकि चारों ओर जल में डूबी हुई भूमि को देख लिया था ॥१२४॥ भगवान् ने मन मन में विचार था कौन सा रूप धारण करके हम जल में निमग्न पृथ्वी का उद्धार करना चाहिये फिर भगवान् ने जल की क्रीड़ा के ही समान वाराह रूप में प्रवेश किया था ॥१२५॥ समस्त भूतों के द्वारा धर्पित न करने के योग्य वाङ्मय ब्रह्म सज्ञा वाला प्रभु भूमि के उद्धारण करने के लिए रसातल में प्रवेश कर गये थे ॥१२६॥ वहाँ पर देखा कि मही एकदम जल से पूर्णतया संछादित हो रही है । प्रजापति वह प्रभु शीघ्र ही उसके समाप में पहुँच गये थे और उसे वहाँ से उठाया था तथा उस जल में भी अन्दर प्रवेश कर लिया था ॥१२७॥ समुद्र के जल समुद्रों में और नदियों के जल नदियों में जैसे हो वैसे ही रसातल के पँदे में मग्न और रसातल के पुट में गई हुई भूमि को प्रभु ने लोको के कल्याण एवं हित के सम्पादन करने के लिये अपनी दाढ़ पर उठा लिया था और फिर अपने स्थान पर समागम होकर पृथ्वी के धारण करने वाले ने भूमि को साकर प्राप्त करा दिया था ॥१२८॥१२९॥

मुमोच पूर्ववदसौ धारयित्वा धराधरः ।
 तस्योपरि जलीघस्य महती नोरिव स्थिता ॥१३०॥
 तत्समा ह्यरुदेहत्वान्न मही याति संप्लवम् ।
 तत उत्क्षिप्य तां देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥१३१॥
 पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेम्बुजेक्षणः ।
 पृथिवी च समा कृत्वा पृथिव्या सोचिनोद्गिरीन् ॥१३२॥
 प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाम्निना ।
 तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भूरिविस्तराः ॥१३३॥
 शैत्यादेकार्णांवे तस्मिन् वायुना तेन संहताः ।
 निपिक्ता यत्रयत्रासस्तत्रतत्राचलाभवन् ॥१३४॥
 तदाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
 गिरयो हि निगीर्णत्वाच्छयानत्वाच्छिखोच्चयाः ॥१३५॥
 ततस्तेषु विकीर्णेषु कोटिषो हि गिरिष्वथ ।
 विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः ॥१३६॥
 ससमुद्रामिमा पृथ्वी सप्तद्वीपा सपर्वताम् ।
 भूराद्याश्च तुरो लोकान्पुनः सोऽथ व्यकल्पयत् ॥१३७॥
 लोकान्प्रकल्पायत्वाथ प्रजासर्गं ससर्ज ह ।
 ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान्सृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥१३८॥

धरा के धारण करने वाले इस वाराह प्रभु ने उस मही को धारण कर लिया था और पूर्व की भाँति इसको लाकर छोड़ा था । उस जल के समूह के ऊपर यह पृथ्वी एक बहुत बड़ी परम विशाल नौका के समान स्थित हो गई थी ॥१३०॥ उसी के समान विशाल देह के होने से फिर यह मही संप्लव को प्राप्त नहीं हुई थी । देव ने जगत् की स्थापना करने की इच्छा से उस भूमि को उत्क्षिप्त कर लिया था ॥१३१॥ कमल के सदृश नेत्रों वाले प्रभु ने पृथिवी के प्रविभाग करने के लिये धपना मन किया था और उसने उस भूमि को एव समान करके पर्वतों को सम्यक् प्रकार से धुन डाला था ॥१३२॥ प्रथम सर्ग के देहमान हो

जाने पर सवृत्तिक नाम की अग्नि के द्वारा बहुत विस्तार वाले समस्त पर्वत विशीर्ण हो गये थे ॥१३३॥ उस एकार्णव मे शीत की अधिकता को प्राप्ति कर वायु के द्वारा सहत हो गये थे और जहाँ-जहाँ वे निपित्त हो गये थे वहाँ-वहाँ वे अचल हो गये थे ॥१३४॥ जब वे चल होने वाले नहीं रहे तो इनका नाम अचल हो गया था । पर्वों के द्वारा पर्वत, यह नाम पड गया था । निगीर्ण हो जाने के कारण से ही 'गिरी'—यह इनका नाम हुआ था । एक ही स्थान पर जैसे के तैसे क्षमन करने वाले ये होते हैं इसीलिये शिलोच्चय, यह इनकी संज्ञा हो गई थी ॥१३५॥ इसके अनन्तर उन करोडो विबीर्ण (फँसे हुये) पर्वतों का विश्वकर्मा ने बार-बार कल्पादि मे विभाजन किया है ॥१३६॥ सात द्विपो वाली, समुद्रों से युक्त और पर्वतों के सहित इस पृथ्वी की तथा भूभुव आदि चारों लोकों की उसने विशेष रूप से कल्पना की थी ॥१३७॥ इन लोकों की कल्पना करके फिर इसके अनन्तर उसने प्रजा के सर्ग की रचना की थी । स्वयम्भू ग्रहा भगवान् अनेक प्रकार की प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा वाले हुए थे ॥१३८॥

ससर्जं सृष्टिं तद्रूपा कल्पादिषु यथापुरा ।
तस्याभिध्यायतः सर्गं तथा वै बुद्धिपूर्वकम् ॥१३९॥
बुद्ध्याश्च समवाले वै प्रादुर्भूतस्त मोमयः ।
तमोमोहो महामोहस्तामिस्रश्चाघसजितः ॥१४०॥
अजिद्या पञ्चपर्वेषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।
पञ्चधाप्रस्थितः सर्गो ध्यायतः सोभिमानिनः ॥१४१॥
संवृतस्तमसा चैव बीजाकुरवदावृतः ।
वहिरन्तश्चाप्रनाशस्तब्धो निःसर्ज एव च ॥१४२॥
यस्मात्तेषा वृता बुद्धिदुस्तानि करणानि च ।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुरगाः प्रकीर्तितः ॥१४३॥
मुरगसर्गं तथाभूतं दृष्ट्वा ग्रहा एसाधकम् ।
अप्र सन्नमनाः सोप ततोऽन्य सो ह्यमन्यत ॥१४४॥

तस्याभिध्यायतश्चैव तिर्यक् स्रोता ह्यनन्तः ।

तस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तः स तिर्यक् स्रोतास्ततः स्मृतः ॥१४२॥

ब्रह्मा ने कल्पादि में पूर्वं की भाँति तद्रूप सृष्टि का मृजन किया था । उस समय में सृष्टि के आदि बान में जब रि सर्ग करने का प्रज्ञा ने ध्यान किया था और बुद्धि से विचार किया तो उस बुद्धि के माथ ही एक तमोमय गर्ग का प्रादुर्भाव हुआ था । क्योंकि जो जीव सृजन को प्राप्त हुए थे उनका कर्म व धन भविष्या के दिना सम्भव नहीं हो सक्ता था अतएव पाँच प्रकार की भविष्या की सृष्टि हुई थी । उन पाँचों प्रकार की भविष्याओं के तम, मोह, महामोह तामिस्र और अन्ध ये पाँच नाम हैं ॥१३६॥१४०॥ उस महान् आत्मा वाले से यह पाँच पर्वं वाली भविष्या प्रादुर्भूत हुई थी । इस प्रकार ध्यान करने वाले अभिमानी उसका पाँच प्रकार से प्रवर्णित सर्ग हुआ था ॥१४१॥ बीजाकुर की भाँति प्रादृत और तम से सजुत तथा बाहिर और अन्दर प्रकाश से रहित एव स्तब्ध बिना सजा वाला ही वह था ॥१४२॥ उनके दुःख, बुद्धि और करण ये सब प्रवृत्त थे इसी कारण से वे सब सवृत्तात्मा मुख्य नग प्रकीर्तित हुए थे ॥१४३॥ ब्रह्मा ने उस प्रकार के रहने वाले प्रसाधक मुरग सर्ग को देखकर अप्रसन्ना प्रवृत्त की थी और इसके अनन्तर उसने अन्य सर्ग करने का विचार किया था ॥१४४॥ फिर अथ सर्ग की रचना करने के निम्ने ध्यान करने पर बहिर्मुख इन्द्रिय प्रवाह वाला तिर्यक् स्रोता सर्ग हुआ था । वह तिर्यक् की प्रवृत्ति वाला था अतएव वह तिर्यक् स्रोता कहा गया था ॥१४५॥

पश्चादयस्ते विरयाता उत्पथग्राहिणो द्विजा ।

तस्याभिध्यायतोऽन्यं च सात्त्विकः समवर्तत ॥१४६॥

ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स चैव चोर्ध्वं व्यवस्थितः ।

यस्मात्प्रवर्तते चोर्ध्वमूर्ध्वस्रोतास्ततः स्मृतः ॥१४७॥

ते सुखप्रीतिवट्टला बहिरतश्च सवृत्ता ।

प्रवाशा बहिरतश्च ऊर्ध्वस्रोतोभवा स्मृताः ॥१४८॥

ते सत्त्वस्य च योगेन सृष्टाः सत्त्वोद्भवाः स्मृताः ।
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयो वै देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥१४६॥
प्रकाशाद्वहिरंतश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ।
ते ऊर्ध्वस्रोतसो ज्ञेयास्तुष्टात्मानो बुधैः स्मृताः ॥१४७॥
ऊर्ध्वस्रोतस्सु सृष्टेषु देवेषु वरदः प्रभुः ।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्य सोऽन्यमन्यत ॥१४८॥
ससर्गं सर्गमन्य हि साधकं प्रभुरोश्वर ।
ततोऽभिधायतस्तस्य सत्याभिधायिनस्तदा ॥१४९॥
प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्रोतास्तु साधकः ।
यस्मादर्वाक् न्यवर्तत ततोऽर्वाक्स्रोतमस्तु ते ॥१५०॥
ते च प्रकाशबहुलास्तमः पृथक् रजोधिकाः ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः ॥१५१॥
संवृता बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ।
लक्षणंस्तारनाद्यंस्ते ह्यष्टधा तु व्यवस्थिताः ॥१५२॥
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गधवसहर्धमिणः ।
इत्येष तैजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्रोतः प्रकीर्तितः ॥१५३॥

हे द्विजगण । ये सब पशु, पक्षी और कीट आदि उत्पन्न के ग्रहण करने वाले थे । फिर इनमें भी अन्त्य सर्ग की रचना करने का ध्यान करने वाले उनमें नास्तिवत् सर्ग किया था ॥१४६॥ तीसरा यह सर्ग ऊर्ध्व सर्वाङ्ग अन्तर्मुख वाले स्रोतों का था अतः यह ऊर्ध्व में ही व्यवस्थित था । क्योंकि यह ऊर्ध्व की प्रवृत्त होता है दगोनिये ऊर्ध्व सोनोद्भव कहा गया है । ये ऊर्ध्व स्रोत वाले बुधों के द्वारा तुष्टात्मा जानने के योग्य बने गये हैं ॥१४७॥१४८॥१४९॥१५०॥ ऊर्ध्व स्रोतों के देवों ने सृष्ट होने पर वरद प्रभु ब्रह्मा बह्वर्ग प्रीतिपुण हो गये थे और इनके आन्तर अन्त्य सर्ग रचने का विचार किया था ॥१५१॥ ईश्वर प्रभु ने अन्त्य मायक सर्गों की सृष्टि की थी । इनके पश्चात् सत्य के

अभिध्यायी उनके ध्यान करने पर उम समय में बाह्याभ्यन्तर स्रोतो वाला अर्वाक् स्रोता साधक प्रादुर्भूत हुआ था । इनके सभी ओर स्रोत थे इसी कारण से ये अर्वाक् स्रोतो वाले मनुष्य हुए थे ॥१५२॥१५३॥ वे प्रकाश के बाहुल्य वाले तमोगुण से पृक्त और रजोऽधिक थे । इसी कारण से बहुत दुःखो से युक्त थे और पुनः पुनः उसी के करने वाले थे ॥१५४॥ बाहिर और अन्दर में सवृत वे साधक मनुष्य तारकादि लक्षणो के द्वारा आठ प्रकार के व्यवस्थित होते हैं ॥१५५॥ वे सिद्धात्मा मनुष्य जो कि गन्धर्व सहधर्मी होते हैं, यह तैजस सर्ग है जो अर्वाक् स्रोत कीर्तित किया गया है ॥१५६॥

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा तु व्यवस्थितः ।
 विपर्ययेण शक्तया च सिद्ध्या तुष्ट्या तथैव च ॥१५७॥
 स्थावरेषु विपर्यासः स्तिर्यग्योनिषु शक्तितः ।
 सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु ऋषिदेवेषु कृत्स्नशः ॥१५८॥
 इत्येष प्राकृतः सर्गो वैकृतोऽनवमः स्मृतः ।
 भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥१५९॥
 निवृत्तवर्तमानं च तेषां जानन्ति वै पुनः ।
 भूतादिकानां भूतानां सप्तमः सर्ग एव च ॥१६०॥
 तैऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः ।
 स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ॥१६१॥
 विपर्ययेण भूतादिरशक्तया च व्यवस्थितः ।
 प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणः स्मृतः ॥१६२॥

पाचवा अनुग्रह सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित होता है । विपर्यय अर्थात् विपर्यास से जोकि स्थावर वृक्षों में विस्तार प्रादि का भेद होता है । एक भेद शक्ति से द्वारा होता है जो कि पशु प्रादि में शक्ति की सामर्थ्य से होता है । तिद्धि के द्वारा एक अन्य भेद है जैसा कि मनुष्य सिद्धात्मा कहे जाते हैं और ये प्रारब्ध जन्य तिद्धि से

युक्त होते हैं । चतुर्भेद सम्पूर्ण तुष्टि के द्वारा माना गया है जो कि ऋषि और देवों में पूर्णतया विद्यमान होता है ॥१५७॥१५८॥ यह चार प्रकार का सर्ग प्राकृत कहा गया है और अकृत अर्थात् विकार को प्राप्त होने वाला अनुग्रह नाम वाला जो सर्ग होता है वह श्रेष्ठ कहा गया है । प्रथम भूतादिक मन्वादिवा सर्ग कहा जाता है जो कि भूतों का छटवीं सर्ग है ॥१५९॥ उन उत्पद्यमान भूतों का निवृत्त अर्थात् प्राक्कर्म, वर्तमान और फिर भविष्य के भूतादिक निश्चय रूप से जानते हैं । यह भूतादिक भूतों का सप्तम ही सर्ग होता है ॥१६०॥ ये भूतादिक समस्त अपरप्राप्ती अर्थात् निःस्पृह और दानशील तथा कर्म फल के आस्वादन करने वाले एवं ज्ञान भाग में कर्म फलों के सेवन न करने वाले जानने के योग्य होते हैं ॥१६१॥ भूतादि महद्गुरु अज्ञान से और विष्णु की माया से ध्वस्तित होना है । प्रह्लाद का यह प्रथम सर्ग महाद् अर्थात् महत्तरव से होता है, ऐसा कहा गया है ॥१६२॥

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ।
 वैरागिरामृततीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥१६३॥
 इत्येव प्राकृतः सर्गः सभूतो बुद्धिपूर्वकः ।
 मुख्यसर्गश्चतुर्थश्च मुस्या वै स्यादवराः स्मृताः ॥१६४॥
 ततोर्वाम्नोत्तमा सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।
 अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ॥१६५॥
 पंचमे वैश्वदेवः सर्गः प्राकृतस्तु त्रयः स्मृतः ।
 प्राकृतो वैश्वदेवश्च श्रीमारी नवमः स्मृतः ॥१६६॥
 अबुद्धिपूर्वका सर्गा प्राकृतस्तु त्रयः स्मृताः ।
 बुद्धिपूर्व प्रवर्तन्ते षट् पुनश्चात्यस्तु ते ॥१६७॥
 रिम्गरानुग्रहः सर्गः कीर्त्यमानो निबोधन ।
 चतुर्धारास्थितः माय मयंभूतेषु गृहस्तनः ॥१६८॥
 द्वादशे प्राकृतार्धव्यं वैश्वदेव नवस्मृताः ।
 परस्परानुरक्त्या च वाग्येभ्य नृपैः स्मृताः ॥१६९॥

अभिध्यायी उनके ध्यान करने पर उस समय में बाह्याभ्यन्तर स्रोतो वाला अर्वाक् स्रोता साधक प्रादुर्भूत हुआ था । इनके सभी और स्रोत ये इसी कारण से ये अर्वाक् स्रोतो वाले मनुष्य हुए थे ॥१५२॥१५३॥ ये प्रकाश के बाहुल्य वाले तमोगुण से पृक्त और रजोऽधिक थे । इसी कारण से बहुत दुःखो से युक्त थे और पुनः पुनः उसी के करने वाले थे ॥१५४॥ याहिर और अन्दर में संवृत वे साधक मनुष्य तारकादि लक्षणो के द्वारा आठ प्रकार के व्यवस्थित होते हैं ॥१५५॥ वे सिद्धात्मा मनुष्य जो कि गन्धर्वा सहधर्मा होते हैं, यह तैजस सर्ग है जो अर्वाक् स्रोत कीर्तित किया गया है ॥१५६॥

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा तु व्यवस्थितः ।
 विपर्ययेण शक्तया च सिद्ध्या तुष्ट्या तथैव च ॥१५७॥
 स्थावरेषु विपर्यासः स्तिर्यग्योनिषु शक्तितः ।
 सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु ऋषिदेवेषु कृत्स्नशः ॥१५८॥
 इत्येष प्राकृतः सर्गो वैकृतोऽनवमः स्मृतः ।
 भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥१५९॥
 निवृत्तं वर्तमानं च तेषां जानन्ति वै पुनः ।
 भूतादिकानां भूतानां सप्तमः सर्ग एव च ॥१६०॥
 तेष्वपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः ।
 स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ॥१६१॥
 विपर्ययेण भूतादिरशक्तया च व्यवस्थितः ।
 प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणः स्मृतः ॥१६२॥

पाचवा अनुग्रह सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित होता है । विपर्यय अर्थात् विपर्यास से जोकि स्थावर वृक्षो में विस्तार प्रादि का भेद होता है । एक भेद शक्ति के द्वारा होता है जो कि पशु आदि में शक्ति की सामर्थ्य से होता है । सिद्धि के द्वारा एक अन्य भेद है जैसा कि मनुष्य सिद्धात्मा कहे जाते हैं और ये प्रारब्ध अन्य सिद्धि से

शिरसोद्गिरसश्चैव श्रोनादत्रि तथासृजत् ।

पुलस्त्य च तथोदानाब्जानाञ्च पुलह पुनः ॥१८७॥

समानजो वसिष्ठश्च अपानात्रिममे कतुम् ।

इत्येते ग्रहाणः पुत्रा दिव्या एकादश स्मृताः ॥१८८॥

अब मैं बड़े देव और ऋषियों को बताता हूँ उनके विषय मैं भुक्ते जागकारी प्राप्त कर लो । उस ब्रह्मा ने मरीचि, भृगु, भृङ्गिरा पुलस्त्य, पुलह, कतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ इन नौ मानस पुत्रों का सृजन किया था । ये पुराण में नौ ब्रह्मा हैं, ऐसा निश्चय किया गया है ॥१८१॥१८२॥ पद्मनाभ से समुत्पन्न ब्रह्मा ने पूर्व की भाँति उन सब ब्रह्मा के स्वरूप वाले ब्रह्मादियों के स्थानों की कल्पना की थी ॥१८३॥ इसके अनन्तर सङ्कल्प और सुख देने वाले धर्म का सृजन किया था । उस देव महेश्वर ने व्यवसाय से धर्म का सृजन किया था ॥१८४॥ समस्त लोकों के पितामह ने सङ्कल्प से सृष्टि की थी । प्रभु ब्रह्मा के मन से रुचि नाम वाली समुत्पन्न हुई थी ॥१८५॥ ब्रह्मा ने प्राण से दक्ष का और चक्षुषों से मरीचि का सृजन किया था । जल में जन्म प्राप्त करने वाले अर्थात् ब्रह्मा के हृदय से भृगु ने जन्म प्राप्त किया था ॥१८६॥ शिर से भृङ्गिरस को और श्रोत्र से अत्रि को जन्म दिया था । उदान वायु से पुलस्त्य की सृष्टि की और ध्यान से पुलह की रचना तथा समान वायु से वसिष्ठ की उत्पत्ति एवं अपान वायु से कतु का निर्माण किया था । ये परम दिव्य एकादश ब्रह्मा के पुत्र बड़े गए हैं ॥१८७॥१८८॥

धर्मादय प्रथमजाः सर्वे ते ब्रह्मणः सुताः ।

भृग्यादयस्तु ते सृष्टा नवंते ब्रह्मावादनः ॥१८९॥

गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तः सप्रवर्तितः ।

तेषा द्वादश ते वशा दिव्या देवगुणान्विताः ॥१९०॥

त्रियावतः प्रजावतो महर्षिभिरलङ्घनाः ।

श्रुभुः सनत्कुमारश्च द्वावेतामूर्ध्वरेतसौ ॥१९१॥

सृजनादि कर्म से निवृत्त होकर मोक्ष की कामना वाले हो गये थे । वे यह जानते थे कि यह ससार के सृजन में जो नानात्व है वह भविष्य के भेद से कल्पित है और मिथ्या स्वरूप है । ऐसा दृढ़ निश्चय करके ही योगी वे इसमें प्रवृत्त नहीं हुए थे और समाधिस्थ हो गये थे ॥१७५॥ वे सनत्कुमार प्रजा की सृष्टि करने के कार्य से विमुख होने हुए मोक्ष के प्राप्त करने का ही कर्म करने में ही प्रवृत्त हो गये थे । जब वे सृजन करने से निवृत्त हो गये तो उस समय म ब्रह्मा ने अन्ध रचना के कार्य को साधन करने वाले स्थानाभिमानो मानस पुत्रों का सृजन किया था जिनके द्वारा यह भूमि आभूत सत्त्व की अवस्था वाली विघटन है । ॥१७६॥१७७॥ जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अंतरिक्ष, दिव, समुद्र, नदी, नदी, पर्वत, धनस्पति, ओषधि, वल्ली, वृक्ष, वीर्य, लना, फाँटा, कला, गुहृर्ता, रात्रि, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, धपन, वष और युग ये सब स्थानाभिमानो हैं अतएव स्थान की आराधना से कहे गये हैं ॥१७८॥ ॥१७९॥१८०॥

देवानृषीश्च महतो गदतस्तान्निबोधत ।
 मरीचिभृग्वगिरस पुलस्त्य पुलह क्रतुम् ॥१८१॥
 दक्षमन्त्रि वसिष्ठं च सोसृजन्मानसान्नव ।
 नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चय गता ॥१८२॥
 तेषा ब्रह्मात्मकानां वै सर्वेषा ब्रह्मादिनाम् ।
 स्थानानि वत्पयामास पूर्ववत्पद्मसम्भव- ॥१८३॥
 ततोसृजन्न सकल्प धर्मं चैव सुखावहम् ।
 सोसृजद्वधवसायात्तु धर्मं देवो महेश्वर ॥१८४॥
 सकल्प चैव सकल्पात्सर्वलोकपिता मह- ।
 मानसश्च रुचिर्नाम विजज्ञे ब्रह्माण प्रभो ॥१८५॥
 प्राणाद्ब्रह्मासृजदक्ष चक्षुर्मर्या च मरीचिनम् ।
 भृगुस्तु तद्वयाज्जज्ञे ऋषि सलिल जन्मन- ॥१८६॥

के मानस प्रजा उत्पन्न हुई थी ॥१९५॥ उसके शरीर से समुत्पन्न कायों से कारणों के साथ श्रीमान् उसके यात्रों से क्षेत्रज्ञ हुये थे ॥१९६॥ इसके उपरान्त देव, असुर, पितृगण और मनुष्यों की चारों की तथा जलो की सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्मा ने अपने मन की युक्त किया था । ॥१९७॥

ततस्तु युज्जतस्तस्य तमोमात्रसमुद्भवम् ।
 समभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नेन प्रजापतेः ॥१९८॥
 ततोस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ।
 असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जमानस्ततोसुराः ॥१९९॥
 यया सृष्टासुगः सर्वे ता तनुं स व्यपोहत ।
 सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायतः ॥२००॥
 सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिर्नियामिकाः ।
 आवृतास्नमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वपन्त्युत ॥२०१॥
 सृष्ट्वासुरास्ततः सो वं तनुमन्यामगृह्णत ।
 अव्यक्ता सत्त्वबहुला ततस्ता सोम्यपूजयत् ॥२०२॥
 ततस्ता युजस्तस्य प्रियमासीत्प्रजापतेः ।
 ततो मुखान्समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः ॥२०३॥

इसके पश्चात् मन की योजित करने वाले और तमोमात्र से समुद्भव सर्ग के होने का ध्यान करते हुये प्रजापति ने रचना का प्रयत्न किया था । तब इसके जघन भाग से पहिले असुर पुत्र समुत्पन्न हुए थे । हे विप्रगण ! असु, इसको प्राण कहा गया है । इसके जन्म वाले असुर कहे गये हैं ॥१९८॥॥१९९॥ जिस तनु से समस्त असुरों की सृष्टि की है उस तनु को व्यपोहित कर देता है और वह तनु जब अपविद्ध अर्थात् स्वयत् हो जाती है तो तुरन्त ही रात्रि हो आया करती है ॥२००॥ उस रात्रि में तम का बाहुल्य होता है अतएव वह सबके स्वाय करने वाली होती है । समस्त प्रजा रात्रि में तम से आवृत्त होनी है इस कारण से

पूर्वोत्पन्तो परं तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजो ।
 व्यतीते त्वष्टमे कल्पे पुराणो लोकसाक्षिणी ॥१६२॥
 विराजेतामुभौ लोके तेजः संक्षिप्य धिष्ठितौ ।
 तावुभौ योगकर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि ॥१६३॥
 प्रजां धर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितौ ।
 यथोत्पन्नः स एवेह कुमार स इहोच्यते ॥१६४॥
 तस्मात्सन्तकुमारेति नामास्येह प्रतिष्ठितम् ।
 ततोभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाः प्रजाः ॥१६५॥
 तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह ।
 क्षेत्रज्ञा समवर्तत गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ॥१६६॥
 ततो देवासुरपितृन्मानुषाश्च चतुष्टयम् ।
 सिसृक्षुरंभास्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥१६७॥

वे सब धर्मादिक ब्रह्मा के प्रथम जन्म लेने वाले पुत्र हैं । ये
 ऋगु आदिक नौ ब्रह्मवादी सृष्ट किये गये थे ॥१६८॥ वे सब परम
 प्राचीन गृह मेधी थे । उनके द्वारा ही धर्म सत्कार मे संप्रवर्तित हुआ
 था । उनके वे परम दिव्य एवं देव गुणों से युक्त द्वादश वंश हुए हैं ।
 ये सब क्रिया वाले, प्रजा वाले और अनेक महर्षियों से प्रसंस्कृत थे । ऋगु
 तथा सन्तकुमार ये दोनों ऊर्ध्वरेता थे ॥१६०॥१६१॥ ये दोनों उनसे
 पहिले उत्पन्न होने वाले थे और सबके पूर्वज थे । अष्टम कल्प के व्य-
 तीत हो जाने पर ये दोनों पुराने लोको के साक्षी स्वरूप थे ॥१६२॥ ये
 अपने तेज को संक्षिप्त करके अधिष्ठित हुए दोनों लोक मे विराजमान
 रहते थे । दोनों ही ये अपनी आत्मा मे परमात्मा को आरोपित करके
 योग कर्म के करने वाले थे ॥१६३॥ प्रजा, धर्म और काम का परि-
 त्याग करके वैराग्य मे समास्थित रहते थे । जैसे यह उत्पन्न हुआ था
 वैसे ही अभी तक भी हैं, इसीलिए आज तक भी कुमार, इस शब्द से
 कहे जाते हैं ॥१६४॥ इसी कारण से सन्तकुमार, यह इसका नाम यहाँ
 प्रतिष्ठित हो गया है । इसके अनन्तर अभिध्यान करने वाले उस ब्रह्मा

करने लग गये थे ॥२०६॥ इसके अनन्तर उसने सत्त्व भात्र स्वरूप वाली दूसरी तनु धारण कर ली थी जोकि पिता की तरह मन्यमान एवं पुत्रो का ध्यान करने वाले प्रभु का तनु था ॥२०७॥ दोनो पक्षो से रात्रि और दिन के अन्तर मे होते हुए पितर हुये थे अर्थात् ये पितर अन्तर में ही हुए थे । इसलिए ये देवता पितर हुए और इन मे पितृत्व था । जिस तनु से पितृगण का सृजन किया था उस तनु का व्यपोह कर दिया था जैसे ही उसने उस तनु को अपविद्ध किया था तुरन्त ही सन्ध्या हो गई थी ॥२०८॥२०९॥ दिन देवताओ का होता है और जो रात्रि होती है वह आसुरी कही गई है । इन दोनो के मध्य मे पृथ्वी तनु होती है और बहुत ही गरीयसी तनु है ॥२१०॥

तस्माद्देवा सुराः सर्वे ऋषयो मानवास्तथा ।

उपासते मुदायुक्ता राज्यहोमंध्यमा तनुम् ॥२११॥

ततो ह्यन्या पुनर्ब्रह्मा तनुं च समगृह्णत ।

रजोमात्रात्मिकाया तु मनसा सोमृजत्प्रभुः ॥२१२॥

रजःप्रियास्ततः सोथ मानसानसृजत्सुतान् ।

मनस्विनस्ततस्तस्य मानवा जज्ञिरे सुताः ॥२१३॥

सृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वां तनुं तामपोहत ।

सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥२१४॥

यस्माद्भवति सत्दृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः ।

इत्येतास्तनवस्तेन ह्यपविद्धा महात्मना ॥२१५॥

सद्यो राज्यहनो चव सध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे ।

ज्योत्स्ना सध्या अहर्ध्वं च सत्त्वमात्रात्मक त्रयम् ॥२१६॥

तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा च तस्मान्निशात्मिका ।

तस्माद्देवा दिवातन्वा तुष्ट्वा सृष्ट्वा मुक्तास्तु वै ॥२१७॥

इतसे देव, गुरु, समस्त ऋषि और मानव सब बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त होते हुये रात्रि और दिवस के मध्यम तनु की उपासना किया करते हैं ॥२११॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा ने अन्य तनु का ग्रहण

उस समय से वह स्वप्न किया करती है ॥२०१॥ इसके अनन्तर वह सुरों का सृजन करके उसने अन्य तनु का ग्रहण किया था । वह तनु अव्यक्त और सत्त्व की अधिकता वाली थी अतएव उसने उसका अभिपूजन किया था ॥२०२॥ उसके पश्चात् उस तनु को धारण करते हुए वह प्रजापति के परम प्रिय हो गये थे । इसके अनन्तर उनके मुख से दीप्यमान होने वाले देवगण समुत्पन्न हुए थे ॥२०३॥

यतोस्य दीव्यतो जातास्तेनः देवाः प्रकीर्तिताः ।

धातुर्दिविति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते ॥२०४॥

यस्मात्तस्य तु दीव्यतो जजिरे तेन देवताः ।

देवान्सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ॥२०५॥

उत्सृष्टा सा तनुस्तेन सद्योहः समजायत ।

तस्मादहो धर्मयुक्तं देवताः समुपासते ॥२०६॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततो न्या सोम्यमन्यत ।

पितृवन्मन्यमानस्य पुत्रास्तान्ध्यायतः प्रभोः ॥२०७॥

पितरो ह्युपपक्षाम्या राज्यह्वोरतरेभवन् ।

तस्मात्तो पितरो देवाः पितृत्वं तेन तेषु तत् ॥२०८॥

यया सृष्टास्तु पितरस्तनुं तां स व्यपोहत ।

सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सध्या व्यजायत ॥२०९॥

यस्मादहर्देवताना रात्रिर्या सासुरी स्मृता ।

ततोर्मध्ये तु पत्नी या तनुः सा तु गरीयसी ॥२१०॥

क्योंकि इससे जो दीप्यमान होने हुए थे उत्पन्न हुये थे इसीलिए वे देवता कहे गये हैं । दिवु धातु क्रीडा के अर्थ में विभावित होती है । ॥२०४॥ उस धातु से देवता शब्द की निष्पत्ति होने से देवता दीप्यमान होते हुए ही समुत्पन्न हुए थे और इसीलिए वे देवता कहलाये हैं । देवों का सृजन करके उस देवेश ने अन्य शरीर धारण कर लिया था । ॥२०५॥ वह तनु उसने फिर तुरन्त ही त्याग दी थी और दिन उत्पन्न हो गया था जो धर्म से युक्त था और फिर उसकी देवता लोग उपासना

इसी कारण से कि उनका जन्म दिवा मं हुआ है वे सब दिन में ही बलि वाले होते हैं । प्रभु ने रात्रि में जघन से असुरों को जिस तनु से जन्म दिया था वे प्राणों से निशि जन्मा हैं और वे निशा में ही बलि ग्रहण करने वाले होते हैं ॥२१८॥ ये प्राणों से रात्रि में जन्म ग्रहण करने वाले हैं । इसी कारण से निशा काल में वे अधिक बलशाली भी होते हैं । ये ही सब आगे होने वाले देवों के असुरों के साथ पितर, मानवों के बीते हुए और भाने वाले मन्वन्तरो में सब में निमित्त होते हैं ॥२१९॥२२०॥ उम प्रजापति ने ज्योत्स्ना (चांदनी), रात्रि, दिन और सन्ध्या अर्थात् दोनों की सन्धि का बाल इन चारों के स्वरूप रूपी अम्भो को देवों ही अपने शरीर से मानवादि की सृष्टि की थी । ये सब दीप्ति पात होते हैं इसीलिए मनीषियों ने "अम्भासि" इस शब्द का उनके लिए प्रयोग किया है ॥२२१॥ 'आ दीप्ति' — इस धातु से 'भाति' यह शब्द दीप्ति व अर्थ में कहा गया है । फिर इसके अनन्तर उस प्रजापति ने इन अम्भो को अर्थात् दीप्ति बालों की सृष्टि करके पुनः देव, मानुष, दानव और पितरों का अनन्तर प्रकार बालों का अपनी आत्मा से सृजन किया था । उन प्रभु ने उम ज्योत्स्नामय तनु का त्याग करने अग्न्य तमो, शुक्ल और रजोगुण मयी भूति को प्राप्त करके उसका अभिपूजा किया था । और अन्धकार में धुंध से आविष्ट अग्न्यो का उस प्रभु ने सृजन किया था ॥२२२॥२२३॥२२४॥

तेन सृष्टा धुधात्मानो अभास्यादातुमुद्यताः ।

अभास्येतानि रक्षाम उत्तमतस्तु तेषु मे ॥२२५॥

राक्षसा नाम ते यस्मात् धुधाविष्टा निशाचराः ।

येनून्यक्षमोम्भासि तेषा तृष्टाः परस्परम् ॥२२६॥

तेन ते कर्मणा यथा गृह्यता गूढकर्मणा ।

रक्षेति पालने चापि धानुरेप विभाष्यते ॥२२७॥

एव च यदातिर्धानुर्भक्षणे ॥ निरुच्यते ।

त दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य वेदाः शीर्णास्तु धीमतः ॥२२८॥

किया था । उस रजोमात्रात्मिका तनु मे उस प्रभु ने मन से सृजन किया था ॥२१२॥ इसके अनन्तर उसने रज प्रिय मानस पुत्रो की सृष्टि की थी । इसके पश्चात् उसके मनस्वी मानव पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥२१३॥ प्रजा का सृजन करके फिर अपनी उस तनु का अपोह कर दिया था । वह उसकी तनु अपविद्धा हो गई और फिर उससे तुरन्त ही ज्योत्स्ना समुत्पन्न हो गई थी ॥२१४॥ जिस कारण से उस ज्योत्स्ना के उद्भव होने पर प्रजा अत्यन्त हर्षित हुई थी । इस प्रकार से ये इतनी तनु उस महारमा ने अपविद्ध कर दी थी ॥२१५॥ तुरन्त रात्रि, दिन, संध्या और ज्योत्स्ना उत्पन्न हुई । ज्योत्स्ना, संध्या और दिन ये तीनों सत्त्वमात्राका के स्वरूप थे ॥२१६॥ रात्रि तमो मात्रात्मिका थी अतएव वह निशात्मिका थी । इसी कारण से देवगण दिवस की तनु से सृष्टि के साथ मुख से सृष्ट हुए थे ॥२१७॥

यस्मात्तोषा दिवा जन्म बलिनस्तेन वै दिवा ।

तन्वा ययासुरान् रात्रौ जघनादसृजत्प्रभुः ॥२१८॥

प्राणेभ्यो निशिजन्मानो बलिनो निशि तेन ते ।

एतान्येव भविष्याणा देवानामसुरैः सह ॥२१९॥

पितृणा मानवाना च अतीतानागतेषु वै ।

मन्वतरेषु सर्वेषु निमित्तानि भवति हि ॥२२०॥

ज्योत्स्ना रात्र्यहनी संध्या चत्वार्यंभासि तानि वै ।

भांति यस्मात्ततोभासि शब्दोयं सुमनीषिभिः ॥२२१॥

भातिर्दीप्तो निगदितः पुनश्चाथ प्रजापतिः ।

सोऽम्भांस्येतानि सृष्ट्वा तु देवमानुषदानवान् ॥२२२॥

पितृंश्चैवा सृजत्तन्या आत्मना विविधान्पुनः ।

तामुत्सृज्य तनुं ज्योत्स्नां ततोऽन्या प्राप्य स प्रभुः ॥२२३॥

मूर्ति तमोरजःप्रायां पुनरेवाम्यपूजयत् ।

अधकारे क्षुधाविष्टास्ततोऽन्यांसोऽसृजत्प्रभुः ॥२२४॥

इसी कारण से कि उनका जन्म दिवा र्म हुआ है वे सब दिन में ही बलि वाले होते हैं । प्रभु ने रात्रि में जघन से असुरों को जिस तनु से जन्म दिया था वे प्राणों से निशि जन्मा है और वे निशा में ही बलि ग्रहण करने वाले होते हैं ॥२१८॥ ये प्राणों से रात्रि में जन्म ग्रहण करने वाले हैं । इसी कारण से निशा काल में वे अधिक बलशाली भी होते हैं । ये ही सब आगे होने वाले देवों के असुरों के साथ पितर, मानवों के बीते हुए और आने वाले मन्वन्तरो में सब में निमित्त होते हैं ॥२१९॥२२०॥ उम प्रजापति ने ज्योत्स्ना (चांदनी), रात्रि, दिन और सन्ध्या अर्थात् दोनों की सन्धि का काल इन चारों के स्वरूप रूपी अम्भो को देव त्तर ही अपने शरीर से मानवादि की सृष्टि की थी । ये सब दीप्ति वाले होते हैं इसीलिए मनीषियों ने “अम्भासि” इस शब्द का उनके लिए प्रयोग किया है ॥२२१॥ ‘भा दीप्ति’ — इस धातु से ‘भाति’ यह शब्द दीप्ति के अर्थ में ब्रूया गया है । फिर इसके अनन्तर उस प्रजापति ने इन अम्भो को अर्थात् दीप्ति वालों की सृष्टि करके पुनः देव, मानुष, दानव और पितरों का अनेक प्रसार बानों का अपनी आत्मा से सृजन किया था । उम प्रभु ने उम ज्योत्स्नामय तनु का त्याग करके अन्य तमो, गुण और रजोगुण मयी भूति को प्राप्त करने उसका अभिपूजन किया था । और अन्धकार में शुभा के आश्रित अन्धों का उस प्रभु ने सृजन किया था ॥२२२॥२२३॥२२४॥

तेन मृष्टाः शुभात्मानो ब्रह्मांस्यादातुमुद्यताः ।

अभास्येतानि रक्षाम उत्तयतस्तु तेषु ये ॥२२५॥

राक्षसा नाम ते यस्मात् शुभाविष्टा निशानराः ।

येष्वन्यदमोम्भासि तेषा दृष्टाः परस्परम् ॥२२६॥

तेन ते कर्मणा यथा गुह्यका गूढकर्मणा ।

रक्षेति पातने चापि धानुरेण विनाशयेत् ॥२२७॥

एव च यदातिर्षातुर्भक्षो स निदध्यते ।

त दृष्ट्वा ह्यग्निरेणाम्य वेदाः शीर्णास्तु धीमतः ॥२२८॥

ते शीर्णाश्चोत्थिता ह्यूर्ध्वं ते चैवारूढुः प्रभुम् ।
 हीनास्तच्छिरसो बाला यस्माच्चैवावसर्पिणः ॥२२६॥
 व्यालात्मानः स्मृता बाला हीनत्वादहयः स्मृताः ।
 पतत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवावसर्पणात् ॥२३०॥
 तस्य क्रोधोद्भवो योसौ अग्निगर्भः सुदाहणः ।
 स तु सर्पान् सहोत्पन्नानाविवेश विपात्मकः ॥२३१॥

फिर उस प्रजापति ने क्षुधात्माओं का सृजन किया था जोकि इन अम्भो को लेने को उद्यत हो गये थे । हम इन अम्भो की रक्षा करते हैं, ऐसा उनसे जिन्होंने कहा था ॥२२५॥ ये लोग क्षुधा से व्याकुल और निशा में विचरण करने वाले थे अतएव इनका नाम 'राक्षस' यह हुआ था । जो यह बोलते थे कि हम अम्भो के यक्षम हैं और उनसे परस्पर में बहुत प्रसन्न हुए थे । उस गूढ़ कर्म से ही वे यज्ञ और गुह्यक हुये थे । 'रक्ष'—यह धातु रक्षा करने तथा पालन करने के अर्थ में विभावित है ॥२२६॥२२७॥ इस प्रकार से 'वशति'—यह धातु का प्रयोग भक्षण में कहा जाता है । इन अप्रिय से उसको देखकर इम धीमान् ने वेश शीर्ण हो गए थे ॥२२८॥ वे शीर्ण हुए वेश ऊपर की ओर उठ गए थे और प्रभु को अवरुद्ध कर लिया था । वे बाल उसते शिर से हीन हो गये थे इसी कारण से नीचे की ओर अब सर्पण करने वाले हो गये ॥२२९॥ वे ही बाल व्यालों के स्वरूप वाले हो गये थे और हीन होने के कारण वे 'ग्रहि'—इन नाम से भी कहे जाते हैं । गतन होने से इनका नाम 'पक्षग'—यह हुआ है और अवसर्पण करने के कारण 'सर्प' यह नाम इनका हो गया है ॥२३०॥ उमने शीघ्र से गमुत्पन्न जो सुदाहण अग्नि गर्भ था वह सर्पों के साथ ही उत्पन्न होकर उन्ही सर्पों में विप के स्वरूप से युक्त होता हुआ उन्ही में आविष्ट हो गया था ॥२३१॥

सर्पान्मृष्टा ततः क्रुद्धः क्रोधात्मानो विनिर्मेमे ।

यत्नं पपिशेनोग्रास्ते भूताः पिपिताशनाः ॥२३२॥

भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात् ।
 प्रसन्नं गायतस्तस्य गंधर्वा जज्ञिरे यदा ॥२३३॥
 धयतीत्येष वै धातुः पानत्वे परिपठ्यते ।
 धयंतो जज्ञिरे वाचं गंधर्वास्तेन ते स्मृताः ॥२३४॥
 अष्टस्वेतासु सृष्टासु देव योनियु स प्रभुः ।
 ततः स्वच्छदतो न्यानि वयांसि वयसासृजत् ॥२३५॥
 स्वच्छंदतः स्वच्छंदंदांसि वयसा च वयांसि च ।
 पशून्सृष्ट्वा स देवेशोऽसृजत्पक्षिगणानपि ॥२३६॥
 मुखतोजाः ससर्जाथः वक्षसश्चावयोसृजत् ।
 गार्श्रवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वार्भ्यां च विनिर्ममे ॥२३७॥

उन सपों को देखकर प्रजापति को क्रोध हुआ था और उसी क्रुद्धावस्था में उसने क्रोध के स्वरूप बालों की रचना कर डाली थी जो कपिश वर्ण से अत्यन्त उग्र और मांस को खाने वाले भूत हुए थे । ॥२३३॥ भूत होने ने वे 'भूत'—इस नाम से कहलाये थे और पिशित (मांस) के खाने वाले होने के कारण से 'पिशाच'—यह उनका नाम पड़ गया था । प्रसन्नता पूर्वक गान करने वाले उससे 'गंधर्व' समुत्पन्न हुए थे । 'धयति'—यह धातु का रूप पान करने में पड़ा जाता है । वे वाचा (वाणी) का पान करते हुये उत्पन्न हुये थे इसलिये वे गंधर्व कहे गये हैं ॥२३३॥२३४॥ इन आठ देवयोनियों का सृजन करने पर फिर इसके पश्चात् उस प्रभु ब्रह्मा ने स्वच्छन्दता से, वय से पक्षियों का सृजन किया था ॥२३५॥ इस तरह से स्वच्छन्दता से स्वच्छन्दों की और वय (उन्न) से वयों की अर्थात् वखेरुओं की सृष्टि भी थी । पशुओं का सृजन करके उस देवेश ने पक्षिगणों का भी निर्माण किया था ॥२३६॥ उसने मुख से अजा (बकरी) का सृजन किया था और वक्षस्थल से आरवियों अर्थात् भेड़ों की रचना की थी । ब्रह्मा ने अपने उदर और पार्श्व भागों से गायों की सृष्टि की थी ॥२३७॥

पद्मा चाश्वान् समातंगान् रासभानावयान्मृगान् ।
 उष्ट्रानश्वतरांश्चैव तथान्याश्चैव जातयः ॥२३८॥
 ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमस्यस्तस्य जज्ञिरे ।
 एवं पश्वोपधीः सृष्ट्वायुजत्मोच्चरे प्रभुः ॥२३९॥
 गौरजः पुरुषो मेघो ह्यश्वोश्वतरगर्दभौ ।
 एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यान्वै निबोधत ॥२४०॥
 श्वापदो द्विखुरो हस्ती वानराः पक्षिपञ्चमाः ।
 आदकाः पशवः पक्षाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥२४१॥
 महिषा गवयाक्षाश्च प्लवगाः शरभाः वृकाः ।
 सिंहस्तु सप्तमस्तेषामारण्या पशवः स्मृताः ॥२४२॥
 गायत्र च ऋच चैव त्रिवृत्साम रथतरम् ।
 अग्निष्टोम च यज्ञाना निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥२४३॥
 यजू पि त्रैण्डुम छदस्तोम पञ्चदश तथा ।
 वृहत्साम तथावध्य च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥२४४॥

प्रजापति ने अपने पक्षों से अश्व, गज, रासभ, भेड़, मृग, ऊँट
 और अश्वतर (खिच्चर) तथा अन्य पशुओं की जातियों को समुत्पन्न
 किया था ॥२३८॥ औपधियाँ, फल और मूल सब उस ब्रह्मा प्रजापति
 के रोमों से उत्पन्न हुए थे । इस तरह से उस प्रभु ने इन पशु, औपधियों
 का सृजन करके फिर उन्हें अश्वर में योजित किया था ॥२३९॥ गौ,
 अज, पुरुष, मेघ, अश्व, अश्वतर, गर्दभ, ये सब ग्राम्य पशु बताए गए हैं ।
 नरमेघ में मनुष्य की भी पशु-रूपता होने से उसे भी पशु कोटि में माना
 गया है । इसके आगे अथ वन के रहने वाले पशुओं को समझ लो ।
 ॥२४०॥ श्वापद (व्याघ्र आदि), द्विखुर (दो खुरों वाले गवय आदि),
 हाथी, वानर, पाचर्वा पक्षी, आदक, पशु छटर्वा और सातर्वा सरीसृप
 ये ग्राम्य से इनर आरण्य पशु होते हैं ॥२४१॥ अब अन्य सात आरण्यो
 को बताते हैं — महिष, गवय, अक्ष (हिरण), प्लवङ्ग, शरभ, वृक और
 सानर्वा मिह है । ये आरण्य पशु बने गए हैं ॥२४२॥ फिर ब्रह्मा ने

गायत्रीछन्द, ऋग्वेद, त्रिरात्रुन गीयमान गाय, रघुनर गाय, यशों के
मध्य में गोमयाम मुग्ध धमिष्टोम को प्रथम मुख से निमित्त दिया था ।
॥२४३॥ यजुर्वेद, त्रैष्टुभ छन्द, स्तोम पञ्चादशावृत्त गाय, गृध्रमाण,
उप्य ये सय है इनका दक्षिण मुख से गृजन दिया था ॥२४४॥

सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं समदर्शं तथा ।
वैष्णवमतिरात्रं च पश्चिमादमृजन्मुखात् ॥२४५॥
एषाविजयघर्षाण्माप्नोर्वा माण्मेय च ।
अनुष्टुभं सर्वराजमुत्तरादमृजन्मुखात् ॥२४६॥
विष्णुस्तोत्रनिमेषांश्च रोहिर्नैदृषन्पूर्वा च ।
तेजोग्निं च सप्तर्जदी कृत्वास्य भगवान्प्रभुः ॥२४७॥
उच्चारणानि भूतानि गायेन्महास्य जज्ञिरे ।
प्रलक्षणं प्रजामर्गं गृजन्तो हि प्रजापतेः ॥२४८॥
गृष्टा पशुद्वयं पूर्वं देवागुन्नराग्निगृन् ।
सप्तोमृजन्म भूतानि म्हावराणि चराणि च ॥२४९॥
महाग्निनापान् मंथरीन्पर्वताग्न्यग्नीं गतान् ।
नगरिहरं यक्षानि ययः पशुमृगोरगान् ॥२५०॥
अथ य एवमेषां निमिदं देवागुन्नरागम् ।
तेषां सं गानि कर्माणि प्राग्गृष्टयोऽनिवेदिरे ॥२५१॥

सृजन करके फिर इनकी सृष्टि करने के पश्चात् उस प्रजापति देव ने स्थावर और चर भूतो का सृजन किया था ॥२४६॥ यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराद्यो के गण, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, उरग, अव्यय, व्यय और जो स्याणु तथा जङ्गम है वे सब और उनके जो कर्म हैं उन्हें वे सृष्टि के पहिले ही प्राप्त कर चुके हैं ॥२५०॥२५१॥

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।

हिंसाहिंसे मृदुक्रूरे धर्माधर्मो नृतानृते ॥२५२॥

सद्भावितोः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।

महाभूतेषु सृष्टेषु इन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ॥२५३॥

विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम् ।

केचित्पुरुषकार तु प्राहुः कर्म सुमानवाः ॥२५४॥

दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचितकाः ।

पौरुषं कर्म दैव च फलवृत्तिस्वभावतः ॥२५५॥

न चैकं न पृथग्भावमधिकं न ततो विदुः ।

एतदेवं च नैकं च नामभेदेनान्प्युभे ॥२५६॥

कर्मस्था विपमं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शनाः ।

नाम रूपं च भूतानां कृतानां च प्रपचनम् ॥२५७॥

बार-बार सृज्यमान होते हुए ये सब उन्हीं अपने कर्मों को प्राप्त किया करते हैं जो उनके स्वभाव के अनुकूल हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म-प्रधर्म और नृत तथा अनृत होते थे ॥२५२॥ पुनः पुनः प्रत्येक कल्प में उत्पत्ति प्राप्त करते हुए ये सब उन्हीं अपने रुचि के अनुकूल पहिले कर्मों को ही सृष्ट महाभूतो में और इन्द्रियार्थ शरीरो में प्राप्त किया करते हैं ॥२५३॥ भूतो का विनियोग धाता ब्रह्म रूपी महेश्वर ने ही स्वयं किया है । तात्पर्य यह है कि यह जीव अपने सुख-दुःख में स्वयं प्रसमर्थ है और ईश्वर से प्रेरित होकर ही स्वर्ग तथा नरक में जाता है । अब जीव कल्पित अन्य मत इस विषय में बताये जाते हैं, कुछ मनीषी पुरुषवार प्रयत्न को ही कर्म बताते हैं ॥२५४॥ हे विप्रो ! अन्य विद्वान् दैव को

और भूत चिन्तक स्वभाव को बताते हैं । इस तरह से, पीरूप, कर्म, देव और फल वृत्ति स्वभाव से स्वभाव को बताया जाता है ॥२५५॥ कर्म मार्ग में प्रवृत्त रहने वाले जीव विचित्र ही, पूर्व में कथित चतुष्टय से प्रत्येक को विभिन्न सत्ता वाला न कहकर समुच्चित ही कहते हैं । कारण समुच्चय से अधिक सबके नियन्ता ईश्वर को नहीं जानते हैं । जो सत्त्व में समास्थित है और समदर्शी है वे जगत् को मायिक होने से पूर्व में वर्णित चतुष्टय को एक ही कहते हैं नामों के भेद से दो-दो नहीं हैं ॥२५६॥२५७॥

वेदशब्देभ्य एवादी निर्ममे स महेश्वरः ।
 ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु वृत्तयः ॥२५८॥
 शर्वयन्ते प्रभूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ।
 एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोव्यक्तजन्मनः ॥२५९॥
 शर्वयन्ते प्रदृश्यते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ।
 एवंभूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ॥२६०॥
 यदास्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त सत्तमाः ।
 तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदा शोकेन दुःखितः ॥२६१॥
 ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ।
 अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रा नियामिकाम् ॥२६२॥
 रजः सत्त्व परित्यज्य वर्तमानां स्वधर्मतः ।
 ततः स तेन दुःखेन दुःखं चक्रे जगत्पतिः ॥२६३॥

उस ब्रह्म रूप वाले भगवान् महेश्वर ने पूर्व कल्पीय भूतों के नाम और रूप का समस्त प्रपञ्च सर्ग के आदि में वेद शब्दों से ही निमित्त किया है । जो भी ऋषियों के नामधेय हैं तथा वेदों में उनकी वृत्तियाँ बतलाई गई हैं ॥२५८॥ ब्रह्मा रात्रि के अन्त में अर्थात् तय काल के समाप्त होने पर ऋषियों की जो वृत्तियाँ और नाम हैं अर्थात् वेदों में बताये गये हैं वे ही उन्हें दिया करते हैं । इस प्रकार वाली अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की सृष्टि हुआ करती है ॥२५९॥ ब्रह्मा की अपनी रात्रि

का जब घन्त हो जाना है उस समय में मानसी सिद्धि का आश्रय ग्रहण करने इन प्रकार के भूत स्वार और चर जो सृष्ट हुए हैं दिव्यलाई देते हैं ॥२६०॥ जब इन ब्रह्मा की सृष्ट हुई प्रजा भली-भाँति वृद्धि को प्राप्त हुई तो तमोमाया से आवृत्त हुए ब्रह्मा शोक से अत्यन्त दुःखित हुये थे ॥२६१॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने इसका क्या कारण है, इसके निश्चय करने वाली बुद्धि में काम लिया तो उन्होंने प्रजा वृद्धि को रोकने वाली तमोमाया धरती आत्मा में देखा था ॥२६२॥ रजो गुण और सत्त्व गुण का स्थापन करके माने धर्म से वर्तमान तमोमाया को अपने अन्दर प्राप्त कर उन दुःख से प्रजापति ने अत्यन्त दुःख किया था ॥२६३॥

तमश्च इमनुदत्पश्चाद्भजः सत्त्वं तमावृणोत् ।

तत्तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत ॥२६४॥

अधर्मस्तमसो जज्ञे हिंसा शोकदजायत ।

ततरतस्मिन्समुद्भूते मिथुने दारुणात्मिके ॥२६५॥

गतासुभंगयानासोत्प्रीतिश्चैनमशिश्रियत् ।

स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम् ॥२६६॥

द्विधा कृत्वा स्वकं देहमर्धेन पुरुषोभवत् ।

अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ॥२६७॥

प्रवृत्तिं भूतधात्री तां कामाद्वे सृष्टवान्प्रभुः ।

सा दिवं पृथिवी चैव महिम्ना व्याप्यधिष्ठिता ॥२६८॥

भ्रमणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्यतिष्ठति ।

या त्वर्धात्सृजतो नारी शतरूपा व्यजायत ॥२६९॥

सा देवी निगुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।

भर्तारं दोषयज्ञस्य पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥२७०॥

स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ।

तस्यैव सप्ततियुगं मन्वंतरमिहोच्यते ॥२७१॥

तेभ्यो स पुरुषः पत्नी शतरूपा मयोनिजाम् ।

तन्ना सार्षं स रमते तस्मात्सा रतिरुच्यते ॥२७२॥

भगवान् शिव से समस्त सृष्टि का विस्तार] [४८१

प्रथमः संप्रयोगात्मा कल्पादौ समपद्यत ।

विराजमसृजद्ब्रह्मा सोभवत्पुरुषो विराट् ॥२७३॥

तम को विनुदिन बिया घोर फिर रत्र तथा तद्वत् ने उगरी
 आवृत्त कर लिया था । यह तम प्रतिनुप्र हो गया घोर मिथुन समुद्र
 दुःख दा ॥२६४॥ तम मे मयमं उत्पन्न हुआ था घोरघोर से हिमा पंश
 हुई थी । इनके पश्चात् उन दाहण स्वप्न मिथुन के समुद्र में होने पर
 भगवान् गत प्राप्त हो गये थे घोर प्रीति ने इनको से बाकी थी । फिर
 उग श्रद्धा ने उत प्रति भास्वर घपनी तनु को बयोदिन कर लिया था ।

कन्ये द्व च महाभागे याम्यां जाता इमाः प्रजाः ।
 देवी नाम तथाकृतिः प्रसूतिश्चैव ते उभे ॥२७६॥
 स्वायम्भुव प्रसूतिं तु दक्षाय प्रददौ प्रभुः ।
 प्राणो दक्ष इति ज्ञेयः सकल्पो मनुर्बुध्यते ॥२७७॥
 रुचिः प्रजापते सोय आकृतिं प्रत्यपादयत् ।
 आकृत्या मिथुन जज्ञे मानसस्य रुचिः शुभम् ॥२७८॥
 यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमलो सबभूवतु ।
 यज्ञस्य दक्षिणाया तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ॥२७९॥
 यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवतरे ।
 एतस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामाश्च ते स्मृताः ॥२८०॥

क्षतरूपा श्रीर वह सम्पाद वैराज मनु कहा गया है उस वैराज
 पुरुष मनु ने प्रजा सर्ग का सृजन किया था । उस क्षतरूपा ने वैराज
 पुरुष से प्रियव्रत श्रीर उत्तानपाद ये दो लोक-सम्मत पुत्रों को समुत्पन्न
 किया था ॥२७४॥२७५॥ श्रीर महान् भाग्य वाली दो कन्या उत्पन्न
 की थी जिनसे यह समस्त प्रजा हुई है । उन दोनों देवियों ने आकृति
 तथा प्रसूति ये दो नाम थे ॥२७६॥ स्वायम्भुव प्रभु ने प्रसूति नाम
 वाली कन्या को दक्ष प्रजापति को दे दिया था । दक्ष को प्राण ऐसा
 जानना चाहिये श्रीर सङ्कल्प मनु कहा जाता है ॥२७७॥ उस मनु ने
 रुचि प्रजापति को आकृति नाम वाली कन्या दी थी । मानस रुचि के
 आकृति में शुभ मिथुन (जोड़ा) ने जन्म लिया था । उस यमल में यज्ञ
 श्रीर दक्षिणा इन दो ने जन्म ग्रहण किया था । ये यमल कहलाए थे ।
 यज्ञ के दक्षिणा में बारह पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥२७८॥२७९॥ वे देवाण
 स्वायम्भुव मन्व तर में यामा—इस नाम समाख्यात हुये थे । ये इस यज्ञ
 के पुत्र ये इस कारण से वे याम कहे गये हैं ॥२८०॥

अजितश्चैव शुक्रश्च गणी द्वौ ब्राह्मणा कृत्तौ ।

यामाः पूर्वं प्रजाता ये तेऽभवस्तु दिवीकसः ॥२८१॥

स्वायंभुवसुताया तु प्रसूत्यां लोकमातरः ।
 तस्या कन्याश्चतुर्विंशदक्षस्त्वजनयत्प्रभुः ॥२८२॥
 सदस्तिताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः ।
 भोगवत्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः ॥२८३॥
 सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा विश्वस्य मातरः ।
 श्रद्धा लक्ष्मीधृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥२८४॥
 बुद्धिलज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदश ।
 पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥२८५॥
 दाराण्येतानि वै तस्य विहितानि स्वयम्भुवा ।
 ताम्यः शिष्टा यवोयस्य एकादश सुलोचनाः ॥२८६॥
 सती ख्यात्यथ सभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।
 सनतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥२८७॥

ब्रह्मा ने अजिन और शुक्र से दो गण किये थे । जो याम पहिले प्रजात
 अर्थात् उत्पन्न हुए थे वे दिवीकस अर्थात् देव हुए थे ॥२८१॥ स्वायम्भुव की
 पुत्री प्रसूति ने लोक मातायें हुई थी । उनमे प्रभु दश ने चौबिस कन्यायें
 उत्पन्न की थी ॥२८२॥ वे सभी महाभाग वाली थी और सभी कमल
 के समान नेत्रो वाली थी । वे सभी भोगवती थी और वे सब योग
 मातायें थी ॥२८३॥ वे सब ब्रह्म वादिनी और विश्व की मातायें थी ।
 उनमे तरह की प्रभु धर्म ने स्वीकार लिया था अर्थात् अपनी पत्नी के
 रूप मे ग्रहण किया था । उनके श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा,
 क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति ये नाम थे । ये दारा
 यणी धर्म की पत्नियां हुई थी ॥२८४॥२८५॥ इन सबको धर्म की दारा
 स्वयम्भू ने स्वयं बनाया था । अब उनसे छोटी ग्यारह सुन्दर लोचनों
 वाली शिष्ट रहो थीं ॥२८६॥ उन ग्यारह के सती, सभूति, स्मृति,
 प्रीति क्षमा, सनति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा में शुभ नाम
 थे ॥२८७॥

तास्तथा प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षयः ।
 रुद्रो भृगुमरीचिश्च अंगिराः पुलहः क्रतुः ॥२८८॥
 पुलस्त्योत्रिवंसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ।
 सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्यातिं च भगवे ततः ॥२८९॥
 मरीचये च संभूतिं स्मृतिमंगिरसे ददौ ।
 प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च ॥२९०॥
 क्रतवे संनतिं नाम अनसूयां तथाऋणे ।
 ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहामप्यग्नये ददौ ॥२९१॥
 स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि बोधत ।
 एताः सर्वा महाभागाः प्रजास्वनुसृताः स्थिताः ॥२९२॥
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंज्ञवम् ।
 श्रद्धां कामं विजज्ञे वंदर्षो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ॥२९३॥
 धृष्ट्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः संतोष एव च ।
 पुष्ट्या लोभः सुतश्चापि मेघापुत्रः श्रुतस्तथा ॥२९४॥

उनको अन्य महर्षियों ने प्राप्त किया था । उनके रुद्र, भृगु, मरीचि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितर और अग्नि ये नाम हैं । सती को भव के लिए प्रदान किया था और ख्याति को भृगु को दिया था ॥२८८॥ ॥२८९॥ मरीचि ऋषि को संभूति तथा अंगिरा को स्मृति का प्रदान किया था । पुलस्त्य ऋषि को प्रीति, पुलह को क्षमा दी थी ॥२९०॥ क्रतु को संनति तथा अत्रि को अनसूया का दान किया था । वसिष्ठ मुनि को ऊर्जा और अग्नि देव के लिये स्वाहा दे दी थी ॥२९१॥ पितृगणों के लिये स्वधा का दान दिया था । भव उनकी जो संनति हुई थी उनको भी जान लेना चाहिये । ये सब महाभागा थी और प्रजाओं में अनुसृत होकर स्थित रहती थी ॥२९२॥ समस्त मन्वन्तरो में जब तक आभूत सज्ञव होता है अर्थात् सब प्राणियों का लय होता है । श्रद्धा ने काम को उत्पन्न किया था और दण्ड ने लक्ष्मी का पुत्र कहा गया है ॥२९३॥ नियम धृति का पुत्र है तथा तुष्टि का सुत

सन्तोष होता है । सोम पुष्टि का प्रात्मज एव श्रुत मेधा का पुत्र है ।
॥२६४॥

क्रियायामभवत्पुत्रो दड समय एव च ।
बुद्ध्या बोध सुतस्तद्वत्प्रमादोप्युपजायत ॥२६५॥
सज्जाया विनय पुत्रो व्यवसायो वसो सुत ।
क्षेम क्षातिमुतश्चापि सुरा सिद्धर्व्यजायत ॥२६६॥
यश कीर्तिमुतश्चापि इत्येते धर्मसूनुव ।
कामस्य हृष पुत्रो वै देव्या प्रीत्या व्यजायत ॥२६७॥
इत्येव वै सुतोदकं सर्गो धर्मस्य कीर्तित ।
जज्ञे हिंसा त्वधर्मद्विं निहृति चानृत सुतम् ॥२६८॥
निवृत्त्या तु द्वय जज्ञे भय नरक एव च ।
माया च वेदना चापि मियुनद्वयमेतयो ॥२६९॥
भूयो जज्ञे च माया मृत्यु भूतापहारिणम् ।
वेदनाया मुतश्चापि दुःख जज्ञे च रौरव ॥२७०॥
मृत्योर्व्याधिजराशोकक्रोधासूयाश्च जज्ञिरे ।
दुःखोत्तरा सुता ह्येते सर्व चाधर्मलक्षणा ॥२७१॥

क्रिया म दण्ड और समय पुत्र समुत्पन्न हुआ था । बुद्धि से बोध
और उसी भाँति प्रमाद भी पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२६५॥ सज्जा में विनय
सुत हुआ तथा व्यवसाय वसु का पुत्र हुआ था । क्षेम क्षाति का प्रात्मज
एव सिद्धि से मुख समुत्पन्न हुआ था ॥२६६॥ यश कीर्ति का पुत्र था
ये सब इतने धर्म के पुत्र हुए थे । काम का पुत्र हर्ष हुआ था जो कि
प्रीति देवी म समुत्पन्न हुआ था ॥२६७॥ यह धर्म का सुनोर्ध्व गग
पहा गया है । हिंसा न अधर्म से निहृति और अनृत पुत्र को जन्म दिया
था ॥२६८॥ निहृति म दो समुत्पन्न हुए थे उनमें एक भय और दूसरा
नरक था । इनके दो मिश्र (जोश) थे त्रिशा नाम माया और वेदना
था ॥२६९॥ फिर माया ने भूतो के अपहरण करने वाले मृत्यु को समु-
त्पन्न किया था । वेदना से दुःख तथा रौरव पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥२७०॥

मृत्यु से ध्यायि, जरा (मृत्तया) सोर, ढोप और धमूग से सब ममृत्यु
हूये थे । ये सब दुःखोत्तर धर्म के मक्षण होते पुन उदात्त हूये थे ।
॥३०१॥

नेपां भार्यस्तु पुत्रादयः सर्वे ज्ञेते परिग्रहाः ।

इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ॥३०२॥

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मज्ञा नीललोहितः ।

सोभिध्याय सती भार्या निर्ममे आत्मसम्भवान् ॥३०३॥

नापि कान्न च हीनास्तान्मानसानात्मनः समान् ।

सहस्रं हि सहस्राणां सोमृजत्कृत्वा तामसः ॥३०४॥

सुख्यानेवात्मनः सर्वान् रूपतेजोबलश्रुतैः ।

पिगलान्सनिपंगांश्च सकपर्दान्सलोहितान् ॥३०५॥

विशिष्टान् हरिषेष्ठांश्च दृष्टिघ्नांश्च वपालिनः ।

महास्पान्निष्पादश्च विश्वरूपान्स्वरूपिणः ॥३०६॥

रथिनश्चर्मिणश्चैव चर्मिणश्च बलधिनः ।

सहस्रशतधाहूश्च दिव्यान्भौ मातरिक्षगान् ॥३०७॥

स्थूलशीर्षान्ष्टदष्टान्द्विजिह्वास्ताखिलोचनान् ।

अश्वादान्पिशिताशाश्च आज्यपान्सोमपानपि ॥३०८॥

मीढुपोतिकपालाश्च शितिकण्ठोर्ध्वरेतसः ।

हव्यादान्द्रुतधर्माश्च धर्मिणो ह्यथ बर्हिणः ॥३०९॥

इनके पुत्र और भार्या नहीं थे । ये सब परिग्रह थे । यह इतना
धर्म का नियामक तामस सर्ग समुत्पन्न हुआ था ॥३०२॥ ब्रह्मा के द्वारा
भगवान् नील लोहित से कहा गया था कि तुम प्रजा का सृजन करो ।
उसने अभिध्यान करके सती भार्या और आत्म सम्भव पुत्रों को निर्मित
किया था ॥३०३॥ उनके पुत्र न तो हीन थे और न अधिक थे । वे सब
मानस पुत्र उनके आत्मा ही के समान थे । उन्होंने सहस्रों की सख्या मे
कृत्ति (धर्म) के बल धारण करने वाले समुत्पन्न किए थे ॥३०४॥ वे
सब उनके ही आत्मा के समान रूप, तेज, बल और श्रुत के द्वारा थे

जो वंसे ही पिंगल निपग युक्त, सलोहित और सकपदं थे ॥३०५॥
 विशिष्ट, हरिकेश, कपाल धारण करने वाले और दृष्टिघ्न अर्थात् दृक्पात
 मात्र से ही नाश कर देने वाले थे । ये समस्त असंख्य श्री रुद्र के गए
 ऐसे थे जिनके महान् रूप थे, जो विरूप, विश्व रूप और स्वरूप धारी
 थे ॥३०६॥ ये रथी, धर्मी, धर्म धारण करने वाले, वरुणी, सैकड़ों और
 सहस्रों वाहनों वाले, दिव्य तथा भूमि एवं अन्तरिक्ष में गमन करने वाले
 थे ॥३०७॥ स्थूल शीर्ष वाले, आठ दाढ़ों से युक्त, दो जिह्वा वाले,
 तीन नेत्रों से सम्पन्न, अन्न को खाने वाले, मांस का भक्षण करने वाले,
 प्राज्य (धृत) पान करने तथा सोम का पान करने वालों को भी उत्पन्न
 किया था ॥३०८॥ भीदुष, प्रतिवपाल, शिनिवण्ठ (नीले वण्ठ वाले),
 ऊर्ध्व, रैता, हृष्य ग्रहण करने वाले, श्रुतधर्म, धर्मी तथा वहीँ हुये थे ।
 ॥३०९॥

आसीनान्धावतश्च पञ्चभूतान्सहस्रशः ।

अध्यापिनोऽध्यायिनश्च जपतो युंजतस्तथा ॥३१०॥

धूमवतो ज्वलंतश्च नदीमतोतिदीप्तिनः ।

वृद्धनबुद्धिमतश्च ग्रह्णिष्ठांशुभर्शनान् ॥३११॥

नीलग्रीवान्सहस्राक्षान्सर्वाश्चाथ क्षमाकरान् ।

अदृश्यान्सर्वभूतानां महायोगांमहौजसः ॥३१२॥

भ्रमंतोभिद्रवतश्च प्लवतश्च सहस्रशः ।

अयातयामानमृजद्रुद्रानेतान् सुरोत्तमान् ॥३१३॥

ब्रह्मा दृष्ट्वाऽप्रवीदेन मास्त्राक्षीरीदृशीः प्रजाः ।

सृष्टव्या नात्मानस्तुत्याः प्रजा देव नमोस्तु ते ॥३१४॥

अन्याः सृज त्व भद्रं ते प्रजा वै मृत्युसंगुताः ।

नारप्स्यते हि कर्माणि प्रजा विगतमृत्यव ॥३१५॥

एवमुक्तोऽप्रवीदेनं नाहं मृत्युजरान्निताः ।

प्रजाः श्रश्यामि भद्रं ते स्थिनोह त्वं सृजः प्रजाः ॥३१६॥

एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः ।

सहस्राणां सहस्रं तु आत्मनो निःसृताः प्रजाः ॥३१७॥

नील लोहित रुद्र ने ऐसे गणों को समुत्पन्न किया था जो ग्रामीन थे तथा दौड़ने वाले थे, विस्तृत भूतो वाले सहस्रो द्वी थे । अध्यापी, अध्यायी, जप करने वाले तथा योगाभ्यास करने वाले थे ॥३१०॥ धूम वाले, ज्वाला युक्त, गंगा को धारण करने वाले और अत्यन्त दीप्ति से युक्त थे । वृद्ध, बुद्धिमान, ब्रह्मिष्ठ, शुभ दर्शन वाले थे ॥३११॥ नीली धीवा वाले, सहस्र नेत्रों से युक्त और क्षमा करने वाले सब थे । समस्त प्राणियों को न देखने के योग्य, महान् योग वाले, महान् भोज से सम्पन्न थे ॥३१२॥ रुद्र ने ऐसे सहस्रो गण समुत्पन्न किए थे जिनमें कुछ अमण करने वाले थे, कुछ इधर-उधर भाग-दौड़ करने वाले थे और उछल-कूद करने वाले थे । ऐसे अयातयाम, सुरोत्तम, रुद्रों का नील लोहित भगवान् ने सृजन किया था ॥३१३॥ ब्रह्माजी ने अब ऐसी षड्-भुत सृष्टि की देखा तो वे नील लोहित से बोले—ऐसी सृष्टि मत करो । हे देव । आपको ऐसी अपने ही समान प्रजा का सृजन नहीं करना चाहिए । इससे हमारा मनोरथ पूरा नहीं होता है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥३१४॥ यदि कृपा कर सृजन करें तो और प्रकार की प्रजा का सृजन करें जो मृत्यु से सयुक्त हो । आपका भद्र होगा । जो प्रजा बिना मृत्यु वाली है वह कोई भी कर्मों का आरम्भ नहीं करेगी और मेरा अभीष्ट पूर्ण न होगा ॥३१५॥ ऐसा जब ब्रह्मा ने कहा तो नीललोहित भगवान् ने उत्तर में यह ब्रह्मा से कहा था कि मैं मृत्यु और जरा से युक्त प्रजा का सृजन नहीं करूँगा । आपका भद्र हो । मैं तो अब शान्ति से स्थित होता हूँ । आप ही इस सृजन का काम करो । ये इनने विरूप और नीललोहित सहस्रो की सख्या वाले अपनी आत्मा से निःसृत प्रजा मैंने समुत्पन्न करदी है ॥३१६॥॥३१७॥

एते देवा भविष्यति रुद्रा नाम महाबलाः ।

पृथिव्यामंतरिक्षे च दिक्षु चैव परिश्रिताः ॥३१८॥

शतरुद्रा समात्मानो भविष्यतीति याज्ञिका ।
 यज्ञभाजो भविष्यति सर्वदेवगणं सह ॥३१६॥
 मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यतीह भेदत ।
 सार्धं तैरीज्यमानास्ते स्थास्यतीहायुगक्षयात् ॥३२०॥
 एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता ।
 प्रत्युवाच नमस्कृत्य तद्व्यमाणा प्रजापति ॥३२१॥
 एव भवतु भद्र ते यथा ते व्यावृत्त विभो ।
 ब्रह्मणा समनृजाते तथा सवमभूत्किल ॥३२२॥
 सत प्रभृति देवेशो च चासूयत वै प्रजा ।
 ऊर्ध्वरेता स्थित स्थाणुर्याविदाभूतसंभवम् ॥३२३॥

ये सब महान् बल, पौरुष वाले देव हो जायेंगे जिनका नाम रुद्र होगा । ये सब पृथ्वी, अंतरिक्ष और दिशा विदिशाओं में परिश्रित होंगे ॥३१८॥ इनमें क्षत्र रुद्र समात्मा याज्ञिक हागे जो समस्त देवगणों के सहित यज्ञ के भाग ग्रहण करने वाले भी होंगे ॥३१९॥ मन्वन्तरो में जो देवता यहाँ पर भेद से स्थित होंगे उनके साथ पूजित व यहाँ युग क्षय पर्यंत स्थित रहेंगे ॥३२०॥ परम बुद्धिमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे हुए प्रजापति ब्रह्मा ने अग्नि प्रसन्न होकर और उन्हें प्रणाम करके कहा—हे विभो ! जैसा भी आपने कहा है उससे आपका भद्र होवे । ब्रह्मा के द्वारा सब ज्ञात कर लेने पर उसी प्रकार से सभी पुछ हुआ था ॥३२१॥३२२॥ उस समय से लेकर फिर दवेश व प्रजा का कोई अग्निष्ट नहीं किया था और भूत संभव पय त स्थाणु ऊर्ध्वरेता हावर स्थित रहते थे ॥३२३॥

यस्मादुक्त स्थितोऽस्मीति तस्मात्स्थाणुरिति स्मृत ।
 एष देवो महादेव पुरपोर्वसमद्युति ॥३२४॥
 अर्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपम ।
 स्वच्छमासीद्विधाभूत वृथक् स्त्री पुरुष पृथक् ॥३२५॥
 स एवंवादर्शार्धेन स्थितोऽसी परमेश्वर ।
 तत्र या सा महाभागा सगर स्याद्वर्वायिनी ॥३२६॥

प्रागुक्ता तु महादेवी स्त्री संवेह सती ह्यभूत् ।

हिताय जगतां देवी दक्षेणाराधिता पुरा ॥३२७॥

कार्यार्थं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथासितम् ।

आत्मानं विभजस्वेति प्रोक्ता देवेन शंभुना ॥३२८॥

यद्येकं महादेव ने यह कहा था कि मैं स्थित हूँ इसीलिए उनका नाम स्थाणु यह कहा गया है । यह महादेव देवता पुरुष स्वरूप में सूर्य के समान द्युति वाले थे ॥३२४॥ इनका आधा भाग नारी और आधा भाग नर के यपु वाला था तथा तेज से यह अग्नि के समान थे । यह अपनी ही इच्छा से दो स्वरूपों वाले हुये थे जिनमें पुरुष तथा स्त्री पृथक् स्वरूप था ॥३२५॥ वह ही परमेश्वर धर्म भाग से एकादश स्वरूपों में स्थित हैं । वहाँ जो शङ्कर की अर्धाङ्गिनी थी वह महाभागा थी ॥३२६॥ पहिले वह महादेवी स्त्री कही गई थी वह ही सती हुई थी । इस देवी की जगतों के हित के लिए दक्ष प्रजापति ने पहिले आराधना की थी ॥३२७॥ कार्य के लिए उसका दक्षिण शुक्ल तथा वाम अक्षित इस तरह आत्मा का विभाग करो, ऐसा देव शम्भु के द्वारा वह आदिष्ट हुई थी ॥३२८॥

सा तथोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ।

तस्या नामानि वक्ष्यामि शृण्वतु च समाहिताः ॥३२९॥

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।

सती दाक्षायणी विद्या इन्द्राशक्तिः क्रियात्मिका ॥३३०॥

अपर्णा चैरुपर्णा च तथा चैवैकपाटला ।

उमा हैमवती चैव कल्याणी चैकमातृका ॥३३१॥

ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गीरोति विश्रुता ।

गणविद्या महादेवी नदिनी जातवेदसी ॥३३२॥

एकरूपमर्थतस्या. पृथग्देहविभावनात् ।

सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता ॥३३३॥

आज्ञा आवेशनी कृष्णा तामसी सात्त्विकी शिवा ।
 प्रकृतिविकृता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥३३४॥
 कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ।
 द्वापरांतविभागे च नामानोमानि सुव्रताः ॥३३५॥

हे द्विजगण ? शम्भु के द्वारा आज्ञा प्रदान की गई वह शुक्ला और कृष्णा दो प्रकार की हो गई थी । अब मैं उसके शुभ नामों को बतलाता हूं उनको आप लोग सावधान चित्त धारें होकर ध्यान करो ॥३३६॥ स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, लक्ष्मी, सरस्वती, सती, दाक्षायणी विद्या, इन्द्रा, शक्ति क्रियात्मिका ये नाम हैं ॥३३७॥ अर्पणा, एकपणा, एक पाटला, उमा, हैमवती, कल्याणी, एक मातृका ये सब उसी देवी के शुभ नाम थे ॥३३८॥ ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा जो लोक में गौरी नाम से विश्रुत थी । गुणाम्बिका, महादेवी, नन्दिनी और जात वेदनी ये सब उसी देवी के नाम हैं ॥३३९॥ इसके पृथक् देहों के प्रकट होने से एक ही रूप था । सावित्री, वरदा, पुष्पा, पावनी, लोक विश्रुता, आज्ञा, आवेशिनी, कृष्णा, तामसी, सात्त्विकी, शिवा, प्रकृति, विकृता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा और प्रमाथिनी ये मनुष्य देवी के शुभ नाम हैं ॥३३३॥३३४॥ काल रात्रि, महामाया, रेवती, भूतनायिका ये शुभनाम हैं सुव्रत बानो ! द्वापर के अन्त विभाग में थे ॥३३५॥

गौतमी कौशिकी चार्या चंडी कात्यायनी सती ।
 कुमारी मादवी देवी वरदा कृष्णपिंगला ॥३३६॥
 यहिध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी ।
 महेंद्रोपेन्द्रभगिनी हृषद्वत्येकशूलधृक् ॥३३७॥
 अपराजिता बहुबुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी ।
 शुभादिदैत्यहंत्री च महामहिषमर्दिनी ॥३३८॥
 अमोघा विध्वनिलया विघ्नाता मग्ननायिका ।
 देव्या नामविज्ञराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ॥३३९॥

भद्र काल्या मयोक्तानि सम्यवफलप्रदानि च ।

ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न च पातकम् ॥३४०॥

अरण्ये पर्वते वापि पुरे वाप्यथवा गृहे ।

रक्षामेतां प्रयुज्योत जले वाय स्थलेपि चा ॥३४१॥

गौतमी, कीशिकी, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी, देवी, वरदा, कृष्ण पिपला, बहिष्बजा, शूलधरा, परमा, ब्रह्म-
चारिणी, महेन्द्रा, उपेन्द्र भागिनी, हृषिकेशी, एक शूल धृक् मे उसी देवी
के नाम हैं ॥३३६॥३३७॥ अमराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंह बाहिनी,
शुम्भादि दैत्यो के हनन करने वाली, महा सहिष मदिनी, अमोघा,
विन्द्यनिलया, विक्रान्ता, गण नायिका, ये सब उस देवी के नाम विकार
हैं जोकि यथाक्रम से है ॥३३८॥३३९॥ ये सब शुभ नाम मैंने भद्रकाली के
बताये हैं जो भली-भाँति फलों के प्रदान करने वाले होते हैं । जो मनुष्य
भगवती के इन परम शुभ एवं पुण्यमय नामों का पाठ किया करते है
उन मनुष्यों के कोई भी पातक क्षेप नहीं रहा करता है ॥३४०॥ अरण्य
में, पर्वत में, पुर में अथवा घर में इन शुभ नामों से सुरक्षा में प्रयोग
करना चाहिए तथा जल एवं स्थल में भी रक्षार्थ इन नामों का प्रयोग
करे ॥३४१॥

व्याघ्रकु भीनचोरेभ्यो भयस्थाने विशेषतः ।

आपत्स्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्तयेत् ॥३४२॥

आर्यकग्रहभूतंश्च पूतनामातृभिस्तथा ।

अभ्यर्दिताना बानाना रक्षामेता प्रयोजयेत् ॥३४३॥

महादेवीकले द्वे तु प्रज्ञाश्रीश्च प्रकीर्तिते ।

आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिल जगत् ॥३४४॥

अनया देवदेवोऽसौ सत्या रुद्रो महेश्वरः ।

आतिष्ठत्सर्वलोकानां हिताय परमेश्वरः ॥३४५॥

रुद्रः पशुपतिश्चासौत्पुरा दग्ध पुरनयम् ।

देवाश्च पशवः सर्वे बभूवुस्तस्य तेजसा ॥३४६॥

देवताओं द्वारा विविध प्रकार लिंग का वर्णन] [४६३

व्याघ्र, कुम्भीन और चौरों से विशेष करके भय के स्थलो में तथा सब प्रकार की आपत्तियों में देवी के इन परम पवित्र शुभ नामों का कीर्तन करना चाहिये ॥३४२॥ आर्यक, ग्रह और भूतो से तथा पूतना एवं मातृ गणों से पीड़ित बालको की रक्षा इन शुभ नामों के द्वारा करनी चाहिए ॥३४३॥ महादेवी की दो कलाएँ बताई गई हैं जिनके नाम प्रजा और श्री कहे गए हैं । इन दोनों से और देवी के सहस्रो नामों से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥३४४॥ इस सती से देवों के देव यह महेश्वर रुद्र परमेश्वर समस्त लोको के हित के लिए आस्थित होते हैं ॥३४५॥ यह रुद्र पहिले पशुपति थे । इन्होंने पुराण को दग्ध किया था समस्त देवता उनके तेज से पशु हो गये थे ॥३४६॥



देवताओं द्वारा विविध प्रकार लिंग का वर्णन

लिंगानि कल्पयित्वैनं स्वाधिकारानुरूपतः ।
 विश्वकर्मा ददौ तेषां नियोगादब्रह्मणः प्रभोः ॥१॥
 इन्द्रनीलमयं लिंगं विष्णुना पूजितं सदा ।
 पद्मरागमयं शक्रो हैमं विश्वयसः सुतः ॥२॥
 विश्वेदेवास्तथा रौप्यं वसवः कांतिकं शुभम् ।
 आरकूटमयं वायुरश्विनो पार्थिवं सदा ॥३॥
 स्फाटिकं वरुणो राजा आदित्यास्ताम्रनिमित्तम् ।
 मोक्तिकं सोमराट् धीमांस्तथा लिंगनुत्तमम् ॥४॥
 अनंताद्या महानागाः प्रवालकमयं शुभम् ।
 दंत्या ह्ययोमयं लिंगं राक्षसाश्च महात्मनः ॥५॥
 त्रैलोक्यं गृह्यकाश्च सर्वलोहमयं गणाः ।
 चामुंडा संकतं सादान्मातरश्च द्विजोत्तमाः ॥६॥

दाहज नैर्दृतिर्भक्त्या यमो मारकत शुभम् ।

नीलाद्याश्च तथा रुद्राः शुद्धं भस्ममय शुभम् । ७॥

इस अध्याय में प्रत्येक देव लिङ्गों का भेद और लिङ्ग स्थापन करने का फल बतलाया जाता है । सूत्रजी ने कहा—प्रभु ग्रहों के प्रादेश से विश्वकर्मा ने अपने अधिकार के अनुसृत लिङ्गों की कल्पना करके उनको दे दिए थे ॥१॥ भगवान् विष्णु ने सदा इन्द्र नील मणि से विरचिन लिङ्ग का पूजन किया था । इन्द्र ने पद्मराग मणि से विनिर्मित लिङ्ग का अर्चन किया है और विधवा के पुत्र ने सुवर्ण रचिन लिङ्ग का पूजन किया है ॥२॥ विश्वे देवों ने रौरव, वसुगण ने चन्द्रकान्त मणि का, वायु ने पतिल (भारकूटमय) लिङ्ग का, अश्विनी कुमारी ने पाण्डव लिङ्ग का सदा पूजन किया था ॥३॥ वरुण ने स्फटिक मणि का, आदिशयो ने ताम्रमय का, धीमान् सोमराट् ने मुक्ता निर्मित महेश्वर के लिङ्ग का पूजन किया था ॥४॥ अनन्त आदि जो महा नाग हैं उन्होंने प्रवालमय शुभ का दैत्यो, ने अयोमय का, तथा राक्षसों ने भी लोहमय लिङ्ग का पूजन किया था ॥५॥ गुह्यलो ने त्रिशुल लोहमय का, गणेश ने सर्व लोहमय का, चामुण्डा ने सिक्ता (बाखू) निर्मित का पूजन किया था जोकि साक्षात् माताएँ हैं ॥६॥ नैर्दृति लकड़ी से विरचिन लिंग का भक्ति से अर्चन करता है । यम मरकर मणि के विनिर्मित शुभ लिङ्ग का पूजन करते हैं । नीलादि तथा रुद्र शुद्ध एव शुभ भस्म मय लिङ्ग का अर्चन करते हैं ॥७॥

लक्ष्मीवृक्षमय लक्ष्मीगुहो वै गोमयात्मकम् ।

मुनयो मुनिशादूलाः कुशाग्रमयमुत्तमम् ॥८॥

वामाद्याः पुष्पलिंग तु गर्धालिङ्ग मनोन्मनी ।

सरस्वती च रत्नेन कृत स्त्रस्य वाग्मसा ॥९॥

दुर्गा हैम महादेवं सवेदिकमनुमुत्तमम् ।

उग्रा पिष्टमय सर्वे मन्त्रा ह्याज्यमय शुभम् ॥१०॥

वेदाः सर्वे दधिमयं पिशाचाः सीसनिर्मितम् ।
 लेभिरे च यथायोग्यं प्रसादाद्ब्रह्माणः पदम् ॥११॥
 बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत् ।
 शिवलिंगं समभ्यर्च्य स्थितमत्र न संशयः ॥१२॥
 षष्टिधं लिंगमित्याहुर्द्रव्याणां च प्रभेदतः ।
 तेषां मेदाश्चतुर्युक्तचत्वारिंशदिति स्मृताः ॥१३॥
 शैलजं प्रथमं प्रोक्तं तद्धि साक्षाच्चतुर्विधम् ।
 द्वितीयं रत्नजं तच्च सप्तधा मुनिसत्तमाः ॥१४॥

लक्ष्मी देवी लक्ष्मी वृक्ष अर्थात् विल्व वृक्ष से रचित लिंग का, गृह गोमय (गोबर) से बने हुए लिंग का, मुनिषाद्वल मुनिगण कुशा से बने हुए लिंग का अर्चन किया करते हैं ॥१८॥ वामादि पुष्प रचित लिंग का तथा मनोन्मनी सुगन्धित द्रव्य से निर्मित लिंग का, सरस्वती देवी रत्न से निर्मित अथवा जल से विरचित लिंग का पूजन करते हैं ॥१६॥ दुर्गा सुवर्ण ने रचित महादेव का जोकि सर्व वैदिक और अत्युत्तम है समर्चन करती है । उग्र आटे से निर्मित लिंग का तथा मन्त्र घृतमय शुभ लिंग का यजन करते हैं ॥१७॥ समग्र वेद दधिमय का और पिशाच लोग सीसा से निर्मित लिंग का पूजन करते हैं । सबने शिव के प्रसाद से यथायोग्य ब्रह्म के पद की प्राप्ति की थी ॥११॥ यहाँ पर इस विषय में अत्यधिक कथन से क्या प्रयोजन है, सार युक्त बात यह है कि यह समस्त चराचर जगत शिव के लिंग का अर्चन करके ही यहाँ पर स्थित है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥१२॥ द्रव्यों के प्रभेद होने से छै प्रकार के लिंग बने गये हैं । उनके भेद चार युक्त होने से चात्मीस हो जाते हैं ऐसा बताया गया है ॥१३॥ प्रथम शैलज लिंग कहा गया है वह साक्षात् रूप से चार प्रकार का होता है । द्वितीय लिंग रत्नो से निर्मित बताया गया है वह है मुनिसत्तमा । सप्त प्रकार का होता है ॥१४॥

तृतीयं धातुज लिंगमष्टधा परमेष्ठिनः ।
 तुरीयं दाहजं लिंगं तत्तु षोडशधोच्यते ॥१५॥

मृन्मयं पञ्चमं लिंगं दिधा भिन्नं द्विजोत्तमाः ।
 पष्ठं तु क्षणिक लिंगं सप्तधा परिकीर्तितम् ॥१६॥
 श्रीपद रत्नजं लिंगं शैलजं सर्वसिद्धिदम् ।
 धातुजं धनदं साक्षाद्दारुजं भोगसिद्धिदम् ॥१७॥
 मृन्मयं चैव विप्रेन्द्राः सर्वसिद्धिकरं शुभम् ।
 शैलजं चोत्तमं प्रोक्तं मध्यमं चैव धातुजम् ॥१८॥
 बहुधा लिंगभेदाश्च नव चैव समासतः ।
 मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ॥१९॥
 रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः ।
 लिंगवेदी महादेवी त्रिगुणा त्रिमयांबिका ॥२०॥
 तथा च पूजयेद्यस्तु देवी देवश्च पूजितौ ।
 शैलज रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम् ॥२१॥

तीसरा भेद धातु जन्य है वह परमेशी का लिंग घाठ प्रकार का होता है । चौथा काष्ठ से निर्मित भेद है वह लिंग सोनह प्रकार का होता है ॥१५॥ पाँचवाँ लिंग का भेद मृन्मय होता है वह भिन्न दो प्रकार का होता है । छठा भेद क्षणिक लिंग का होता है, वह सात तरह का होता है ऐसा कहा गया है ॥१६॥ रत्नज लिंग श्री का प्रदान करने वाला है और शैलज समस्त सिद्धियों के देने वाले होते हैं । धातुज लिंग अर्थात् धातुओं से विनिर्मित लिंग धन प्रदान करने वाला होता है और काष्ठ से विरचित लिंग भोग और सिद्धि दोनों के देने वाला है ॥१७॥ हे विप्र-गण ! मिट्टी का लिंग समस्त सिद्धियों के करने वाला और परम शुभ होता है । सबसे उत्तम तो शैलज लिंग कहा गया है, धातु जन्य लिंग मध्यम श्रेणी का माना गया है ॥१८॥ लिंग के भेद बहुत प्रकार के हैं किन्तु संक्षेप में नौ ही होते हैं । इनके मूल में ब्रह्मा हैं और मध्य में त्रिभुत के ईश्वर विष्णु हैं ॥१९॥ रुद्र के ऊपर प्रणवाख्य सदाशिव महा-देव हैं । लिंग की वेदी त्रिगुणा त्रिमयांबिका महादेवी हैं ॥२०॥ उसके साथ जो पूजन करता है उससे देवी और देव दोनों ही पूजित हो जाते

शिव का अद्वैत स्वरूप और ध्यान द्वारा प्राप्ति] [४६७

शीलज, घातुज, गारुज अथवा क्षाणिक मृन्मय कैसा भी हो, शक्ति से स्थापित करने से ही शुभ फल होता है ॥२१॥



शिव का अद्वैत स्वरूप और ध्यान द्वारा प्राप्ति

निष्कलो निर्मलो नित्यः सकलत्वे कथं गतः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथा पूर्वं यथा श्रुतम् ॥१॥
परमार्थविदः केचिदूचुः प्रणवरूपिणम् ।
विज्ञानमिति विप्रेन्द्राः श्रुत्वा श्रुतिशिरस्यजम् ॥२॥
शब्दादिविषयं ज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ।
तज्ज्ञानं भ्रातिरहितमित्यन्ये नेति चापरे ॥३॥
यज्ज्ञानं निर्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निराश्रयम् ।
गुणप्रकाशकं ज्ञानमित्यमन्ये मुनयो द्विजाः ॥४॥
ज्ञानेनैव भवेन्मुक्तिः प्रसादो ज्ञानसिद्धये ।
उभाभ्यामुच्यते योगी तत्रानन्दमयो भवेत् ॥५॥
वदति मुनयः केचित्कर्मणा तस्य संगतिम् ।
कल्पनाकल्पितं रूपं संतदृत्य स्वेच्छयैव हि ॥६॥
द्यौर्मूर्धा तं विभोऽस्नस्य ख नाभिः परमेष्ठिनः ।
सोममूर्ध्नोऽग्नयो नेत्रं दिक्षः श्रोत्रं महात्मनः ॥७॥

इम अध्याय मे शिव वास्तव मे निर्गुण, उभायुत और पडा-
आदि मे योगगम्य है, इमका निरूपण किया जाता है । ऋषियों ने
ने कहा—निष्कल, नित्य और निर्मल शिव सत्तात्व को कैसे प्राप्त हो गये
ये, इमे ध्याने जैसा भी पहिने गुप्त हो वह इमको बनाने की योग्यता
रखते हैं ॥१॥ मूनजी ने कहा—पुछ परमार्थ के ब्रह्मा लोगो ने इसे

प्रणव रूप वाला कहा है । उपनिषद्भाग में ब्रज अथवा बर विज्ञान अर्थात्
वास्तवीय ज्ञान रूप कहा है ॥२॥ अन्य विद्वान् शब्दादि विषय ज्ञान ही
ज्ञान है, यह कहते हैं । दूसरे लोग उसे ज्ञान नहीं कहते हैं किन्तु भ्रान्ति
से रहित प्रमात्मक ज्ञान कहते हैं ॥३॥ हे द्विजगण ! भग्न व्यासादि
मुनिगण का मत है कि जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प, निराश्रय और
गुरु अर्थात् शिव का प्रकाशक जो है वह ज्ञान है ॥४॥ ज्ञान से ही मुक्ति
होती है और प्रसाद ज्ञान की सिद्धि के लिए है । इन दोनों दोनों ज्ञान
और प्रसाद से योगी मुक्त होता है और वहाँ मुक्ति में वह आनन्द मय
हो जाता है ॥५॥ स्वेच्छा से ही माया से विरचित रूप को हृदय में
विचार कर विधि प्रेरित निष्काम कर्म के द्वारा उस ज्ञान की प्राप्ति कुछ
मुनिगण बतलाते हैं ॥६॥ विष्णु का स्वर्ग मूर्धा है और उस परमेश्वरी की
नाभि आकाश है । सोम, सूर्य और अग्नि ये उसके नेत्र हैं और उस
महान् आत्मा वाले के श्रोत्र दिखाए हैं ॥७॥

चरणी चैव पातालं समुद्रस्तस्य चांबरम् ।
देवास्तस्य भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम् ॥८॥
प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिङ्गमुच्यते ।
वक्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान्प्रभुः ॥९॥
इन्द्रोपेदी भुजाभ्यां तु क्षत्रयाश्च महात्मनः ।
वैश्याश्चोरुप्रदेशात् शूद्राः पादात्पिनाकिनः ॥१०॥
पुष्करावतंकाद्यास्तु केशास्तस्तु प्रकीर्तिताः ।
वायवो घ्राणजास्तस्तु गतिः श्रोतं स्मृतिस्तथा ॥११॥
अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्तकः ।
पुंसां तु पुरुषः श्रीमान् ज्ञानगम्यो चान्यथा ॥१२॥
कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते ।
जपयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥१३॥
तपोयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते ।
ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यान ज्ञानस्य साधनम् ॥१४॥

पाताल चरण हैं और उसका अम्बर समुद्र है । समस्त देवगण उसकी भुजाएँ हैं और नक्षत्र उसके भूषण हैं ॥८॥ प्रकृति उसकी पत्नी है और पुरुष विष्णु है, ऐसा कहा जाता है । समस्त ब्राह्मण उसके मुख से हुये हैं और भगवान् प्रभु ब्रह्मा भी मुख से हुमा है ॥९॥ उस महा-को भुजाओं से इन्द्र और उपेन्द्र तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं । पिनाकी के ऊरुओं के प्रदेश से वैश्य तथा पद्मों से शूद्र हुए हैं ॥१०॥ पुष्करावर्तक आदि सेष उसके केश कहे गये हैं । वायु घ्राण से जन्म हैं और श्रुति से कहे हुए तथा स्मृति से कहे हुए कर्म भी समुत्पन्न हुए हैं ॥११॥ हमके अनन्तर सर्ग के आदि काल में इसके द्वारा ही कर्म प्रवर्तित तथा प्रकृति का प्रेरक श्री मातृ विराट् पुरुष ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होता है अन्यथा इन्द्रिय आदि के प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता है ॥१२॥ सहस्रों कर्म यज्ञों से तथा यज्ञ विशिष्ट होता है । सहस्रों ही तपो यज्ञों से जय यज्ञ विशेषता वाला होता है ॥१३॥ इसी भाँति सहस्र जप यज्ञों से ध्यान यज्ञ को विशिष्ट कहा गया है । ध्यान यज्ञ सबसे विशिष्ट होता है । इससे पर धर्म कुछ भी नहीं होता है क्योंकि यह ध्यान ही ज्ञान का साधन होता है ॥१४॥

यदा समरसे निष्ठो योगी ध्यानेन पश्यति ।

ध्यानयज्ञरतस्यास्य तदा सन्निहितः शिवः ॥१५॥

नास्ति विज्ञानिना शीघ्रं प्रायश्चित्तादि पोदना ।

विशुद्धा विद्यया सर्वे ब्रह्मविद्याविदो जनाः ॥१६॥

नास्ति क्रिया च लोकेषु मुग्धं दुःखं विचारतः ।

धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानिना सन्निधिः मदा ॥१७॥

परानदात्मकं लिङ्गं विशुद्धं त्रिजगत्सरम् ।

निष्कलं सयंगं ज्ञेयं योगिना तद्विदं संस्थितम् ॥१८॥

लिङ्गं तु द्विविधं प्रादुर्वाह्यमाभ्यन्तरं द्विजाः ।

बाह्यं न्यूलं मृनिर्धेष्टाः सूक्ष्ममाभ्यन्तरं द्विजाः ॥१९॥

प्रणव रूप वासा कहा है । उपनिषद्भाग में भज्यवण कर विज्ञान प्रर्थात् शास्त्रीय ज्ञान रूप कहा है ॥२॥ अन्य विद्वान् शब्दादि विषय ज्ञान ही ज्ञान है, यह कहते हैं । दूसरे लोग उसे ज्ञान नहीं कहते हैं किन्तु भ्रान्ति से रहित प्रमात्मक ज्ञान कहते हैं ॥३॥ हे द्विजगण ! अन्य व्यासादि मुनिगण का मत है कि जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प, निराश्रय और गुरु प्रर्थात् शिव का प्रकाशक जो है वह ज्ञान है ॥४॥ ज्ञान से ही मुक्ति होती है और प्रसाद ज्ञान की सिद्धि के लिए है । इन दोनों दोनों ज्ञान और प्रसाद से योगी मुक्त होता है और वहाँ मुक्ति में वह आनन्द मग्न हो जाता है ॥५॥ स्वेच्छा से ही माया से विरचित रूप को हृदय में विचार कर विधि प्रेरित निष्काम कर्म के द्वारा उस ज्ञान की प्राप्ति कुछ मुनिगण बतलाते हैं ॥६॥ विष्णु का स्वर्ग मूर्धा है और उस परमेष्ठी की नाभि प्राकाश है । सोम, सूर्य और अग्नि ये उसके नेत्र हैं और उस महान् आत्मा वाले के ओज दिशाएँ हैं ॥७॥

चरणी चैव पातालं समुद्रस्तस्य चांबरम् ।

देवास्तस्य भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम् ॥८॥

प्रकृतिस्तस्य परनी च पुरुषो लिंगमुच्यते ।

वक्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान्प्रभुः ॥९॥

इन्द्रोर्षेदौ भुजाभ्यां तु क्षत्रयाश्च महात्मनः ।

वैश्याश्चौरप्रदेशात्तु सूद्राः पादात्पिनाकिनः ॥१०॥

पुष्करावर्तकाद्यास्तु केशास्तस्तु प्रकीर्तिताः ।

वायवो घ्राणजास्तस्तु गतिः श्रोतं स्मृतिस्तथा ॥११॥

अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्तकः ।

पुंसां तु पुरुषः श्रोमान् ज्ञानगम्यो चान्यथा ॥१२॥

कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते ।

जपयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥१३॥

तपोयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते ।

ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ॥१४॥

शिव का अद्वैत स्वरूप और ध्यान द्वारा प्राप्ति] [४६६

पाताल चरण हैं और उसका अम्बर समुद्र है । समस्त देवगण उसकी भुजाएँ हैं और नक्षत्र उसके भूषण हैं ॥८॥ प्रकृति उसकी परनी है और पुरुष निज्ज है, ऐसा कहा जाता है । समस्त ब्राह्मण उसके मुख से हुये हैं और भगवान् प्रभु ब्रह्मा भी मुख से हुआ है ॥९॥ उस महा-की भुजाओं से इन्द्र और उपेन्द्र तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं । पिनाकी के ऊरुओं के प्रदेश से वैश्य तथा पशु से दूध हुए हैं ॥१०॥ पुष्कराशर्तक आदि मेघ उसके केश कहे गये हैं । वायु घ्राण से जग्य है और श्रुति से कहे हुए तथा स्मृति से कहे हुए कर्म भी समुत्पन्न हुए हैं ॥११॥ इसके अनन्तर सम के आदि काल में इसके द्वारा ही कर्म प्रवर्तक तथा प्रकृति का प्रेरक श्री मान् विराट् पुरुष ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होता है अन्यथा इन्द्रिय आदि के प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता है ॥१२॥ सहस्रो कम यज्ञों से तपो यज्ञ विशिष्ट होता है । सहस्रो ही तपो यज्ञों से जय यज्ञ विशेषता वाला होता है ॥१३॥ इसी भाँति सहस्र जप यज्ञों से ध्यान यज्ञ को विशिष्ट कहा गया है । ध्यान यज्ञ सबसे विशिष्ट होता है । इससे पर अग्य कुछ भी नहीं होता है क्योंकि यह ध्यान ही ज्ञान का साधन होता है ॥१४॥

यदा समरसे निष्ठो योगी ध्यानेन पश्यति ।
 ध्यानयज्ञरतस्यास्य तदा सन्निहित शिव ॥१५॥
 नास्ति विज्ञानिना शीघ्रं प्रायश्चित्तादि चोदना ।
 विशुद्धा विद्यया सर्वे ब्रह्मविद्याविदो जना ॥१६॥
 नास्ति क्रिया च लोकेषु सुख दुःख विचारत ।
 घर्माघमौ जपो होमो ध्यानिना सन्निधि सदा ॥१७॥
 परानदात्मकं लिङ्गं विशुद्धं शिवमक्षरम् ।
 निष्कलं सर्वंगं ज्ञेयं योगिना तद्विदं सस्थितम् ॥१८॥
 लिङ्गं तु द्विविधं प्राहुर्ब्राह्मणमप्यतरं द्विजा ।
 बाह्यं स्थूलं मुनिश्चेष्टा सूक्ष्ममप्यतरं द्विजा ॥१९॥

कर्मयज्ञरताः स्थूलाः स्थूललिगाचनेरताः ।

असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूलविग्रहः ॥२०॥

आध्यात्मिकं च यद्विभक्तं प्रत्यक्षं यस्य नो भवेत् ।

असौ मूढो वहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा ॥२१॥

जिस समय समरस में निष्ठा रखने वाला योगी ध्यान से देवता है तब ध्यान यज्ञ में रत रहने वाले इस योगी के शिव सन्निहित रहा करते हैं ॥१५॥ जो विज्ञानी पुरुष हैं उनको सुद्धि का विचार और प्रायश्चित्त करने की प्रेरणा नहीं होती है । ब्रह्म विद्या के ज्ञाता मनुष्य सब उस अपनी विद्या से ही विशुद्ध होते हैं ॥१६॥ लोको में सुख और दुःख के विचार से क्रिया नहीं है । धर्म अधर्म, जप होम आदि की कुछ भी विचारणा वहाँ नहीं होती है क्योंकि ध्यानियों के तो सदाशिव की सन्निधि रहती है ॥१७॥ परमानन्द स्वरूप, अक्षर, विशुद्ध, निष्कल और सर्वत्र गमन करने वाला शिव लिंग ज्ञानियों के हृदय में सस्थित जानना चाहिये ॥१८॥ हे द्विजो ! यह लिंग बाह्य और आन्तर दो प्रकार का कहा गया है । हे मुनिश्रेष्ठो ! बाह्य लिंग स्थूल होता है और आन्तर सूक्ष्म लिंग होता है ॥१९॥ जो मनुष्य कर्म यज्ञ में रत होते हैं वे स्थूल हैं और स्थूल ही लिंग के अर्चन में रत रहा करते हैं । जो अज्ञानी असत् पुरुष हैं उनकी भावना के अर्थ के लिए ही स्थूल विग्रह पाथिव लिंग का स्वरूप होता है वस्तुतः विचार से नहीं होता है ॥२०॥ आध्यात्मिक जो लिंग है उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है किन्तु जो ज्ञानी नहीं है मूढ हैं वे बाहिर इसकी सब कल्पना किया करते हैं अर्थात् स्थूल की अर्चना करते हैं अन्यथा यह कुछ नहीं है ॥२१॥

ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भवेत्प्रत्यक्षमव्ययम् ।

यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठार्थः प्रकल्पितम् ॥२२॥

अर्थो विचारतो नास्तीत्यन्ये तत्त्वाथवेदिनः ।

निष्कलः सकलश्चेति सर्वं शिवमय ततः ॥२३॥

व्योमेवमपि दृष्टं हि शरावं प्रति सुव्रता ।
 पृथक्त्वं चापृथक्त्वं च शकरस्येति चापरे ॥२४॥
 प्रत्ययार्थं हि जगतामेवस्थोपि दिवाकरः ।
 एकपि बहुधा दृष्टो जलाधारेषु सुव्रता ॥२५॥
 जतवो दिवि भूमा च सर्वे वै पांचभौतिकाः ।
 तथापि बहुला दृष्टा जातिव्यक्तिविभेदतः ॥२६॥
 दृश्यते श्रूयते यद्यत्तत्तद्विद्धि शिवात्मकम् ।
 भेदो जनानां लोकेस्मिन्प्रतिभासो विचारतः ॥२७॥
 स्वप्ने च विपुलान् भोगान् भुक्त्वा मर्त्यः सुखी भवेत् ।
 दुःखी च भोग दुःख च नानुभूत विचारतः ॥२८॥

ध्यान योगी ज्ञानियों को तो सूक्ष्म, अमल, अव्यय का प्रत्यक्ष होता है । जिस प्रकार से अयुक्तों को मृत्ति का तथा काष्ठ आदि से कल्पित स्थूल वा प्रत्यक्ष है ॥२२॥ विचार से देखा जावे तो स्थूल कुछ भी नहीं है । अन्य तत्त्वाद्य के ज्ञाता लोग यही कहते हैं । निष्कल अर्थात् निर्गुण और सकल यह सब शिवमय ही होता है ॥२३॥ जिस तरह यह आकाश तो एक ही सबत्र दिखाई देने वाला होता है किन्तु शराब के प्रति भिन्नता होती है उसी भाँति शङ्कर का पृथक्त्व और अपृथक्त्व होता है, ऐसा दूसरे लोग कहते हैं ॥२४॥ हे सुव्रत वालो ! जगतों को प्रत्यय बनाने के लिए एक ही जगह पर स्थित दिखाकर जो वस्तुतः एक ही है जलादि आधारों में बहुत स्वरूप वाला देखा हुआ होता है ॥२५॥ दिवलोक में और भूमि में रहने वाले समस्त जन्तुगण पाँच भौतिक होते हैं तो भी जाति और व्यक्ति भेदों से ये बहुत देखे गये हैं ॥२६॥ जो कुछ भी दिखाई देता है और जो कुछ भी सुना जाता है उस समयो शिव स्वरूप ही जानना चाहिए । इस लोक में जनों का भेद केवल विचार से प्रति भास मात्र ही होता है ॥२७॥ स्वप्न में मनुष्य बहुत से भोगों का उपभोग करने सुगो होता है और कभी-कभी वह स्वप्न में

कुछ ऐसा भी देखा है कि उससे दुम्मी हो जाता है किन्तु यह भोग घोर दुःख विचार से यह देगा जावे तो कुछ भी अनुभूत नहीं है ॥२८॥

एवमाहुस्तथान्ये च सर्वे वेदार्थतत्त्वज्ञाः ।

दृष्टि संसारिणां साक्षात्सकलः परमेश्वरः ॥२९॥

योगिनां निष्कलो देवो ज्ञानिनां च जगन्मयः ।

त्रिविध परमेशस्य वपुर्लोके प्रशस्यते ॥३०॥

निष्कलं प्रथम चक्रं ततः सकलनिष्कलम् ।

तृतीयं सकलं चैव नान्यथेति द्विजोत्तमाः ॥३१॥

अर्चयन्ति मुहुः केचित्सदा सकलनिष्कलम् ।

सर्वज्ञं दृष्टये केचिच्छिवलिंगे विभावसी ॥३२॥

सकलं भुजयः केचित्सदा संसारवर्तिनः ।

एवमभ्यर्चयन्त्येव सदाराः समुता नराः ॥३३॥

यथा शिवस्तथा देवो यथा देवो तथा शिवः ।

तस्मादभेदबुद्धयैव सत्प्रविशत्प्रभेदतः ॥३४॥

यजति देहे बाह्ये च चतुष्कोणे षडभ्रके ।

दशारे द्वादशारे च षोडशारे त्रिरस्त्रके ॥३५॥

स स्वेच्छया शिवः साक्षाद्दृष्ट्या सार्धं स्थित प्रभुः ।

संतारणार्थं च शिवः सदमव्यक्तिर्वाजितः ॥३६॥

तमेकमाहुर्द्विगुणं च केचित्केचित्तामाहुस्त्रिगुणात्मकं च ।

अचुस्तथा तं च शिवं तथान्ये संसारिण वेदविदो वदन्ति ॥३७॥

इसी प्रकार से यह सब अन्य वेदार्थ के तत्त्व के ज्ञाता कहते हैं कि ससारी पुरुषों के हृदय में साक्षात् सकल परमेश्वर है ॥२९॥ योगी जनों के विचार से वह देव निष्कल अर्थात् निर्गुण होता है तथा ज्ञानियों का दृष्टि से वह जगत् स्वरूप ही होता है । इस प्रकार से स्तोत्र में ही परमेश का वपु तीन प्रकार का प्रशस्त माना जाता है ॥३०॥ सर्वप्रथम निष्कल एक है । इसके अनन्तर सकल, निष्कल दूसरा होता है और तीसरा सकल स्वरूप होता है । हे द्विजश्रेष्ठो ! इन तीनों स्वरूपों से

अन्यथा नहीं है ॥३१॥ कुछ ज्ञानी पुरुष सर्वदा द्रष्टा के भेद से निर्गुण, सगुण रूप यामा ओ शिव का स्वरूप है उसका ही निरन्तर अर्चन किया करते हैं। कुछ योगी मोग हृदय में सर्वश निष्कल का ही यजन किया करते हैं और कुछ संसार में रहने वाले मुनिगण सर्वदा सगुण का विभावसु शिव लिंग में समर्चन किया करते हैं ॥३१॥३२॥ इस प्रकार से स्त्री और पुत्रादि के सहित मनुष्य सदा परमेश्वर शिव के सगुण स्वरूप का ही पूजन करते हैं ॥३३॥ शिव और जगदम्बा देवी का अभेद बनाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार के शिव हैं वैसे ही देवी हैं और जैसी देवी हैं उसी रूप में स्थित शिव है। इस कारण से दोनों के अभेद की बुद्धि से ही सत्ताईश अभेदों में यजन किया करते हैं ॥३४॥ देह में अर्थात् अपने शरीर में, मण्डल में चतुर्कोण आदि षट् स्थानों में यजन किया करते हैं। भजपा जप के विधात में इन स्थानों को बनाया गया है। मूलाधार में चतुर्कोण, स्वाधिष्ठान में षट् दन, और मूर्धा में दशार उगी को महेश्वर कहा जाता है, हृदय में द्वादशार, कण्ठ में षोडशार और भूमध्य में त्रिरस जानना चाहिये। ॥३५॥ वह शिव साक्षात् अपनी इच्छा से प्रभु देवी के साथ स्थित हैं। यह निर्गुण प्रभु लोको के उद्धार के लिए ही इस सगुण साकार रूप में विग्रह धारण करने वाले हुये हैं ॥३६॥ एक अद्वितीय उन शिव को, जिन्होंने अपनी इच्छा से शरीर धारण किया है, दो गुण वाला अर्थात् प्रकृति-गुण रूप कुछ लोग कहते हैं तथा कोई अन्य विद्वान् उनके निर्गुणारमक अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, त्रिदेव कहते हैं एवं अन्य वेद के यज्ञा लोग उन शिव प्रभु को समस्त सत्ता का जनक कहा करते हैं। ॥३७॥

शिवजी ही सर्व-शक्ति मान हैं

कोहं ब्रह्माथवा देवा दैत्या देवारिसूदनाः ।
 मुनयश्च महात्मानः प्रसादेन विना प्रभोः ॥
 यः सप्तविंशको नित्यः परात्परतरः प्रभुः ।
 विश्वामरेश्वरो बन्धो विश्वाधारो महेश्वरः ॥
 स एव सर्वं देवेशः सर्वंपामपि शङ्करः ।
 लीलया देवदैत्येन्द्रविभागमकरोद्धरः ॥
 तस्याशमेकं संपूज्य देवा देवत्वमागताः ।
 ब्रह्मा ब्रह्मत्वमाप्नो ह्यहं विष्णुत्वमेक च ॥
 तमपूज्य जगत्यस्मिन् कः पुमान् सिद्धिमिच्छति ।
 तस्मात्तेनैव हंतव्या लिगार्चनविधेर्बलात् ॥

मैं कौन हूँ, ब्रह्मा, देव, दैत्य, देवारि सूदन, मुनिगण और महात्मा विना प्रभु के प्रसाद के कोई भी कुछ नहीं है अर्थात् किसी भी कुछ सामर्थ्य-शक्ति नहीं है। जो सप्तविंशक अर्थात् जीवेश भेद को लेकर नित्य, परात्पर, प्रभु, विश्व और अमरो का ईश्वर, विश्व का आधार महेश्वर है वह ही वन्दना करने के योग्य हैं। वह ही सर्व देवों का ईश है और सबका शङ्कर अर्थात् बर्त्याण करने वाला है। हर ने ही लीला से देवों और दैत्येन्द्रों का विभाग किया है। उस रुद्र के एक अंश लिङ्ग रूप का सम्पूजन करके देव देवत्व को प्राप्त हुए हैं। यह ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ है और मैं इम विष्णुत्व के पद को प्राप्त हुआ हूँ। इस जगत में उसकी पूजा, अर्चना करके कौन पुरुष सिद्धि की इच्छा कर सकता है। इसलिए लिङ्गार्चन विधि के बल से ये उसी के द्वारा हनन